ISSN 2277-5587
Impact Factor 4.705
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI
UGC Valid Journal (The Gazette of India,
Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

शोध श्री

Volume-36 Issue-3 July-September 2020 RNI No. RAJHIN/2011/40531

SHODH SHREE
ज्ञानं भारः क्रियां विना
ISSN 2277-5587
RNI RAJHIN/2011/40531

CHIEF EDITOR
Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmail.com
www.shodhshree.com

Shodh Shree Volume-36 Issue-3 July-September 2020

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

Virendra Sharma
Chief Editor
Government Girls P.G. College,
Ajmer

Dr Ravindra Tailor
Editor
Shodh Shree,
Jaipur

Editorial Board

Prof. H.S. Sharma (Retd.)
University of Rajasthan, **Jaipur**

Prof. T.K. Mathur (Retd.)
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Ravindra Kumar Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Sarah Eloy
Museum The House of Alijn, **Belgium**

Prof. B.P. Saraswat
Dean of Commerce, M.D.S, University, **Ajmer**

Prof. Pushpa Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Dr. Manorama Upadhayay
Principal, Mahila P.G. Mahavidyalaya, **Jodhpur**

Dr. Veenu Pant
Associate Professor & Head, Department of History, Sikkim University, Gangtok **(Sikkim)**

Dr. Rajesh Kumar
Director (Journal, Publicaiton & Library), I.C.H.R., **New Delhi**

Dr. Pankaj Gupta
Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Dr. Rajendra Singh
Archivist, Rajasthan State Archives, **Jodhpur Division**

Dr. Avdhesh Kumar Sharma
Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Advisory Board

Prof. S.N. Tailor (Retd.)
S.D. Government P.G. College, **Beawar**

Prof. S.P. Vyas
Jainarain Vyas University, **Jodhpur**

Dr. Kate Boehme
University of Leicester, **United Kingdom**

Dr. Mahesh Narayan
Archivist (Retd.), National Archives of India, **New Delhi**

ISSN 2277-5587
Impact Factor 4.705
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI
UGC Valid Journal (The Gazette of India,
Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

शोध श्री

Volume-36 Issue-3 July-September 2020 RNI No. RAJHIN/2011/40531

Published by
DR. S. N. TAILOR FOUNDATION
(A Tribute to Late Shri Paras Hemendra G Tailor)

Prof. (Dr.) S. N. Tailor
Managing Director

Chief Editor
Virendra Sharma

Editor
Dr. Ravindra Tailor

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

Contents

Volume-36 **Issue-3** **July-September 2020**

1. **हिंदी भाषा की प्रकृति की उपेक्षा** 1-4
भगवान सिंह निरंजन, आलमपुर भिंड (मध्यप्रदेश)

2. **महात्मा गांधी और ग्राम स्वराज्यः वर्तमान परिप्रेक्ष्य में** 5-12
डॉ. शालिनी चतुर्वेदी, जयपुर

3. **उत्तर कोविड शिक्षकों की चुनौतियाँ** 13-18
डॉ. अंजना अग्रवाल, जयपुर एवं डॉ. रामकुमार, कानपुर (उत्तरप्रदेश)

4. **मैथिली एवं बज्जिका : एक तुलनात्मक अध्ययन द्वारा** 19-26
अरूण कुमार निराला, वैशाली (बिहार)

5. **भारत में महिला सशक्तिकरण एवं राजनीतिक सहभागिता** 27-31
योगेन्द्र तिवारी, चन्दौली (उत्तर प्रदेश)

6. **सिवाना दुर्ग : एक ऐतिहासिक विरासत** 32-35
नगेन्द्र सिंह भाटी, उदयपुर

7. **भरत का रस निरूपणः सिद्धांत एवं समीक्षा** 36-39
डॉ. कुमार चैतन्य प्रकाश, भागलपुर (बिहार)

8. **स्त्री-स्वातंत्र्य की तलाश करती अल्पना मिश्र की कहानी : ऐ अहिल्या** 40-43
बेबी कुमारी, पटना (बिहार)

9. **धूमिल के काव्य में चित्रित युग यथार्थ** 44-47
डॉ. शशिभूषण प्रसाद, धोरैया (बिहार)

10. **जनमाध्यम के रूप में आकाशवाणी की भूमिका** 48-52
हर्षवर्धन पाण्डे, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

11. **गीतावली में गोस्वामी तुलसीदास की सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि** 53-56
डॉ. अरुण कुमार मिश्रा, बक्सर (बिहार)

12. **गज़ल गायकी का विश्लेषणात्मक एवं सौन्दर्यात्मक अध्ययन** 57-62
हितेष गन्धर्व, कोटा

13. **दलित एवं आदिवासी महिलाओं की शैक्षिक स्थिति : समस्या व समाधान** 63-65
पिंकी रानी, पटना (बिहार)

14. **प्रेमचन्दोत्तर हिंदी उपन्यास साहित्य एवं भारतीय समाज** 66-70
डॉ. जयलक्ष्मी एफ.पाटील, धारवाड़ (तमिलनाडु)

15. **मुक्तिबोध की रचनाओं का शिल्प और विखंडनवाद ('अंधेरे में' और 'ब्रह्मराक्षस')** 71–74
डॉ. सुजाता गुप्ता, मधुबनी (बिहार)

16. **गाँव का प्रतिनिधित्व करता मैला आँचल** 75–77
डॉ. वसीम राजा, भागलपुर (बिहार)

17. **21 वीं सदी की हिंदी कविता में संवैधानिक मूल्य** 78–82
सुभद्रा कुमारी सिन्हा, जालना (महाराष्ट्र)

18. **उत्तराखंड का पर्यटन और मीडिया दृष्टि** 83–86
सुनील भारती, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

19. **हाईस्कूलों में किशोर छात्र एवं छात्राओं के बीच संवेगात्मक बुद्धि और आक्रामकता का प्रभाव का अध्ययन** 87–95
डॉ. रंजना कुमारी, पूर्णियाँ (बिहार)

20. **जयपुर जिले के घटते भू–जल संसाधनों का भौगोलिक विश्लेषणात्मक अध्ययन** 96–101
सतीश कुमार दायमा, जयपुर

21. **राष्ट्रभाषा के बिना कैसा राष्ट्र–"हिन्दी"** 102–104
प्रियंका सिंह, प्रयागराज (उत्तर प्रदेश)

22. **अन्तर्राष्ट्रीय कला जगत तथा भारतीय कला व सांस्कृतिक विरासतों में सह सम्बन्ध** 105–107
सतीश शर्मा, कोटा

23. **महाराजा विजयसिंह (जोधपुर राज्य) और वल्लभ सम्प्रदाय** 108–111
ट्विंकल शर्मा, चूरु

24. **भारत चम्पू में नारी की सामाजिक स्थिति : एक अध्ययन** 112–115
भुवन चन्द्र जोशी, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

25. **राजस्थानी कहावते व लोकोक्तियां–पारंपरिक अनुभव की अभिव्यक्ति (वर्षा ऋतु के विशेष संदर्भ में)** 116–118
बलदेव राम, मेड़तासिटी एवं डॉ. लीलाधर सोनी, नवलगढ़

26. **बाड़मेर जिले की जनांकिकीय परिवेश में साक्षरता का भौगोलिक अध्ययन** 119–124
कन्हैयालाल सारण, जोधपुर

27. **गंगापुर तहसील में जल के कुप्रबन्धन से उत्पन्न समस्या एवं उसके निवारण का भौगोलिक अध्ययन** 125–131
डॉ. सीमा चौहान, कोटा

28. **पंचायतीराज संस्थाओं की समस्याएँ एवं चुनौतियाँ** 132–136
महेन्द्र प्रसाद कडेला, जोधपुर

29. **भारतीय हिंदी सिनेमा और दलित अस्मिता विमर्श** 137–140
अमरेश कुमार, नई दिल्ली

30. **स्त्री अस्मिता : मीडिया और समाज** 141–145
डॉ. कांबले आशा दत्तात्रय, शिदंखेडा (महाराष्ट्र)

31. **माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता एवं शैक्षिक रुचियों का सामाजिक आर्थिक स्तर तथा लिंग-भेद के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन** 146-155
डॉ. भूपेन्द्र सिंह, लुहारी (हरियाणा)

32. **कोवीड-19 एवं वर्तमान विश्व व्यवस्था** 156-161
डॉ. नरेन्द्र कुमार, बीकानेर

33. **स्वातंत्र्योत्तर कथाशिल्पी अमरहुतात्मा अमरकांत : एक नजर (1 जुलाई, 1925 - 17 फरवरी, 2014)** 162-165
डॉ. सुलोचना कुमारी, परमानंदपुर (बिहार)

34. **राही मासूम रज़ा का उपन्यास : टोपी शुक्ला : हिन्दुस्तानी संस्कृति के संदर्भ में** 166-170
प्रेरणा, भागलपुर (बिहार)

35. **Enviornmenal Concerns in Kautilya's Arthasastra** 171-176
Dr. Richa Sikri, Radaur (Haryana)

36. **An Inter-Regional Analysis of Livestock Population in Rajasthan** 177-183
Yashpal Meena, Jodhpur

37. **The Challenges faced by Indian Working Women** 184-191
Dr. Rajesh Kumar Pramanik, Chaibasa (Jharkhand)

38. **Demographic and Social Structural Analysis of Pioneering Agri Innovators in Southern Rajasthan** 192-196
Rakesh Kumar Gautam & Prof. (Dr.) Dr. P.K. Sharma , Kota

39. **The Effect of Imperialism on Ecology in Mulkraj Anand's "Coolie"** 197-201
Prabhat Jha, Patna (Bihar)

40. **Quality of Life of Urban Elderly** 202-205
Dr. Shahraj Parveen, Udaipur

41. **Infrastructure and Agriculture Development in Bihar : A Case Study** 206-210
Dr. Birendra Kumar Yadav, Bhagalpur (Bihar)

42. **A prospective community based study of anaemia status during pregnancy in Purnea District of Bihar** 211-217
Dr. Usha, Purnia (Bihar)

43. **Impact of Globalization on Teacher Education** 218-222
Dr. Reena Kumari, Muzaffarpur (Bihar)

44. **A Comparative Study of Mental Health and Aggression of Secondary School Students** 223-231
Dr. Smita Kumari, Katihar (Bihar)

45. **Maternal Mortality in India: Challenges and Issues** 232-235
Dr. Kumari Pushpa Sharma, Patna (Bihar)

हिंदी भाषा की प्रकृति की उपेक्षा

भगवान सिंह निरंजन
सहायक प्राध्यापक, शासकीय महाविद्यालय, आलमपुर भिंड (मध्यप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भाषा अभिव्यक्ति का श्रेष्ठ माध्यम है, इस नाते सभी से अपेक्षा की जाती है कि अपनी अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाने के लिए भाषा की प्रकृति की समझ होना जरूरी है। बोलते और लिखते तो सब हैं फिर हम सबको तो नहीं पढ़ते हैं, सबको तो नहीं सुनते है। शोध पत्र का विषय 'भाषा की प्रकृति की उपेक्षा' का चयन इसीलिए किया कि भाषा की प्रकृति की समुचित समझ के अभाव में वर्तमान पीढ़ी की भाषायी दक्षता और समझ कमजोर हो रही है। बच्चे न हिंदी सही से बोल पा रहे हैं न लिख पा रहे हैं। अंग्रेजी व्याकरण का अंधानुकरण हो रहा है। दुनिया महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों से गुजर रही है ऐसे में आवश्यकता है कि हमारी वर्तमान और भावी पीढ़ी चुनौतियों के अनुरूप भाषायी दक्षता सीख सके। शोध पत्र में सामने लाया गया है कि प्रकृति की सही समझ के अभाव में कैसे हिंदी के बड़े-बड़े विद्वानों से भी गलतियां हो गई हैं ? इन गलतियों को आगे न दुहराया जाए यही अपेक्षा है।

संकेताक्षर : *पदार्थ, स्वभाव, पद्धति, चाल, गति, प्रवाह, स्वरूप।*

भाषा प्रकृति का सहज रूप है, यह अनूठा वरदान है । यह नदियों का प्राकृतिक एवं सहज बहाव है। हवा की अनुकूल गति है। पक्षियों का कलरव है। अभिव्यक्ति का साधन है, आंतरिक गुण है। भाषा के अपने गुण या स्वभाव को भाषा की प्रकृति कहते हैं। इस संबंध में पं. किशोरीदास वाजपेयी लिखते हैं – ''जैसे एक व्यक्ति की प्रकृति होती है, उसी तरह भाषा की भी समझिए।''[1] रामचंद्र वर्म्मा भाषा की प्रकृति के संबंध में कहते हैं – "भाषा का विवेचन तो सहज है, परंतु उसकी प्रकृति का वर्णन या निर्देश हमारी शक्ति के बहुत कुछ बाहर की बात है। फिर भी कुछ ऐसे अवसर आ ही जाते हैं जब मनुष्य असाध्य-साधन में भी प्रवृत्त होता है।''[2] वह आगे लिखते हैं– ''जिस प्रकार प्रत्येक मनुष्य अथवा पदार्थ की कुछ विशिष्ट प्रकृति होती है, उसी प्रकार प्रत्येक भाषा की भी कुछ विशिष्ट प्रकृति होती है और जिस प्रकार स्थान तथा जलवायु, देश, काल आदि का मनुष्यों के वर्गों, जातियों आदि की प्रकृति पर प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार बोलने वालों की बहुत-सी बातों का उनकी भाषा पर भी बहुत-कुछ प्रभाव पड़ता है। बल्कि हम कह सकतें हैं कि किसी भाषा की प्रकृति पर उसके बोलनेवालों की प्रकृति की बहुत-कुछ छाप या छाया रहती है।''[3] यही कारण है कि प्रत्येक भाषा की प्रकृति उसके व्याकरण, भाव-व्यंजन की प्रणालियों, मुहावरों, क्रिया-प्रयोगों और तद्भव शब्दों के रूपों, बनावटों आदि में निहित रहती है।''[4] पं.चंद्रधर शर्मा ''गुलेरी'' ने अपभ्रंश भाषा के संबंध में प्रकृति का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है-प्रकृति का अर्थ है साधारण नियम, मॉडल, उत्सर्ग आदि और इससे भिन्न जो विशेष, अलौकिक, भिन्न, अन्तरित और अपवाद है वह 'विकृति' की संज्ञा पाता है।''[5] मानव स्वभाव की तरह भाषा का भी अपना स्वभाव होता है, उसका यह स्वभाव प्रकृति, भौगोलिक परिवेश, जीवन पद्धति, ऐतिहासिक घटनाक्रम, सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति और विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले विकास आदि के अनुरूप बनता और ढलता है।

भाषा अपनी प्रकृति में किसी प्रकार की बाधा बर्दाश्त नहीं करती है, यही कारण है कि यह अपनी प्रकृति बनाए रखने के लिए जरूरत महसूस होने पर व्याकरण के बंधन का भी अतिक्रमण कर जाती है। पर मनुष्य की प्रकृति का अतिक्रमण उसे पसंद नहीं। मनुष्य का अतिक्रमण भाषा के सौष्ठव को बिगाड़ता है। भाषा अपनी गति से अविरल बढ़ती रहती है, अपने को मांजती रहती है, सुसंस्कृत करती रहती है। जैसे गंगा के साथ बहुत सी नदियां हिमालय के

ऊंचे स्थलों से निकलकर समुद्र के निचले तल की ओर जाती हैं, जैसे हवा उच्च दबाव से निम्न दबाव की ओर जाती है वैसे ही भाषा की प्रकृति होती है वह उसी तरफ संकेत करती है जहां उसकी अनुकूलता हो। भाषा की प्रकृति की जरा भी परख हो तो यह बोलने में भी अच्छी लगती है और लिखने में भी। चिंता की बात ये है कि आज इस प्रकृति को बचाने पर बहुत कम ध्यान दिया जा रहा है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है भाषा भी परिवर्तनशील है और भाषा के साथ-साथ उसकी प्रकृति चलती रहती है। तकनीक ने एक तरफ हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाया है तो वहीं भाषा की प्रकृति को बदरंग भी किया है। वॉटसएप और फेसबुक की चैट पर तो भाषा की प्रकृति पर जरा भी ध्यान नहीं दिया जाता। भाषा की प्रकृति को जो बिगाड़ना चाहते हैं उन पर पं. किशोरीदास वाजपेयी जोर देकर कहते हैं –''हिंदी ही नहीं, सभी भाषाओं की अपनी प्रकृति होती है। उसे कोई व्याकरण क्या महाव्याकरण भी बदल नहीं सकता।''[6] भाषा की प्रकृति लोक के अनुरूप चलती है, जहां सरलता पर ध्यान दिया जाता है। यही कारण है कि संस्कृत के कई नियम हिंदी ने नहीं अपनाए हैं। वाजपेयी जी आगे लिखते हैं – ''सो प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति होती है, अपनी चाल होती है। उसके विरूद्ध कोई जा नहीं सकता। हिंदी में 'जरूरत' आदि तद्रूप फारसी शब्दों का प्रयोग अब कहां होता है ? कोई समय था, जब बड़े –बड़े महारथी वैसे प्रयोग करते थे, परंतु हिंदी की प्रकृति ने उसे स्वीकार न किया। इस प्रकृति को लोग पहले भी पहचानते थे।"[7]

मनुष्य की भाषा अनन्तकाल से निरंतर गति से प्रवाह रूप से चली आ रही है। इस प्रवाह के आदि और अंत का कोई पता नहीं मिलता। मनुष्य उसे सीखता चला आया है और उसमें आवश्यकता अनुसार परिवर्तन करता चला आया है और करता जायेगा। कहीं-कहीं भाषा की प्रकृति ने अपनी बिगड़ी स्थिति को सुधारा है। इस प्रकृति का ज्ञान हर एक बोलने वाले को नहीं रहता, यही कारण है कि प्रकृति पर आघात होता है। इस संबंध में रामचंद्र वर्म्मा कहते हैं– ''इस प्रकृति का ठीक-ठीक ज्ञान उन्हीं लोगों को होता है जो उस भाषा की उक्त सभी बातों का बहुत ही सर्तकता पूर्वक और सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करते और उसकी हर बात पर पूरा-पूरा ध्यान देते हैं।''[8] व्याकरण की पुस्तकों में भी इस ओर कम लिखा गया, यही कारण है कि लोगों में इसके संस्कार कम पड़े। "मनुष्यों अथवा पदार्थों की प्रकृति का तो बहुत कुछ अनुशीलन और विवेचन हुआ है और होता रहता है, पर भाषा की प्रकृति की ओर कदाचित बहुत ही कम लोगों का ध्यान जाता है।''[9]

कई बार व्याकरण को भ्रम से प्रकृति मान लिया जाता है इस संबंध में रामचंद्र वर्म्मा लिखते हैं– ''प्रत्येक भाषा की प्रकृति उस भाषा के व्याकरण से बहुत कुछ भिन्न और स्वतंत्र होती है।.... प्रत्येक भाषा की एक स्वतंत्र प्रकृति होती है। इस प्रकृति का स्वरूप हम चाहे पहचान सकें, चाहे न पहचान सकें, परंतु वह होती अवश्य है, और कभी-कभी हमें अपनी झलक दिखा जाती है।''[10] भाषा की प्रकृति भी अन्य जीव-जंतुओं के समान होती है, जब तक इनके अनुकूल काम हो सब ठीक चलता रहता है, जैसे ही प्रकृति के विरूद्ध गए वहां गलती आभास होने लगती है। कई बार हम वाक्य को बार-बार पढ़ते रहते हैं और सोचते हैं कि वाक्य सही नहीं बना। यह गलती लिंग, क्रिया, विशेषण, वचन, विभक्ति चिह्न आदि की हो सकती है। यह भाषा की प्रकृति ही है जो हमें उस सुधार की ओर संकेत करती रहती है। और जब तक वाक्य ठीक- ठीक नहीं बन जाता, तब तक हम यही कहते रहेंगे मजा नहीं आया और जैसे ही प्रकृति मिली, हम कहते हैं अब सही रहा। ''भाषा की प्रकृति के विरूद्ध जो तत्व होंगे, वे यदि ज़बरदस्ती उसके शरीर में प्रविष्ट किए जाएंगे तो उसका स्वरूप या शरीर विकृत हो जाएगा।''[11]

भाषा की प्रकृति उसके शब्दों की बनावट, भाव व्यक्त करने की प्रणालियों, क्रियाओं और मुहावरों से प्रकट होती हैं । जो लोग इन सब बातों का सदा पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं, वही समझ सकते हैं कि कौन-सी बात हमारी भाषा की प्रकृति के अनुकूल है और कौन-सी प्रतिकूल। ऐसे लोग कोई बिलकुल नया शब्द सुनते ही कह सकते हैं कि यह हमारी भाषा का शब्द नहीं अमुक भाषा का जान पड़ता है। उनके कान इतने परिष्कृत तथा अभ्यस्त होते हैं कि प्रकृति विरूद्ध छोटी से छोटी बात भी उन्हें खटक जाती है।[12]

भाषा की प्रकृति के विरूद्ध किए गए प्रयोगों के बहुत से उदाहरण हमारे सामने आते हैं इनमें से कुछ हैं- हम हमारे घर जाएंगे के स्थान पर हम अपने घर जाएंगे। इसी प्रकार यदि हम 'परिश्रम करना', 'हानि करना' या 'स्मरण करना' कहें तो यह औरों का अनुकरण न होगा, क्योंकि ये सब हमारे अपने क्रिया प्रयोग हैं। पर यदि हम 'मेहनत उठाना' 'नुकसान पहुंचाना' या 'याद दिलाना' कहें तो वह 'मेहनत', 'नुकसान', और 'याद'

(संज्ञाओं) के कारण नहीं, बल्कि 'उठाना', 'पहुंचाना' और 'दिखाना' क्रियाओं के कारण उर्दूवालों का अनुकरण हो जाएगा, क्योंकि ये सब क्रिया–प्रयोग हमारे यहां के नहीं बल्कि फारसी से उर्दू के द्वारा आए हैं। और इसीलिए ऐसे प्रयोग करते समय हम अपनी भाषा की प्रकृति से दूर हो जाएंगे।[13] 'चार फुट' और 'कागज' (बहुवचन में भी) तो हिंदी की प्रकृति के अनुकूल होगा, परंतु 'चार फीट' और 'कागजात' कहना इसलिए हिंदी की प्रकृति के विरूद्ध होगा, क्योंकि हमारे यहां कोई ऐसा नियम नहीं, जिसमें 'फुट' का बहुवचन 'फीट' या 'कागज' का बहुवचन 'कागजात' बनता हो। हमारे व्याकरण के अनुसार 'वकील' से भाव वाचक संज्ञा 'वकीली' ही बनेगी वकालत नहीं। इसी प्रकार 'पुलकेशी द्वितीय' और 'जार्ज पंचम' सरीखे पद भी हमारी भाषा की प्रकृति के विरूद्ध है। हमारी प्रकृति तो 'द्वितीय पुलकेशी' और 'पंचम जार्ज' कहने की है। यही बात 'पाठ–1' और 'धारा–2' के संबंध में भी है। हमारे यहां उनके रूप होंगे –'पहला पाठ' और 'दूसरी धारा'। भारतीय परंपरा के अनुसार 'गौतम ऋषि' तथा 'वशिष्ठ मुनि' ही कहना ठीक है 'ऋषि गौतम' तथा 'मुनि वशिष्ठ' नहीं।[14] भाषा की प्रकृति कहीं व्याकरण के नियमों का पालन करती है कहीं उसका अतिक्रमण कर अलग धारा बना लेती है । इस नवीन धारा में लोक की सहजता होती है। बहुत से ऐसे शब्द मिल जाएंगे जो व्याकरण विरूद्ध हो सकते हैं लेकिन भाषा की प्रकृति की सहजता और लोक की स्वीकार्यता के कारण चल गए तो चल गए। व्याकरण के अनुसार –''जब कोई उपसर्ग किसी क्रिया संज्ञा आदि से जुड़ता है, तब संधि का होना आवश्यक है। बिना संधि किए लिखने से गलत होगा, क्योंकि भाषा प्रवाह के विरूद्ध होगा। 'प्रत्युदाहरण' को प्रति–उदाहरण नहीं लिख सकते, न ऐसा बोला ही जाएगा। इसी तरह 'संचय' को 'सम्–चय' या 'अभ्युदय' को 'अभिउदय' नहीं लिखा–बोला जा सकता है।''[15]

भाषा की प्रकृति न समझ पाने के कारण होने वाली गलती के संबंध में पं.किशोरीदास वाजपेयी लिखते हैं–हिंदी के सर्वमान्य और सुप्रसिद्ध वैय्याकरण पं. कामता प्रसाद गुरू की इस संबंध में एक विचित्र धारणा है! उन्होंने अपने व्याकरण में लिखा है कि 'मैंने मेज को देखा' इस तरह के प्रयोग गलत हैं, क्योंकि ये न तो कर्तृवाच्य हैं, न कर्मवाच्य। उनका कहना है कि उर्दू से ऐसे प्रयोग हिंदी में आ गए हैं जो 'गुरू' जी की यह धारणा अपनी भाषा की नस–नाड़ी ठीक–ठीक न पहचानने के कारण मालूम होती है। वस्तुतः ऐसे प्रयोग बिलकुल शुद्ध तथा व्याकरण –सम्मत हैं। माना कि इस तरह के प्रयोग न कर्तृवाच्य हैं और न कर्मवाच्य, पर भाववाच्य तो हैं न? इस तीसरे वाच्य पर ध्यान क्यों नहीं दिया गया? इसका कारण है ऐसा जान पड़ता है कि 'गुरू' जी हिंदी के स्वरूप को ठीक–ठीक समझे बिना ही इसका व्याकरण लिखने बैठ गये और इसीलिए 'रग पर नश्तर' लग गया! बात यह है कि उन्होंने हिंदी का व्याकरण बनाने में संस्कृत, अंग्रेजी तथा मराठी आदि के व्याकरणों पर ध्यान रखा, हिंदी के स्वरूप पर नहीं। इसीलिए ऐसी भयंकर गलतियां हो गयी हैं।[16] किसी भी भाषा या उसके व्याकरण का सर्वांश में अंधानुकरण हमारी हिंदी को ग्राह्य नहीं है। फणीश्वरनाथ रेणु जी मैला आंचल में लिखते हैं यहां के लोग सुख संवाद सुनकर भी कहते हैं–जुलुम बात! जुलुम हंसी, जुलुम खुशी! बंगाल के भीषण सुंदर की तरह।[17] इस प्रकार के प्रयोग हिंदी भाषा की प्रकृति के विरूद्ध हैं।

भाषा की प्रकृति पर बात करते हुए किशोरीदास वाजपेयी लिखते हैं– ब्रजभाषा स्वतः मधुर है ,इसलिए 'श', 'ष' के बदले प्रायः 'स' ही बोला जाता है और 'न' का न हो जाता है। इस बात को न समझकर बहुत से नवीन ब्रजभाषा लेखक 'भा' और 'श' का ही प्रयोग करते हैं– 'देश' आदि शब्दों को इसी रूप में लिखा करते हैं! यह उचित नहीं है। अलबत्ता कहीं–कहीं तत्सम रूप लिखे जाते हैं, जैसे विश के 'श' का ब्रजभाषा में कभी भी 'स' न होगा। इसी प्रकार यदि 'शर्म्मा' लिखना हो तो इसके 'भा' का भी 'स' रूप देना उचित न होगा। यह सब ब्रजभाषा–प्रकृति का प्रभाव है। भाषा को कुछ ग्राह्य होता है, कुछ नहीं। वह स्वतंत्र है, व्याकरण आदि सब उसके अनुयायी। प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति होती है, केवल ब्रज भाषा ही में यह बात नहीं है। जिस भाषा में कुछ लिखना हो, उसकी प्रकृति से पूर्ण परिचित होना आवश्यक है। अन्यथा भाषा के साथ वह अपनी कृति भी भ्रष्ट कर लेगा। जो अंधा धुन्ध या अटकलपच्चू काम करेगा। इसी प्रकार ब्रजभाषा में 'य' का प्रायः 'ज' हो जाता है जैसे 'योग' का 'जोग' 'यथा' का 'जथा' 'संयोग' का 'संजोग' होगा पर 'वियोग' का 'विजोग' न होगा।[18] ये भाषा की प्रकृति है। जिन कवियों, वक्ताओं को भाषा की प्रकृति की पहचान होती है, उनके मुख से निकले

एक-एक शब्द सहज ग्राह्य हो जाते हैं। कहीं भी बाधा महसूस नहीं होती। इसके लिए भाषा की गहरी समझ जरूरी है। हमारे गाँव में एक प्रवचनकर्ता मधुप जी आते थे - कहने को तो सूरदास थे पर भाषा की प्रकृति पर जबरदस्त अधिकार था। जब हारमोनियम बजाते थे और माइक संभालते थे तो लोग दांतों तले अंगुली दबाते थे। मधुप जी के मुख से मधुर बचनों की वर्षा होती थी। भाषा की प्रकृति की समझ केशव को न होने के कारण ही शायद केशव 'कठिन काव्य के प्रेत' बने। प्रसाद, प्रेमचंद, तुलसीदास, कबीर, सूर आदि बडे कवि जिन्होंने भाषा की प्रकृति को समझा और लिखा। यही कारण है कि आज भी सर्वाधिक पढ़े जाते हैं। तत्वतः शब्द और अर्थ अभिन्न है, इसीलिए गौस्वामी तुलसीदास कहते हैं -'गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न'।

भाषा विज्ञान में भाषा की प्रकृति पर बहुत कम लिखा गया। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी और रामचंद्र वर्म्मा जैसे विद्वानों ने जरूर लिखा पर यह प्रवृत्ति आगे नहीं बढ़ी। पता नहीं भाषा शास्त्रियों को यह बात ज्यादा रूचिकर नहीं लगी या इस पर विचार करना उचित नहीं समझा। बहुत दिनों तक तो ये ही तय नहीं हो पाया कि हिंदी की जननी कौन है ? ठेठ संस्कृत से हिंदी का जन्म हुआ या अपभ्रंश से। बहुभाषिक देश होना भी एक कारण है। हिंदी की प्रकृति पर विदेशी आक्रमण भी बहुत हुए, हो सकता है इसलिए विद्वानों का ध्यान इस ओर नहीं गया हो। कुछ भी हो हिंदी भाषा की प्रकृति आघात-प्रत्याघात सहते हुए अपने को बचाते हुए आज इस मुकाम पर खड़ी है कि उसमें विश्व भाषा होने की शक्ति और प्रवृत्ति समाहित है। इसकी प्रकृति गंभीर, सरल सुसंस्कृत और अनूठी है। अपेक्षा इसको बनाए रखना और समृद्ध करना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *हिंदी शब्दानुशासन-पं.किशोरीदास वाजपेयी, नागरीप्रचारिणी सभा वाराणसी संवत् 2055 वि. पंचम संस्करण पृ.56*
2. *अच्छी हिंदी-रामचंद्र वर्म्मा, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2005 ई., चौबीसवां संस्करण पृ. 23, 24*
3. *वही पृ. 24*
4. *वही पृ. 24*
5. *हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग-नामवर सिंह, साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद नवीन संस्करण 1954 ई. पृ. 11*
6. *हिंदी शब्दानुशासन-पं.किशोरीदास वाजपेयी , नागरीप्रचारिणी सभा वाराणसी संवत् 2055 वि. पंचम संस्करण पृ .57*
7. *वही पृ. 59*
8. *अच्छी हिंदी-रामचंद्र वर्म्मा , लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद , 2005 ई.,चौबीसवां संस्करण पृ. 24*
9. *वही पृ. 25*
10. *वही पृ. 25*
11. *वही पृ. 27*
12. *वही पृ. 28*
13. *वही पृ. 32*
14. *वही पृ. 32*
15. *ब्रजभाषा का व्याकरण-पं.किशोरीदास वाजपेयी, हिंदी प्रेस प्रयाग, प्रथम संस्करण संवत् 2000 वि. पृ.29*
16. *वही पृ. 54*
17. *मैला आंचल-फणीश्वरनाथ रेणु राजकमल पेपरबैक्स पनुर्मुद्रित संस्करण 1997 पृ.172*
18. *ब्रजभाषा का व्याकरण-पं.किशोरीदास वाजपेयी, हिंदी प्रेस प्रयाग, प्रथम संस्करण संवत् 2000 वि. पृ.92*

महात्मा गांधी और ग्राम स्वराज्यः वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

डॉ. शालिनी चतुर्वेदी
सह आचार्य, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

प्रस्तुत आलेख महात्मा गांधी की ग्राम स्वराज्य संकल्पना का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में चिंतन, मनन व पुनः पाठ विमर्श है। इसमें यह देखने का प्रयास किया गया है कि ग्राम स्वराज की संकल्पना वर्तमान राजनीतिक प्रशासनिक व आर्थिक व्यवस्था में कितनी प्रासंगिक है। ग्राम स्वराज के संदर्भ में तुलसी के लोक मंगल की अवधारणा, रामराज्य की अवधारणा, लोकतंत्र का जीवन्त स्वरूप ग्राम स्वराज्य की अवधारणा के निहितार्थ रूप में देखा गया है। वर्तमान संदर्भ में यह प्रतीत होता है कि वैश्विक धरातल पर जहाँ हम वैश्विकता के नाम पर गांवों से दूर शहरीकरण, औद्योगिकीकरण व तकनीकी प्रधान समाज पर पुरजोर दे रहे है वहाँ गांधी की ग्राम स्वराज्य की संकल्पना कितनी औचित्यपूर्ण है। महात्मा गांधी का दर्शन व चिंतन गांवों के विकास को लोकतांत्रिक राष्ट्र की मूल आत्मा मानता है। गांधीजी के विचारों में लोक (जनता) सबसे महत्वपूर्ण है, बिना लोक के राष्ट्र की अवधारणा बेमानी है। अतः इसी लोक के सर्वांगीण विकास के लिये ग्राम स्वराज की संकल्पना को विकसित किया गया। ग्राम स्वराज की पूर्णरूपेण प्राप्ति व्यक्ति की स्वाधीन चेतना के साथ विकसित होती है। व्यक्ति जब तक सामाजिक व आर्थिक रूप से समानता का अधिकार प्राप्त नहीं कर लेता है तब तक स्वाधीनता मात्रा छलावा है। लोक ही भारतीय शासन व्यवस्था का केन्द्रीय तत्व है, उसकी आत्मा है। महात्मा गांधी का समूचा चिंतन और दर्शन लोक अर्थात ग्राम को केन्द्र में रखकर संचालित हुआ है। इसी आधार पर गांधी का मानना था कि भारत के विकास की अवधारणा और संरचना गांवों को केन्द्र में रखकर ही विकसित की जाए तो हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते है। विविध घटकों के समुचित विश्लेषण के साथ प्रस्तुत पत्र में महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज की संकल्पना का अवधारणात्मक वर्णनात्मक व विश्लेषणात्मक विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

संकेताक्षर : *स्वराज्य, वैश्विकता, प्रशासनिक चिंतक, अभ्युदय, स्वदेशी, स्वावलम्बन, सत्याग्रह, सहकारिता, आत्मनिर्भरता।*

भारत गाँवों का देश है, इसकी ग्रामीण संस्कृति प्राचीनतम है दुनिया में अनेक संस्कृतियों के मध्य भारतीय संस्कृति की अलग पहचान है। गांव सामुदायिक जीवन का श्रेष्ठ उदाहरण है वेदों का मंत्र है विश्व पुष्टे यामे अस्मिन अनातुरम अर्थात मेरे गाँव में परिपुष्ट विश्व का दर्शन होना चाहिए। यह दर्शन बिना स्वराज्य के नहीं हो सकता। महात्मा गांधी की ग्राम स्वराज की अवधारणा वैदिक विचारों का ही विस्तार है।

स्वराज एक पवित्र एवं वैदिक शब्द है जिसका अर्थ है आत्मशासन और आत्मसयंम। अंग्रेजी शब्द इंडिपेंडेस अक्सर सब प्रकार की मर्यादाओं से मुक्त निंरकुश आजादी का या स्वच्छंदता का अर्थ देता है, वह अर्थ स्वराज्य शब्द में नहीं है। स्वराज्य से गांधीजी का अभिप्राय लोक सम्पत्ति के अनुसार होने वाला शासन है। गांधी के मतानुसार सच्चा स्वराज्य थोडे लोगों द्वारा सत्ता प्राप्त कर लेने से नहीं है, बल्कि जब सत्ता का दुरूपयोग होता हो तब सब लोगों द्वारा प्रतिकार करने की क्षमता उसमें है।

राजनीतिक स्वतंत्रता से यह आशय नहीं है कि हम पाश्चात्य राजनीतिक, प्रशासनिक व्यवस्था का यथा स्वरूप अन्धानुकरण करें, उन देशों की शाासन पद्धतियाँ उनकी अपनी प्रकृति के अनुरूप होनी चाहिए, यह लोकतंत्र का

बुनियादी सिद्धांत है। स्वराज्य सत्य और अहिंसा के शुद्ध साधनों द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। उन्हीं के द्वारा कायम रखा जा सकता है। सच्ची लोकसत्ता या जनता स्वराज्य कभी भी असत्य और हिंसक साधनों से नहीं आ सकता। महात्मा गांधी साध्य व साधन दोनों की पवित्रता में विश्वास रखते थे।

गांधीजी के ग्राम स्वराज्य के बुनियादी सिद्धांत

वर्तमान समय में सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आई तीव्र क्रांति के कारण ''वैश्विक गाँव'' की अवधारणा का सूत्रपात हुआ है ऐसी स्थिति में गांधीजी के ग्राम स्वराज्य के बुनियादी सिद्धांतों के द्वारा 'वसुधैव कुटुम्बकम' के आदर्श की व्यावहारिकता प्राप्त की जा सकती है। महात्मा गांधी केवल आदर्शवादी व विचार नेता ही नहीं थे अपितु अपने विचारों को कर्मो के रूप में साकार कर जीवन पर्यन्त व्यावहारिक स्वरूप में ढालने के लिये प्रयासरत रहे। गांधीजी ने गाँवों को भारत की आत्मा कहा और ग्रामीणों के उत्कर्षपूर्ण जीवन के लिये हमेशा उत्कृष्ट, आत्मनिर्भर, आदर्शवादी पंचायतीराज और ग्राम स्वराज्य की धारणा का प्रशस्तीकरण किया, जिसके व्यावहारिक क्रियान्वयन से ग्राम सम्पूर्ण विकास की दिशा में प्रवाहित हो सकते है। वर्तमान पंचायतीराज व्यवस्था इसी गांधीवादी स्वरूप को आधार बनाकर फलीभूत हुई है। महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज्य के बुनियादी सिद्धांत निम्नलिखित है।

मानव का सर्वोच्च स्थान

गांधीजी की कल्पना के ग्राम स्वराज्य का सबसे आधारभूत और सर्वप्रथम सिद्धांत 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' एवं 'सर्वभूत हिताय' है। मानव का सर्वोच्च ध्येय है लोगों को सुखी बनाना और इसके साथ उनकी बौद्धिक और नैतिक उन्नति भी करना। नैतिक उन्नति से तात्पर्य आध्यात्मिक उन्नति से है। यह किसी भी व्यक्ति द्वारा कोई भी कार्य किया जाए तो उसका एकमात्र ध्येय मानव हित व कल्याण ही होना चाहिए। ऐसी व्यवस्था स्थापित की जानी चाहिए जिससे प्रत्येक व्यक्ति जीवित रहने के लिये मूलभूत व न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। किसी भी राष्ट्र की सुव्यवस्थितता की कसौटी यह नहीं होनी चाहिए कि उस राष्ट्र में कितने धनकुबेर है बल्कि यह होनी चाहिए कि उस राष्ट्र में कोई भुखमरी का शिकार न हो। सभी व्यक्तियों को आजीविका का पूर्ण अधिकार हो। राष्ट्र द्वारा निर्मित की जाने वाली योजनाएं इस प्रकार हों कि सम्पूर्ण मानव शक्ति की अधिकाधिक सहभागिता हो।

समानता

गांधीजी की यह मान्यता थी कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने हित व विकास के लिये समान अवसर मिलना चाहिए। यदि प्रत्येक व्यक्ति को अवसर मिले तो वह समाज के अन्य व्यक्तियों की तरह अपना भौतिक तथा आध्यात्मिक विकास कर सकता है। जब तक भौतिक व आध्यात्मिक दोनों ही विकास का समन्वय व समायोजन नहीं होगा समानता का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। ग्राम स्वराज के लिये समानता आवश्यक घटक है। गांधीजी के अनुसार जिस प्रकार एक सच्चे नीतिधर्म में और कल्याणकारी अर्थशास्त्र में कोई विरोध नहीं होता है, उसी प्रकार सच्चा अर्थशास्त्र कभी भी नीतिधर्म के उच्च आदर्शों का विरोध नहीं करता है, जो अर्थशास्त्र निर्बलों के शोषण करने के तरीके बताता है वह एक सच्चा अर्थशास्त्र नहीं है। सच्चा अर्थशास्त्र वह है जो सामाजिक न्याय का समर्थन करता है और समभाव से सभी जब कल्याण की बात करता हो। समान वितरण के आदर्श की पूर्णरूपेण प्राप्ति बहुत कठिन कार्य है इसलिए न्यायपूर्ण वितरण के आदर्श की बात गांधीजी करते है।

गांधी ने ग्राम स्वराज्य की अवधारणा के लिये समानता को एकांगी रूप में नहीं देखा बल्कि मुकम्मल रूप से विचार करते हुये कहा कि व्यक्ति दोनों ही सामाजिक व आर्थिक स्तरों पर जब तक बराबरी का दर्जा हासिल नहीं करेगा, तब तक समानता का मकसद पूरा नहीं होगा। वे यह चाहते थे कि अहिंसापूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति के लिये आर्थिक समानता की स्थापना की जाए। इसलिए गांधीजी ने सबके विकास के लिये और समानता के लिये लघु व कुटीर उद्योगों की वकालत की यह आर्थिक समानता के लिये गांधी द्वारा उठाया गया बड़ा कदम है। पूंजीपति वर्ग और मजदूरों के मध्य जो भारी असमानता दिखाई देती है उसे दूर किया जाए। पूंजीपतियों के पास जो अनर्गल सम्पत्ति है उसमें कमी की जाए और मजदूरों व निर्धन वर्ग के पास सम्पत्ति की अधिकता हो। जब तक सीमित संख्या के पूंजीपति और करोड़ों की संख्या में निर्धनों के बीच जमीन-आसमान का अंतर रहेगा तब तक अहिंसा के आधार पर राज्य व्यवस्था स्थापित नहीं हो पाएगी और यदि यह व्यवस्था अधिक दिन तक रही तो निर्धन और असहाय जनता देश में हिंसक क्रांति कर देगी।

विकेन्द्रीकरण

यह शक्ति केन्द्रों का विसर्जन है। विकेन्द्रीकरण की

ISSN 2277-5587

प्रक्रिया से सामान्य से सामान्य व्यक्ति को सशक्त बनाया जा सकता है, जिससे वह उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है। शक्ति के लगभग सभी लोगों ने सत्ता का अनिवार्य गुण स्वीकार किया है जो कि दमनकारी व शोषण की व्यवस्था का जन्म देती है। गांधी ने शक्ति के विकेन्द्रीकरण की बात कही। आर्थिक केन्द्रों का विकेन्द्रीकरण आवश्यक है जो लद्यु व कुटीर उद्योगों के विकास के साथ ही सम्भव हो सकता है। यदि भारत को अपना विकास अहिंसा की दिशा में करना है तो उसे केन्द्रीकरण के स्थान पर विकेन्द्रीकरण को अपनाना होगा। केन्द्रीकरण की नीति अपनाने के परिणामस्वरूप उसको कायम रखने के लिये हिंसाबल की अनिवार्यता होगी। अतः भारत को ग्राम प्रधान बनाना होगा और गाँवों को सशक्त और सबल बनाने से किसी प्रकार का कोई खतरा या आशंका नहीं होगी। लेकिन भारत यदि शहर–प्रधान होगा तो अत्यन्त शक्तिसम्पन जल, थल व वायु सेना के होते हुये भी सदैव विदेशी आक्रमण का भय रहेगा। अतः नवीन भारत का निर्माण कारखानों की क्षमता पर नहीं किया जाए बल्कि स्वावलम्बी एवं स्वाश्रयी के आधार पर किया जाए तभी शोषण से मुक्त और अहिंसा पर आधारित भारत का निर्माण किया जा सकेगा।

स्वदेशी

स्वदेशी एक सार्वभौम धर्म है, मनुष्य का पहला धर्म अपने स्वदेश का होना चाहिए। इस आग्रह से हम आर्थिक सम्पन्नता और विकास की दिशा को सुनिश्चित कर सकते है। गांधीजी के लिये स्वदेशी एक उपवास के समान था जिस प्रकार व्रत एक अडिग निश्चय होता है, एक संकल्प होता है उसी प्रकार गांधीजी भारतीय अर्थव्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों को नजदीक से देख रहे थे उन्होनें लघु–कुटीर उद्योगों का पतन तथा बेरोजगारी का बढ़ता प्रभाव से स्वदेशी का व्रत धारण किया।

स्वदेशी वस्तुतः एक साझा समन्वय का उपक्रम है इसका मूल धर्म अपनी प्रकृति में विद्ययमान रहते हुये किस प्रकार सबका अभ्युदय तथा सबके अभ्युदय में स्वयं व राष्ट्र का विकास सुनिश्चित किया जा सकता है। अतः गांधी का स्वदेशी का विचार समुन्नत गांव व राष्ट्र का विकास है। इस प्रकार स्वदेशी स्वधर्म है। दोनों ही एक–दूसरे के पर्याय है। जिस प्रकार राष्ट्र की चिंता करना उसके हित की चिंता करना स्वधर्म है उसी प्रकार स्वदेशी विचार रखना व उसका पालन करना स्वधर्म है। इस स्वदेशी स्वधर्म से निरंतर समाज के अंतिम व उपेक्षित वर्ग की सेवा सामाजिक स्तर सुधार और आर्थिक स्तर सुधार के रूप में की जा सकती है। गांधी जी के समक्ष गरीबी का वीभत्स रूप था। चंपारन से लेकर भारत के तमाम हिस्सों में गरीबी का जो आलम था वो असहनीय था। गांधीजी ने इसका कारण आर्थिक तथा औद्योगिक क्षेत्र में स्वदेशी के न होने को स्वीकार किया। इस प्रकार ग्राम स्वराज्य की अवधारणा में स्वदेशी का धर्मभाव मील का पत्थर है जिसके बिना ग्राम स्वराज्य की संकल्पना व्यावहारिक प्रतीत नहीं होती।

स्वालम्बन

स्वावलम्बन की भावना का विकास की भी ग्राम स्वराज्य में अत्यन्त आवश्यक है। समाज का प्रत्येक घटक गाँव या लोगों का एक ऐसा छोटा समूह होना चाहिए जिसकी व्यवस्था की जा सके और जो आदर्श की दृष्टि से स्वयं पूर्ण एवं आत्मनिर्भर हो। स्वावलम्बन का सीधा सम्बंध प्रकृति के साथ समन्वय से है। यह समन्वय ही व्यक्ति को स्वावलम्बी बनाता है। प्रत्येक गांव को स्वयं अपने पैरो पर खड़ा होना होगा, उसे अपने नागरिकों को समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं करनी होगी। एक स्वावलम्बी ग्राम के निर्माण के लिये पहला कार्य होगा कि वह अपनी आवश्यकतानुसार सारा अनाज एवं कपास स्वयं उत्पन्न करे। अनाज एवं वस्तु के क्षेत्र में स्वयं को आत्म निर्भर बनाना होगा कि विदेशी आक्रमण के विरूद्ध वह अपनी रक्षा स्वयं कर सके तभी ग्राम स्वराज्य के आदर्श को प्राप्त किया जा सकता है।

सहयोग

ग्राम स्वराज्य पर आधारित व्यवस्थाओं में सभी व्यक्तियों को परस्पर सहयोग से रहते हुये सबकी भलाई के लिये कार्य करना चाहिए तथा जहां तक सम्भव हो सके गांव का प्रत्येक कार्य सहयोग के आधार पर किया जाना चाहिए। गांधी के मत में सहकारिता की पद्धति किसानों के लिये अधिक आवश्यक है क्योंकि जमीन सरकारी है। अतः सरकारी जमीन पर कृषि सहकारिता के आधार पर की जाए तो वह अधिक उपयुक्त होगी और उस पर किसानों को लाभ भी अधिक मात्रा में होगा। लेकिन यह सहकारिता पूर्ण अहिंसा पर आधारित होगी।

सत्याग्रह

सत्याग्रह एक ऐसी प्रविधि है जिसका विकास गांधीजी ने राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान अंग्रेजों से संघर्ष करने के

लिये किया था। सत्याग्रह के संदर्भ में गांधीजी का मत है कि सत्याग्रह और सहयोग के शस्त्र के साथ अहिंसा की सत्ता ही ग्रामीण समाज का शासन बल होगी।

कायिक श्रम

ग्राम स्वराज्य का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत शरीर–श्रम (Bread-Labour) का है। गांधीजी यह मानते हैं कि शरीर–श्रम न करने वालों को खाने का क्या अधिकार हो सकता है ? अतः प्रत्येक स्त्री–पुरुष जीवित रहने के लिये शरीर–श्रम करे। मनुष्य को अपनी बुद्धि की शक्ति का उपयोग आजीविका या उससे भी ज्यादा प्राप्त करने के लिये नहीं, बल्कि सेवा के लिये, परोपकार के लिये करना चाहिए। इस नियम का पालन करने का चमत्कारी असर होता है, परमशांति मिलती है। ईश्वर ने मानव शरीर का सृजन इसलिए किया है कि वह अपने शारीरिक श्रम द्वारा स्वयं अपने भोजन की व्यवस्था करें। अतः व्यक्ति यदि बिना शारीरिक श्रम किए भोजन करता तो वह एक प्रकार से चोर है। गांधीजी पर इस सिद्धांत का प्रभाव टॉल्सटॉय के विचारों से पड़ा और यही बात उन्हें गीता के तीसरे अध्याय में भी दृष्टिगत हुई।

गांधीजी यह स्वीकार करते हैं कि कायिक श्रम का यह आदर्श एक तरह से अप्राप्य आदर्श है लेकिन इसका यह आशय कदापि नहीं है कि व्यक्ति अपना प्रयत्न न करे बल्कि यदि शारीरिक श्रम के माध्यम से जीविकोपार्जन किया जाए तो व्यक्ति की आवश्यकताऐं बहुत सीमित हो जायेंगी।

मनुष्य को मात्र बौद्धिक श्रम से ही जीविकोपार्जन नहीं करना चाहिए। शारीरिक श्रम का पालन करने से समाज की रचना में एक मूक क्रांति हो जायेगीं मनुष्य की विजय जीवन– संग्राम के स्थान पर परस्पर सेवा के संग्राम की स्थापना कर देने में होगी और पशु धर्म के स्थान पर मानव–धर्म स्थापित हो जायेगा। गांधीजी का मानना था कि बुद्धि द्वारा किया गया शरीर–श्रम समाज सेवा का सर्वोत्कृष्ट रूप है, अतः ऐसा कायिक–श्रम समाज सेवा से भिन्न नहीं है।

संरक्षकता

ग्राम स्वराज्य की अवधारणा के मूल में आर्थिक समानता की भावना निहित है तथा आर्थिक समानता की जड़ में एक धनिक का संरक्षकता के सिद्धांत में विश्वास निहित है। इस आदर्श के अनुसार धनवान को अपने पडौसी से एक कौड़ी भी ज्यादा रखने का अधिकार नहीं हैं जब मनुष्य अपने आप को समाज का सेवक मानेगा, समाज की खातिर धन कमायेगा, समाज के कल्याण के लिये उसे खर्च करेगा तब उसकी कमाई में शुद्धता आयेगी और उसके साहस में भी अहिंसा होगीं आर्थिक समानता की अहिंसक तरीके से स्थापना होगी।

सर्वधर्म समभाव

गांधी जी की यह मान्यता है कि समस्त धर्म मूल में एक ही है। यद्यापि वे पेड़ पत्तों की तरह ब्योरे में हैं और ब्रह्म रूप में एक दूसरे से अलग–अलग हैं लेकिन वे सब एक ही तने से फूटते है और उसी से उनका संबंध होता है। इसके अतिरिक्त कोई भी दो पत्ते एक से नहीं होते, फिर भी आपस में कभी नहीं लड़ते। संसार में जितने भी प्रचलित प्रख्यात धर्म है, वे सब सत्य को प्रकट करते हैं। वे सब मानव द्वारा व्यक्त हुए हैं इसलिए उन सबमें असत्य का मिश्रण हो गया है। इसका अर्थ है कि हर धर्म का मान है और ग्राम स्वराज्य में हर एक धर्म की अपनी पूरी और बराबरी की जगह होगी। सभी धर्म को समानता का स्तर प्राप्त होगा और प्रत्येक धर्म के अनुयायी अन्य धर्मों के प्रति सम्मान की भावना रखेंगे।

पंचायती राज

ग्राम के शासन के प्रबंधन के लिये पंचायती राज की व्यवस्था क्रियान्वित की जाएगी। इस हेतु प्रति वर्ष गांव के पांच व्यक्तियों की एक पंचायत चुनी जायेगी। इसके लिये नियमानुसार एक खास निर्धारित योग्यता वाले गांव के व्यस्क स्त्री–पुरुषों को अधिकार होगा कि अपने पंच चुन ले।

महात्मा गांधी जी के अनुसार ग्राम स्वराज्य की इस व्यवस्था में प्रचलित अर्थों में सजा एवं दण्ड की व्यवस्था नहीं रहेगी। इसलिए यह पंचायत अपने एक साल कार्यकाल में स्वयं धारासभा, न्यायसभा और व्यवस्थापिका सभा का सारा काम संयुक्त रूप से करेगी।

ग्राम स्वराज्य की व्यवस्था सम्पूर्ण भारत में लागू की जा सके और वे परस्पर सहयोग एवं समन्वय से कार्य कर सकें, इस हेतु गांधीजी ने एक ऐसा प्रतिमान प्रस्तुत किया है, जो उनकी समाज व्यवस्था के प्रति गहन अन्तदृष्टि एवं सूझबूझ का परिचायक है।

अभिनव शिक्षा पद्धति

ग्राम स्वराज्य सच्चे अर्थ में प्रतिफलित तभी होगा जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित हो। गांधीजी की नजर में शिक्षित होने का अभिप्राय शरीर, मन और आत्मा की शिक्षा। अक्षर ज्ञान मनुष्य का न तो अंतिम लक्ष्य है और न ही उसकी आत्मा का अंतिम लक्ष्य है और सच्चे अर्थों में ग्राम स्वराज्य तभी फलीभूत होगा जब ऐसी नयी तालीम व्यवस्था लागू होगी।

शिक्षा ज्ञान की प्रक्रिया को तेज करती है। अर्थात शिक्षा वह उपकरण है जो मनुष्य को ज्ञानी बनाती है, यहाँ ज्ञानी बनने का अर्थ है विवेकशील होना और विवेकशील होने का अर्थ है सत्य और असत्य का अन्वेषण करना विवेकशील वहीं हो सकता है जो सही व गलत की पहचान कर सके। यह बिना शिक्षा के सम्भव नहीं है। गांधीजी ने इस दबाव को महसूस किया। उनकी चिंता थी कि पश्चिमी ज्ञान का प्रभाव इतना व्यापक होता जा रहा है कि व्यक्ति की सफलता और सार्थकता का अंतर मिटता जा रहा है। सफलता व्यक्ति की नितांत एक निष्ठ उपलब्धि है जबकि सार्थकता एकनिष्ठ होते हुये भी सर्वजनीन हो जाती है। गांधी व्यक्ति और समाज की सार्थकता के हिमायती थे इसलिए नयी तालिम व्यवस्था को प्रस्तावित करते हुये कहा कि शिक्षा वहीं होती है जो व्यक्ति की आत्मा का विकास करें। अभिनव शिक्षा पद्धति ग्राम को आत्मनिर्भर बनाती है।

गांधीजी के ग्राम स्वराज्य के उपरोक्त बुनियादी सिद्धांतों के आधार पर उनके ग्राम स्वराज्य में निम्नलिखित मूल विशेषताऐं परिलक्षित होती है–

- **शासन की आधारभूत इकाई ग्राम–** गांधीजी के ग्राम स्वराज्य दर्शन में ग्राम शासन की सबसे महत्वपूर्ण व आधारभूत इकाई है। सर्वाधिक अधिकार सम्पन्न व सशक्त इकाई ग्राम ही होगी। जिला, राज्य व राष्ट्रीय स्तर पर पृथक–पृथक स्तरानुसार कार्य होंगे अर्थात किसी भी स्तर पर कार्यो की अधिकता नहीं होगी न ही कार्यो का अतिव्यापन होगा। शासन का प्रत्येक स्तर अपना कार्य स्वयं करेगा तथा उच्च स्तर मात्र समन्वय का कार्य करेगा इससे समूची शासन व्यवस्था का पुनर्निर्माण होगा।

- **जन सहभागिता–** ग्राम स्वराज्य की व्यवस्था में निर्णय बहुमत से नहीं किये जायेंगे बल्कि निर्णय सर्वानुमति अथवा सर्वसम्मति से किया जायेगा अर्थात ग्राम सभा में लिया गया निर्णय सर्वसम्मत्ति से होगा। प्रत्येक ग्रामीण को निषेध का अधिकार होगा क्योंकि यह एक अनुभवसिद्ध तथ्य है कि सत्य का निर्णय कभी बहुमत से नहीं होता बल्कि सर्वसम्मति ही सत्य के अधिक निकट होती है। कभी–कभी सम्पूर्ण समाज के निर्णय के विरुद्ध एक व्यक्ति का कार्य भी सत्य सिद्ध हो सकता है। मानव समाज की विकास यात्रा में कई बार ऐसे क्षण आत है जब सम्पूर्ण समुदाय के विरुद्ध एक व्यक्ति द्वारा लिया गया निर्णय अधिक सही होता है।

- **राष्ट्रीय सुरक्षा–** गांधीजी की जो ग्राम स्वराज्य की व्यवस्था है, उसके संदर्भ में प्राय एक प्रश्न उठाया जाता है कि, इस विकेन्द्रित राज्य सत्ता में राष्ट्र की सुरक्षा व्यवस्था क्या होगी? गांधीजी का यह विश्वास था कि संयुक्त राष्ट्र संघ के अस्तित्व में आने के बाद तो समूची विश्व की जनता की आवाज सुनी जाएगी परन्तु जब तक ऐसी व्यवस्था आए उससे पूर्व राष्ट्र की सुरक्षा का सर्वोत्तम साधन जनता की दृढ़ इच्छा शक्ति और उसकी एकता है। यदि जनता में यह प्रबल भावना विद्यमान हो कि राष्ट्र की सुरक्षा पर कोई खतरा होगा तो वे एकजुट होकर दृढ़ता से मुकाबला करेंगे तभी उस राष्ट्र की एकता कायम रह सकती है। यह सभी सम्भव है जब ग्राम स्वराज्य मजबूत होगा।

  उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर गांधीजी ने एक आदर्श भारतीय ग्राम के चित्र को स्पष्ट किया उन्होंने लिखा है ''मेरी कल्पना की ग्राम इकाई मजबूत से मजबूत होगी। मेरी कल्पना के गांव में एक हजार आदमी रहेंगे। ऐसे गांव को अगर स्वावलम्बन के आधार पर अच्छी तरह संगठित किया जाए तो वह बहुत कुछ कर सकता है।''

- **आदर्श भारतीय ग्राम–** गांधीजी की परिकल्पना के आदर्श ग्राम स्वावलम्बी ग्राम के विकास के लिये अनिवार्य होती है। स्वच्छता की पूरी–पूरी व्यवस्था होगी, गलियां व सड़कें धूल से मुक्त होंगी। झोपड़ियों में पर्याप्त प्रकाश व हवा का प्रबंध होगा। झोपड़ियों में आंगन व खुली जगह होगी, जहां घर के लोग साग–सब्जियां उगा सकेंगे, मवेशियों को रख सकेंगे, गांव में सबकी आवश्यकतानुसार कुऐं

होंगे, सबके लिये पूजा का स्थान होगा, सभा भवन होगा, सरकारी डेयरी होगी, प्राथमिक व माध्यमिक शालाऐं होंगी, गांव अनाज, साग-सब्जि, फल, खादी स्वयं अपने स्तर पर पैदा करने में सक्षम होगा, ग्राम पंचायत होगी ऐसा ग्राम स्वावलम्बी व आत्म निर्भर होगा। ग्रामीण लोगों को ऐसी कला व कारीगरी का विकास करना होगा जिससे अपने गांव के बाहर उनके सामान की कीमत की जा सके, जब शनै- शनै गांव का पूर्ण विकास हो जाएगा तो वहां पर कलाकारों की कोई कमी नहीं रहेगी। गांव में कवि, कलाकार और विद्वानों की अधिकता होगी जो ग्रामीणों की आत्मा एवं उनके मस्तिष्क को संतुष्ट करेंगे। गांवो की पुर्नरचना इस प्रकार की जायेगी कि वहां पर जीवन की समस्त मूलभूत आवश्कताओं की पूर्ति हेतु साधन उपलब्ध हो।

ग्राम स्वराज्य के आदर्श ग्राम की अर्थनीति पूंजीवादी व साम्यवादी अर्थनीति से पृथक एक ऐसी सरल ग्राम अर्थव्यवस्था होगी जिसका केन्द्र मनुष्य है, जो शोषण रहित है और विकेन्द्रीकृत है। वह स्वेच्छापूर्ण सहयोग के आधार पर अपने प्रत्येक नागरिक को पूरा काम देने का प्रबन्ध करती है और अन्न, वस्त्र, खादी, ग्रामोद्योग, कुटीर उद्योगों पर विशेष बल देती है। गांधीजी के अनुसार विभिन्न प्रकार के गामोद्योग जैसे दूध का उद्योग, मधुमक्खी पालन, चमड़े का उद्योग, साबुन तथा हाथ से कागज निर्माण आदि का विशाल व व्यापक स्तर पर स्थापित करने के लिये ग्रामिणों को प्रोत्साहित करना होगा तभी वास्तविक रूप से गांवों का उत्थान होगा।

ग्राम स्वराज्य की परिकल्पना को साकार रूप देने के लिये गांधीजी ने इसके प्रत्येक पक्ष पर विचार किया। उनके अनुसार गांवों में स्वास्थ्य सुविधायें पर्याप्त नहीं है और अधिसंख्य जनता कुपोषण व बीमारियों की शिकार है। निर्धनता के कारण गांवों में मृत्यदर अधिक है ताकि महंगी चिकित्सा पद्धति से अपना इलाज कराने में सक्षम नहीं है। इसलिए इन सब तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुये गांधीजी ने प्राकृतिक चिकित्सा अथवा कुदरती उपचार पद्धति को आदर्श बताते हुये, प्रयोग पर बल दिया। कुदरती इलाज से गांधीजी का अभिप्राय पंच महाभूतों-पृथ्वी अर्थात मिट्टी, पानी, आकाश, तेज एवं वायु के प्रयोग के द्वारा शारीरिक बीमारियों के निदान से है। जिनसे इस शरीर का निमार्ण हुआ है। गांधीजी ने अपनी पुस्तक 'आरोग्य की कुंजी' में बहुत ही विस्तार से इन पंचतत्वों के माध्यम से विविध रोगों के उपचार के तरीके बताये है, जो बहुत ही लाभकारी सिद्ध हुये है।

ग्राम सेवक ग्राम सेवा की कल्पना को साकार रूप देने वाला एक सशक्त माध्यम है जो ग्राम के निवासियों को एक आदर्श नागरिक बनाना सिखाएगा तथा गांव में स्वच्छता, आरोग्य रक्षा एवं उसके उसके विकास की परिस्थितियाँ उत्पन्न करने में गांव का सहयोग लेगा। एक आदर्श ग्राम सेवक के लिये गांधीजी ने कुछ विशिष्ट योग्यताओं का निर्धारण भी किया है जैसे- ईश्वर में आस्था रखने वाला हो, सत्य और अहिंसा को धर्म मानता हो, चरित्रवान हो, आदतन खादीधारी हो, कातता हो, निर्व्यसनी हो और अनुशासित हो। ग्राम सेवक में इन योग्यताओं व दिशा निर्देशक तत्वों के उल्लेख के साथ-साथ गांधीजी ने एक आदर्श ग्राम सेवक के कर्तव्य भी बताये जैसे वह सर्वधर्म समभाव का स्वयं पालन करे व ग्राम वासियों को जागरूक करे स्त्री-पुरुष में भेदभाव के बिना सबको समान अवसर के आदर्श में विश्वास उत्पन्न करे, गांव को संगठित करे, स्वयं भी स्वावलम्बी व आत्मनिर्भर बने और ग्रामवासियों से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करके उनको भी स्वावलम्बी व आत्मनिर्भर बनाए, खेती व गृह उद्योगों के लिये प्रोत्साहित करे, अभिनव शिक्षा पद्धति का प्रयोग करवाये, मतदाता सूची में नाम दर्ज करवाने की योग्यता की जानकारी दे व मतदाता सूची में ग्रामवासियों का नाम दर्ज करवाये।

ग्राम सेवक का कर्तव्य वस्तुतः अपने ग्राम को एक आदर्श ग्राम के रूप में परिणित करने के लिये निरंतर प्रयासरत होना चाहिये।

अंततः यह कहा जा सकता है कि ग्राम स्वराज्य की संकल्पना को साकार करने में सरकार की अहम भूमिका होगी। सरकार ग्रामोद्योगों, कुटीर उद्योगों के विकास के लिये ग्रामीण जनता को तैयार व प्रोत्साहित करे, जनता को सहयोग करे व इन उद्योगों को पुनर्जीवित करने के लिये अथक प्रयास करे। गांधीजी का चरखा व करघा एवं अन्य ग्रामीण तथा कुटीर उद्योगों के समर्थन एवं औद्योगीकरण के विरोध के पीछे बेरोजगारी की समस्या का समाधान, मानव श्रमशक्ति को प्रोत्साहित करना तथा मानवीय मूल्यों से युक्त जीवन दर्शन निहित है। गांधीजी की कल्पना के ग्राम स्वराज्य में आर्थिक अवस्था ही आदर्श नहीं है अपितु

ISSN 2277-5587

सामाजिक अवस्था भी आदर्श थी, इसलिए वे सभी सामाजिक बुराईयों के उन्मूलन पर भी जोर देते थे। अस्पृश्यता व मधपान जैसी सामाजिक बुराइयों के घोर विरोधी थे वे इन्हें ग्रामों की प्रगति में भी बाधक मानते थे। यदि स्वतंत्रता के पश्चात् की स्थितियों का अवलोकन करें तो बलवंतराय मेहता समिति से लेकर 73वां संविधान संशोधन तक विभिन्न समितियों से प्राप्त सूचनाओं के माध्यम से पंचायती राज प्रणाली में अनेक उतार चढ़ाव व अंतराल देखने में नजर आता है। पूर्व प्रधानमंत्री स्व. श्री राजीव गांधी के नेतृत्व वाली सरकार में पिछले दशकों मे विकासात्मक दृष्टिकोण से इन संस्थानों को फिर से एक बार नया रचनात्मक अमली जामा पहनाया गया। भारतीय संविधान का 73वां संविधान संशोधन 1992 मे पंचायतीराज व्यवस्था को न केवल नयी दिशा बल्कि लोकतंत्र की जड़ों को सीचंने में भी सार्थक सिद्ध हुआ है। उन परिस्थितियों में जब पंचायतीराज व्यवस्था डगमगाने लगी हो तो इस संशोधन ने सबलता व मजबूती प्रदान की है। वास्तव में यह संशोधन कितना प्रबल व असरदार रहा तथा पिछले दशकों में पंचायतीराज प्रणाली की उपलब्धियों का लेखा-जोखा देखा जाए तो सम्पूर्ण भारतवर्ष में बहुत ही समाधान कारक स्थिति नजर नहीं आती है। 73वें संविधान संशोधन में पंचायती राजप्रणाली को कार्य करने के लिये ज्यादा अवसर प्राप्त हुआ है, लेकिन जनता आज भी ग्राम स्वराज्य की संकल्पना से वंचित रह गई है। वर्तमान में बढ़ती हुई समस्याओं, आधुनिकता एवं अंतराल को दृष्टिगत रखते हुये पंचायतीराज संस्थाओं का अत्यधिक रावलीकरण, अधिकार सम्पन्न बनाना, कार्यशैली व नेतृत्व की समस्याओं का निराकरण अति आवश्यक है ये केवल स्थानीय संस्थाऐं हैं एक स्वायत्तशासी सरकार नहीं वर्तमान में भी राज्य सरकारों पर इनकी निर्भरता इनको आत्मनिर्भर बनने में बाधक है।

ग्रामीण विकास हेतु वैकासिक नीतियों के निर्माण के साथ-साथ उनका प्रभावी क्रियान्वयन भी आवश्यक है। सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक मूल्यों का विकास रोजगार सृजन, शैक्षिक, औद्योगिक विकास, गांवों से शहरों की ओर पलायन को रोकने हेतु ग्रामीण स्तर पर ही कुटीर- हाथकरघा उद्योगों का विकास, ग्रामीण पर्यटन को बढ़ावा देना, ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की विस्तृत जानकारी ग्रामीणों को उपलब्ध कराना, ऐसे अनेक पहलू हैं जिन पर गहन चिन्तन व मनन अपेक्षित है तभी ग्राम स्वराज्य की गांधीजी की कल्पना व्यावहारिक सिद्ध होगी।

वर्तमान विश्व जहाँ आज कोरोना महामारी से ग्रसित है लॉकडाउन की स्थिति में देश में शहरों में रह रहे करोड़ों प्रवासी मजदूर रोजगार समाप्त होने की स्थिति में दो वक्त की रोटी व भावनात्मक सहारे की अपेक्षा से शहरों से गांवों की ओर पुनः पलायन कर रहे है इससे शहरों व गांवों दोनों के लिये चिंताजनक स्थिति उत्पन्न हो गई है। यह स्थिति आगामी वर्षों में क्षेत्रिय असंतुलन व आर्थिक असमानता की भयावह स्थिति उत्पन्न कर देगी, जो कृषि देश की अर्थव्यवस्था में 16.5 प्रतिशत योगदान के बावजूद लगभग 45 श्रम शक्ति को खपाए हुये हैं वह शहरों से लौटे करोड़ो लोगों का भार कैसे ढो पायेगी। ऐसे में ग्रामीण इलाकों में जरूरी इंफ्रास्ट्रक्चर व मार्केटिंग तंत्र पर भारी निवेश करना होगा। यदि जिला प्रशासन को अधिक संवेदनशील बना दिया जाए तो वह ग्रामीण अंचलों में स्वतः स्फूर्ति तरीके से उभर रही उद्यमशीलता को मॉडल बनाकर विकसित कर सकता है। वस्तुतः वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य में गांधीजी का आत्मनिर्भर गांवों वाला ग्राम स्वराज्य मॉडल ही उपयुक्त प्रतीत होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *यंग इण्डिया, 19 मार्च, 1931, पृ. स. 38*
2. *गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित्र मानस, पृ. स. 220*
3. *हिन्दी नवजीवन, 29 जनवरी, 1925, पृ. सं. 198*
4. *गांधी हरिजन सेवक, 27 मई, 1959, पृ. स. 143*
5. *गांधी हरिजन सेवक, 2 अगस्त, 1942, पृ. स. 8*
6. *गांधी हरिजन सेवक, अगस्त 1944, पृ. स. 72*
7. *गांधी सत्याग्रह और समाज, 1940, पृ. स. 10*
8. *गांधी सत्याग्रह और मैं, 1942, पृ. स. 2*
9. *पाण्डेय, प्रदीप कुमार, गांधी का आर्थिक एवं सामाजिक चिंतन हिन्दी माध्यम कार्यान्यवन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1996, पृ. स. 29*
10. *महात्मा गांधी, ग्राम सेवा, सस्ता साहित्य मण्डल, प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 1969, पृ. सं. 11*
11. *हिन्दी नवजीवन 26 दिसम्बर 1924, पृ. स. 155*
12. *सत्याग्रह आश्रम का इतिहास सन् 1959, पृ. स. 40-44*
13. *यंग इण्डिया, 13 अक्टूबर 1921 पृ. स. 325*
14. *हरिजन सेवक संघ, 5 जुलाई, 1935, पृ. स. 160*

15. हरिजन सेवक 10 नवम्बर, 1946, पृ. स. 387
16. रचनात्मक कार्यक्रमः नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, सन् 1989, पृ. स. 40-41
17. गांधीजी, आरोग्य की कुंजी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, सन् 2000, पृ. स. 34
18. हरिजन सेवक, 22 फरवरी, 1948, पृ. स. 49-50
19. हरिजन सेवक, 2 जून, 1946, पृ. स. 165
20. अर्चना सिन्हा, गांधीयन फिलोसिफी ऑफ सर्वोदय, झांकी प्रकाशन, पटना, सन् 1978
21. प्रो. बी. एम. शर्मा, डॉ. रामकृष्ण शर्मा, डॉ. सविता शर्मा, गांधी दर्शन के विविध आयाम, 194-197
22. रामकृष्ण शर्मा, सर्वोदय, सर्वोदय सहित्य संघ, काशी, सन् 1979
23. दिनेश खरेः पंचायत राज कैसा हो ? अशोक प्रकाशन, जयपुर, सन् 1964
24. वी. पट्टामि सीमा रमैयाः गांधी और गांधीवाद, शिवलाल अग्रवाल, आगरा, सन् 1957
25. हरिभाऊ उपाध्यायः गांधीः विचार व प्रभाव नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सन् 1966
26. शंभूरत्न त्रिपाठीः गांधी धर्म और समाज, समाजशास्त्र संसद, सन् 1964,
27. जे.बी.कृपलानी : महात्मा गांधी, जीवन और चिंतन, प्रकाशन मंदिर, दिल्ली सन् 1978
28. डा.बी.एन. पाण्डेयः गांधी महात्मा, समग्र चिंतन, गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली, सन् 2000
29. निर्मला देश पाण्डेयः गांधी और ग्राम स्वराज्य स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली, सन् 2000
30. गांधी एवं स्वराज्य, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन सन्, 1983

उत्तर कोविड शिक्षकों की चुनौतियाँ

डॉ. अंजना अग्रवाल
जयपुर
डॉ. रामकुमार
प्राचार्य, राजकीय नर्सिंग महाविद्यालय, कानपुर (उत्तरप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

कोविड–19 एक वैश्विक महामारी है जो कोरोना वायरस के संक्रमण से फैलती है आज पूरा विश्व इसकी चपेट में है। पूरी दुनिया में चारों ओर हाहाकार है। जनवरी 2020 से शुरू हुई इस समस्या का सितम्बर, 2020 तक भी कोई समाधान नहीं मिल पाया है। उत्तर कोविड से तात्पर्य कोविड–19 की महामारी खत्म होने की स्थिति से है। कोविड–19 की महामारी समाप्त होने के बाद जब देश में परिस्थितियाँ सामान्य हो जाएँगी (जैसा कि कोविड की शुरूआत होने से पहले थी) तब स्थितियों–परिस्थितियों का संचालन कैसे किया जायेगा ? यह एक भविष्य कालीन प्रश्न है। समय परिवर्तन के साथ तथा समय की मांग के अनुसार शिक्षा प्रदान करने के स्वरूप में बदलाव आवश्यक है लेकिन ऑनलाइन माध्यम से दी जा रही शिक्षा फेस टू फेस दी जाने वाली शिक्षा का विकल्प नहीं हो सकती। किसी भी पाठ्यक्रम में या कक्षा में प्रवेश के समय छात्रों की अपने शिक्षकों से कुछ अपेक्षाएँ जैसे शिक्षण सम्बंधी, नैतिक एवं चारित्रिक विकास सम्बंधी, गुणवत्तायुक्त शिक्षा सम्बंधी, रोजगार परक शिक्षा सम्बंधी एवं व्यावहारिक कौशल विकास होती है। उपचारात्मक शिक्षण व्यवस्था, छात्रों को उचित निर्देशन एवं परामर्श, छात्रों में सकारात्मकता का विकास, पाठ्यक्रम को पूरा करने हेतु अतिरिक्त कक्षाएँ, छात्रों में व्यावसायिक कौशलों का विकास करना, छात्रों के आत्मविश्वास के स्तर को बढ़ाना, सीखने के भयमुक्त वातावरण का विकास करना आदि ऐसे रणनीतियाँ हैं जो छात्रों के अधिगम स्तर में वृद्धि करेंगी तथा शिक्षकों को उनके लक्ष्य प्राप्ति में सहयोग प्रदान करेंगी।

संकेताक्षर : *कोविड–19, उत्तर कोविड, शिक्षकों, चुनौतियाँ, रोजगार।*

कोविड–19 एक वैश्विक महामारी है जो कोरोना वायरस के संक्रमण से फैलती है आज पूरा विश्व इसकी चपेट में है। पूरी दुनिया में चारों ओर हाहाकार है। जनवरी 2020 से शुरू हुई इस समस्या का सितम्बर, 2020 तक भी कोई समाधान नहीं मिल पाया है। अभी भी वैज्ञानिकों को इसकी कोई दवा अथवा वैक्सीन बनाने में सफलता नहीं मिल पाई है। यह महामारी अपने रौद्र रूप में है। भारत में प्रतिदिन लगभग 1 लाख नये केस सामने आ रहे हैं। भारत सरकार ने इस महामारी के शुरुआती दिनों में सभी सेक्टर में लॉकडाउन घोषित कर दिया था। लेकिन लॉकडाउन की अवधि लम्बी होने से देश में अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो गई थीं। धीरे–धीरे सरकार को भी अनलॉक की प्रक्रिया जारी करनी पड़ी, किन्तु शिक्षा के क्षेत्र में अभी भी (लगभग 7 माह बाद भी) लॉकडाउन जारी है। इसका बड़ा खामियाजा शिक्षा की मुख्य धुरी माने जाने वाले छात्र एवं शिक्षक भुगत रहे हैं। यदि ऐसा ही चलता रहा तो शिक्षा व्यवस्था और अधिक पिछड़ जायेगी। आने वाले समय में परिस्थितियाँ क्या होंगी इसका अंदाजा अभी से लगाना असंभव है। सात माह से बंद पड़ी शिक्षा व्यवस्था को कैसे एक साथ पटरी पर लाया जायेगा ? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका हल ढूढ़ना बड़ी टेढ़ी खीर है।

यद्यपि केंद्र एवं प्रदेश सरकारों द्वारा छात्रों की शिक्षा को सुचारू रूप से संचालित रखने हेतु ऑनलाइन शिक्षा के आदेश जारी किये गये हैं। परन्तु ऑनलाइन माध्यम से शिक्षा उतना भी आसान नहीं है जितना समझी जाती है। विविधता वाले इस देश में ऑनलाइन शिक्षा के मार्ग में भी अनेक चुनौतियाँ है क्योंकि ऑनलाइन माध्यम से शिक्षा

हेतु इण्टरनेट कनेक्शन, हाई स्पीड इण्टरनेट, एंड्राइड फोन, लैपटाप एवं तकनीकी की जानकारी की अत्यंत आवश्यकता होती है। ग्रामीण क्षेत्र, निम्न आर्थिक पृष्ठभूमि एवं सुदूरवर्ती इलाकों से आने वाले छात्रों के लिए इण्टरनेट कनेक्शन, हाईस्पीड इण्टरनेट, एंड्राइड फोन अथवा लैपटाप की व्यवस्था कर पाना कठिन कार्य है। यदि छात्र इन साधनों को जुटा भी लेते है तो ऑनलाइन माध्यम से शिक्षा की उत्पादकता अधिक प्रभावी नहीं हो पा रही है क्योंकि ऑनलाइन माध्यम से शिक्षा देकर सूचनाओं एवं तथ्यों को छात्रों तक पहुचाँया तो जा सकता है लेकिन शिक्षा की उपादेयता को सुनश्चित नही किया जा सकता।

समय परिवर्तन के साथ तथा समय की मांग के अनुसार शिक्षा प्रदान करने के स्वरूप में बदलाव आवश्यक है लेकिन ऑनलाइन माध्यम से दी जा रही शिक्षा फेस टू फेस दी जाने वाली शिक्षा का विकल्प नहीं हो सकती।

लॉकडाउन एवं महामारी के कारण शिक्षा में जो बिखराव उत्पन्न हो रहा है उसके भरपाई हो पाना मुश्किल है। इस बिखराव को दूर तो नहीं किया जा सकता लेकिन शिक्षकों एवं शिक्षाविदों के प्रयास से कम किया जा सकता हैं। शिक्षा अव्यवस्था का प्रभाव केवल छात्र पर ही नहीं पड़ता बल्कि पूरा देश एवं देश के अंदर होने वाली सभी गतिविधियाँ इस से प्रभावित होती हैं। इस कठिन समय में बडे ही धैर्य एवं सावधानी के साथ कार्य योजना तैयार करनी होगी।

उत्तर कोविड

उत्तर कोविड से तात्पर्य कोविड-19 की महामारी खत्म होने की स्थिति से है। कोविड-19 की महामारी समाप्त होने के बाद जब देश में परिस्थितियाँ सामान्य हो जाएँगी (जैसा कि कोविड की शुरुआत होने से पहले थी) तब स्थितियों-परिस्थितियों का संचालन कैसे किया जायेगा? यह एक भविष्यकालीन प्रश्न है। क्योंकि कोविड के कारण देश की प्रत्येक व्यवस्था चरमरा गई है। सामाजिक व्यवस्थाएँ हो या औद्योगिक, राजनैतिक हो या व्यावसायिक, शैक्षिक हो या तकनीकि सभी व्यवस्थाएँ पिछड़ गई हैं। इस महामारी के कारण देश का विकास कई दशक पीछे हो गया है। देश के विकास की चूलें हिल गई हैं लेकिन इनका विस्मरण करना ही श्रेष्ठ है क्योंकि 'बीति ताहि बिसार दे आगे की सुध लेय' की पंक्तियों का अनुसरण करते हुए हमें देश के विकास की ओर उन्मुख होना होगा। नागरिकों एवं सरकारों को जनहित, समाज हित एवं राष्ट्र हित में नवीन कदम उठाने होंगें। ताकि बीते हुए कठिन दौर की भरपाई की जा सके। मेरा मानना है कि गुजरे समय के घावों को भरा तो नहीं जा सकता लेकिन अथक प्रयासों द्वारा उन घावों से मिलने वाली पीड़ा को कम किया जा सकता है। ऐसी ही पीड़ा शिक्षा जगत में विद्यार्थी झेल रह हैं।

शिक्षक

गुरूर ब्रह्मा, गुरूर विष्णु, गुरूर देवो महेश्वराय।
गुरूर साक्षात परम ब्रह्म तस्मै श्री गुरूवे नमः।।

अर्थात गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं साक्षात परम ब्रह्म का स्वरूप माना गया है। गुरु ही वह शक्ति है जो मनुष्य के इहलोक एवं परलोक को सुधारते हैं। गुरु का स्थान सदैव से ही उच्च रहा है। जब-जब मनुष्य पर विपत्ति आयी है उस विपत्ति से उबरने के लिए उसने गुरु की शरण ली है। आज के इस दौर में गुरु को पुनः अपनी बुद्धि, चातुर्य, ज्ञान, कौशल एवं क्षमताओं का प्रयोग करके उत्तर कोविड छात्रों की शिक्षा सम्बंधी समस्याओं को हल करना होगा। शिक्षकों को ऐसी रणनीतियाँ, ऐसी व्यूह रचनाएँ एवं योजनाएँ निर्मित करनी होंगी जिससे छात्रों की शिक्षा व्यवस्था को पुनः पटरी परलाया जा सके। शिक्षा के तीनों स्तरों-प्राथमिक स्तर, माध्यमिक स्तर एवं उच्च स्तर पर छात्रों की आवश्यकताओं के अनुरूप अलग-अलग रणनीतियों की आवश्यकता होगी। यह कार्य शिक्षकों के लिए चुनौतीपूर्ण है

विद्यालय/महाविद्यालय में एक बार प्रवेश लेने के बाद शिक्षा व्यवस्था की सम्पूर्ण जिम्मेदारी शिक्षक की हो जाती है। शिक्षक को ही यह तय करना होता है कि उसे अपने छात्रों का अधिगम कैसे कराना है? छात्रों में संवेगात्मक स्थिरता कैसे लानी है, छात्रों की व्यावसायिक कुशलता को कैसे विकसित करना है? छात्रों का इष्टतम विकास कैसे करना है ?

शिक्षक ही वह व्यक्ति है जो छात्रों की अन्तर्निहित योग्यताओं को पहचानकर उनका विकास करता है। किंतु वर्तमान परिस्थितियाँ न तो छात्रों के लिए अनुकूल हैं और न ही शिक्षक के लिए। शिक्षक एवं छात्र इन दोनों को ही इन परिस्थितियों से अनुकूलन करते हुए अपना कार्य करना होगा। शिक्षक औपचारिक शिक्षा की प्रक्रिया का मार्गदर्शक है इसलिए शिक्षक की जिम्मेदारी और भी अधिक बढ़ जाती है। शिक्षक के दायित्व

चुनौतीपूर्ण रहे हैं लेकिन कोरोना संकट ने शिक्षकों के दायित्वों को और भी चुनौतीपूर्ण कर दिया है।

छात्रों की शिक्षकों से अपेक्षाएँ

किसी भी पाठ्यक्रम में या कक्षा में प्रवेश के समय छात्रों की अपने शिक्षकों से कुछ अपेक्षाएँ होती है जो कि निम्न हैं–

- शिक्षण सम्बंधी अपेक्षाएँ
- व्यावहारिक कौशल विकास की अपेक्षाएँ
- समाजिक विकास की अपेक्षाएँ
- नैतिक एवं चारित्रिक विकास की अपेक्षाएँ
- गुणवत्ता युक्त शिक्षा की अपेक्षाएँ
- रोजगारपरक शिक्षा की अपेक्षाएँ
- वैयक्तिक विविधों के अनुरूप शिक्षा की अपेक्षाएँ

शिक्षकों के लिए चुनौतियाँ

अब प्रश्न उठता है कि जब कभी भी भविष्य में शिक्षण संस्थाएँ खुलेंगी तो शिक्षकों के लिए क्या नई चुनौतियाँ होंगी? कैसे महीनों से ठप पड़ी शिक्षा व्यवस्था को पटरी पर लाया जायेगा? शिक्षको एवं शिक्षाविदों को इसके लिए क्या विशेष कदम उठाने होंगे? लेकिन उत्तर कोविड शिक्षकों को जिन चुनौतियों का सामना करना पडेगा वे स्तरानुरूप निम्न है–

प्राथमिक शिक्षकों की चुनौतियाँ	**माध्यमिक शिक्षकों की चुनौतियाँ**	**उच्च शिक्षा में चुनौतिया**
सीमित समय में पाठ्यक्रम को पूर्ण कराना	सीमित समय में पाठ्यक्रम को पूर्ण कराना	सीमित समय में पाठ्यक्रम को पूर्ण कराना
छात्रों की परिवेशीय आवश्यकता के अनुरुप कार्य योजना तैयार करना	छात्रों को पुनः शिक्षा सरंचना के सांचे में ढालना	छात्रों को पुनः शिक्षा सरंचना के सांचे में ढालना
छात्रों में विषय वस्तु की समझ विकसित करना	वर्तमान परिस्थितियों के साथ अनुकूलन	शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष का विकास करना
नये छात्रों के साथ आपसी तालमेल बनाना	जीवन कौशलो का विकास करना	छात्रों की कार्य दक्षता में वृद्धि करना
छात्रों को पुनः शिक्षा सरंचना के सांचे में ढालना।	संवेगात्मक परिपक्वता विकसित करना	व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास करना
विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों की समस्या	समायोजन सम्बंधी चुनौती	शिक्षा की गुणवत्ता उन्नयन की समस्या
उचित शिक्षण व्यूह रचना का चुनाव करना	व्यावसायिक कौशलों का विकास करना	श्रेष्ठ अनुसंधान क्षमता का विकास करना
पुराने ज्ञान को नवीन ज्ञान से जोड़ना	छात्रों की वैयक्तिक विभिन्नताएँ	छात्रों में तनाव एवं कुण्ठा दूर करना
छात्रों में शिक्षा के प्रति रुचि विकसित करना	अनुशासन स्थापित करना	छात्रों की व्यावसायिक योग्यता का विकास
छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य का ध्यान रखना	भविष्य के प्रतिचिंता	शिक्षक एवं छात्रों में सामंजस्य बनाना
शैक्षिक गुणवत्ता को बनाए रखना	परीक्षा कराना	तार्किक क्षमता का विकास करना
संसाधनों का अभाव	व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास करना	अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराना

उत्तर कोविड शिक्षा क्षेत्र की समस्याओं का समाधान

कहा जाता है आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। सम्स्याओं में ही समाधान छुपा होता है। इसी कहावत को चरितार्थ करते हुए हमारे शिक्षक समाज ने उत्तर कोविड शिक्षा के क्षेत्र में आने वाली समस्याओं का समाधान/हल ढूंढ लिया है। शिक्षक वर्ग नई योजना, नई सोच, नई पहल एवं नई तकनीक के साथ चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार है। उत्तर कोविड शिक्षा क्षेत्र की समस्याओं का समाधान निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

1. **आधुनिक शिक्षण विधियों का प्रयोग (Use of Modern Teaching Methods)** – पाठ्यक्रम को पूर्ण कराने हेतु शिक्षकों के द्वारा शिक्षण की परम्परागत विधियों के स्थान पर आधुनिक शिक्षण विधियों (Blended Learning, Flipped Learning, Cloud Learning, Open Learning, Umbrella Education etc.) का प्रयोग किया जाये।
2. **परीक्षा प्रणाली एवं ग्रेडिंग सिस्टम में परिवर्तन (Change in Examination System and Grading System)** – कोविड–19 के कारण शिक्षा व्यवस्था में उत्पन्न हुए व्यवधान को देखते हुए विभिन्न विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों एवं बोर्डस की परीक्षा प्रणाली एवं ग्रेडिंग सिस्टम में परिवर्तन किये जाने चाहिए।
3. **प्रतिमान विस्थापन (Paradigm Shift)** – वर्तमान परिस्थितियों के मद्देनजर शिक्षा के मौलिक उपागम में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करने चाहिए। जिससे कोरोना के कारण उत्पन्न हुई समस्याओं को हल किया जा सके।
4. **शिक्षण उपागम प्रतिमानों में लचीलापन (Flexibility in Pedagogical Approach)** – कोरोना संकट के कारण बेपटरी हुई शिक्षा व्यवस्था को उसके मूल स्वरुप में लाने हेतु किये जा रहे प्रयासों में शिक्षण उपागम प्रतिमानों (Pedagogical Approach) में लचीलापन स्वीकार किया जाना चाहिए।
5. **प्राथमिकताओं में बदलाव (Change in Priorities)** – वर्तमान समय की मांग एवं आवश्यकता के अनुरूप प्राथमिकताओं में बदलाव करते हुए शिक्षा में चुनौतियों का सामना करने में मदद की जा सकती है।
6. **नवीन विचारों का समावेश (Inclusion of New Ideas)** – कोविड–19 के कारण शिक्षकों के सामने उत्पन्न हुई चुनौतियों को शिक्षा में नवीन विचारों का समावेश करके दूर किया जा सकता है।
7. **स्मार्ट एजूकेशन/ ऑनलाइन शिक्षा (Smart Education/Online Education)** – वर्तमान तकनीकी युग की सबस बडी आवश्यकता स्मार्ट एजूकेशन/ ऑनलाइन शिक्षा है। कोविड–19 के समय में स्मार्ट एजूकेशन /ऑनलाइन शिक्षा ने छात्रों को बहुत लाभ पहुँचाया है। जिन क्षेत्रों में स्मार्ट एजूकेशन/ऑनलाइन शिक्षा दिया जाना संभव हो वहां इसे एक बहुत बड़े हथियार के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। मूक्स (Moocs), स्वंय (SWAYAM), स्वयंप्रभा (SWAYAM PRABHA), शैक्षणिक उपग्रहों के माध्यम से ऑनलाइन शिक्षा दी जा सकती है।
8. **अवसरवादी उपागम (Opportunistic Approach)** – अवसरवादी उपागम में उत्तर कोविड की परिस्थितियों का प्रयोग करके शिक्षकों द्वारा छात्रों की शिक्षण कार्य में सहायता की जा सकती है।
9. **सामाजिक सहयोग (Social Support)** - विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले छात्र समाज का अभिन्न अंग होते हैं। उसी समाज के प्रबुद्धजनों के सहयोग से छात्रों की शिक्षा व्यवस्था को उत्तर कोविड सुचारू रूप से संचालित किया जा सकता है।
10. **वैयक्तिक विभेद (Individual Differences)** – छात्रों के वैयक्तिक विभेदों को ध्यान में रखते हुए भी शिक्षकों द्वारा उत्तर कोविड रणनीतियाँ तैयार की जा सकती हैं जिससे किसी भी छात्र को नुकसान न झेलना पडे।
11. **संसाधनों की शेयरिंग** (Sharing of Resources) – कोविड–19 के समय में पूरी मानवता ने एक–दूसरे का सहयोग किया है। यदि इस सहयोग की भावना को शिक्षण संस्थानों में भी लागू कर लिया जाये तो पिछडी पडी शिक्षा व्यवस्था को सुधारा जा सकता है।
12. **सृजनात्मक चिंतन का विकास (Developmnet of Creative Thinking)** – छात्रों को ऐसे कार्य कराये जायें जिससे छात्रों में सृजनात्मक चिंतन

ISSN 2277-5587

को बढ़ावा मिले। शिक्षा के सैद्धांतिक पक्ष के साथ-साथ उसकी व्यावहारिकता पर बल दिया जाये।

13. **माइंड मैपिंग (Mind Mapping)** – माइंड मैपिंग एक वर्सेटाईल तकनीक (Varsatile Technique) है जिसके द्वारा नये विचारों को मस्तिष्क में संग्रहित करके उसके अनुसार कार्य योजना का क्रियांवयन किया जाता है। माइंड मैपिंग कोरोनाकाल में शिक्षा जगत की समस्याओं का हल निकालने में कारगर साबित होगी।

14. **मानवीय ससाधनों में इजाफा (Increase in Human resources)** – कोविड-19 के कारण बेपटरी हुई शिक्षा व्यवस्था को अपने मूल स्वरूप में लान हेतु विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में मानवीय संसाधनों (Teaching Staff, Laboratory Staff, Library Staff and Supporting Staff) का इजाफा किया जाना चाहिए।

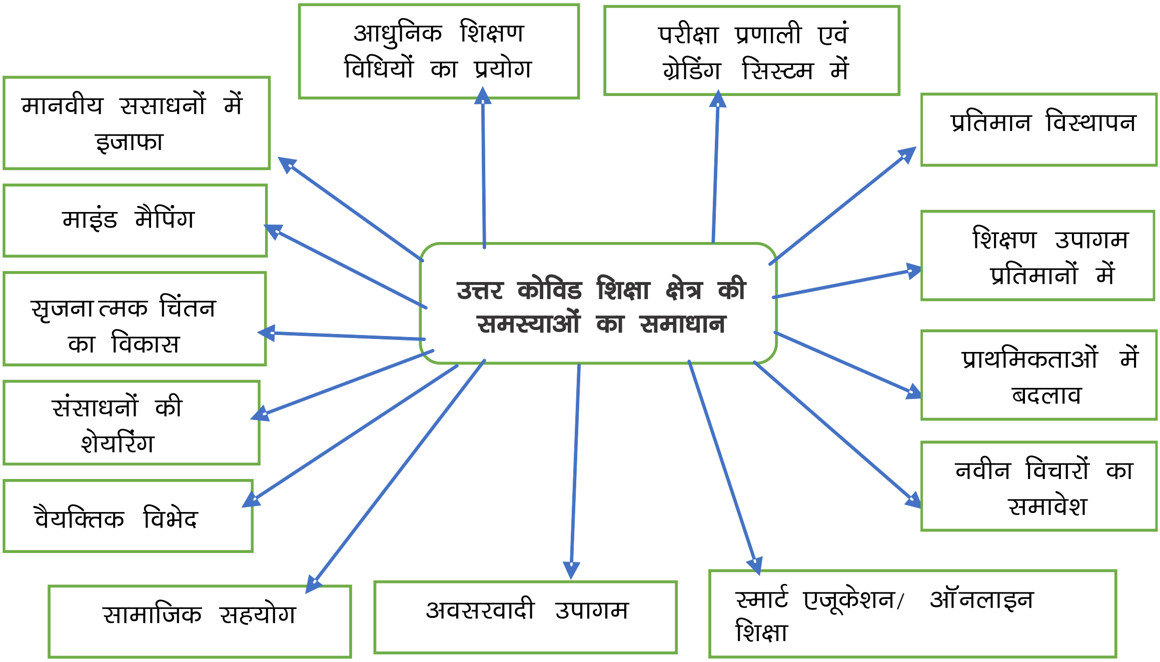

चित्र–उत्तर कोविड शिक्षा क्षेत्र की समस्याओं का समाधान

उपर्युक्त सभी उपायों के अतिरिक्त उपचारात्मक शिक्षण व्यवस्था, छात्रों को उचित निर्देशन एवं परामर्श, छात्रों में सकारात्मकता का विकास, पाठ्यक्रम को पूरा करने हेतु अतिरिक्त कक्षाएँ, छात्रों में व्यावसायिक कौशलों का विकास करना, छात्रों के आत्मविश्वास के स्तर को बढ़ाना, सीखने के भयमुक्त वातावरण का विकास करना आदि ऐसे रणनीतियाँ है जो छात्रों के अधिगम स्तर में वृद्धि करेंगी तथा शिक्षकों को उनके लक्ष्य प्राप्ति में सहयोग प्रदान करेंगी।

निष्कर्ष

लम्बे समय से बंद पड़ी शिक्षा व्यवस्था का उत्तर कोविड (कोविड-19 की महामारी समाप्त होने के बाद) पुनः नये जोश, नई स्फूर्ति, नई ताकत के साथ अपने मूल स्वरूप में लाना होगा। छात्रों को जो हानि झेलनी पड़ रही है उस हानि की भरपाई हेतु शिक्षकों एवं शिक्षाविदों को नवीन प्रयास करने होंगे। शैक्षिक प्रयासों की सम्पूर्ण जिम्मेदारी हमारे शिक्षक समाज के कंधों पर है। शिक्षक अभूतपूर्व प्रतिभा का धनी होता है कि वह कठिन से कठिन चुनौतियों का भी आसानी से सामना कर लेता है। कोविड के बाद प्राथमिक स्तर के शिक्षकों से लेकर उच्च स्तरीय शिक्षा तक के शिक्षकों को अग्नि परीक्षा के लिए तैयार रहना है। इस कठिन समय में बडे ही धैर्य एवं सावधानी के साथ कार्य योजना तैयार करनी होगी।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. गुप्ता, एस. पी. एण्ड गुप्ता, अलका, भारतीय शिक्षा का ताना–बाना, इलाहाबादः शारदा पुस्तक भवन, 2012
2. लाल, रमन बिहारी एण्ड शर्मा कृष्ण कांत, भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ, मेरठः आर लाल डिपो, 2013–14
3. गुप्ता, एस. पी. एण्ड गुप्ता, अल्का, भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ, इलाहाबादः शारदा पुस्तक भवन, 2010
4. लाल रमन बिहारी एण्ड पलोड, सुनीता, शैक्षिक चिंतन एवं प्रयोग, मेरठः आर लाल डिपो, 2011
5. सारस्वत, मालती एण्ड गौतम, एस.एल, भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामयिक समस्याएँ, इलाहाबादः आलोक प्रकाशन, 2012
6. मल्होत्रा, पी.एल., भारत में विद्यालयी शिक्षाः वर्तमान स्थिति और भावी आवश्यकताएँः नई दिल्लीः राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, 1986
7. www.corona.mygov.in
8. www.mohfw.gov.in
9. www.worldmeters.info/coronavirus

 ISSN 2277-5587

मैथिली एवं बज्जिका : एक तुलनात्मक अध्ययन द्वारा

अरूण कुमार निराला
शोद्यार्थी, प्राकृत, जैनशास्त्र एवं अहिंसा शोध संस्थान (बासोकुण्ड), वैशाली (बिहार)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

मैथिली एवं बज्जिका बिहारी हिन्दी के अन्तर्गत दो प्रमुख बोलिया हैं। इन दोनों बोलियों के साथ–साथ बिहारी हिन्दी के अन्तर्गत आनेवाली अन्य बोलियों मगही, भोजपुरी, अंगिका) की उत्पत्ति मागधी अपभ्रंश से हुई है। अभी तक का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन उपरोक्त भाषाओं/बोलियों को एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न एवं स्वतंत्र स्वरूप वाला मानता रहा है। हालांकि, उपरोक्त बोलियों का उद्‌गम स्रोत एक ही होने के कारण इनमें पर्याप्त समानताएँ भी विद्यमान हैं। प्रस्तुत अध्ययन में मैथिली एवं बज्जिका के शाब्दिक एवं भाषिक विशेषताओं के तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा दोनों बोलियों के मध्य साम्य–वैषम्य को स्पष्ट किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन इस प्राक्कल्पना पर आधारित है की मैथिली एवं बज्जिका के सम्बन्ध सहोदर होने के कारण दोनों बोलियों के मध्य समान लक्षणों की उपस्थिति स्वाभाविक है। लेकिन भाषायी विकास के क्रम में दोनों बोलियों द्वारा स्वतंत्र विशेषताओं को धारण करने के कारण इनके मध्य व्यापक रूप से असमान लक्षण भी विद्‌यमान हैं। प्रस्तुत अध्ययन में विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक प्रविधि द्वारा निष्कर्ष की प्राप्ति की जाएगी।

संकेताक्षर : *बिहारी हिन्दी, पूर्वी बिहारी, मागधी अपभ्रंश, अर्न्तभाषायी गतिशीलता, आत्मसातीकरण।*

भारत ज्ञान के क्षेत्र में संसार में सदैव अग्रणी रहा है। अनेक शास्त्रों एवं विज्ञान की तरह भारतवर्ष में भाषा सम्बन्धी चिंतन एवं चेतना की सुदीर्घ परंपरा रही है। हजारों वर्षों के लंबे कालखंड में भाषा के विभिन्न रूपों का उदय, परिष्कार एवं विकास होता रहा है। भाषा के इन विभिन्न रूपों का गठन मुख्यतः चार आधारों पर संभव होता है – इतिहास, भूगोल, प्रयोग एवं निर्माता। इन आधारों पर भाषा के कई रूप विकसित होते हैं, जिसमें प्रमुख है – बोली एवं भाषा।[1] वस्तुतः भाषा विज्ञान में 'भाषा' शब्द का आशय साहित्यिक भाषा से एवं बोली का आशय सामाजिक समूह अथवा व्यक्ति के सामान्य विचार–विनिमय के माध्यम से लिया जाता है। परंपरागत रूप से भाषा और बोली दोनों ही अपने–अपने रुपों में प्रवर्तमान रहते हैं। वस्तुतः बोली का निर्माण सामाजिक–आर्थिक समूहों तथा भौगोलिक सीमाओं के आधार पर होता है। इसी कारण विभिन्न समूहों में विभिन्नता होने के कारण अलग–अलग बोलियाँ विकसित होती है। इन बोलियों की विशेषता इनकी सहजता होती है, जो व्याकरणिक नियमों के बंधन से मुक्त होती है। संस्कृत में इसे ही देशभाषा अथवा देशी भाषा कहा गया है। किसी भी समूह की बोली जब व्याकरणिक नियमों से आबद्ध होकर परिनिष्ठित रूप धारण कर लेती हैं तो वह 'भाषा' कहलाती है। यद्यपि भाषा का विकास बोली से ही होता है तथापि इसमें बोली की सहजता एवं लचीलेपन का लोप हो जाता है एवं व्याकरणिक अनुशासन दृढ़ हो जाता है। किसी एक बोली के परिनिष्ठित स्वरूप धारण करने के बाद भी जनसामान्य की बोली अपने सहज रूप में व्यवहृत होती रहती है। प्राकृत–संस्कृत के अन्तर्सम्बध को उपरोक्त आलोक में समझा जा सकता है।

इस प्रकार, 'भाषा' और 'बोली' दोनों शब्द वाणी के द्‌योतक है। इन दोनों में गहरा सम्बन्ध है तथा दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। फिर भी, इन दोनों का स्वरूप अलग–अलग है। 'बोली' कोयले की खान में प्राकृतिक रूप से पड़े टेढ़े–मेढ़े हीरे के समान है, जबकि भाषा अंगुठी में जड़ित कटे–छंटे एवं तराशे हुए हीरे के समान है।[2]

मैथिली एवं बज्जिका, बिहारी हिन्दी उपवर्ग की प्रमुख बोलियाँ हैं; जो मागधी प्राकृत से व्युत्पन्न है। अतः इन बोलियों के विकास क्रम को समझने हेतु प्राकृतों का अध्ययन आवश्यक है।

वस्तुतः प्राकृत आर्य भाषा की ही अवस्था है। आर्यों की प्राचीनतम भाषा संस्कृत है। जिसका प्राचीनतम रूप ऋग्वेद में देखने को मिलता है। भारतीय आर्यभाषा के विकास को भाषाशास्त्रियों द्वारा तीन काल खण्डों में बांटा गया है –

- प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल – 1500 ई. पू. से 500 ई. पू. तक
- मध्यकालीन आर्यभाषा काल 500 ई. पू. – 1000 ई.
- आधुनिक भारतीय आर्यभाषा काल – 1000 ई. से वर्तमान तक।

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के दो रूप मिलते है – वैदिक संस्कृत एवं लौकिक संस्कृत। वैदिक भाषा से ही संस्कृत का विकास माना जाता है।

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल को प्राकृत काल कहा जाता है। डेढ़ हजार (1500) वर्ष के लंबे कालखण्ड में प्राकृत कई अवस्थाओं एवं स्वरूपों में विकसित होती रही। प्राकृत का आशय सामान्य जनता द्वारा व्यवहृत भाषा से लिया जाता है। वस्तुतः संस्कृत के समानांतर जो जन भाषाएँ थी, उन्हीं के विकसित रूप को प्राकृत कहा जा सकता है।

प्राकृत के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण विवाद यह है कि यह संस्कृत से विकृत होकर बनी भाषा है या वह मूल भाषा है। जिसकी विकसित एवं संस्कारित अवस्था को संस्कृत कहा जाता है। हेमचन्द्र, मार्कण्डेय आदि आचार्यो का मानना है संस्कृत मूल वाणी है तथा प्राकृत उसी से विकसित हुई है। (''प्रकृति : संस्कृतम। यत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम्।'')[3] इसके विपरीत पिशल जैसे विद्वानों का मानना है कि प्राकृत जन बोलियों से निर्मित भाषा है और इसी का अभिजात रूप संस्कृत बनकर विकसित हुआ। वस्तुतः प्राकृत भाषा का उद्‌भव तात्कालीन जनसामान्य की भाषा छान्दस् से हुई। इसी भाषा से संस्कृत भी विकसित हुई। इस प्रकार प्राकृत–संस्कृत सहोदरा है। व्याकरणिक नियमों से बाँध देने के कारण संस्कारित भाषा संस्कृत कहलायी एवं प्राकृत जनभाषा के रूप में बनी रही।[4] विभिन्न क्षेत्रों में व्यवहृत प्राकृतों में प्रमुख हैं –

1. महाराष्ट्री प्राकृत (महाराष्ट्र)
2. शौरसनी प्राकृत (मथुरा)
3. मागधी प्राकृत (मगध)
4. अर्ध मागधी प्राकृत (कोशल)
5. पैशाची प्राकृत (सिंधी)

भाषा वैज्ञानियों के अनुसार यह प्राकृत की दूसरी अवस्था (प्रथम शताब्दी से 500 ई. तक विकसित) है। इस काल में यह साहित्यिक भाषा के रुप में प्रचलित रही। कुछ विद्वानों ने इसके संदर्भ को स्पष्ट करने के लिए इसे साहित्यिक प्राकृत भी कहा है। उपरोक्त प्राकृतों का स्वरूप स्थिर हो जाने के बाद विभिन्न क्षेत्रों में जन सामान्य की जो बोलियाँ प्रचलन में बनी रही, उसे प्राकृत की तीसरी अवस्था अर्थात् 'अपभ्रंश' कहा गया। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी का मानना है कि अपभ्रंश एक भाषा नहीं बल्कि भाषिक विकास की केवल एक स्थिति है और छठी से ग्यारहवीं सदी तक प्रत्येक प्राकृत की एक अपभ्रंश अवस्था देखी जा सकती है।[5] डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने भी पाँच अपभ्रंशों की स्थिति स्वीकार की है, जो स्थानीय प्राकृतों के समानांतर विकसित हुई थी –

पैशाची प्राकृत > पैशाची अपभ्रंश

शौरसेनी प्राकृत > शौरसेनी अपभ्रंश

महाराष्ट्री प्राकृत > महाराष्ट्री अपभ्रंश

अर्द्धमागधी प्राकृत > अर्द्धमागधी अपभ्रंश

मागधी प्राकृत > मागधी अपभ्रंश

आधुनिक भारतीय आर्यभाषा काल में भारत की वर्तमान आर्यभाषाओं की गणना होती है, जिनका विकास विभिन्न अपभ्रंशों से हुआ है। वस्तुतः अपभ्रंशों को प्राकृत और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की बीच की कड़ी के रूप में माना जा सकता है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के विकास को निम्न तरीके से समझा जा सकता है –

1. पैशाची अपभ्रंश > पंजाबी, लहंदा
2. शौरसेनी अपभ्रंश > खड़ी बोली (पश्चिमी हिन्दी)
3. अर्द्ध मागधी अपभ्रंश > पूर्वी हिन्दी
4. महाराष्ट्री अपभ्रंश > मराठी
5. मागधी अपभ्रंश > बिहारी हिन्दी (भोजपुरी, मैथिली,

ISSN 2277-5587

अंगिका, बज्जिका, मगही), बंगला, असमिया, उड़िया।

मैथिली एवं बज्जिका हिन्दी की बिहारी उपवर्ग की प्रमुख बोलियाँ हैं। वस्तुतः बिहारी हिन्दी, बिहार तथा झारखंड के क्षेत्रों में प्रयुक्त होने वाली बोलियों के उपवर्ग का नाम है। इस उपवर्ग में मैथिली एवं बज्जिका के साथ–साथ भोजपुरी, मगही एवं अंगिका शामिल है।

अपने भाषा–सम्बन्धी अध्ययन के क्रम में ग्रियर्सन, सुनीति कुमार चटर्जी, डॉ. उदय नारायण तिवारी, डॉ. भोलानाथ तिवारी जैसे भाषा वैज्ञानियों ने बिहारी हिन्दी के अन्तर्गत बोलियों के संदर्भ में अपने निष्कर्षों में केवल तीन बोलियों – भोजपुरी, मगही एवं मैथिली को ही मान्यता प्रदान की है। इन भाषा वैज्ञानियों ने अंगिका एवं बज्जिका का कोई उल्लेख नहीं किया है। मैथिली को एक प्रमुख बोली मानते हुए, इन्होंने इसकी छह उपबोलियों (1) उत्तरी मैथिली, (2) दक्षिणी मैथिली, (3) पूर्वी मैथिली, (4) पश्चिमी मैथिली, (5) छिकाछिकी, (6) जोलहा बोली का वर्णन किया है। डॉ. ग्रियर्सन द्वारा वर्गीकृत 'पश्चिमी मैथिली' को ही कालांतर में महापंडित राहुल सांकृत्यायन द्वारा बज्जिका नाम दिया गया।[6] इसी प्रकार अन्य भाषा वैज्ञानिकों द्वारा 'पूर्वी मैथिली' को अंगिका नाम दिया गया। बज्जिका बोली पर विशद् व वैज्ञानिक अध्ययन सर्वप्रथम डॉ. सियाराम तिवारी द्वारा किया गया। अपने ग्रंथ – 'बज्जिका भाषा और साहित्य' में उन्होंने पर्याप्त भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर बज्जिका सम्बन्धी डॉ. ग्रियर्सन एवं अन्य भाषा वैज्ञानिकों के मतों का खण्डन करते हुए बज्जिका को मैथिली एवं भोजपुरी से भिन्न बोली के रूप में स्थापित किया हौ। इसका क्षेत्र चंपारण, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, वैशाली, पूर्वी सारण, समस्तीपुर, नेपाल की तराई, सीतामढ़ी, शिवहर तक विस्तृत है।

मैथिली, साहित्यिक दृष्टि से बिहारी हिन्दी की सर्वाधिक सम्पन्न बोली है। इसका क्षेत्र मुजफ्फरपुर, दरभंगा, मधुबनी, सहरसा, पूर्णिया, भागलपुर, मुंगेर आदि क्षेत्रों तक विस्तृत है। अब इस बोली को एक भाषा के रुप में, संसदीय प्रस्ताव द्वारा भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में भी शामिल किया जा चुका है।

वस्तुतः 'मैथिली' शब्द मिथिला से संबंधित है। मिथिला क्षेत्र की भाषा के लिए मैथिली शब्द का प्रयोग कोलब्रुक ने 1801 ई. के अपने भाषा सम्बन्धी लेख में किया था। तत्पश्चात् इस क्षेत्र की भाषा के लिए 'मैथिली' शब्द व्यापक रूप से प्रचलित हो गयी।

मागधी अपभ्रंश से विकसित होने वाली बिहारी हिन्दी की मान्य तीन बोलियों (भोजपुरी, मगही, मैथिली) के पारस्परिक सम्बन्धों के संदर्भ में, तमाम भाषा वैज्ञानिकों ने अपनी भाषा सम्बन्धी अध्ययनों के निष्कर्ष के तौर पर इस तथ्य का उद्घाटन किया है, की उपरोक्त बोलियों में परस्पर उतने गहरे सम्बन्ध नहीं है जितने शेष उपभाषाओं की बोलियों में दिखाई देते हैं।[7] तीनों बोलियों एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं।

उपरोक्त निष्कर्षों के आलोक में मैथिली एवं बज्जिका के मध्य समानता–असमानता के लक्षण खोजें जा सकते हैं। इस संदर्भ में मैथिली एवं बज्जिका के अन्तर्सम्बन्धों की पड़ताल भी आवश्यक है। उपरोक्त अन्तर्सम्बन्ध के निर्धारण हेतु 'बिहारी हिन्दी' को दो भागों में बाँटा जा सकता है – (1) पूर्वी बिहारी एवं (2) पश्चिमी बिहारी। पूर्वी बिहारी के अन्तर्गत मैथिली एवं मगही को एवं पश्चिमी बिहारी के अन्तर्गत भोजपुरी को रखा जाता है। भौगोलिक दृष्टि से समीपता के कारण बज्जिका को पूर्वी बिहारी के अन्तर्गत ही रखा जा सकता है, और ऐसा इसलिए भी, की डॉ. ग्रियर्सन ने बज्जिका को मैथिली के अन्तर्गत ही समाहित कर लिया है, एवं इसके क्रियापदों में 'छ' के प्रयोग की बहुलता के कारण इसे 'पश्चिमी मैथिली' कहा है।[8]

इस प्रकार, मैथिली और बज्जिका दोनों बोलियाँ एक ही मूल से व्युत्पन्न होने के कारण सहोदरा हैं। अतः स्वाभाविक है, की इन दोनों बोलियों की शाब्दिक, भाषिक एवं व्याकरणिक विशेषताओं में पर्याप्त समानता के तत्व विद्यमान हों। लेकिन इसका अर्थ, यह कतई नहीं की इन दोनों के मध्य कोई असमानता ही न हों। वस्तुतः किसी भी भाषा के स्वतंत्र स्वरूप को निर्मित करने में भाषिक विकास की अवस्थाएँ एवं उसके विभिन्न चरणों में हुए परिवर्तनों के साथ–साथ भौगोलिक कारकों की भी भूमिका महत्वपूर्ण होती है। उपरोक्त कारणों द्वारा ही कुछ ऐसी विशेषताएँ उत्पन्न होती है, जो सहोदरा होने के बावजूद भी दो भाषाओं के मध्य अन्तर स्थापित करती हैं।

मैथिली एवं बज्जिका के अन्तर्सम्बन्धों साम्य–वैषम्य को, उपरोक्त विवेचन के आलोक में, दोनों बोलियों के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा निम्न तरीके से समझा जा सकता है –

ध्वनि व्यवस्था

	मैथिली	बज्जिका
स्वर :	अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ	अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः
व्यंजन :	क, ख, ग, घ, ड.	क, ख, ग, घ, ड.
	च, छ, ज, झ, ञ	च, छ, ज, झ, ञ
	ट, ठ, ड, ढ़, ण	ट, ठ, ड, ढ़, न्ह
	त, थ, द, ध, न	त, थ, द, ध, नः, न्ह
	प, फ, ब, भ, म	
अंतःस्थ	य, र, ल, व	य, र, ल, व
अनुनासिक	ड्., ह्, न्ह्, म्ह्	ड्., ह्, ञ्, न्, म्
उष्म	श, स, ह	स, ह

विशेष

मैथिली में 'अ' का उच्चारण बांगला 'अ' की तरह वृत्ताकार होता है।

ए. ऐ, ओ, औ के ह्स्व एवं दीर्घ दोनों उच्चारण होते हैं।

बज्जिका में अ तथा आ का व्यवहार शब्द के आदि, अंत और मध्य में होता है।

जैसे – अमाओस, हमरा आदि।

शब्दारंभ में 'अ' एवं 'आ' का उच्चारण विलंबित होता है। जैसे :– सरक, कारज आदि।

बज्जिका में ह्स्व ए (एॅ) पाया जाता है तथा प्रायः शब्द के मध्य में प्रयुक्त होता है।

जैसे कहेला, एकेरा, कहलेकई आदि

बज्जिका में ओ का ह्स्व रूप (ओ) मिलता है।[9]

समानता

मैथिली एवं बज्जिका के ध्वनियों में किंचित भिन्नता के साथ पर्याप्त समानताएँ हैं। जहाँ मैथिली में अ, आ का उच्चारण संवृत्ताकार होता है वही बज्जिका में अ, आ का विलंबित उच्चारण किंचित वृत्ताकार हो जाता है। अन्य स्वर ध्वनियों के ह्स्व एवं दीर्घ रूप मैथिली एवं बज्जिका दोनों बालियों के व्यंजन ध्वनियों में भी पर्याप्त समानताएँ हैं।

संज्ञा रूप

मैथिली में संज्ञा के तीन रूप मिलते हैं – सामान्य, दीर्घ तथा दीर्घतर।[10] बज्जिका में संज्ञा के केवल दो सामान्य एवं दीर्घ रूप मिलते हैं।

उदाहरण

	सामान्य	**दीर्घ**	**दीर्घत्तर**
मैथिली	घर	घरबा	घरउआ
बज्जिका	घर	घरबा	X

वचन रूप

मैथिली एवं बज्जिका दोनों बोलियों में वचन रूप समान है। दो वचन रूप (एकवचन एवं बहुवचन) दोनों बोलियों में उपलब्ध हैं।

मैथिली में 'अन', 'अनि', 'सभ', 'लोकनि', 'लोग', 'लोगनि' आदि के सहयोग से बहुवचन रूप बनाए जाते हैं। जैसे – लोग सभ = सभी लोग

घोड़ा + अन = घोड़न आदि।

बज्जिका में 'स', 'सब', 'न', लोग आदि के सहयोग से बहुवचन रूप बनाए जाते हैं। जैसे –

लरिका – लरिकास, लरिका सब, लरिकन, लरिका लोग आदि।

लिंग रूप

मैथिली एवं बज्जिका दोनों बोलियों में दो लिंग रूप प्राप्त हैं – पुलिंग एव स्त्रीलिंग।

मैथिली में ई, इया, ईवा, आइनि आदि स्त्री प्रत्यय लगाकर, स्त्रीलिंग बनाया जाता है।

जैसे – नेना + ई = नेनी

लड़का + इया = लरकिया

मोदी + आइनि = मोदीआइनि

बज्जिका में भी, इन, आइन आदि स्त्री प्रत्यय द्वारा स्त्रीलिंग बनाया जाता है।

जैसे :– माहटर – महटरनी

लोहार – लोहारिन

गुरु – गुरुआइन आदि।

उपरोक्त समानताओं के बावजूद मैथिली एवं बज्जिका के मध्य एक असमानता यह है कि जहाँ बज्जिका में लिंग के प्रयोग के कारण क्रिया का रूप नहीं बदलता हैं, वहीं मैथिली में कर्त्ता के लिंग के अनुसार भी क्रिया में परिवर्तन होता है। जैसे –

ISSN 2277-5587

मैथिली	तों (पु.) जाइत थिकाह।	**बज्जिका**	मरदबा धान रोपइत हइ।
	तों (स्त्री.) जाइत थिकीह।		मउगी धान रोपइत हइ।

कारक/परसर्ग

	मैथिली	**बज्जिका**
कर्त्ता	़	़
कर्म	के, कै, कौं, लेल, लै	के
करण	से, सैं, सों, सऊँ, सौं	से, ए
संत्रदान	के, कै, कौं, लेल, लै	ला, के, के, लेल
अपादान	से, सैं, सो, सौं, सऊँ	से, में से
सम्बन्ध	क, केर, केरा, कर	कर, के, रे, ना
अधिकरण	में, मों, में	में, पर, उप्पर
सम्बोधन	हे, रे, ओ	रे, गे, हे, हो, ओ

मैथिली एवं बज्जिका दोनों बोलियों में कारकीय व्यवस्था लगभग एक समान हीं है।

सर्वनाम

मैथिली एवं बज्जिका दोनों बोलियों में सर्वनाम की व्यवस्था में व्यापक समानताएँ हैं। हिन्दी की भांति ही मैथिली एवं बज्जिका में सर्वनाम के छः भेद होते हैं –

	मैथिली	**बज्जिका**
1. पुरुषवाचक	हम, तुअ, इ, ई, उ, ऊ	हम, तू, इ, ई, उ, ऊ
	आहान्, हुन	अपनें, रउरा, आइस, हुन, हिन
2. निश्चयवाचक	ई, ऊ, अई, वोई	ई, ऊ, अई, वोई
	ओहर, एहर, एना	ओम्हर, एम्हर, एना
3. अनिश्चयवाचक	कऊन, कुच्छ	कऊन, कुच्छ
	कइसनों, केम्हरो	कइसनों, केम्हरो
4. सम्बन्ध वाचक	जे, जऊन, तऊन	जे, जऊन, तऊन
	से	से
5. निजवाचक	अपन, अपनी	अप्पन, अपने
	हमर	हम्मर
6. प्रश्नवाचक	की, का, के, कऊन	की, का, के, कऊन
		कथी, कइसन

सार्वनामिक विशेषण

	मैथिली	**बज्जिका**
इतना	एतेक, एतवे, एतवाय	एतेक, एतना
उतना	ओतना, ओतेक, ओतवे	ओतेक, ओतना
जितना	जेतना, जेतवे, जेतैं	जेतना, जेतेक
तैसा	तेहन, तैसन, तेना	तइसन, तेना
कैसा	केहन, केना, कैसन	कइसन, केना

विशेषण

मैथिली में विशेषण के सामान्य, दीर्घ एवं दीर्घतर रूप (संज्ञा के समान हीं) प्राप्त होते हैं, जबकि बज्जिका के केवल सामान्य और दीर्घ रूप ही मिलते हैं। मैथिली में –क, –व, –य के योग से विशेषण के उपर्युक्त रूप बनते हैं, जबकि बज्जिका में 'का' प्रत्यय के योग से उपर्युक्त रूप निर्मित होता है। जैसे :–

मैथिली – करिया – करिक्का – करिकवा

बज्जिका – करिया – करियक्का

बज्जिका में विशेषण का प्रयोग दो स्तरों – सामान्य व विशिष्ट, पर होता है। जैसे –

पतरा छौंरा – सामान्य स्तर (विशेषण)

पतरका छौंरा – विशिष्ट स्तर (निर्दिष्ट)

बज्जिका की एक मूल विशेषता यह है की, मूल, विशेषण में 'का'/'की' प्रत्यय लगाने से विशिष्ट विशेषण निर्मित होता है। जैसे :

उज्जर > उज्जरका/उजरकी

लाल > ललकी/ललका

गोर > गोरका/गोरकी

क्रिया

मैथिली में क्रिया रूप की जटिलता विद्यमान है। क्रिया के रूप कर्त्ता और कर्म में आदर और अनादर के प्रभाव में परिवर्तित होते हैं, साथ ही कर्त्ता के लिंग के अनुसार भी क्रिया में परिवर्तन होता है। यही कारण है कि मैथिली में क्रिया रूपों की बहुलता हो गयी है। मैथिली में क्रियाओं में लिंगभेद नहीं होता है। प्रायः सहायक क्रिया 'छ–रूप', भूतकालिक क्रिया 'ल–रूप' तथा भविष्यत्कालिक क्रिया 'ब रूप' होती है। जैसे –

वर्तमान काल – हम चलै छी

सामान्य भूत – हम चललौं।

सामान्य भविष्यत् – हम चलबा।

बज्जिका में भी क्रिया के रूप आदर और अनादर के प्रभाव में परिवर्तित होते हैं। लेकिन कर्त्ता के लिंग और वचन के अनुसार क्रिया में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है। जैसे –

राम जा रहल हए। – सामान्य क्रिया

पिता जी जाइत इतन। – आदर सूचक क्रिया

कर्त्ता के लिंग व वचन की भिन्नता के बावजूद अपरिवर्तित क्रियाएँ :–

लरिका पढ़इअ।

लरिका लोग पढ़इअ।

बैल चरइत हए।

गाय चरइत हए।

मैथिली एवं बज्जिका के कतिपय शब्दों के रूप : हिन्दी के संदर्भ में :–

हिन्दी	मैथिली	बज्जिका
प्रकाश	इंजोत	ईंजोर
चिड़िया	चिड़ैय	चिड़ई
ग्राम	गाम	गाओं
वृक्ष	गाछ	गाछ
मैं	हम	हम
तुम/आप	तों/तुअ/आहां	तु/अपनें
वह	ऊ	ऊ
यह	इ	इ
अंधेरा	अन्हार	अन्हार
पतला	पातर	पातर/पतरा

गहरा	गहींर	गहींरा
मैला	मइल	मइल
करो	करून/करयों	कर/करहु
जाओ	जा/जाउ	जा/जाउ
खाओ	खाऊ/खाल्या	खा/खाऊ
दौड़ो	दउड़	दउड़
यहाँ	एठियाँ/इहाँ	एठियाँ/हिआँ
वहाँ	वैठिया/उहाँ	हुअमाँ/हुँआ
जहाँ	जैठिया/जते	जेठियाँ/जहाँ
अब	एखनी	अखनी
जब	जेखनी/जखन	जेखनी
तब	तेखनि	तेखनी/तखनी

मैथिली एवं बज्जिका के मध्य प्रमुख अंतर

मैथिली एवं बज्जिका सहोदरा होने के बावजूद भी कई स्तरों पर एक दूसरे से भिन्नता के लक्षण धारण किए हुए है। शब्द संरचना, अर्न्तभाषायी गतिशीलता एवं व्याकरणिक संरचना के स्तर पर दोनों बोलियों में पर्याप्त भिन्नता दृष्टिगोचर होती है।

मैथिली में बाहरी शब्दों के आत्मसातीकरण की प्रवृत्ति नगण्य है। फलतः इसमें 'तत्सम' शब्दों की प्रधानता है। विदेशी शब्दों के प्रयोग की गुंजाईश कम है तथा इसकी मूल प्रवृत्ति तत्समोन्मुखी है। दूसरी ओर, बज्जिका में अन्तर्भाषायी गतिशीलता अपेक्षाकृत अधिक है। विदेशी शब्दों की सहज स्वीकार्यता होने के कारण बज्जिका में विदेशज शब्दों की बहुलता है, साथ ही इसकी प्रवृत्ति मैथिली के विपरीत तद्भवोन्मुखी है।

मैथिली एवं बज्जिका में शब्द संरचना के स्तर पर सबसे महत्वपूर्ण अंतर यह है, की जहाँ बज्जिका में मध्यम वर्ण प्रायः द्वित्व रूप धारण करता है, वहीं मैथिली में इस प्रवृत्ति का प्राय अभाव देखा जाता है।

ओक्कर (बज्जिका) – ओकर (मैथिली)

व्याकरणिक रूप गठन के स्तर पर भी मैथिली एवं बज्जिका के मध्य कई असमानताएँ स्पष्ट होती हैं। जिसे सर्वनाम, परसर्ग, क्रियापद आदि स्तरों पर देखा जा सकता है।

निष्कर्ष

मैथिली एवं बज्जिका एक ही मूल (मागधी अपभ्रंश) से व्युत्पन्न होने के कारण कुछ समान लक्षणों को धारण करती है। लेकिन भाषिक विकास की अवस्था में दोनों बोलियों द्वारा निजी स्वरूपों को विकसित करने के कारण दोनों में भिन्नता के भी लक्षण देखे जाते हैं –

समानताएँ

- परस्पर भौगोलिक निकटता।
- ध्वनि व्यवस्था में समानता।
- वचन रूप में पर्याप्त समानता।
- लिंग रूप (स्त्री प्रत्यय) में पर्याप्त समानता।
- कारकीय व्यवस्था में पर्याप्त समानता।
- सर्वनाम में पर्याप्त समानता।
- क्रिया रूप में पर्याप्त समानता।

असमानताएँ

- मैथिली तत्सम्मोन्मुखी तथा बज्जिका तद्भवोन्मुखी।
- बज्जिका में मध्यम वर्ग का द्वित्व रूप, मैथिली में इस प्रवृत्ति का अभाव।
- बज्जिका में समुच्चयबोधक अव्यय 'आ', मैथिली में 'ओ'।
- परसर्गो के स्तर पर पर्याप्त भिन्नता

- संज्ञा रूपों भिन्नता।
- विशेषण रूपों में भिन्नता।
- सर्वनाम रूपों में भिन्नता।
- क्रियापदों में भिन्नता।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, देवेन्द्र नाथ, भाषा विज्ञान की भूमिका, पृ. 8.
2. तिवारी, भोलानाथ, भाषा विज्ञान, किताब महल, इलाहाबाद (2007), पृ. 85.
3. सिद्धहेमशब्दानुशासन – 8।1।1
4. शास्त्री, नेमीचन्द्र, प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, तारा बुक एजेन्सी, वाराणसी, 1988, प्रस्तावना।
5. चटर्जी, डॉ. सुनीति कुमार, भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, (1954), राजकमल प्र. पृ. सं. 105–109.
6. प्रसाद, डॉ. सुरेन्द्र प्रसाद, बज्जिका व्याकरण, पृ. सं. 7.
7. तिवारी, डॉ. भोलानाथ, हिन्दी भाषा, पृ. सं. 41.
8. ग्रियर्सन, जी. ए., एन इन्ट्रोडक्शन टू द मैथिली लैंगुएज ऑफ बिहार, (1881), एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता, पृ. सं. 25, 28, 32, 35.
9. तिवारी, डॉ. सियाराम, बज्जिका भाषा और साहित्य, पृ. सं. 27.
10. झा, जी. मैथिली भासक विकास, बिहार हिन्दी ग

भारत में महिला सशक्तिकरण एवं राजनीतिक सहभागिता

योगेन्द्र तिवारी
अससिस्टेंट प्रोफेसर, सकलडीहा पी.जी. कालेज, चन्दौली (उत्तर प्रदेश)
shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

विकास की रणनीति में पिछले कुछ वर्षो से महिलाओं को अग्रसर करने के सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर तमाम प्रयास किये गये व सतत् जारी हैं। योजनागत विकास व नई आर्थिक नीतियों के पश्चात सामाजिक रूपांतरण की प्रक्रिया समाज में तेज होती जा रही है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्र में महिलाओं की प्रस्थिति एवं भूमिका में परिवर्तन दिखायी दे रहा है किन्तु साथ ही साथ भूमिका संघर्ष, सामाजिक मान्यताएं, जागरूकता का अभाव आदि अड़चनें महिला सशक्तिकरण की वास्तविकता पर प्रश्नचिन्ह खड़ा कर रही है। आजादी मिलने के बाद भारत में महिलाओं को पुरूषों के समान ही अधिकार मिले है। परंतु सामाजिक कुरीतियों एवं लम्बे समय से चली आ रही परम्पराओं एवं प्रथाओं ने उन्हें अपने अधिकारों को पाने से वंचित किए रखा। नागरिकों को मिले समान अधिकारों के साथ ही भारतीय महिलाओं को समान शैक्षिक अवसर, सम्पत्ति और विरासत में बराबर का अधिकार प्राप्त हुआ, जिससे सामाजिक स्तर पर स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुआ, लेकिन राजनीतिक मानचित्र फिर भी नहीं बदला।

संकेताक्षर : *सशक्तिकरण, नारीवादी, समतावादी, प्रजातांत्रिक, पितृसतात्मकता, राजनीतिक सहभागिता।*

महिला सशक्तिकरण वर्तमान समाज का एक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक विमर्श है। भारत ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व में पिछले कुछ वर्षो से 'महिला सशक्तिकरण' की अवधारणा का प्रयोग हो रहा है। महिला सशक्तिकरण के सम्बन्ध में 'आफिस ऑफ द यूनाइटेड नेशंस हाई कमिश्नर फॉर ह्यूमन राइट्स' ने लिखा है कि ''यह औरतों को शक्ति, क्षमता तथा काबिलियत देता है ताकि वह अपने जीवन स्तर को सुधारकर अपने जीवन की दिशा को स्वयं निर्धारित कर सकें।'' अर्थात् यह वह प्रक्रिया है जो महिलाओं को सत्ता की कार्यशैली समझने की न केवल समझ दे अपितु साथ ही साथ सत्ता के स्रोतों पर नियंत्रण कर सकने की क्षमता प्रदान कर सके।

सामान्य अर्थो में महिला सशक्तिकरण महिलाओं को मिलने वाले अधिकारों से सम्बन्धित है। इन अधिकारों की मांग ने आंदोलन का रूप ले लिया और इस प्रकार नारीवादी विचारधारा की नींव पड़ी। यूरोप में इसकी शुरूआत कोई दो शताब्दी पहले हुई, जब 1792 में 'मेरी वोल्स्टन क्राफ्ट' की पुस्तक 'ए विन्डिकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ विमेन' का प्रकाशन हुआ। इसके माध्यम से मेरी ने फ्रांसीसी क्रांति से प्रभावित होकर 'स्वतंत्रता–समानता–भ्रातृत्व' के सिद्धांत को स्त्री समुदाय पर भी लागू करने की मांग की। बाद में जे.एस. मिल ने 1869 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'द सब्जेक्शन ऑफ विमेन' में इस मांग को बल प्रदान किया और महिलाओं को मताधिकार देने की जोरदार वकालत की। इसी क्रम में 'सिमोन द बुआ' की 'द सेकेण्ड सेक्स' 1949 में आयी। इनके अतिरिक्त 'जां आंतुआं कोन्दोर्से', ओलिम्पी द गूजे, चेर्नीशेव्की, अलेक्सान्द्रा कोल्लोन्ताई आदि ने भी स्त्रीवादी विचारों को स्थापित और विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

महिला सशक्तिकरण का भारतीय सन्दर्भ

भारत में स्त्री के हित एवं अधिकारों से जुड़े आंदोलन की शुरूआत 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में हुई। तब न्याय, नैतिकता,

आचार एवं परम्परा से सम्बन्धित विमर्श भी हुये। परंतु इन सब पर कही न कही गुलामी की छाया पड़ी रही। स्वतंत्रता आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका सराहनीय रही। आजादी मिलने के बाद भारत में महिलाओं को पुरूषों के समान ही अधिकार मिले है। परंतु सामाजिक कुरीतियों एवं लम्बे समय से चली आ रही परम्पराओं एवं प्रथाओं ने उन्हें अपने अधिकारों को पाने से वंचित किए रखा। अमेरिकन समाजशास्त्री पारसन्स का मानना है कि अभिव्यक्तिपरक व साधक भूमिकाएँ समाज के लिये अनिवार्य व एक दूसरे की पूरक होती है।

नागरिकों को मिले समान अधिकारों के साथ ही भारतीय महिलाओं को समान शैक्षिक अवसर, सम्पत्ति और विरासत में बराबर का अधिकार प्राप्त हुआ, जिससे सामाजिक स्तर पर स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुआ, लेकिन राजनीतिक मानचित्र फिर भी नहीं बदला।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में उल्लेख किया गया है कि समतावादी प्रजातांत्रिक मूल्यों को प्राप्त करने के उद्देश्य से समाज में किसी भी आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता। इस हेतु लम्बे समय से महिलाओं की कमजोर स्थिति को मजबूत बनाने के उददेश्य से सर्वप्रथम महिला कल्याण कार्यो को प्राथमिकता दी गई तथा 1975ई. के पश्चात विकास में महिलाओं की सहभागिता की प्रकिया शासन स्तर पर प्रारंभ हुई। सारा लॉग 1991ई. द्वारा सशक्तिकरण के पांच स्तर बताये गये हैं। सशक्तिकरण के इन पांच स्तरों में महिला कल्याण में वृद्धि कल्याणकारी योजनाओं तक इनकी पहुंच सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समान भागीदारी प्रत्यक्षीकरण अर्थात निर्णय निर्माण की प्रकिया में शामिल होना और समस्त व्यवधानों को पार कर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नियंत्रण व प्रभाव प्राप्त करना है।

विकास में महिलाओं की रणनीतिक पहल अपनाने के बाद भी जब महिला सहभागिता में तुलनात्मक वृद्धि दर्ज नहीं की गई तब इसके दूसरे पक्ष लैंगिक समानता और महिला विकास पर बल दिया गया। उल्लेखनीय है कि 1975–95ई. को महिला दशक घोषित किया गया था। राष्ट्रीय एंव अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यह स्वीकार किया गया कि मानव का विकास लैंगिक समानता के बिना अधूरा है।

यह सिद्धांत स्त्री की पुरुष पर आश्रितता के कारणों को स्पष्ट करता है। स्त्री पुरूष के कार्यो में सामाजिक परिर्वतन के साथ कई परिवर्तन आये है लेकिन बच्चों की देखभाल करना स्त्रियों की जिम्मेदारी आज भी है।

समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया बहुकारकों का परिणाम होती है। आर्थिक क्रियायें सामाजिक क्रियाओं का एक अंग होती हैं। अतः महिला सशक्तिकरण को बगैर महिला की आर्थिक सहभागिता के नहीं समझा जा सकता। अमर्त्य सेन ने विकास और स्वतंत्रता को सशक्तिकरण का आधार माना है वहीं कबीर ने अयोग्यता से रूचि पर आधारित कार्य की योग्यता की पहुँच को सशक्तिकरण का आधार माना है।

पंचायती राज और महिला सशक्तिकरण

महिलाओं की स्थिति की समीक्षा करने के लिए 1971 में एक समिति गठित की गई थी। 'टुवर्ड्स इक्वालिटी' शीर्षक से 1974 में प्रकाशित इस समिति की रिपोर्ट में कहा गया था कि संस्थागत तौर पर सबसे बड़ी अल्पसंख्यक होने के बावजूद राजनीति पर महिलाओं का असर नाममात्र है। इस समिति ने सुझाव दिया था कि इसका उपाय यही है कि हर राजनैतिक दल महिला उम्मीदवारों का एक कोटा निर्धारित करें और जब तक ऐसा हो, तब तक उपाय के तौर पर समिति ने नगर परिषदों और पंचायतों में महिलाओं के लिये सीटें आरक्षित करने के लिए संविधान में संशोधन करने की सिफारिश की।

सन् 1993 में 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के माध्यम से ऐसा किया भी गया। पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण का प्रावधान महिला सशक्तिकरण तथा निर्णय प्रक्रिया में उनकी सहभागिता में वृद्धि की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम था। बिहार तथा राजस्थान ने इस आरक्षण को बढ़ाकर 50% कर दिया। पंचायती राज संस्थाए, जो जमीनी लोकतांत्रिक ढाँचे का निर्माण करती है में महिलाओं की भागीदारी ने ग्रामीण संरचना को सकारात्मक परिवर्तन की दिशा में बढ़ाया। महिलाओं की पंचायत के माध्यम से विकास प्रक्रियाओं एवं निर्णय लेने की प्रक्रिया में सहभागिता एक और लोकतांत्रिक, राजनीतिक, सामाजिक न्याय तथा समानता के मध्य सम्बन्धों को अभिव्यक्त करती है। तथा दूसरी ओर लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत करती है।

पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से महिलाओं ने बहुत से लघु उद्योगों में होने वाले महिलाओं के

शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न के प्रति आवाज उठायी। धीरे-धीरे महिलाओं के वर्चस्व वाले उद्योगों मे इन महिला सरपंचों ने उनके व्यक्तिगत और सामूहिक स्वामित्व वाले उद्योगों को प्रोत्साहन देना प्रारम्भ किया। इससे एक तरह तो महिलाएं आर्थिक और राजनीतिक रूप से सक्षम हो गयी। वही दूसरी ओर आने वाली पीढ़ीयां खासकर बालिकाओं को भी शिक्षा के अवसर मुहैया हो गए। जी पी मर्डोक ने अपने अध्ययन में पाया कि स्त्री ओर पुरूष के बीच कार्य विभाजन शारीरिक विभिन्नता व आवश्यकता के आधार पर हुआ।

इस प्रकार भारत में महिलाओं की सशक्तिकरण जमीनी स्तर पर हुआ है। और एक नयी राजनीतिक संस्कृति भी विकसित हुयी है। आज भारत में 12 लाख से अधिक महिला निर्वाचित प्रतिनिधि जो दुनिया के किसी भी देश में नहीं है। इतना ही नहीं यदि पूरी दुनिया के निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की संख्या जोड़ी जाए तो वह संख्या इन भारतीय निर्वाचित प्रतिनिधियों से कम ही है। इन महिला प्रतिनिधियों में दलित, आदिवासी, पिछड़ी जाति तथा मुस्लिम महिलाएं भी है, इन महिलाओं ने सत्ता के जातीय समीकरण को ही नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक समीकरण को भी बदल दिया है। इस तरह उनमें अन्याय, दमन और शोषण के विरूद्ध आवाज उठाने की हिम्मत बढ़ी है। और उनके व्यक्तित्व में भी परिवर्तन आया है। वे आस-पास की घटनाओं के प्रति सजग हुई है। ग्रामीण इलाकों में होने वाले रचनात्मक कार्यक्रमों में उनकी भागीदारी बढ़ी है। उनमें राष्ट्र और समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी का भाव भी विकसित हुआ है। कई मामलों में यह सही है कि महिला पंचायतों के पति के हाथ में ही कमान है और वे अपनी पत्नियों को अपने रिमोट कण्ट्रोल से संचालित करते है। लेकिन यह पूरी वास्तविकता नहीं है। कई सर्वेक्षणों से इस भ्रम का भी निराकरण हुआ। संयुक्त राष्ट्र की एजेंसी यू. एन. एफ. पी. ए. ने अपनी एक रिपोर्ट में भारत में पंचायतों में आरक्षण के फलस्वरूप महिलाओं के उपजी नई चेतना की सराहना की है।

पिछले दशक के प्रारम्भ में महिलाओं को आरक्षण मिलने के बाद करीब 25 हजार महिलाएं पंचायतों के लिये चुनी गई परंतु आज देशभर में लगभग 12 लाख महिलाए पंच, सरपंच तथा अन्य पदों पर चुनी जाकर ग्रामीण शासन को नई दिशा दे रही है। पंचायती राज व्यवस्था की मध्यावधि समीक्षा के अनुसार 1 दिसम्बर, 2006 में पंचायतों में महिलाओं की कुल प्रतिनिधित्व 36.7 प्रतिशत था। राज्यों में बिहार 54.1 प्रतिशत के साथ सबसे आगे और कर्नाटक 42.1 प्रतिशत के साथ दूसरे स्थान पर था। अकेला गोवा राज्य ऐसा है जहां महिलाओं का प्रतिनिधित्व 1/3 से कम यानि 30.1 प्रतिशत था। बाकि सभी राज्यों में महिला प्रतिनिधित्व का प्रतिशत 33 को पार करा गया है। हरियाणा की नीमखेड़ा पंचायत के सभी पदों पर महिलाए विद्यमान है। मध्यावधि समीक्षा रिपोर्ट में यह भी बताया गया कि महिला प्रतिनिधि पंचायतों का बजट तैयार करने की जिम्मेदारी सफलतापूर्वक निभा रही है। इसमें घरेलू बजट तैयार करने का उनका अनुभव काम आ रहा है। यह भी देखने में आया है कि पंचायत की पदाधिकारी बनने से घर-परिवार में और आस-पास उनका सम्मान बढ़ गया है। इस नये सम्मान और प्रतिष्ठा के चलते महिलाएं गांवो के छोटे-मोटे झगड़े और विवाद भी निपटाने लगी है। जहां महिलाएं सरपंच चुनी गई है। पंचायतों में भ्रष्टाचार पर रोक लगाने में मदद मिली है।

पंचायतों के माध्यम से महिलाए न सिर्फ गांव, जिले या प्रदेश में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रही है बल्कि अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त कर रही है। इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण है बिहार के मुसहर जैसी शोषित जाति की 'गिरजा देवी' 'संयुक्त राष्ट्रसंघ' को संबोधित करती है इतना ही नहीं संयुक्त राष्ट्र संघ के आर्थिक और सामाजिक विभाग द्वारा आयोजित महिला सशक्तिकरण के कार्यक्रम में गिरिजा देवी द्वारा दिये गये सुझावों को विश्व के बड़े-बड़े गैर सरकारी संगठनों ने लागू करने की बात कहकर, न केवल इस महिला को बल्कि भारत के पंचायती राज की सफलता को स्वीकार किया है।

यह सर्वविदित सत्य है कि महिलाएं वित्तीय संसाधनों का उचित प्रयोग करना भली भांति जानती है और अपनी इस क्षमता का उपयोग उन्होंने गांव के वित्तीय संसाधनों को नियंत्रित व नियमित करने में किया है और इसके जीवन्त उदाहरण राजस्थान, हरियाणा, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु एवं आन्ध्रप्रदेश की उन महिला सरपंचो तथा पंचो के है जिन्होंने पानी, शिक्षा व सड़क के लिये प्रस्तावित बजट से कम में ही कार्य को पूर्ण कर दिखाया। मार्क्सवादी विचारक एंजेल्स ने पूंजीवादी प्रणाली और पितृसतात्मकता को स्त्री को दोयम दर्जे की स्थिति के लिये जिम्मेदार माना। उनके अनुसार

पूंजीपति और पति दोंनों ही नियोक्ता हैं।

पुरुष सत्तात्मक समाज में महिला के नेतृत्व को स्वीकार करवाना आसान नहीं है और यही कारण रहा कि येन केन प्रकारेण महिला सरपंचो को अविश्वास प्रस्ताव पारित कर हटाने के प्रयास भी किये गये इस समस्या से निबटने के लिए वर्ष 2008 के मध्य में केन्द्र सरकार ने राज्यों से यह सुनिश्चित करने को कहा कि महिला सरपंचों को डेढ़ साल से पहले अविश्वास प्रस्ताव के माध्यम से न हटाया जाए। सरकार द्वारा उठाया गया यह कदम न केवल महिला नेतृत्व की स्वीकारोक्ति का प्रमाण है अपितु विश्वास का प्रतीक भी है। जो कि महिला नेताओं पर किया गया है। पर दुःख की बात यह है कि इस विश्वास का अभाव राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक मंच पर है।

आजादी के 60 वर्षो के बाद पहली बार 2009 के लोकसभा आम चुनाव में लोकसभा की सीटों के 10 प्रतिशत सीटो पर महिला सांसद चुनकर आयी है। जबकि कुल जनसंख्या में वह आधी हिस्सेदारी रखती है। केन्द्र सरकार द्वारा संसद तथा विधान मंडलों में महिलाओं के लिये एक तिहाई सीटों पर आरक्षण प्रदान करने हेतु सर्वप्रथम 1996 में इसे संसद में पेश किया गया था तब से लेकर आज तक राजनीतिक गलियारे में यह विधेयक भटक रहा है।

यदि महिलाओं को संसद तथा विधान मंडलों में आरक्षण प्राप्त होगा तो एक तरफ महिलाएं चुनाव प्रक्रिया का हिस्सा बनेगी और दूसरी तरफ राजनीतिक दलों में सक्रिय सहभागिता का अवसर प्राप्त होगा जिससे महिला सशक्तिकरण की अवधारणा मूर्त रूप ग्रहण कर सकेगी। यह आरक्षण उन्हें संकीर्ण व सीमित दायरे से बाहर लाने में मददगार सिद्ध होगा और साथ ही यह भी साबित होगा कि पारिवारिक परिवेश से बाहर की समस्याएं भी उनकी समस्याएं है। विश्वभर में अधिकांश राजनैतिक दलों ने अपनी राष्ट्रीय विधायिकाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व दलगत प्रतिनिधित्व के माध्यम से प्राप्त किया है। रवांडा इसका उदाहरण है। रवांडा विश्व का एक ऐसा देश है जहां संसद की 50 प्रतिशत सीटों पर महिला प्रतिनिधियों ने विजय हासिल की है। 14 सितम्बर, 2008 को रवांडा की संसद के लिये हुए चुनावों के आरंभिक नतीजे उन देशों के लिए उदाहरण है जो महिलाओं को घर की चारदीवारी में समेट कर रखना चाहते है। 'इंटर पार्लियामेंट्री यूनियन' के अनुसार 2005 में विभिन्न देशों में महिलाओं का वहां की संसद में प्रतिनिधित्व भारत की अपेक्षा बहुत अधिक रहा। यह स्वीडन में 45.3 प्रतिशत, नार्वे में 37.9 प्रतिशत, फिनलैण्ड में 37.9 प्रतिशत डेनमाक्र में 36.9 प्रतिशत था। यहां तक कि पाकिस्तान में भी संसद में महिला प्रतिनिधित्व 21.2 प्रतिशत है। विधायिका में महिला सदस्यों की दृष्टि से भारत का स्थान 183 देशों में 134वां है।

निष्कर्ष

उपरोक्त आकड़ों को ध्यान में रखकर हम यह कह सकते है कि पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं को मिले आरक्षण ने निश्चित रूप में सशक्तिकरण में योगदान किया है। परंतु हमें यह भी देखना होगा कि किस प्रकार की महिलाओं की भागीदारी इसमें हो रही है? ये महिलाए किन परिवारों से सम्बन्ध रखती है? क्या यह स्वतंत्र रूप से निर्णय ले पाती है? इन बातों पर यदि हम गौर करें तो पाते है कि आज भी पंचायतों के लिये चुनी गई अधिकांश महिलाए उच्च और प्रभावशाली परिवारों से ताल्लुक रखती है। तथा उनकी जीत में उनकी भूमिका कम परिवार की ज्यादा होती है। पंचायती चुनाव में आज भी 'बहु–बेटी सिन्ड्रोम' प्रभावशाली है। तथा पंचायतों के कार्यो में प्रधानपतियों की भूमिका ज्यादा देखने में आती है। सदियों पुराना पुरुष प्रधान समाज महिला नेतृत्व को स्वीकार नहीं कर पा रहा है। हमें इन विचारों को त्यागना पड़ेगा अन्यथा इन विकारों के रहते हुये सही मायनों में महिला सशक्तिकरण की बात करना बेमानी होगी। चूँकि अभी देश में नौकरशाही उतनी चुस्त नहीं है, स्थानीय प्रशासन ढीला है और कई राज्यों की वित्तीय स्थिति ठीक नहीं है एवं पंचायतों को अभी पर्याप्त वित्तीय अधिकार नहीं मिले है। इसलिए पंचायतों के माध्यम होती मौन क्रांति का नतीजा अभी उतना आकर्षक नजर नहीं आ रहा है। लेकिन जब संसद और विधानसभाओं में 33 प्रतिशत आरक्षण लागू होगा तो महिला पंचायत प्रतिनिधियों के लिये एक नया राजनीतिक रास्ता खुलेगा और वो उस पर आगे बढ़ते हुए संसद तक पहुंचेगी। उनके पास एक नया अनुभव होगा जिसका फायदा नीतियों के निर्धारण में मिलेगा।

यह भी सही है कि केवल राजनीतिक सशक्तिकरण से ही महिलाओं का संपूर्ण सशक्तिकरण नहीं होगा। इस तरह महिला सशक्तिकरण का लक्ष्य प्राप्त करने के लिये उत्पादन और आय अर्जन के क्षेत्र में महिलाओं को आगे आना है, स्कूलों, कालेजों में उनके दाखिले

ISSN 2277-5587

का प्रतिशत बढ़ाना है तथा स्वास्थ्य सुविधाएं एवं पौष्टीक आहार की मात्रा बढ़ानी होगी तभी एक स्त्री सही अर्थो में सशक्त हो पायेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *Tolcott Parsons and Robert Bells(1956), Family, Socialization and the Interaction Process, Routeledge London p.45.*
2. *Sara H. longwe (1991), Gender Awareness: The Missing Element in the Third World, Oxfam.*
3. *E. Sullerott (1971), Woman, Society and Change, World University Library, London. P. 128*
4. *T. Jakimow and Patrick Kilby(2006), Empoering Woman: A critique of the blue print for self help groups in India, Indian Journal of Gender Studies, Vol. 13 p. 377*
5. *https://feministlawarchives.pldindia.org/category/towards-equality/towards-equality-towards-equality/*
6. *Prabhat Datta(1998), Major- Issires in the Development Debate: Lessons in Empowerment form India, Kanishka Publishers, New Delhi, p.40.*
7. *G. P. Murdock(1949), Social Structure, Mcmillan, Newyork. p. 79*
8. *Fredrick Angells (1948), The Origine of The Family, Private Property and the State, Progress Moscow*

सिवाना दुर्ग : एक ऐतिहासिक विरासत

नगेन्द्र सिंह भाटी
शोद्यार्थी, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

प्राचीन साहित्यों में दुर्गो को राज्य का अनिवार्य अंग बताया गया है। अतः दुर्गो की अधिक संख्या अपने–अपने अधिकार में क्षेत्र में रखना एक गर्व की बात मानी जाती थी। सिवाना का यह दुर्ग मारवाड़ के शासकों की शरण स्थली रहा था। यह दुर्ग विस्तृत रेगिस्तानी क्षेत्र के बीच स्थित एक विशाल एवं ऊँची पहाड़ी पर स्थित होने के कारण इसे धान्वन दुर्ग एवं गिरी दुर्ग दोनों श्रेणियों में रखा जाता है। राजस्थान के ऐतिहासिक दुर्गो में वर्तमान में सबसे पुराना दुर्ग सिवाना का दुर्ग है, बावजूद इसके यह पर्यटन एवं पुरातात्विक विभाग की अनदेखी के कारण उपेक्षा का शिकार है। सिवाना दुर्ग वर्तमान में जर्जर अवस्था में है। दुर्ग में स्थित अन्य राजप्रासाद भी खण्डहर होकर अपना प्राचीन वैभव व अस्तित्व खोने के कगार पर है।

संकेताक्षर : *दुर्ग, परकोटा, जलाशय, सिवाना, धरोहर, पर्यटन।*

राजस्थान की यदि पैदल यात्रा की जाय तो कुछ कि.मी. के पश्चात् कोई–न–कोई दुर्ग अवश्य मिल जायेगा। चाहे राजा हो या सामन्त वह अपने दुर्ग को निधि के रूप में समझता था। वे अपने निवास के लिए, सुरक्षा के लिए, रसद सामग्री संग्रह के लिए, आक्रमण के समय अपनी प्रजा को सुरक्षित रखने के लिए, पशु–धन को बचाने के लिए और संपत्ति को छिपाने के लिए दुर्ग बनाते थे।[1] यह कहा जा सकता है कि राजस्थान दुर्गो की भूमि है। इस प्रदेश का प्रायः भू–भाग किलों से भरा पड़ा है।[2] प्राचीन काल के लेखको में मंडन सूत्रधार एवं सदाशिव ने दुर्गो को राज्य का अनिवार्य अंग बताया है। अतएव दुर्गो की अधिक संख्या अपने–अपने अधिकार में रखना एक महत्त्व की बात मानी जाती थी। राजस्थान भी इसका अपवाद नहीं रहा है। सूत्रधार मंडन ने पर्वत पर दुर्ग बनाने का महत्त्व बताया हैं। मत्स्य पुराण व अग्निपुराण में कहा गया है कि 6 प्रकार के दुर्गो– धन्व दुर्ग (जल विहीन खुली भूमि पर, पाँच योजन के घेरे में) मही दुर्ग (स्थल दुर्ग, प्रस्तर खण्ड़ों या ईंटों से निर्मित प्रकारों वाला, जो 12 फुट से अधिक चौड़ा तथा चौड़ाई से दुगुना ऊँचा हो) नर दुर्ग (जो चतुरंगिनी सेना से चारों और से सुरक्षित हों) रक्ष दुर्ग (जो चारों ओर से एक योजन तक कंटीले एवं लम्बे–लम्बे वृक्षों, कंटीले लता गुल्मों एवं झाडियों से युक्त हो) जल दुर्ग (चारों ओर से जल से आवृत्त) और गिरि दुर्ग (पर्वतों वाला दुर्ग जिस पर कठिनाई से चढ़ा जा सके और जिसमें केवल एक ही संकड़ा मार्ग हो) में से गिरि दुर्ग सर्वश्रेष्ठ होता है। शुक्राचार्य ने भी गिरि दुर्ग को सर्वश्रेष्ठ माना है। अग्निपुराण व शुक्रनीति के अनुसार मण्डन ने भी दुर्ग को विभिन्न संपत्तियों से परिपूर्ण रखने का निर्देश दिया है। मनुस्मृति के अनुसार जो देश प्रचुर धान्यादिक से सम्पन्न हों, जहाँ धार्मिक लोग बसते हों, निरोग आदि से निरूपद्रव और रमणीय स्थान, जहाँ आस–पास के रहने वाले लोग विनीत हों, जहाँ सुलभ जीविका हो, ऐसे देश में राजा को निवास करना चाहिए। धनुदुर्ग (मरुवेष्टित), मही दुर्ग (पाषाण खण्ड वेष्टित) जल दुर्ग, वृक्ष दुर्ग, नृदुर्ग या गिरिदुर्ग का आश्रय लेकर नगर का वास करें। इन छः प्रकार के दुर्गो में से प्रयास करके गिरि दुर्ग का ही आश्रय करें, इन सभी दुर्गो में अधिक गुणों से युक्त होने के कारण गिरि दुर्ग की अपनी विशेषता है। दुर्ग के महत्त्व को मनुस्मृति में स्पष्ट किया गया है कि दुर्ग में रहने वाला एक धनुर्धारी बाहर वाले सौ यौद्धाओं का सामना कर सकता है और दुर्ग के एक सौ सैनिक दस सहस्त्र सैनिकों के साथ युद्ध कर सकते हैं इसलिए दुर्ग अवश्य बनाना चाहिए। वह दुर्ग अस्त्र–शस्त्र, धन–धान्य, वाहन, ब्राह्मण, शिल्पी, यंत्र, तृण और जल से परिपूर्ण रहना चाहिए। ऐसे दुर्ग के मध्य

ISSN 2277-5587

में पर्याप्त खाई व सभी प्रकार की ऋतुओं के फल फूल तथा निर्मल जल से भरे हुए कुओं – बावड़ियों से युक्त अपना राजभवन बना हुआ हो।[3]

भारत देश के पश्चिम में स्थित राजस्थान राज्य में पग–पग पर दुर्ग/किले/गढ़ मिलते हैं। यहाँ के शासकों और सामन्तों ने अपने निवास के लिए, सुरक्षा के लिए एवं संपत्ति को छुपाने के लिए दुर्ग बनवाये। राजस्थान के दुर्ग न केवल सैनिक दृष्टि से अपितु स्थापत्य कला की दृष्टि से भी अपना विशिष्ट स्थान रखते आयें हैं। प्राचीन भारत के इतिहास में कौटिल्य के अर्थशास्त्र के 15 वें अधिकरण में राज्य के 'सप्तांग सिद्धान्त' का उल्लेख मिलता है जिसमें 'दुर्ग' को भी राज्य का अनिवार्य अंग बताया गया है जिस तरह मानव के शरीर में भुजाओं का योगदान होता है ठीक उसी प्रकार राज्य को अजेय एवं सुरक्षित बनाने हेतु 'दुर्ग' की आवश्यकता होती हैं। कौटिल्य के अनुसार दुर्ग की 4 श्रेणियाँ बताई गई है – औदक दुर्ग,पार्वत दुर्ग, धान्वन दुर्ग व वन दुर्ग।[4] शुक्र नीति में नौ तरह के दुर्गो का उल्लेख किया गया हैं।[5] एरण दुर्ग, धन्व दुर्ग, सैन्यदुर्ग, पारिखदुर्ग, जलदुर्ग, वन दुर्ग, पारिध दुर्ग, गिरी दुर्ग, सहाय दुर्ग। विष्णु धर्मसूत्र में दुर्गो के छः प्रकार बताये गये हैं।[6]

1. धन्व दुर्ग – जलविहीन, खुली भूमि पर पाँच योजन के घेरे में।

2. मही दुर्ग – प्रस्तर खण्डों या ईटों से निर्मित प्राकारो वाला।

3. वार्क्ष दुर्ग – जो चारों ओर से एक योजन तक कंटीले एवं लम्बे वृक्षों, कंटीली लता गुल्मों एव झाड़ियो से युक्त हो।

4. जल दुर्ग – चारों ओर जल से आवृत।

5. नृदुर्ग – जो चारों ओर से चतुरंगिणी सेना से सुरक्षित हो।

6. गिरी दुर्ग – पहाड़ो वाला दुर्ग जिस पर कठिनाई से चढ़ा जा सके और जिसमें केवल एक ही संकीर्ण मार्ग हो।[7]

बाड़मेर जिले की सिवाना तहसील के दक्षिण पूर्व में छप्पन की पहाड़ियों के मध्य स्थित सिवाना का दुर्ग मारवाड़ के शासकों की शरण स्थली रहा था। जोधपुर परगने में स्थित यह सिवाना दुर्ग मोकलसर स्टेशन पर उतरी रेल्वे के समदड़ी रानीवाड़ा खण्ड पर प्रायः 7 मील (11 किमी.) दूर स्थित है। यह सिवाना तहसील के दक्षिण पूर्व अक्षांश 25 डिग्री 38 मिनट उत्तर तथा देशान्तर 72 डिग्री 26 मिनट पूर्व में स्थित है। यह दुर्ग जोधपुर से 30 कोस (90किमी.) की दूरी पर दक्षिण दिशा के दाहिनी ओर स्थित है। जालोर से इसकी दूरी 15 कोस (45 किमी.) एवं महवा से 12 कोस (36किमी.) दूर है।[8] पहाड़ी के नीचे एक ऊबड़–खाबड़ चक्करदार मार्ग किले के ऊपर की ओर जाता है। यह चढ़ाई 5 मील के विस्तार की है। किले के शीर्ष भाग के नीचे के तल पर छाया होने के कारण इस किले पर अचानक आक्रमण बिल्कुल असंभव था। आज कांटेदार झाड़ियों और थोरो, मरुस्थलीय पादपों को छोड़कर अन्य वृक्ष नहीं बचे है लेकिन प्रारम्भिक दिनों के संघर्षमय काल में सघन वृक्षों द्वारा दुर्ग की यत्नपूर्वक रक्षा की जाती थी।[9] यह दुर्ग विस्तृत रेगिस्तानी क्षेत्र के बीच स्थित है। एक विशाल ऊँची पहाड़ी पर स्थित होने के कारण इसे धान्वन दुर्ग एवं गिरी दुर्ग दोनों श्रेणियों में रखा जाता है। निर्माण के समय इस दुर्ग के चारों ओर घना जंगल था इस कारण यह ऐरण दुर्ग की श्रेणी में भी आता था। इसके चारों ओर ऊँचा परकोटा है इसलिए यह एक पारिध दुर्ग की श्रेणी में भी हैं। यह जालोर दुर्ग का सहाय दुर्ग था।[10]

धरणीवाराह पँवार बाड़मेर का शासक था, जिसने अपने अनुज राजा भोज को जालोर भाईबंट में प्रदान किया। पर्वत शिखरों के मध्य स्थित इस प्राचीन दुर्ग का निर्माण राजा भोज के पुत्र वीर नारायण पंवार ने दसवीं शताब्दी ईस्वी में करवाया था। इस पहाड़ी पर विक्रम संवत 1077 पोष सुदी 7 को इस दुर्ग की स्थापना की थी। दुर्ग के बीच में भांडेलाव जलाशय हैं जिसमें पानी कभी खत्म नहीं होता। जलाशय की पाल पर तुर्को के स्मारक बने हुए है। उसके बीच ही ईटों का कीर्ति स्तम्भ बना हुआ हैं। दुर्ग में कोई बड़ी ईमारत नहीं हैं।[11] दुर्ग के नामकरण के संबध में कई मत प्रचलित हैं। जब अलाउद्दीन खिलजी सिवाना अभियान पर था तब उसने एक कोस (3किमी.) दूरी से इस पहाड़ी को देखकर कहा कि यह बहुत छोटी है और सहज ही इस पर अधिकार करने में सफलता मिलेगी। पहले इसका नाम 'कुंभटा' था। बादशाह द्वारा सहज जीतने के कारण इसका नाम 'सिवाणा' पड़ा।[12]वस्तुतः कुंभट की झाड़ियों की बहुलता होने से पहाड़ी का नाम 'कुंभटा' पड़ा होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि पहाड़ी कुंभट की झाड़ियों से ढकी होने के कारण यह 'कुंभटा' कहलाई और किले

का नाम तो पहले सिवाना ही था। पद्मनाभ ने कान्हड़दे प्रबंध में इसका नाम 'समियाणा' लिखा है जो बोलचाल की सामान्य भाषा में 'सिवाणा' हो गया।[13] कालांतर में यह किला जालौर के सोनगरा चौहानों तथा अलाउद्दीन खिलजी के अधिकार में रहा। सन् 1538 ई. में राव मालदेव ने इस दुर्ग पर अपना अधिकार कर इसकी सुरक्षा व्यवस्था को मजबूत किया तथा परकोटे का निर्माण करवाया। मुगल आधिपत्य में आने के पश्चात अकबर ने इस किले को राव मालदेव से लेकर उसके पुत्र रायमल को दे दिया। लेकीन कुछ अरसे बाद ही रायमल की मृत्यु हो जाने से यह किला उसके के पुत्र कल्याण दास (कल्ला) के आधिपत्य में आ गया। उसकी वीरता एवं पराक्रम से सिवाना को गौरव एवं प्रसिद्धि प्राप्त हुई। अकबर के कल्ला राठौड़ से नाराज होने पर उसने जोधपुर के राजा उदय सिंह को सिवाना पर अधिकार करने भेजा। युद्ध में कल्ला राठौड़ वीरगति को प्राप्त हुआ तथा उसकी पत्नी हाड़ी रानी ने दुर्ग में ललनाओं के साथ जौंहर का अनुष्ठान किया।[14]

इस परगने के प्रमुख धार्मिक स्थलों में हल्देश्वर मंदिर, भीमगोडा मन्दिर, आशापुरा माता का मंदिर, आसोतरा का ब्रह्मा मन्दिर, हिंगलाज माता का मन्दिर आदि प्रसिद्ध है। हल्देश्वर का महादेव मन्दिर वर्तमान बाड़मेर जिले के सिवाना तहसील के पीपलद गांव में स्थित है। यहाँ महाशिवरात्रि को श्रद्धालुओं की अत्यधिक भीड़ रहती है। श्रावण महीने में पूरे एक माह तक यहाँ बड़ा मेला लगता है।[15] भीमगोडा मन्दिर के बारे में दन्त कथाओं के अनुसार यहाँ (भीमगोडा मन्दिर) महाबली भीम ने अपने घुटनों की ठोकर से पर्वत में से जल धारा उत्पन्न की थी तभी से यह स्थान भीमगोडा कहलाता हैं। आशापुरा माता व महिषासुर मर्दिनी की प्रतिमाऐं सिवाना शासक राव सांतल आशापुरा माता का अनन्य भक्त था। वहीं राव मालदेव शक्तिदायिनी महिषासुर मर्दिनी की पूजा किया करते थे।[16] हिंगलाज माता का मूल मन्दिर पाकिस्तान में तथा दूसरा मंदिर सिवाणा दुर्ग के समीप पहाड़ियों पर स्थित है।[17] राजस्थान में पुष्कर और नागौर के अलावा केवल मात्र आसोतरा में ही ब्रह्मा का भव्य मन्दिर स्थित है जिसका निर्माण स्वर्गीय खेतारामजी महाराज ने करवाया था। प्राकृतिक सुन्दरता व महान् इतिहास से सम्पन्न राजस्थान का पर्यटन उद्योग वर्तमान में उन्नत अवस्था में है। राजस्थान न केवल अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटकों को बल्कि देशी पर्यटको को भी आकर्षित करता है। भारत आने वाला प्रत्येक तीसरा विदेशी सैलानी राजस्थान को अवश्य ही देखने आता है, क्योंकि यह 'गोल्डन ट्रायंगल' दिल्ली-जयपुर-आगरा का हिस्सा हैं। राजस्थान के ऐतिहासिक दुर्गो में वर्तमान में सबसे पुराना दुर्ग सिवाना का दुर्ग है इसके बावजूद यह पर्यटन एवं पुरातात्विक विभाग की अनदेखी के कारण उपेक्षा का शिकार बना हुआ है। सिवाना दुर्ग वर्तमान में जर्जर अवस्था में है। दुर्ग में स्थित अन्य राजप्रासाद भी खण्डहर होकर अपना प्राचीन वैभव व अस्तित्व खोने के कगार पर है। दुर्ग की रणभूमि जहाँ वीरता पूर्वक लड़ते हुए राव कल्ला रायमलोत ने अपने प्राण न्यौछावर कर दिये थे, वह बबूल व कंटीली झाड़ियो से अटी पड़ी है। दुर्ग में रहने वाले लोगों की प्यास बुझाने वाला अकूत जल का एकमात्र स्त्रोत भांडेलाव तालाब की पाल भी टूट गई है व उसका पानी पीने योग्य नहीं रह गया हैं।[18]

वर्तमान सिवाना विधायक हमीर सिंह भायल ने दुर्ग के संदर्भ में विचार प्रकट करते हुए कहा कि, ''सिवाना को पर्यटन नगरी के रूप में विकसित करने के लिए मैं कृतसंकल्प हूँ, सिवाना दुर्ग और अन्य ऐतिहासिक स्थलो के संरक्षण की मांग मैनें विधानसभा में भी उठाई थी। वहीं गत दिनों पुरातत्व विभाग और प्रोन्नोति प्राधिकरण के अध्यक्ष ओंकारसिंह लखावत ने भी सिवाना का दौरा कर वीर दुर्गादास की विशाल प्रतिमा स्थापित करने का निर्णय लिया है।'' इस प्रकार यह दुर्ग हमारी धरोहर है जो पर्यटकों को मौन निमंत्रण दे रहा हैं अतः आवश्यकता है इसके संरक्षण एवं संवर्द्धन की।

संदर्भ गंथ सूची

1. *मत्स्यपुराण पृ.217, वेद व्यास विरचित, गीता प्रेस गौरखपुर, 1985 6-7, मनुस्मृति, 7, पृ.70-77 सं. प.जनार्दन झा,कलकत्ता,1985*
2. *जी. एन. शर्मा, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 143, जयपुर, 2007*
3. *प्रियदर्शी ओझा, पर्यटन और सांस्कृतिक विरासत, पृष्ठ 109-110 सुरेश बुक सर्विस, उदयपुर, 2020*
4. *कौटिल्य अर्थशास्त्र का सरल और सारगर्भित हिन्दी भाषानुवाद अनुवादक श्रीखुत प्राणनाथ विद्यालंकार, प्रकाशक - मोतीलाल बनारसीदास, अध्यक्ष - पंजाब संस्कृत पुस्तकालय लाहौर ;1923*

5 शुक्रनीति, चतुर्थ अध्याय षष्ठ प्रकरण, मिश्र ब्रह्मशंकर पृष्ठ 324-326

6 मोहनलाल गुप्ता : राजस्थान के ऐतिहासिक दुर्ग, पृ. 11, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर -2017; दीनानाथ दुबे, भारत के दुर्ग, पृ.17, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार -1999

7 मोहनलाल गुप्ता, राजस्थान के ऐतिहासिक दुर्ग, पृ.11, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर -2017

8 मारवाड़ रा परगनां री विगत ;स. डॉ. नारायण सिंह भाटी, भाग -2, पृष्ठ 215, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ;1996

9 विक्रमसिंह भाटी, जैतमालौत राठौड़ो का इतिहास 1996 पृ. 13-14, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर 2002

10 मोहनलाल गुप्ता, राजस्थान के ऐतिहासिक दुर्ग, पृ.237 , राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर - 2017

11 मारवाड़ रा परगना री विगत ;सं. डॉ नारायणसिंह भाटी भाग-2, पृ. 215, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर - 1996

12 हुकमसिंह भाटी, सोनगरा सांचोरा चौहानों का वृहत इतिहास पृ.45, अर्जुन सिंह चौहान - 2013

13 हुकमसिंह भाटी, सोनगरा सांचोरा चौहानों का वृहत इतिहास पृ.45, अर्जुन सिंह चौहान - 2013

14 राघेन्द्र सिंह मनोहर,राजस्थान के प्रमुख ड्डुर्ग, राजस्थन पृ.66-67, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2006

15 मुरारीदान री ख्यात ;पृ.70 के अनुसार ''सीवांणा के पास पीपलद में पहाड़ पर मन्दिर स्थित है।''

16 गौड़ : कान्हड़दे प्रबन्ध में संस्कृति और समाज, पृ. 213

17 परगना सीवाणा के गांव थान माता हिंगलाज थामन ; थापन की तवारीख, बंधाक 13, ग्रन्थांक 11, रा. रा. अभिलेखागार, बीकानेर

18 शोधार्थी की सिवाना दुर्ग की शोध सर्वे यात्रा - 2 मार्च 2020।

भरत का रस निरूपणः सिद्धांत एवं समीक्षा

डॉ. कुमार चैतन्य प्रकाश
भागलपुर (बिहार)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में आठ रसों की व्याख्या की है और आंगिक, वाचिक तथा सात्विक अभिनय में रसों के समावेश और निष्पत्ति को अभिनय का मूल तत्व बताया है। भरत के अनुसार नाट्य में रस के बिना कोई भी वस्तु प्रवृत्त नहीं होती तथा विभाव अनुभाव एवं व्यभिचारी भावों के संयोग से रस उत्पत्ति (निष्पत्ति) होती है। अभिनय अथवा नाट्य में रस से तात्पर्य अभिनेता द्वारा अभिनीत विभिन्न भावों के अभिनय के निचोड़ से है, जिसका आस्वादन पहले अभिनेता बाद में दर्शक करते हैं। कहा जा सकता है कि रस अभिनय की प्राणवायु है।

संकेताक्षर : *रस, भरत, नाट्यशास्त्र, आंगिक, वाचिक, सात्विक।*

नाट्य शास्त्र के छठे अध्याय 'रस निरूपण' में सैद्धांतिक रूप में पहली बार रसों की व्याख्या की गई है। रस मूलतः भारतीय काव्यशास्त्र का तत्व माना जाता है। संस्कृत में काव्य की परिभाषा में कहा गया है कि रस युक्त वाक्य ही काव्य है। भारतीय पौराणिक साहित्य में रस शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है, जैसे की अम्ल, आयुर्वेद का पारदअर्थी रस, साहित्य, संगीत आदि कलाओं का आनन्द अर्थी रस और मोक्ष एवं भक्ति अर्थी रस। लेकिन सर्वप्रथम भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में रस सिद्धांत की विस्तृत चर्चा की है, इसी वजह से भरत मुनि को रस सिद्धांत का प्रथम व्याख्याता माना जाता है। नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में प्रारंभ से ही भरत ने स्पष्ट कर दिया है कि रस ही नाटक का प्रमुख तत्व है, रसोद्रेक करना ही नाट्य का प्रधान लक्ष्य है। नाट्य निमित्त प्रेक्षागृह रंगोपकरण, वस्तु, पात्र आदि सभी तत्वों का प्रयोग इसीलिए है कि प्रेक्षकों का रसास्वादन हो सके। रस के बिना कोई (नाट्य रूप) अर्थ प्रवृत नहीं होता।

न हि रसादृते कश्चित अर्थः प्रवर्तते।[1]

नाट्यशास्त्र के अनुसार–

विभानुभाव्यभिचारीसंयोगाद रसनिष्पत्तिः[2]

अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पति होती है।[3]

भरत ने अभिनेता की परिकल्पना पात्र के रूप में की है, जिसे आंगिक, वाचिक, सात्विक और आहार्य अभिनय के साथ पहले स्वयं को अभिनय चरित्र से संदर्भित रसों के द्वारा आस्वादित करवाना चाहिए, जिससे बाद में प्रेक्षकों को भी रस की प्राप्ति हो सके। नाट्यशास्त्र में प्रयुक्त रसों की उत्पत्ति हेतु अभिनेताओं को स्थायी भावों को विभिन्न विभावों, अनेक अनुभावों और व्यभिचारी भावों की चरित्र विभिन्न स्थितियों में सुसज्जित करना चाहिए और संयोग करवाना चाहिए, जिससे अभिनेता का अभिनय उच्च श्रेणी को प्राप्त कर सके।

श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, विभत्स, अद्‌भूत– यह आठ नाट्य में रस कहे गये हैं। इन आठ रसों में क्रमशः रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय ये आठ स्थाई भाव हैं। इन रसों और भावों के साथ तैंतीस व्यभिचारी भाव रहते हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं– निर्वेद (वैराग्य), ग्लानि, शंका, असूया (ईर्ष्या), मद, श्रम, आलस्य, दैन्य (दीनता), चिंता, मोह, स्मृति, धृति (धैर्य), ब्रीड़ा (लज्जा), चपलता, हर्ष, आवेश, जड़ता, गर्भ, विशाद,

 ISSN 2277-5587

औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार (मिर्गी), सुप्त (सोना), विबोध (जागना), अमर्श, अवहित्थ (आकार छिपाना), उग्रता, मति, व्याधि (रोग), उन्माद, मरण, त्रास तथा वितर्क।[4] साथ ही आठ सात्विक भाव हैं– स्तंभ, स्वेद, स्वरभंग, वेपथु (कंपन), वैवरर्ण्य, अश्रु, रोमांच, प्रलय।

प्रत्येक रस के साथ भरत ने एक एक स्थायी भावों की उपस्थिति दर्शायी हे लेकिन रस निष्पत्ति में उन्होंने स्थायी भावों को छोड़ कर तीन शब्दों– विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से उत्पन्न 'रस' को व्याख्यायित किया है। वास्तव में ये तीनों शब्दों रसों के स्थायी भावों में, स्वयं को परिस्थितिजन्य कारणों से संयोग करवाकर समाहित करते हैं इस प्रकार ये रसों के स्थायी भावों के विभिन्न सहायक भाव कहे जा सकते हैं।

दूसरे नाट्यशास्त्र की खोज में देवेन्द्र राज अंकुर के अनुसार– ''भरत ने विभाव का अर्थ विज्ञान अथवा विशेष ज्ञान करानेवाले तत्व के रूप में किया है। इसी को कारण, निमित्त अथवा हेतु भी कह सकते हैं, अर्थात् भाव, वाचिक, आंगिक और सात्विक अभिनय के माध्यम से विभावित होते हैं, इसलिए इन कारणों को विभाव कहा जाता है। इसी क्रम में अनुभाव के रूप में वे शारीरिक चेष्टाएँ आती हैं, जो मूल भाव के पीछे–पीछे उसे साकार रूप में अभिव्यक्त करने के लिए क्रियाओं के रूप में प्रकट होती हैं, जैसे– विशिष्ट स्थितियों में भुजाओं का फड़कना, चेहरे और आँख का लाल हो जाना, हाथ पैर पटकना इत्यादि अनुभाव कहलाएंगे। इस पूरी प्रक्रिया में अंतिम कड़ी के रूप में व्यभिचारी भावों का अपना योगदान है। यह वह भाव है जो अभिनय की पूरी प्रक्रिया के बीच–बीच में कभी–कभार व्यभिचार अथवा संचरण और हस्तक्षेप करते हैं, जैसे– युद्ध भूमि में अचानक योद्धाओं के हृदय में चिंता या मोह का जन्म, व्यभिचार का प्रमाण है, लेकिन यह ज्यादा देर नहीं ठहरता तुरंत मुख्य भावों में समाहित हो जाते हैं, इसीलिए इन्हें संचारी भाव भी कहा गया है।''[5]

साधारणतः अभिनय में निहित अनुभूति को भाव के रूप में जाना जाता है। यहाँ यह स्पष्ट है कि रस व भाव एक–दूसरे के पूरक हैं। जैसे विभिन्न मसालों को निश्चित मात्रा में अन्न में साथ संयोग कराने पर स्वादिष्ट व्यंजन बनाते हैं, ठीक उसी तरह रस और भाव में संयोग से अभिनय को भावित किया जाता है।

भाव से रहित कोई रस नहीं और रस से रहित कोई भाव नहीं है। अभिनय में इसकी सिद्धि एक–दूसरे के द्वारा की जाती है।[6]

न भावहीनोस्ति रसो न भावो रसवर्जितः।
परस्परकृतासिद्धिस्तयोरभिनये भवेत।।[7]

नाट्य शास्त्र में रसों के साथ, विभावों, अनुभावों व व्यभिचारी भाव के प्रकारों और उनकी विशेषताओं का निरुपण भरत की गहन व सूक्ष्म दृष्टि को दर्शाता है। यहाँ हम अध्ययन की सुविधा हेतु विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से आठों रसों के साथ स्थायी भावों और उनमें निहित विशिष्ट प्रवृतियों का संक्षेप में विश्लेषण कर रहे हैं।

श्रृंगार रस– रसों में श्रृंगार को प्रथम स्थान दिया गया है। इसका स्थायी भाव 'रति' है। भारतीय पौराणिक साहित्य में अनिंद्य सुंदरी रति को कामदेव की पत्नी के रुप में निरुपित किया गया है और श्रृंगार के लिए भरत ने श्याम रंग निर्धारित किया है। श्याम वर्ण के भगवान कृष्ण की श्रृंगारिक छवि इस रस रंग के भाव को ही व्यक्त करती है। स्थायी भाव रति उत्पन्न श्रृंगार के दो प्रकार हैं– संयोग तथा विप्रलंभ/वियोग। लोक में जो कुछ पवित्र, उत्तम, उज्ज्वल एवम् दर्शनीय है, वह श्रृंगार रस कहलाता है।

हास्य रस– हास्य रस का स्वरूप 'हास' नामक स्थायी भाव वाला होता है।

अथ हास्यो नाम हासस्थायीभावात्मकः।[8]

इसके भी दो प्रकार हैं, आत्मस्थ एवं परस्थ। आत्मस्थ अर्थात् स्वयं हंसने वाला और परस्थ से तात्पर्य दूसरों को हंसाने से है। यह दोनों हास्य भेद स्मिथ (मुस्कान), हसित (हंसी), विहसित (खनकती हंसी), उपहसित (हंसी उड़ाना), अप हसित (विकृत हंसी), अति हसित (अट्टहास) इन प्रकारों में उत्तम, मध्यम और अधम तीनों कोटियों के हो सकते हैं।[9]

करुण रस– अथ करुणो नाम शोक स्थायीभावप्रभवः[10]

करुण रस 'शोक' स्थायी भाव से उत्पन्न होता है। शोक की उत्पत्ति भी शाप, पतन, परिजनों का वियोग, वैभव का नाश, वध, बंधन, भगदड़, चोट लगना और इसी प्रकार की अन्य विपत्तियों से होती है। इसका अभिनय आँसू गिराना, विलाप, मुंह सूखना, मुंह पीला पड़ना, शरीर का ढीला होना, सांस छोड़ना, स्मृति लोप आदि अनुभावों से होता है। निर्वेद, ग्लानि, चिंता, औत्सुक्य, आवेग, भ्रम, मोह, विशाद, दैन्य, व्याधि, जड़ता, उन्माद, अपस्मार, त्रास, आलस्य, मरण, स्तंभ,

वेपथु, वैवरण्य और स्वरभेद इसके व्यभिचारी और सात्विक भाव हैं।[11]

रौद्र रस– रौद्र रस 'क्रोध' स्थाई भावात्मक है। यह राक्षस, दानव, उद्धतम मनुष्यों के पात्रों में होता है। संग्राम इसका हेतु है। क्रोध, बलपूर्वक, खींचना, कुवचन, झूठे वचन, प्रहार, कठोर वाणी, द्रोह, मत्सचर्य आदि विभावों से यह जन्म लेता है। मार–पीट, चीरना, पीड़न (दबाना), छेदन, भेदन, शास्त्रों को लाना और फेंकना, शास्त्रों से प्रहार करना, खून निकालना, खींचना आदि इसके अनुभाव हैं। इसका अभिनय लाल आँखों, भृकुटी टेढ़ी करना, दाँत पीसना, ओठ चबाना, गंडस्थल (कनपटी) का फड़कना, हथेलियाँ मसलना आदि अनुभावों से होता है। सम्मोह, उत्साह, आवेग, अमर्श, चपलता, उग्रता, गर्व, पसीना, कंपकपी, रोमांच तथा गदगद (स्वरभंग)आदि इसके व्यभिचारी और सात्विक भाव हैं।[12]

वीर रस– इसका स्थायी भाव 'उत्साह' है तथा वर्ण है गौर अथवा स्वर्ण। यह उत्तम प्रकृति वालों से संबंधित होता है। विभिन्न विद्वानों ने वीर रस के अंतर्गत युद्धवीर, धर्मवीर, दयावीर तथा दानवीर नामक चार भेद स्वीकार किये हैं। लेकिन भरत के अनुसार– ''यह प्रत्युत्पन्नमतित्व, असम्मोह, अध्यवसाय, नीति (विनय), बल (सैन्यादि), पराक्रम, शक्ति, प्रताप, प्रभाव आदि विभावों के द्वारा उत्पन्न होता है। इसका अभिनय स्थिरता, धैर्य, शौर्य, त्याग, चातुर्य आदि अनुभावों के द्वारा करना चाहिए। इसमें धृति, मति, गर्व, आवेग, औग्रय, अमर्श, स्मृति, रोमांच आदि संचारी व सात्विक भाव होते हैं।''[13]

भयानक रस – भयानक रस 'भय' स्थायी भाव वाला है। यह विकृत आवाजों, हिंसक पशुओं के दर्शन, सियारों या उल्लुओं की बोली से त्रास होना 'उद्वेग' एक सूने घर या जंगल में जाना, अपने प्रिय जन का वध या बंधन देखना– सुनना या उसकी चर्चा करना इस प्रकार के विभावों से उत्पन्न होता है। उसका अभिनय कांपते हाथ–पैर, फड़कती आँखों, मुंह का फीका पड़ना, स्वर टूटना आदि अनुभावों से होता है। स्तंभ, स्वेद, अश्रु, रोमांच, कंपकंपी, स्वरभंग, वैवर्णय (ये सात्विक भाव) तथा शंका, मोह, 'स्मृति' दैन्य, आवेग, चपलता 'जड़ता' त्रास, अपस्मार और मरण– ये इसके संचारी भाव हैं।[14]

विभत्स रस– वीभत्स रस 'जुगुप्सा' स्थायी भाव वाला है। वह असुन्दर, अप्रिय, अभक्ष तथा अनिष्ट पदार्थो के श्रवण, दर्शन, कीर्तन आदि विभावों से उत्पन्न होता है। उसका अभिनय सारे अंगों को सिकोंड़ना, मुंह बिचकाना या घुमा लेना, फूंकना या उद्विग्न होना– इन अनुभावों से होना चाहिए। अपस्मार उद्वेग, आवेग, मोह, व्याधि तथा मरण आदि इसके संचारी भाव हैं।[15]

अद्भूत रस– यह नाट्यशास्त्र का आठवां रस है, इसका स्थायी भाव 'विस्मय' है। वह देवताओं का दर्शन इच्छित मनोकामनाओं का पूर्ण हो जाना। उपवन या मंदिर आदि में जाना, माया, इन्द्रजाल आदि विभावों से उत्पन्न होता है। उसका अभिनय आँखें फैलाना और अपलक देखना, रोमांच, अश्रु, हर्श, साधुवाद देना, निरंतर हाहाकार, हाथ, मुंह, कपड़ा अंगुली आदि से घुमाना इत्यादि अनुभावों से होता है। स्तंभ, अश्रु, स्वेद, गदगद, रोमांच, आवेग, संभ्रम, जड़ता तथा प्रलय आदि इसके सात्विक तथा संचारी भाव हैं।[16]

उक्त रसों के सैद्धान्तिक पक्ष को भरत ने कुशलतापूर्वक व्याख्यायित किया है। साथ ही प्रधान रस चार स्वीकार किये हैं। जिनसे अन्य रसों की उत्पत्ति बतलाई है।

श्रृंगारहास्यकरूणारौद्रवीरभयानकः।
वीभत्सादभुतसंज्ञौचैत्यश्टोनाट्येरसः स्मृताः।।

नाट्य शास्त्र की रचना में रस अंश अथर्ववेद से लिया गया है। ऋग्वेद में भी रस का प्रयोग सोमरस के रूप में इसके द्रव्यत्व व स्वाद दोनों ही अर्थो को लक्ष्य में रखकर किया गया है।[17] वेदों, उपनिषदों व पुराणों से लेकर गीता, रामायण और महाभारत तक में रस की उपस्थिति भिन्न–भिन्न प्रकार से साफ दृष्टिगोचर होती है। भरत के अनुसार जिस प्रकार संसार में कई प्रकार के व्यंजनों और औषधियों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है, उसी प्रकार विभिन्न भावों के संयोग से भी रस निष्पत्ति होती है। जिस प्रकार गुड़ आदि द्रव्यों, व्यंजनों और औषधियों से शाडव(श) आदि रस बनते हैं, उसी प्रकार भिन्न–भिन्न प्रकार के भावों से युक्त स्थाई भाव और रसत्व को प्राप्त करते हैं।[18]

रस आस्वाद्य पदार्थ है। जिस प्रकार विभिन्न व्यंजनों को ग्रहण करते हुए रस आस्वादित होता है, उसी प्रकार आंगिक, वाचिक और सात्विक भावों से अभिन्व्यंजित अभिनय भी पाठकों को आस्वादित करता है और उन्हें रस की प्राप्ति होती है। नाट्य को अवलोकित करते हुए जिस भावात्मक पदार्थ का आस्वादन होता है, उसे नाट्य रस कहते हैं। नाटक के प्रायः सभी तत्व–कथावस्तु, पात्र, संवाद, अभिनय और रंगोपकरण

ISSN 2277-5587

आदि दर्शकों को रसत्व प्रदान करने के निमित्त ही प्रयुक्त होते हैं। अतः कहा जा सकता है कि रस अभिनय का वो प्रधान तत्व है, जिसके बिना अभिनय मूर्त रूप धारण नहीं कर सकता है। स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव अथवा संचारी भाव रसों की वो पताकाएँ हैं, जो अभिनय को उच्चतम शिखर प्रदान करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *दाधीच, डॉ. पुरूः एकादश नाट्य संग्रह और प्रयोक्तागण, 1988, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृ. सं. 5*
2. *त्रिपाठी, राधावल्लभः संक्षिप्तनाट्यशास्त्रम्, 2009, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 पृ. सं. 82*
3. *वही- पृ. सं. 83*
4. *वही- पृ. सं. 81*
5. *अंकुर, देवेन्द्र राजः दूसरे नाट्यशास्त्र की खोज, 2010, वाणी प्रकाशन 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002 पृ. सं. 61-62.*
6. *त्रिपाठी, राधावल्लभः संक्षिप्तनाट्यशास्त्रम्, 2009, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 पृ. सं. 85*
7. *वही- पृ. सं. 84*
8. *वही- पृ. सं. 85*
9. *वही- पृ. सं. 87*
10. *वही- पृ. सं. 86*
11. *वही- पृ. सं. 87*
12. *वहीं- पृ. सं. 87*
13. *दाधीच, डॉ. पुरूः एकादश नाट्य संग्रह और प्रयोक्तागण, 1988, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृ. सं. 30*
14. *त्रिपाठी, राधावल्लभः संक्षिप्तनाट्यशास्त्रम्, 2009, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 पृ. सं. 89*
15. *वहीं- पृ. सं. 89*
16. *वहीं- पृ. सं. 89*
17. *दाधीच, डॉ. पुरूः एकादश नाट्य संग्रह और प्रयोक्तागण, 1988, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृ. सं. 10*
18. *त्रिपाठी, राधावल्लभः संक्षिप्तनाट्यशास्त्रम्, 2009, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 पृ. सं. 83, 85*

स्त्री–स्वातंत्र्य की तलाश करती अल्पना मिश्र की कहानी : ऐ अहिल्या

बेबी कुमारी
उच्च माध्यमिक शिक्षक, देवी पद चोधरी शहीद स्मारक (मिलर)
उच्च माध्यमिक विद्यालय, पटना (बिहार)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

21 वीं सदी के कहानीकारों में अल्पना मिश्र अपना प्रमुख स्थान रखती हैं। 'ऐ अहिल्या' कहानी उनके तीसरे कहानी–संग्रह 'कब्र कैद औ' जंजीरें भी' से ली गई है। यह कहानी एक तरफ नारी की सामाजिक स्थिति को सामने लाती है, तो दूसरी तरफ नारी–स्वातंत्र्य की वकालत करती है। इसमें तीन पीढ़ियों के माध्यम से नारी–मानसिकता में होने वाले परिवर्तनों को सूक्ष्मता से रेखांकित किया गया है। पूरी कहानी दो पात्रों– मनु और रूपा के इर्द–गिर्द घूमती है। मनु पितृसत्तात्मक समाज के हाथों की 'बार्बी डॉल' है। स्वातंत्र्य की भावना उसके भीतर भी कुलबुलाती है। किन्तु तथाकथित कर्त्तव्यों एवं दायित्वों के नाम पर समाज द्वारा थोपे गए संस्कारों से विरोध नहीं कर पाती है। मनु के विपरीत रूपा एक स्वतंत्र विचारधारा वाली विद्रोही महिला है। रूपा पितृसत्तात्मक समाज में प्रचलित उन सारी मान्यताओं एवं धारणाओं को बदल देना चाहती है, जो सदियों से स्त्री–शोषण का कारण रही हैं। इस कहानी की तीसरी प्रमुख नारी–पात्र बबली प्रगतिशील अगली पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है। इस पात्र के माध्यम से लेखिका आने वाले समय में समाज की बदलती मानसिकता की ओर संकेत करती है। प्रस्तुत कहानी भारतीय समाज की यथास्थितिवादी मानसिकता में बदलाव लाती है और नारी समुदाय को 'बार्बी डॉल' वाले व्यक्तित्व से बाहर निकल कर स्वतंत्र व्यक्तित्व एवं सोच के साथ जीने की प्रेरणा देती है।

संकेताक्षर : *स्त्री–पराधीनता, स्त्री–स्वातंत्र्य, बार्बी डॉल, भारतीय समाज, पुरुष वर्चस्ववादी मानसिकता, वैचारिक स्वतंत्रता, अहिल्या, मनु, रूपा, बबली।*

ऐ अहिल्या' शीर्षक कहानी की गणना अल्पना मिश्र की प्रतिनिधि कहानियों में की जाती है। यह कहानी वर्तमान समय में स्त्री की बदलती मानसिकता और सामाजिक स्थिति की गहन पड़ताल करती है। स्त्री–विमर्श और स्त्री–स्वातंत्र्य की दृष्टि से भी यह कहानी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। अल्पना मिश्र इक्कीसवीं सदी की प्रमुख कथाकार हैं। वह अपनी कथात्मक–संरचना के लिए काल्पनिक दुनियां का परिभ्रमण नहीं करती, अपितु अपने आस–पास घटित होने वाली घटनाओं को कथा–सूत्रों में पिरो कर हमारे सामने प्रस्तुत कर देती हैं। अब तक उनके चार कहानी–संग्रह – 'भीतर का वक्त', 'छावनी में बेघर', 'कब्र भी कैद औ' जंजीरें भी', 'सुरखाब के पंख' एवं एक उपन्यास– 'अन्हियारै तलछट में चमका' प्रकाशित हो चुके हैं। कब्र भी कैद औ 'जंजीरें भी' में नौ कहानियां संकलित हैं। 'ऐ अहिल्या' इस संग्रह की अंतिम कहानी है।

शोध विषय –विवेचन

'ऐ अहिल्या' कहानी आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई है। कहानी की शुरुआत नाटकीय ढंग से होती है। 'ट्रिन–ट्रिन... फोन की आवाज सुन मनु लपक कर फोन उठाती है। बाद की प्रतिक्रिया उसी के शब्दों में जानते हैं – ''मेरे हाथ काँपने लगे–लगा, किसी फिल्मी सीन की तरह रिसीवर मेरे हाथ से छूटकर नीचे गिर जाएगा। मैंने भरसक जोर से रिसीवर को जकड़ लिया। चारों तरफ से 'किसका फोन है' की निगाहें मुझे काटने लगीं।''[1] मनु के इस कथन में दो बातें हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं – एक 'हाथ काँपना' और दूसरा 'किसका फोन है की निगाहें काटना'। ये दोनों मनोवेग कहानी की संरचनात्मक–गुत्थी को सुलझाने में हमारी मदद करते हैं और साथ ही पुरुषप्रधान समाज

 ISSN 2277-5587

की स्त्री–मानसिकता को समग्रता में उद्घाटित करते हैं। हम जिस सामाजिक व्यवस्था में जी रहे हैं, वहाँ लड़कियों को बचपन से ही आचार–विचार, कर्तव्य–दायित्व आदि की शिक्षा गहनता से दी जाती है। उसकी सामान्य–से–सामान्य गतिविधियों एवं व्यवहारों पर समाज की पैनी दृष्टि होती है। परिणामस्वरुप 'लोग क्या कहेंगे' का डर उसके भीतर स्थायी रूप से स्थान पा लेता है। डर के इस साये में जीते–जीते स्त्रियाँ कब 'बार्बी डॉल' बन जाती हैं, उन्हें पता ही नहीं चलता।

इस कहानी को पढ़ने के उपरांत सबसे पहला प्रश्न जो हमारे मन को उद्वेलित करता है, वह है इसका शीर्षक। स्त्री–जीवन के ठोस यथार्थ को सामने लाने वाली इस कहानी का शीर्षक लेखिका ने 'ऐ अहिल्या' क्यों रखा? इसके पीछे लेखिका का क्या उद्देश्य है ? इस शीर्षक के माध्यम से वह स्त्री–जीवन के किस यथार्थ को सामने लाना चाह रही है? यद्यपि यह कहानी मिथकीय घटनाओं या पात्रों को लेकर नहीं लिखी गई है, किन्तु कहानी के अंतःसूत्र अहिल्या के जीवन की त्रासदी से जुड़े हैं। इसलिए शीर्षक की सार्थकता और लेखिका के उद्देश्य पर विचार करने से पूर्व हम अहिल्या के जीवन के त्रासद यथार्थ पर एक दृष्टि डाल लेते हैं। अहिल्या महर्षि गौतम की पत्नी है। मन, कर्म एवं वचन से एकनिष्ठ पतिव्रता नारी। उसके निःस्वार्थ समर्पण में कहीं खोट नहीं है। सभी दायित्वों–कर्तव्यों का निर्वहन करती हुई वह पति को परमेश्वर बनाकर पूजती है। एक दिन अनजाने में पति वेश में आए परपुरुष के हाथों वह छली जाती है और अपना सतीत्व खो बैठती है। भारतीय समाज में स्त्री का सतीत्व ही उसका अस्तित्व है। सतीत्व नहीं तो अस्तित्व नहीं। जाने हो या अनजाने, इच्छा से हो या अनिच्छा से परपुरुषगमन समाज की दृष्टि में एक स्त्री द्वारा किया गया अक्षम्य अपराध है। इसकी सजा तो उसे मिलनी ही चाहिए। अहिल्या को भी मिली। एक नहीं दो–दो पुरुषों से। एक ने उसे अभिशप्त किया और दूसरे ने अभिशाप दिया। अहिल्या अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व को बचाने के मार्ग का चयन न कर सामाजिक मर्यादाओं का निर्वहन करती हुई यथास्थितिवादिता को स्वीकारती है। शीर्षक की प्रासंगिकता इस बात में है कि अहिल्या जैसी स्त्री–पात्र वर्त्तमान समय में भी हमारे समाज में मौजूद है। नाम एवं स्वरुप बदल गए हैं, लेकिन शोषण बदस्तूर जारी है। कत्तर्व्यों एवं दायित्वों के नाम पर स्त्री के पैरों में जो बेड़ियाँ डाली जाती हैं, वे न सिर्फ उसे पराधीन बनाती हैं, अपितु उसके अस्तित्व पर भी प्रश्न–चिह्न खड़ा करती हैं। इस दृष्टि से अहिल्या एक कालजयी पात्र है, जो हमारे समाज में कल भी थी और आज भी है।

वैचारिक स्तर पर यह कहानी अहिल्या की कथा से जुड़ी हुई है। अहिल्या पुरुषों के द्वारा ही पत्थर बनायी जाती है और पुनः पुरुष के चरण–स्पर्श से ही नारी रूप धारण करती है। अर्थात् उसके अस्तित्व का होना या न होना पुरुषों की इच्छा पर निर्भर है। भारतीय समाज का संरचनात्मक–ढाँचा इतना सुदृढ़ है कि पश्चिम से उठने वाली स्त्री–विमर्श एवं स्त्री–मुक्ति की बयार उसे उड़ा नहीं सकी। शिक्षा की आँधी भी इसमें अमूल–चूल परिवर्तन लाने में असमर्थ रही। आज भी हमारे समाज की स्त्रियाँ अहिल्या का जीवन जीने को अभिशप्त है। पति के पूर्ण संरक्षण में जीने वाली गृहिणी की बात कौन कहे! अपने पैरों पर खड़ा होने का दंभ भरने वाली कामकाजी स्त्रियों के जीवन की बागडोर भी पुरुष के हाथों में होती है। दाम्पत्य–जीवन जीने वाली एक मध्यमवर्गीय स्त्री के जीवन से जुड़े हर फैसले उसके पति लिया करते हैं। उसके लिए सही–गलत, अच्छा–बुरा का निर्णय पति ही करते हैं। मनु अहिल्या की श्रेणी में आने वाली इसी मध्यमवर्गीय स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है। वह कहती है – ''मैं इस घर की बार्बी डॉल, जिसे सुन्दर–सुन्दर कीमती कपड़े पहनाकर सजा दिया गया है। मि. दासानी की मर्जी के बिना जिसका हाथ तक .पर–नीचे नहीं उठ सकता, जिसकी आँखें जब तक मि. दासानी डुलाएँ न, खुलेंगी नहीं, जिसके सुन्दर बाल मि. दासानी की मर्जी से अलग–अलग स्टाइल में सँवरेंगे। मि. दासानी की कल्पना जहाँ तक फैलेगी, वे उतने सारे स्वर्ग बिछा देंगे''।[2] यह सच है कि भारतीय समाज में स्त्रियों के चारों ओर संस्कारों की जो दीवारें खड़ी हैं, वे काफी सुदृढ़ हैं, किन्तु शिक्षा की रोशनी में आज की स्त्रियाँ अपनी पराधीनता के कारणों को जान ली है। यही कारण है कि कल तक पति द्वारा बिछाए गए स्वर्ग में ही मन–बेमन से आनंद मनाने वाली पति के हाथों की 'बार्बी डॉल' आज चुपके–चुपके ही सही अपने मरे जीवन में प्राण फूँकने लगी है। वह ''चुपके–चुपके ही सही–एक सही जीवन तलाशती रहती है। स्वर्ग से भाग–भागकर नरक के संघर्ष पर मोहित होती रहती है। इसी मुग्धता का परिणाम है रूपा की दोस्ती।''[3] आज मनु जैसी समझौतावादी स्त्रियाँ भी अपने वजूद को तलाशने लगी हैं। ''कब ये आदमी मुझे थोड़ा–सा जीने की छूट देगा''[4] मनु की यह खीझ इसी ओर

संकेत करती है। मि. दासानी (पति) के मना करने पर भी मनु का रूपा के घर जाना, रूपा को अपने घर डिनर पर बुलाना इस बात का प्रमाण है कि पत्थर की अहिल्या धीरे-धीरे पिघल रही है। अपने नारी स्वरुप में आने का प्रयास कर रही है।

रूपा इस कहानी की दूसरी प्रमुख स्त्री पात्र है। वह पढ़ी-लिखी है। कामकाजी है। अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व के प्रति सजग है। अपने अधिकारों के प्रति जागरुक है। वह नारी-पराधीनता के मूल को जानती है, इसलिए कर्तव्यों एवं दायित्वों के नाम पर बनायी गई उन समस्त दीवारों को धक्का देकर गिरा देना चाहती है, जिनके भीतर सदियों से स्त्रियाँ कैद हैं। कथात्मक परिवेश में रूपा एक विद्रोही तेवर लेकर आती है। उसका पहला विद्रोह वैवाहिक संस्था के विरुद्ध होता है। वह समाज के उस दकियानूसी सोच को नहीं मानती, जिसके अनुसार इधर-उधर चरना मर्द जात का निशानी और सभी परिस्थिति में वैवाहिक बंधन की खूँट से बँधी रहना स्त्री-जात का कर्तव्य है। जब रूपा को यह पता चलता है कि उसके पति का किसी दूसरी स्त्री के साथ संबंध है, तब वह अपने पति राजीव को छोड़कर चली जाती है। दूसरी शादी डा. विनय से करती है, सुमि (बेटी) की मौत के बाद उससे भी अलग हो जाती है। फिर वह विवाह पूर्व प्रेमी राकेश से संबंध बनाती है, गर्भधारण भी करती है, किन्तु विवाह के नाम पर यह कहते हुए उसे भी ठुकरा देती है कि- जो आज गिड़गिड़ा रहा है, कल गुर्रा भी सकता है। यहाँ यह विचारणीय है कि तीन-तीन पुरुषों के साथ संबंध बनाना रूपा की प्रगतिशीलता है या उसकी उच्छृंखलता। सौन्दर्य एवं आनंद सहजता में होती है, असहजता में नहीं। यह बात स्त्री और पुरुष दोनों पर लागू होती है। पत्नी के होते हुए दूसरी स्त्री के साथ संबंध स्थापित करना यदि राजीव (रूपा का पति) की उच्छृंखलता है, तो बार-बार बिस्तर की तरह पति बदलना रूपा का व्यभिचार। ''नर-नारी मिलन में सबसे अधिक महत्त्व प्रेम का है। अतएवं नर-नारियों के बीच वह गंभीर प्रेम अधिक-से-अधिक विकसित होना चाहिए, जिससे आलिंगन-समुद्र में दोनों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व पूर्ण रुप से निमग्न हो जाएँ और उस मिलन से दोनों के व्यक्तित्व अधिक पूर्ण, अधिक समृद्ध और अधिक सुखद बनते चले जाएँ।''[5]

रूपा और मनु दोनों अपने वैवाहिक जीवन से असंतुष्ट हैं। समाज की दृष्टि में मनु का वैवाहिक जीवन भले ही सफल हो, किन्तु प्रेम और स्वतंत्रता के अभाव में वह भी मृतप्राय हो गया है। इसकी पुष्टि मनु के इस कथन से होती है - ''इस प्रेम को वे थोड़ी-सी समझ-स्वतंत्रता से स्वस्थ और पौष्टिक क्यों नहीं बना देते।''[6]

साठ-सत्तर के दशक में पश्चिम में रेडिकल नारीवादी सिद्धांत का जन्म हुआ। इस नारीवादी सिद्धांत का मानना है कि पितृसत्ता के तहत स्त्रियाँ जबरन थोपे गए मातृत्व और यौन गुलामी का शिकार होती हैं। महिलाओं की पराधीनता का मूल कारण विवाह और गर्भधारण है, इसलिए सर्वप्रथम विवाह की पितृसत्तात्मक संस्था से मुक्त हुआ जाए। यदि महिलाएँ माता बने भी तो अपनी इच्छा से और अपनी शर्तों पर। प्रस्तुत कहानी में अल्पना मिश्र कहीं भी खुलकर नारी-विमर्श या उक्त नारीवादी सिद्धांत का समर्थन नहीं करती है, किन्तु रूपा के चरित्र में हम इस नारीवादी सिद्धांत का प्रभाव देख सकते हैं। एक तरफ वह वैवाहिक संस्था से मुक्त होना चाहती है, तो दूसरी तरफ संतान प्राप्ति के भी उसके अलग सिद्धांत हैं। राकेश द्वारा दिए गए विवाह के प्रस्ताव को ठुकराने के बाद वह कहती है - ''मैं वीर्य बैंक भी जा सकती हूँ, पर मुझे लगता है, इसके लिए राकेश ही क्या बुरा है।''[7] रूपा की यह विचारधारा पश्चिमी दुनिया के लिए भले ही अनुकरणीय हो, किन्तु भारतीय समाज में यह कभी स्वीकार्य नहीं हो सकती। संतान स्त्री पराधीनता का कारण नहीं उसकी मुक्ति की प्रथम सीढ़ी होती है। स्त्रियाँ अपनी अतृप्त इच्छा एवं कामना अपनी संतान के माध्यम से पूर्ण करती है। लेखिका मनु के कथन से इसी ओर संकेत करती है -''मेरी प्यारी बच्ची, मैं तुझे 'डॉल' नहीं बनने दूँगी, तुझे जिन्दा कर दूँगी, डॉक्टर बनाऊँगी, आर्टिस्ट बनाऊँगी या जो तू बनना चाहेगी... ।''[8] मनु अपने अस्तित्व की स्वतंत्रता के लिए कभी आवाज नहीं उठा सकी, किन्तु अपनी बेटी को वैचारिक स्वतंत्रता प्रदान कर वह अपनी मुक्ति की अतृप्त इच्छा को पूर्ण करना चाहती है।

तीसरी स्त्री पात्र है बबली। कहानी में बबली की उपस्थिति कम है, किन्तु अगली पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने के कारण वह कहानी को निर्णायक मोड़ पर पहुँचाती है। उसके चरित्र में हमें समय के साथ बदलती स्त्री-मानसिकता की झलक मिल जाती है। भविष्य की सारी संभावनाएँ उसके चरित्र में समाहित हैं। जब भरे बाजार में राकेश के होठों पर चुंबन लेती रूपा की तस्वीर अखबार में छपती है, तब इस खबर को पढ़कर मनु के घर में भूचाल आ जाता है, किन्तु बबली शांत

 ISSN 2277-5587

भाव से मनु से पूछती है – ''आपको क्या लगता है, रूपा आंटी ने ठीक किया?''[9] बबली अभी बच्ची है। सामाजिक संस्था की जटिलताओं से अनभिज्ञ है, किन्तु उसका यह प्रश्न इस बात का संकेत है कि आने वाली पीढ़ी यथास्थितिवादी नहीं विचारवान होगी। वह दूसरों के द्वारा तय किए गए सही–गलत के निर्णय पर आँख मूँद कर विश्वास न कर अपनी सोच–समझ से निर्णय लेगी। पुनः कहानी के अंत में बबली उपस्थित होती है। रूपा बबली से पूछती है – ''बबली, मनु ने मुझे डिनर पर बुलाया है, क्या तुम पसंद करोगी ?''[10] तो बबली उसी सहजता से कहती है– ''क्यों नहीं।''[11] इसी संदर्भ में जब वह उसके पिता के नापसंद करने की बात करती है तो बबली कहती है – ''ओह डोंट बॉदर, टेक इट ईजी।''[12] मनु अपने घर का बाहरी गेट खोलती है और तभी मि. दासानी की कार आकर रुकती है। कहानी यहीं खत्म हो जाती है। स्पष्टतः बबली जैसी स्त्री–पात्र का चयन अनायास नहीं विशेष प्रयोजन से हुआ है। मनु द्वारा बाहरी गेट का खुलना और मि. दासानी की कार का रुकना इस बात का संकेत है कि समय के साथ नारी–मुक्ति के द्वार खुल रहे हैं और सदियों से चली आ रही पुरुष वर्चस्ववादी सत्ता की गाड़ी रुक रही है।

इस कहानी में पुरुष पात्र की उपस्थिति नगण्य है। राजीव और विनोद की तो चर्चा भर है। मि. दासानी और राकेश दोनों वहीं उपस्थित होते हैं, जहाँ लेखिका पुरुष वर्चस्ववादी मानसिकता और स्त्री–शोषण को तल्खता से उभारना चाहती है। यह सच है कि सदियों से पुरुष वर्चस्ववादी मानसिकता के कारण स्त्रियाँ गुलामी की जिंदगी जीती रही है, किन्तु पुरुषों से समानता करने की होड़ में उच्छृंखता का मार्ग अख्तियार कर लेना, पुरुषों की भाँति आवारागर्दी पर उतर जाना उचित नहीं है– जैसे कि रूपा करती है। समाज के निर्माण में स्त्री और पुरुष दोनों की समान भूमिका होती है। स्त्री और पुरुष जीवन रूपी गाड़ी के दो पहिए हैं। यदि एक भी खराब हो जाए तो गाड़ी दुर्घटनाग्रस्त हो जाएगी। एक सुन्दर एवं आदर्श समाज की स्थापना दो स्वस्थ मानसिकता वाले पुरुष और स्त्री मिलकर ही कर सकती हैं, इसलिए किसी एक भटकाव समाज के लिए हानिकारक है।

संरचनात्मक स्तर पर कहानी में फैलाव है। ''औरत हो औरत की तरह रहो''[13], ''मैं तो तुमसे शादी करना चाहता हूँ, सारी दुनिया के सामने तुम्हें इज्जत देना चाहता हूँ''[14] जैसे छोटे–छोटे सूत्र–वाक्य स्त्री–शोषण और स्त्री–संबंधी पुरुष मानसिकता को सघनता से उभारते हैं, किन्तु यह कहानी भटके समाज को सही दिशा नहीं दिखाती। लेखिका स्त्री और पुरुष दोनों को भटकाव के मार्ग पर ही छोड़ देती है। कहानी की यह सबसे कमजोर कड़ी है। 'ऐ अहिल्या' एक ऐसी कहानी है जिसका आरंभ स्त्री–पराधीनता को दिखलाने से होती है और अन्त स्त्री–स्वतंत्रता से।

निष्कर्ष

यह कहानी पुरुषप्रधान समाज में स्त्रियों की स्थिति की गहन पड़ताल करती है। स्त्री–पराधीनता के प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष कारकों को सामने लाती है। भिन्न–भिन्न वर्ग की स्त्रियों के माध्यम से स्त्रियों की बदलती मानसिकता की ओर संकेत करती है। इस कहानी के माध्यम से लेखिका यह दिखाना चाहती है कि समय के साथ स्त्री की समझौतावादी मानसिकता बदल रही है। पुरुषों के पूर्ण नियंत्रण में रहने वाली स्त्रियाँ भी धीरे–धीरे अपनी स्वतंत्रता की तलाश करने लगी है। कल तक स्त्रियों को पराधीनता के मार्ग पर धकेलने वाली स्त्रियाँ भी आज स्वतंत्रता का पाठ पढ़ने–पढ़ाने लगी है। इस प्रकार स्त्री–पराधीनता के चित्रण से शुरू होने वाली यह कहानी अंततः स्त्री–समाज को मुक्ति के मार्ग पर ले जाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *मिश्र अल्पना (2012), 'कब्र भी कैद औ' जंजीरें भी', राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, पृ.–110*
2. *उपर्युक्त, पृ.–112*
3. *उपर्युक्त, पृ.–112*
4. *उपर्युक्त, पृ.–117*
5. *नवल नंदकिशोर एवं कुमार तरुण (2011), दिनकर रचनावली (खण्ड–8), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.–136*
6. *मिश्र अल्पना (2012), 'कब्र भी कैद औ' जंजीरें भी', राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, पृ.–117*
7. *उपर्युक्त, पृ.–116*
8. *उपर्युक्त, पृ.–114*
9. *उपर्युक्त, पृ.–111*
10. *उपर्युक्त, पृ.–120*
11. *उपर्युक्त, पृ.–120*
12. *उपर्युक्त, पृ.–120*
13. *उपर्युक्त, पृ.–111*
14. *उपर्युक्त, पृ.–116*

धूमिल के काव्य में चित्रित युग यथार्थ

डॉ. शशिभूषण प्रसाद
व्याख्याता, एस.डी.एम.वाई. कॉलेज, धोरैया (बिहार)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

धूमिल अपने युग–यथार्थ का काव्य के मध्यम से चित्रिक करने वाले साहित्यकारों में सर्वाधिक क्षमतावान् तथा युगीन समस्याओं को बगैर किसी काट–छांट के व्यक्त करने वाले जनवादी कवि थे। हिन्दी साहित्य कोश में जनवाद को कला साहित्य और जीवन के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण माना है। इस व्यापकता के अलावा कोश में जनवाद को मार्क्सवाद से विकसित माना है। कोश में कहा गया है कि कला और साहित्य में जनवाद जिस अर्थ में प्रयुक्त होता है, उसके पीछे एक विशिष्ट दर्शन है। मार्क्स ने समाज और उसके विविध रूपों और विचारों की ऐतिहासिक व्याख्या की है, वे कला और साहित्य पर भी लागू होती है। साहित्य की जो मार्क्सवदी विवेचना हुई, उसी से जनवाद का प्रादुर्भाव हुआ। जनवाद या जनवादी दृष्टि केवल मार्क्स और उसके विचारों से ही आयी है, ऐसा मानना असंगत लगता है और जिससे जनवाद का स्वरूप भी संकुचित होता हुआ दिखाई देता है। इतना अवश्य है कि जनवाद मार्क्सवादी विचारो से प्रेरणा ग्रहण करता है और धूमिने ने भी अपनी जमीन यहीं से निर्मित की थी, परंतु धूमिल का जनवाद और उनका युग यथार्थ सर्वथा भिन्न है

संकेताक्षर : *जनवाद, प्रगतिवाद, मार्क्सवाद, युगयथार्थ, डेमोक्रेसी।*

धूमिल जनवादी कवि थे। जनवादी कवि होने का अर्थ होता है सामान्य लोगों की समस्याओं के घटक तत्वों पर चोट करना। साठोत्तरी हिन्दी कवियों में धूमिल का नाम धारदार कवियों में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। इसका कारण है कि उन्होंने अपने समय के सच को कविता में सच्चाई और इमानदारी से अभिव्यक्त किया है। समस्याओं के प्रति चिन्ता व्यक्त की है। यह समस्या ही उनका युग यथार्थ है। इसे दूसरे शब्दों में इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि अपने समय की समस्याओं के साथ लड़ने वाला व्यक्ति ही जनवादी होता है। अतः संक्षेप में जनवाद ही अवधारणा को समझ लेना प्रासंगिक होगा।

'जनवाद' शब्द अंग्रेजी के डेमोक्रेसी शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। हिन्दी में इसके लिए प्रजातंत्र, जनतंत्र आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। मराठी भाषा में इसके लिए 'लोकशाही' शब्द का प्रयोग किया गया है। मूल डेमोक्रेसी शब्द ग्रीक शब्द के देमोस और क्रेटिन नामक दो शब्दों को मिलाकर बना है। 'देमोस' का अर्थ है जनता और 'क्रेटिन' धातु का शाब्दिक अर्थ है, शासन करना। इस प्रकार डेमोक्रेसी का अर्थ हुआ जनता का शासन, जिसमें जनता ही सत्ताधारी होती है।

'जनवाद' के मूल में स्थित 'जन' शब्द काफी पुराना एवं व्यापक अर्थ लिये हुए है। यह एक समूहवाची शब्द है। जन अर्थात् लोक, जनता, प्रजा, मनुष्य का समूह। यह किसी राष्ट्र या देश के लोगों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। भारतीय इतिहास में इस शब्द का प्रयोग काफी प्राचीन काल से होता आ रहा है। सरल शब्दों में धूमिल का युग यथार्थ देश की सामाजिक और राजनीतिक समस्या है। वह अपने आसपास की रोजमर्रा की समस्याओं और स्थितियों के प्रति जागरूक है। वह विवशता की चक्की में पिसते हुए मनुष्य के दुख को महसूस करता है जो अपनी तकलीफ का बयान भी ठीक ढंग से नहीं कर पाता–

ISSN 2277-5587

''भगर एक दिन मैं स्तब्ध रह गया।
मेरा सारा धीरज
युद्ध की आग से पिघलती हुई बर्फ में
ब्ह गया।
मैंने देखा कि मैदानों में
नदियों की जगह
मरे हुए साँपों की केंचुलें बिछी है
पेड़–
टूटे हुए रेंडार की तरह खड़े हैं
छूर–दूर तक
कोई मौसम नहीं है
लोग
घरों के भीतर नंगे हो गये हैं
और बाहर मुर्दे पड़े हैं[1]
ग ग ग
वन महोत्सव से लौटी हुई कार्य प्रणालियाँ
अकाल का लंगर चला रही हैं
जगह–जगह तख्तियाँ लटक रही हैं–
'यह भमशान है, यहाँ की तस्वीर लेना
सख्त मना है।''[2]
ग ग ग
मगर हर आदमी अपनी जरूरतों के आगे
असहाय था। उसमें
सारी चीजों को नये सिरे से बदलने की
बेचैनी थी, शेष था,
लेकिन उसका गुस्सा
एक तथ्यहीन मिश्रण था
आग और आँसू और हाय का''[3]

आजादी के पश्चात् भारत की स्थिति में बदलाव के लिए यहाँ की जनता टकटकी लगाकर देख रही थी किन्तु उसे कुछ नजर नहीं आ रहा था। कवि भारतीय जनता की इस बेचैनी को समझता है और काव्यात्क ढंग से व्यंजित करता है। 'पटकथा' में ऐसी स्थितियाँ हैं जो देश और जनता के हालात बयान करती है–

''मुझे लगा–आवाज
जैसे किसी जलते हुए कुएँ से
आ रही है।
एक अजीब–सी प्यार भरी गुर्राहट
जैसे कोई मादा भेड़िया
अपने छौने को दूध पिला रही है और
साथ ही किसी मेमने का सिर चबा रही है
मेरा सारा जिस्म थरथरा रहा था
उसकी आवाज में
असंख्य नरकों की घृणा भरी थी
वह एक–एक शब्द चबा– चबाकर
बोल रहा था, मगर उसकी आँख
गुस्से में भी हरी थी''[4]

यही है धूमिल का जनवाद और उनका युग यथार्थ। हिन्दी साहित्य कोश में जनवाद को कला साहित्य और जीवन के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण माना है। इस व्यापकता के अलावा कोश में जनवाद को मार्क्सवाद से विकसित माना है। कोश में कहा गया है कि, ''कला और साहित्य में जनवाद जिस अर्थ में प्रयुक्त होता है, उसके पीछे एक विशिष्ट दर्शन है। मार्क्स ने समाज और उसके विविध रूपों और विचारों की ऐतिहासिक व्याख्या की है, वे कला और साहित्य पर भी लागू होती है। साहित्य की जो मार्क्सवदी विवेचना हुई, उसी से जनवाद का प्रादुर्भाव हु।''[5]

जनवाद या जनवादी दृष्टि केवल मार्क्स और उसके विचारों से ही आयी है, ऐसा मानना असंगत लगता है और जिससे जनवाद का स्वरूप भी संकुचित होता हुआ दिखाई देता है। इतना अवश्य है कि जनवाद मार्क्सवादी विचारो से प्रेरणा ग्रहण करता है, और उसे अपना आधार भी बनाता है। यहाँ जनवाद का स्वरूप व्यापक है। जनवाद और मार्क्सवाद के बीच की विभाजन रेखा को समझना भी आवश्यक है। क्योंकि अब तक जनवाद को मार्क्सवाद या प्रगतिवादी आन्दोलन से निर्मित माना जाता रहा है किन्तु इन दोनों में सूक्ष्म पर स्पष्ट अंतर है। सुरेश सिंह इस संदर्भ में ठीक कहते हैं कि 'जनवाद में श्रमिक, मजदूर, किसान इसके आधार स्तम्भ है, किन्तु इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय, पूँजीपति, निम्न पूँजीपति, मध्यम वर्गीय व्यापारी, कवि, कलाकार एवं भाासक वर्ग इसी के अन्तर्गत आते हैं। ऊपर से दिखाई देते हुए भी इनके हित, इनके दृष्टिकोण अलग–अलग है। श्रमिक, मजदूर और किसानों की विचारधारा वामपंथी विचारधारा है। इसलिए जनवाद, मार्क्सवाद या वामपंथ नहीं है।''[6] मार्क्सवाद, मजदूर और किसानों की समग्र जीवन–प्रणाली को अत्यधिक महत्व देता है किन्तु पूँजीपति या व्यापारी वर्ग का कतई स्थान नहीं रहता।

प्राचीन भारत के इतिहास की ओर दृष्टि डाले तो जनवादी दृष्टि या जनतांत्रिक विचारधारा का उल्लेख एवं संदर्भ कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है जिसमें मौर्यकालीन अनेक गणतंत्रों या गणराज्य के स्वरूप को हम देख सकते है। इन गणराज्यों की व्यवस्था लोकहित

को ध्यान में रखकर चलायी जाती थी। जनहित को अत्यधिक महत्व दिया जाता था। राजा भले ही अधिकारों का उपयोग करता हो किन्तु जनता पर किसी भी प्रकार का अन्याय नहीं होता था। डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल ने 'प्राचीन काल के इस गणतंत्र या गणव्यवस्था को जनसत्ता या जनवादी राजसत्ता माना है।'[7]

भारतीय इतिहास की मध्यकालीन स्थितियों पर प्रकाश डालें तो मुस्लिम शासन व्यवस्था ने पूरे भारत पर अपनी पकड़ मजबूत कर ली थी जिससे तत्कालीन हिन्दू जनता पर अन्याय एवं अत्याचार हो रहा था। मुस्लिम बादशाहों के नीचे जो सामंत तथा मनसबदार थे वही सत्ता चलाते थे। जिसके कारण सामान्य जनता का जीवन–यापन करना बहुत मुश्किल था। इन सामंतों एवं जमींदारों की एक ऐसी व्यवस्था ही बनी थी कि जिसके नीचे जमीन को जोतने वाले किसान थे। ''सामंतवादी व्यवस्था में सबसे ऊपर राजा था, उसके दरबारी और सामंती जागीरदार और उनके बाद जमींदार, सबसे नीचे जमीन जोतने वाले किसान थे।''[8] ऐसी स्थितियों में इन शोषित किसानों के मन में, सामंतवादी व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह की भावना का प्रस्फुटन हुआ है। इसी विद्रोह ने जनवाद का रूप धारण किया है। इस तरह मध्यकाल में जनवाद का स्वरूप मध्यकालीन सामंतवादी व्यवस्था के विरोध में देखा जा सकता है जिसने सामंतवादी मान्यताओं, मूल्यों, रूढ़ि एवं परंपरा का कड़ा विरोध किया है।

आधुनिक काल में जनवादी भावना या जनवादी आन्दोलन का विकास पूँजीवादी और साम्राज्यवादी व्यवस्था के विरोध में हुआ है। एक ऐसी जनतांत्रिक व्यवस्था के रूप में जनवाद का विकास हुआ, जिसमें जनता ही सत्ताधारी होती है। जनता का समस्त विकास करना ही जिसका मूल लक्ष्य रहा है। अब्राह्म लिंकन ने जनवाद को स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया है। ''उन्होंने जनवाद को एक जनतांत्रिक व्यवस्था माना है। उन्होंने इस जनवादी व्यवस्था को जनता का, जनता के द्वारा, जनता के लिए बताया है।''[9] अब्राहम लिंकन ने जनवाद को एक व्यवस्था के रूप में स्वीकार कर इसके अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इस आधुनिक युग में जनवाद एक ऐसी शक्ति के संगठन के रूप में विकसित हुआ हैं, जिसमें जनता का समग्र दृष्टि से विकास करना ही मुख्य लक्ष्य रहा है जिसमें जनता स्वयं अपने विकास की योजनाएँ बनाती हैं और स्वयं ही समग्र व्यवस्था का संचालन करती है।

जनवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए कुंवरपाल सिंह कहते हैं कि ''जनवाद का वास्तविक अर्थ है साम्राज्यवादी, पूँजीवादी और व्यवस्था और उसके जीवन मूल्यों का सक्रिय विरोध, श्रमिक वर्ग और पीड़ित जन के साथ वास्तविक हमदर्दी, देशभक्त और क्रांतिकारी शक्तियों की एकता और उसके संकल्प का नाम है जनवाद।''[10] कुंवरपाल सिंह ने जनवाद की स्पष्ट और व्यापक परिभाषा देने का प्रयास किया है। इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि, जनवाद जनता की एकता का नाम है। जिसमें जन संगठित होकर व्यवस्था, साम्राज्यवादी शोषण का विरोध करते हुए समग्र जनता को शिक्षित करने का कार्य करती है।

भारत में जनवाद या जनतंत्र की स्थापना 15 अगस्त 1947 को हुई। इसमें प्रतिनिधियों के संगठन को समग्र जनता चुनकर देती है। ये जन प्रतिनिध समग्र जनता की इस जनवादी सत्ता को चलाते हैं। डॉ. इन्द्र बहादुर सिंह इसे एक जनवादी आन्दोलन के रूप में स्वीकार कर उसे यहाँ के समाज एवं समय की वास्तविकताओं से उपजा आन्दोलन मानते हैं। जनवादी आन्दोलन अपने देश की मिट्टी, अपने समय और समाज की वास्तविकताओं से उपजा आन्दोलन है। यह इतिहास की एक ऐसी जरूरत है जिसकी उपेक्षा करके साहित्य तथा संस्कृति को देश की असंख्या जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप नया मोड़ नहीं दिया जा सकता है।

भारत में स्थापित इस जनतंत्र में, जन प्रतिनिधि समग्र जनता का विकास करने के लिए प्रयत्नशील रहते है। जनतंत्र के स्वातंयिं, समता, बंधुत्व, न्याय, धर्मनिरपेक्षता आदि मूल्य एवं तत्व है। इसके अनुसार ही सभी जनप्रतिनिधि अपना कार्य करते हैं। इसे ही ध्यान में रखकर सीम्मी गुप्त जनवाद के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहती हैं कि 'जनवाद मनुष्य को मनुष्य के निकट लाता है। उसके इसी मिलन से संसार में शांति का वातावरण निर्मित होता है। भारत की इस जनवादी व्यवस्था में जन प्रतिनिधियों द्वारा जनता के समग्र विका का प्रयास किया जाता है। इसमें वह कहाँ तक सफल हुआ है यह दूसरी बात है किन्तु ऐसा करना अनिवार्य है। अंत मे यही कहना पड़ेगा कि जनवाद जनता के संगठन और एकता की शक्ति का नाम है जिसमें मनुष्य मात्र की महत्ता रहती है। यह एक बहुआयामी गतिशील जीवन दृष्टि है। जनवाद एकांगी

ISSN 2277-5587

नहीं बल्कि एक गतिशील बहुआयामी जीवन दृष्टि है जो विचारों की टकराहटों, से बनती है और समाज में सारे विविधतापूर्ण वैशिष्ट्य को समेटकर विकसित होती है।

वर्तमान समय में जनवाद का स्वरूप काफी व्यापक बना हुआ है किन्तु सच्चे अर्थो में जनवादी जनतंत्र की स्थापना नहीं हुई है क्योंकि इस वर्तमान समय में जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत के अनुसार पूँजीपति, कंपनी मालिक और जमींदार लोग अपने स्वार्थ को पूर्ण कर रहे हैं। आम जनता अभी भी इससे दूर प्रतीत होती है।

समस्त जनता की आशाओं और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का नाम ही जनवादी कविता है। इसमें जनता की आशाओं के साथ उनकी समस्याओं का भी यथार्थ अंकन किया जाता है। जनसामान्य के शोषण, दुःख, पीड़ा को जनवादी कविता अभिव्यक्ति देती है। इसका उदय भी अपने समय और समाज की वास्तविकताओं की अभिव्यक्ति के लिए हुआ है। अपने आसपास के परिवेश में व्याप्त विशमता, शोषण, भ्रश्टाचार, रूढ़ि परंपरा, मान्यताओं, अन्याय और अत्याचार को देख जनवादी कवि पीड़ा का अनुभव करता है, और यही उसकी आंतरिक पीड़ा एवं वेदना, कविता का रूप धारण करती है। जिसमें वह शोषित एवं दमनकारी व्यवस्था का विरोध कर जनता को इस व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए प्रेरणा एवं उत्साह देता है। इस कविता में समस्त जनता को अपने जनवादी अधिकारों से सचेत कर सच्चे अर्थों में जनता के जनवादी जनतंत्र की कामना होती है।

जनवादी कविता तथा जनवादी साहित्य के अर्थ एवं स्वरूप के संबंध में काफी मतभेद दिखाई देते हैं क्योंकि इसे काव्य की केन्द्रीय प्रवृति न मानकर प्रगतिवादी आन्दोलन से निर्मित माना गया है। हिंदी साहित्य कोश में भी इसे मार्क्सवादी विचारधारा से विकसित माना गया है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि जनवादी कविता प्रगतिवाद या मार्क्सवादी विचारों से प्रेरणा अवश्य ग्रहण करती है किन्तु इसका प्रादुर्भाव केवल मार्क्सवादी विचारों से नहीं हुआ है। इस कविता का उदय एवं विकास अपने समय और समाज की सच्चाई को व्यक्त करने के लिए हुआ है। जनवादी कविता का स्वरूप यहाँ की स्थितियों के अनुरूप बदलता रहा। हर समय इस कविता ने जनता के शोषण, अन्याय, अत्याचार का विराध किया है। इन्द्र बहादुर सिंह जनवादी कविता के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते है कि ‘‘जनवादी कविता इस जनता की जिंदगी को उसकी समरसता से प्रस्तुत करती हैं कि ‘‘जनवादी कविता इस जनता की जिंदगी को उसकी समरसता से प्रस्तुत करती है और अपने इसी व्यापक जनाधार के कारण किसी भी समय तथा किसी भी युग में शासक–शोषक वर्ग के समक्ष चुनौती के रूप में प्रस्तुत होती है।’’[11]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, डॉ. कैलाश वाजपेयी, पृ.–19*
2. *जनवादी कविता : संवेदना और शिल्प, संरेश सिंह, पृ.–170*
3. *हिन्दी की जनवादी कविता, डॉ. वशिष्ट अनुप, पृ.–150*
4. *इंद्रप्रस्थ भारती–अंक–1, वर्ष–3, जनवरी–मार्च 1990, संपादक कुंवरपाल सिंह*
5. *जनवादी कविता : संवेदना और शिल्प, संरेश सिंह, पृ.–170*
6. *समकालीन कविता : वैचारिक आयाम, बलदेव वंशी, पृ.–30*
7. *संसद से सड़क तक, धूलिक, पृ.–91*
8. *धूमिल : काव्य यात्रा, मंजु अग्रवाल, पृ.–147*
9. *हिन्दी के प्रमुख कवि : रचना और शिल्प, अरविंद पांडे, पृ.–241*
10. *साठोत्तरी हिन्दी कविता में जनवादी चेतना, नरेन्द्र सिंह, पृ.–263*
11. *आधुनिक हिन्दी काव्य–भाषा, नरेन्द्र सिंह, पृ.–194*

जनमाध्यम के रूप में आकाशवाणी की भूमिका

हर्षवर्धन पाण्डे
शोधार्थी, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारत जैसे विशाल देश में सूचना तकनीक के इस दौर में भी आज एक बड़ी आबादी इंटरनेट सेवाओं से बहुत दूर है, ऐसी जगह आकाशवाणी की पहुँच सुकून देने का काम करती है। आकाशवाणी का सारा ताना बाना जहाँ सामाजिक सरोकारों के इर्द गिर्द बुना हुआ है, वहीं राष्ट्रीय एकता के विकास में इसकी मूल अवधारणा केन्द्रित रही है। आकाशवाणी ने मनोरंजन के मर्म को छूते हुए सामाजिक सरोकारों से खुद को जोड़ने में सफलता भी पाई है और सार्वजनिक हितों को सर्वोपरि रखते हुए उच्च प्रतिमान स्थापित किए हैं। आकाशवाणी के कार्यक्रमों में क्षेत्रीय कार्यक्रमों की प्रधानता के साथ ही सूचना, शिक्षा, सांस्कृतिक, कलात्मक पक्ष का बेहतर समन्वय देखने को मिलता है। आकाशवाणी ने मनोरंजन, स्वास्थ्य, शिक्षा, सूचना जैसे क्षेत्रों में कारगर पहल की है और भारतीय संस्कृति को नए आयाम भी दिए हैं। आकाशवाणी ही है जिसने लोकसंस्कृति को बढ़ावा दिया और सामाजिक बुराइयों के खिलाफ एक सकारात्मक माहौल पूरे देश में बनाया है। आकाशवाणी की महत्ता इसलिए भी अधिक है कि दूर-दराज इलाकों में जहां आज भी संसाधनों की पहुंच नहीं है वहां भी पहुँच के बेहतर माध्यम में रेडियो उपलब्ध है।

संकेताक्षर : *आकाशवाणी, राष्ट्रीय एकता, प्रसारण, सरोकार, जनमाध्यम।*

हमारे देश में मीडिया और समाज का अटूट रिश्ता रहा है। आज हम जिस लोकतान्त्रिक प्रणाली में जी रहे हैं, वहां समाज के प्रति मीडिया की जवाबदेही भी इधर कुछ अधिक ही बढ़ी है, शायद यही वजह है मीडिया को समाज का आईना कहा जाता है। जनसंचार विशेषज्ञ विल्बर श्राम का भी कहना है कि प्रभावी जनसंचार माध्यम किसी भी देश के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतएंव मुक्त सूचनाएं उपलब्ध कराना ही जनसंचार माध्यमों का ध्येय नहीं है बल्कि इच्छित सामाजिक परिवर्तन अंतिम लक्ष्य है।

रेडियो ऐसा जनसंचार का साधन है जिसके माध्यम से व्यापक जनसमुदाय तक एक साथ सन्देश पहुंचाया जा सकता है। रेडियो विद्युत उर्जा के द्वारा ध्वनि तरंगों को काफी दूर तक भेजता है और इन ध्वनि तरंगों को भेजने में इतना कम समय लगता है कि काल बोध की दृष्टि से इसे शून्य कहा जा सकता है अर्थात किसी रेडियो स्टेशन से जिस समय सन्देश प्रसारित होता है ठीक उसी समय वह हजारों मील दूर बैठे उसे अपने रेडियो सेट पर सुन सकते हैं। रेडियो एक आम व्यक्ति की जिन्दगी का हिस्सा बन चुका है। रेडियो में आज मनोरंजन है, जानकारी है तथा वह सब कुछ है जो एक जिज्ञासु श्रोता के लिए किसी भी तरह लाभदायक हो सकता है। टेलीफोन के बाद रेडियो के आविष्कार ने संचार की प्रक्रिया को दूरस्थ स्थानों तक सम्भव बना कर, मनुष्य समाज को परस्पर जोड़ा। वास्तव में रेडियो ऐसा जनसंचार का साधन है जिसके माध्यम से व्यापक जनसमुदाय तक एक साथ सन्देश पहुंचाया जा सकता है। निरक्षर लोग भी इस जन माध्यम से रुचिपूर्वक सन्देश ग्रहण कर सकते हैं। एक साथ बैठकर मनोरंजनपूर्वक कार्यक्रम सुन सकते हैं, देश विदेश के समाचार सुन सकते हैं, उन पर बैठकर बातचीत कर सकते हैं, घटनाओं का विश्लेषण कर सकते हैं, नई जानकारियां पा सकते हैं।

हमारे देश में अनेक गाँव ऐसे हैं जो अत्यंत दुर्गम इलाकों में बसे हुए हैं। ऐसे स्थानों पर बसे लोगों के लिए रेडियो प्रसारण एक बहुत बड़ी दुनिया में खुलने वाली खिड़की है जहाँ से शब्द चित्रों के माध्यम से हर चीज का खाका इनके

सामने बनता है। इस अर्थ में रेडियो को लोकप्रसारण का माध्यम कहा जा सकता है। लोक प्रसारण माध्यम के लिए यह जरूरी है कि वह अधिकांश लोगों के लिए उपलब्ध हो, साथ ही विकेन्द्रीकरण की सुविधा हो। लोक माध्यम के लिए यह जरूरी है कि वह बहुत महंगा नहीं हो। कार्यक्रम निर्माण सरल और सस्ता हो। कम खर्चीला होने के चलते इसे बाजार की शक्तियों के प्रभाव से बचाया जा सकता है। लोगों की आवश्यकताओं के अनुरूप प्रसारण के लिए यह जरूरी है कि जिस वर्ग के प्रसारण हो रहा है उसे संपर्क और इंटरेक्शन की सुविधा होनी चाहिए। रेडियो प्रसारण में पत्रों, ध्वनि के माध्यम से श्रोता से सीधे संपर्क का प्रयास हो रहा है। अब फोन इन जैसी तकनीकों के आने से सीधे प्रसारण से जुड़ गया है।

लोकप्रसारण के मुख्य उद्देश्य है सामुदायिक जनकल्याण के अनुरुप प्रसारण करना। यह प्रसारण केवल व्यावसायिक आवश्यकताओं के अनुसार नहीं चलता। प्राकृतिक आपदा के समय ऐसे माध्यमों की भूमिका बड़ी हो जाती है क्योंकि रेडियो के माध्यम से उपयोगी सूचना का प्रसारण होता है। साथ ही यह सामाजिक और आर्थिक विकास की जरूरतों के अनुरूप प्रसरण करता है। आधुनिक युग में रेडियो जनसंचार का सशक्त माध्यम है। एक जनमाध्यम के रूप में इसकी महत्ता उन क्षेत्रों में भी अधिक हो चली है, जहां बिजली की पहुंच और पर्याप्त उपलब्धता नहीं है। सस्ता होने के कारण आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों का भी रेडियो इकलौता संचार माध्यम है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने जनमाध्यम के रूप में रेडियो की ताकत को काफी पहले पहचान लिया था तथा रेडियो को 'अद्‌भुद शक्ति' कहकर सम्बोधित किया था।सन् 1947 में रेडियो प्रसारण केंद्र पर जाकर अपने उद्‌बोधन में उन्होंने कहा था कि– मैं रेडियो में एक शक्ति के रूप में देखता हूं। यह इकलौता माध्यम है, जिसे अपना काम–काज करते हुए भी सुना जा सकता है। रेडियो पर साहित्य, कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, समाज, युवा, विश्वविद्यालय, पत्रकारिता, इतिहास, खेलकूद, महिला कल्याण, समाज सुधार इत्यादि से सम्बन्धित कार्यक्रमों (साक्षात्कार, विचारगोष्ठी, काव्यपाठ, नाटक, रूपक, न्यूजरील, रेडियो रपट इत्यादि) का प्रसारण होता है।

लोकप्रसारण माध्यम के रूप में आकाशवाणी अपने देश में महत्वपूर्ण रहा है। भारत एक बड़े विस्तृत भूभाग में फैला हुआ है। यहाँ भौगौलिक विविधता पर्याप्त है। खान पान, भाषा, पहनावा, रहन सहन, पर्व, त्यौहार में विविधता है। रेडियो ने अपने प्रसारण माध्यम की इस विविधता को बनाये रखने तथा सभी को आपस में जोड़ने का काम किया है। हमारे देश के कई गाँव दुर्गम इलाकों में हैं जहाँ सड़कों की पहुंच आजादी के कई बरसों के बाद भी नहीं है। बरसात में इन इलाकों का संपर्क देश दुनिया से कट जाता है। ऐसे में रेडियो ही एक माध्यम है जो इन्हें बाहरी दुनिया से जोड़े रखता है।

अपने देश की बात की जाए तो आकाशवाणी कई बरस से इस कार्य को न केवल बखूबी अंजाम दे रहा है, बल्कि पूरे राष्ट्र को जोड़ने में इसने सफलता कायम की है। आकाशवाणी का सारा ताना बाना जहाँ सामाजिक सरोकारों के इर्द गिर्द बुना हुआ है, वहीं राष्ट्रीय एकता के विकास में इसकी मूल अवधारणा केन्द्रित रही है। आकाशवाणी ने मनोरंजन के मर्म को छूते हुए सामाजिक सरोकारों से खुद को जोड़ने में सफलता भी पाई है और सार्वजनिक हितों को सर्वोपरि रखते हुए उच्च प्रतिमान स्थापित किए हैं। मुख्य रूप से किसी लोकसेवी रेडियो सेवा के तीन उद्देश्य होते हैं। जरूरी सूचना देना, लोकशिक्षण और मनोरंजन। आकाशवाणी का ध्येय है बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय। स्वतंत्र भारत में आकाशवाणी ने राष्ट्रीय आकांक्षाओं के अनुरूप जो नीति बनायी उसके केंद्र में समाज में शिक्षा, जाग्रति और संकल्प की भावना जगाना, विकास के लिए लोगों को सहभागी बनाना और उत्साहित करना रहा है। साथ ही देश की सांस्कृतिक विविधता को सहेजकर राष्ट्रीय एकता का विकास करना शामिल है। सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षण के साथ ही नए कलाकारों को प्रकाश में लाने के साथ ही राष्ट्रीय चिंतन में सामंजस्यता पैदा करना है। भारत की शास्त्रीय संगीत की जो परंपरा बिखरी जा रही थी उसे आकाशवाणी ने नया जीवन दिया । लोक संगीत की सभी विधाओं का प्रसार किया। वाद्य यन्त्र जैसी नई शैली का विकास किया।

भारत में रेडियो प्रसारण का श्रीगणेश जून 1923 में हुआ जब बम्बई क्लब ने अपने कार्यक्रम प्रसारित किये। कलकत्ता रेडियो क्लब द्वारा नवम्बर 1923 में कार्यक्रमों का प्रसारण किया गया लेकिन सुव्यवस्थित रूप से नियमित प्रसारण का प्रयास मद्रास रेडियो क्लब द्वारा 31 जुलाई 1924 में किया गया। व्यवसायिक स्तर पर पहला प्रसारण इंडियन ब्राडकास्टिंग कंपनी के बम्बई केंद्र से 23 जुलाई 1927, दूसरा कलकत्ता में

महीने भर बाद 26 अगस्त 1927 को शुरू हुआ जिसका उदघाटन भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड इरविन ने किया था। सन 1927 में भारतीय प्रसारण ने क्लबों और शौकिया गतिविधियों से निकलकर निजी क्षेत्र में व्यवसायिक प्रसारण के दौर में प्रवेश किया। 1 मार्च 1930 को ये कंपनी बंद हो गई और इसी के साथ आने वाले कई दशकों के लिए रेडियो के निजी क्षेत्र का पटाक्षेप हो गया। इंडियन ब्राडकास्टिंग कंपनी पर ताला लग जाने के बाद सरकार सामने आ गई। प्रसारण चालू रखने के लिए उस दौर में सरकार को लोगों की तरफ से कई ज्ञापन मिलने लगे। सरकार ने कलकत्ता और बम्बई के स्टेशनों का अधिग्रहण कर लिया और कंपनी का नाम बदलकर भारतीय प्रसारण सेवा रख दिया और इन सबके बीच 10 अक्टूबर 1931 को सरकार ने घोषणा करते हुए कहा आर्थिक मंदी की वजह से रेडियो प्रसारण सेवा जारी नहीं रखी जा सकती। सरकार के इस फैसले पर लोगों में भारी नाराजगी देखी गयी और खासकर बंगाल में छोटे छोटे आन्दोलनों का दौर भी खूब चला। अंततः सरकार ने अपना निर्णय 23 नवम्बर, 1931 को वापस ले लिया और यह सुनिश्चित हो गया कि भारत में प्रसारण कार्य सरकार की जिम्मेदारी है ।

1935 में जिस इंडियन ब्राडकास्टिंग सर्विस को आल इंडिया रेडियो (एआईआर) नाम दिया गया । 1957 में बदलकर उसे आकाशवाणी कर दिया गया। आजादी की लड़ाई में रेडियो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। 24 अगस्त, 1942 को नेशनल कांग्रेस स्टूडियो का प्रसारण शुरू किया गया जिससे देश के कोने–कोने में जनता तक खबरों को पहुंचाने और जन आंदोलन जागृत करने का बहुत बड़ा श्रेय रेडियो को जाता है। रेडियो के इतिहास में एक महत्वपूर्ण दिन और दर्ज हुआ जब नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने रेडियो जर्मनी से नवंबर 1941 को भारतीयों के नाम संदेश दिया था, 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा'। आकाशवाणी ने देश में लोकतंत्र की जड़ों को न केवल सींचा है बल्कि संविधान के मूल ध्येय डेमोक्रटिक, सेक्युलर और सोशलिस्ट को भी साकार किया है। अगर कहा जाए भारत में आकाशवाणी सरीखी संस्था भारतीय संविधान के इन्हीं मूल उद्द्येश्यों की प्राप्ति के लिए बनी है तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होनी चाहिए। जिस प्रकार रेलवे में इंसान जाति, भाषा, धर्म देखने के बजाए अपनी सीट सबसे पहले देखता है उसी तरह आकाशवाणी संस्था ने भी जाति, भाषा और धर्म से इतर 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' को अपना आदर्श बनाया है। आकाशवाणी के कार्यक्रमों में जाति, भाषा और धर्म से इतर पूरे देश को एक राष्ट्र के रूप में देखा जाता है और इसी राष्ट्रीय भावना के विकास में यह अपना योगदान दशकों से दे रही है। दूरदर्शन के विकास के साथ ही यह आशंका व्यक्त की गई कि आकाशवाणी की पकड़ भारतीय जनमानस में कमजोर पड़ेगी लेकिन ऐसा हुआ नहीं। हाँ, यह जरूर रहा समय के साथ आकाशवाणी में बदलाव आ गए जिससे इसकी उपादेयता हमारे देश में बढ़ गई। इसने समाज के बीच जाति, धर्म से ऊपर उठकर सामाजिक सरोकारों को मुखरता प्रदान की वहीँ राष्ट्रीय एकता को व्यापकता प्रदान की। जनमत को भी जन के बीच बड़े सलीके से पहुंचाने का काम इसने शुरू किया।

आकाशवाणी के कार्यक्रमों में क्षेत्रीय कार्यक्रमों की प्रधानता के साथ ही सूचना, शिक्षा, सांस्कृतिक, कलात्मक पक्ष का बेहतर समन्वय देखने को मिलता है। प्राचीन समय से आज तक आकाशवाणी का प्रयोग खबरों और मनोरंजन के लिए किया जाता रहा है। रेडियो को हमेशा सूचना के बेहतर माध्यम के रूप में सबसे पहले देखा जाता है। आकाशवाणी की प्रसारण सेवा सुबह से शुरू होकर रात तक चलती रहती है। प्रभातसेवा की शुरुवात ईश वंदना से होती है। इसमें ईश्वर का नाम नहीं लिया जाता लेकिन उसे हर धर्म का आदमी तल्लीनता से सुनता है। विश्वसनीय सूचनाओं के लिए लोगों में इसकी निर्भरता बढ़ी है। अपनी कई बरस की विकास यात्रा के दरमियान आकाशवाणी ने मनोरंजन, स्वास्थ्य, शिक्षा, सूचना जैसे क्षेत्रों में कारगर पहल की है और भारतीय संस्कृति को नए आयाम भी दिए हैं। आकाशवाणी ही है जिसने लोकसंस्कृति को बढ़ावा दिया और सामाजिक बुराइयों के खिलाफ एक सकारात्मक माहौल पूरे देश में बनाया। सरकारी नीतियों को जन– जन तक पहुँचाने के साथ ही इसने विकास से सम्बन्धित कई कार्यक्रमों को पेश कर नई अलख आम जन के बीच जगाई। जनमाध्यम के रूप में प्रचलित रेडियो एक श्रव्य माध्यम हैं, जिस पर प्रसारित कार्यक्रमों को सुनकर, केवल सुनकर ग्रहण किया जा सकता है। इसके शब्द सहज एवं सर्वग्राह्य होते हैं। शब्दों की महत्ता से ही किसी घटना को जीवन्त बनाया जाता है। रेडियो पर प्रसारित शब्द ही श्रोताओं के मस्तिष्क में घटना की छवि को अंकित करते हैं। इन शब्दों में जादू करने की क्षमता होती है, जिसे सुनने के बाद श्रोता सम्मोहित हो जाते हैं। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में रेडियो एक जनमाध्यम के रूप में देश की सभी छोटी–बड़ी

ISSN 2277-5587

समस्याओं, स्वप्नों, सच्चाइयों और चुनौतियों को सटीक स्वर देकर प्रस्तुत करता है, जिसमें शासकों की नीति तथा शासितों की नियति बदल जाती है। रेडियो पर प्रसारित कृषि व बागवानी सम्बन्धी कार्यक्रमों के प्रसारण से किसानों व बागवानों को अपनी आर्थिक स्थिति में अर्थप्रद बदलाव देने में कामयाबी मिली है। सन् 1997 से रेडियो प्रसारण पर भारत सरकार का नहीं, बल्कि 'प्रसार भारती' नामक स्वायत्तशासी निकाय का नियंत्रण है।

इस प्रकार, रेडियो सामाजिक परिवर्तन व व्यक्ति उत्थान में प्रेरक की भूमिका निभाता है। एक जनमाध्यम के रूप में राष्ट्रीय एकता, भावनात्मक एकता तथा पारस्परिक सद्भाव को बनाये रखने में भी रेडियो का विशेष योगदान है। इसके माध्यम से भारतीय समाज में परिवार नियोजन सम्बन्धी कार्यक्रमों का प्रचार-प्रसार कर जनसंख्या नियंत्रण तथा परिवार कल्याण को गतिमान बनाने में भारत सरकार को सहायता मिली है।

देश में हरित क्रांति में रेडियो के ग्रामीण प्रसारण की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। वास्तव में हरित क्रांति के दौर में अनेक केन्द्रों से ग्रामीण प्रसारण इसी उद्देश्य से शुरू किये गए थे। कृषि विशेषज्ञों से बड़ी संख्या में कृषकों के इंटरेक्शन का यही माध्यम रहे हैं। ग्रामीण कार्यक्रमों के माध्यम से स्वास्थ्य, पोषाहार, परिवार कल्याण, सामान्य बीमारियों के उपचार, ग्रामीण विकास योजनाओं आदि के विषय में विभिन्न तरह के लघु उद्योगों, ऋण योजनाओं के विषय में जानकारी मिलती है जो कहीं न कहीं रेडियो के बिना संभव नहीं है। यह ग्रामीण विकास में लगे संगठनों के लिए महत्वपूर्ण सहयोगी की भूमिका अदा करता है। रेडियो से जनमंच जैसे कार्यक्रम प्रसारित होते हैं जहाँ जनप्रतिनिधियों और लोकसेवकों को आमंत्रित किया जाता है। इन कार्यक्रमों के माध्यम से आम व्यक्ति को अपनी समस्याओं को सीधे लोगों के समक्ष उठाने का अवसर मिलता है। सार्वजनिक हित की अनेक तरह की सूचनाएं नियमित रेडियो प्रसारण का हिस्सा हैं। इनमें रेल से सम्बन्धित सूचनाएं, कृषि उत्पाद के बाजार भाव, मौसम सम्बन्धी सूचनाएं आदि आते हैं। प्राकृतिक आपदाओं के समय रेडियो प्रसारण लोगों के लिए तुरंत सूचना का एकमात्र माध्यम होता है। आज के व्यावसायिकताओं के दौर में माध्यमों का आर्थिक पक्ष भी महत्वपूर्ण हो गया है परन्तु राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में संचार माध्यमों की योजना में लोक प्रसारण माध्यम के रूप में रेडियो की अहम भूमिका को महत्त्व दिया जाना चाहिए।

स्वतंत्रता के बाद भारत में उद्योगों का तेजी से विकास हुआ जिसमें आकाशवाणी का स्वरुप भी निखरने लगा। गांधीजी की हत्या, नेहरु से लेकर शास्त्री के संबोधन, चीन पाक से भारत का युद्ध, शास्त्री जी का जय जवान जय किसान का नारा, भीषण अकाल के मद्देनजर हफ्ते में एक दिन अन्न परित्याग करने की अपील, बांग्लादेश का गठन, आपातकाल और उसके बाद जनता पार्टी के गठन, इंदिरा का जेल जाना, मध्यावधि चुनावों में फिर से उनके वापस आने, आपरेशन ब्लू स्टार, इंदिरा गाँधी की हत्या, उनकी अंतिम यात्रा में उमड़ा सैलाब, बाबरी विध्वंस जैसी बड़ी घटनाओं को देश के जनमानस ने आकाशवाणी के माध्यम से ही जाना। देश में टेलीविजन प्रसारण की विधिवत शुरुवात तक लोग खबरों के लिए पूरी तरह आकाशवाणी पर ही निर्भर थे। इसका बड़ा कारण आकाशवाणी ही सम्प्रेषण कला रही जिसमें शब्दों के माध्यम से ऐसा बिम्ब पैदा किया जाता था कि अनपढ़ व्यक्ति भी रेडियो की खबरों पर आँख बंद कर यकीन करता था ।

भारत जैसे देश में जहाँ विविधता में एकता के दर्शन होते हैं वहां की विभिन्न भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थिति में जीवन व्यतीत करने वाले असंख्य श्रोताओं का सच्चा साथी आकाशवाणी ही हुआ करती थी । आकाशवाणी ने भारतीय जनमानस को गहराई से प्रभावित किया परन्तु अस्सी के दशक में टेलीविजन के आने के बाद नब्बे के दशक की केबल क्रांति ने इसके क्रेज को घटा दिया लेकिन मोबाइल क्रांति ने रेडियो को नया जीवन दे दिया। टेलीविजन और केबल के आने के बाद भले ही शहरी इलाकों में रेडियो की पूछ परख कम हुई लेकिन ग्रामीण इलाकों में आकाशवाणी की लोकप्रियता में कमी नहीं आई। आज भी लोगों तक सीधी पहुँच के मामले में आकाशवाणी मीलों आगे है और यह देश की 99 फीसदी आबादी तक पहुँच रखती है। रेडियो समुदायों को उनके सामजिक, आर्थिक, नैतिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक मांगों को फिर से स्थापित करने में इसकी भूमिका सराहनीय है। ग्रामीण इलाकों में रेडियो समुदायों को उनके सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक, वातावरण को प्रभावित करने वाले एक संवाद और निर्णय में लोगों को हिस्सेदारी की शक्ति प्रदान करता है। यह एक व्यापक, किफायती और लोकप्रिय संचार साधन है जो सामाजिक जागरूकता बढ़ाने, स्थानीय समुदाय को एकजुटता के लिए प्रेरित करता है। ग्रामीण समुदाय की राय जानने, उनकी

जरूरतों को समझने और नवजीवन की उम्मीदों के लिए ये हर किसी को मंच प्रदान करता है। रेडियो की अपनी अनूठी विशेषता है। इसकी पहुँच ड्राइंग रूम तक ही सीमित नहीं है, बल्कि रसोई घर, कार, स्टडी टेबल, खेत बस, ट्रक, ढाबे, स्कूल, पंचायत और युवाओं की जेब तक सूचना, शिक्षा, मनोरंजन, प्रेरणा और मार्गदर्शन पहुँचाने का सबसे सरल, सस्ता और तीव्र माध्यम है।

आजादी से पहले के दौर को याद करें तो आकाशवाणी माध्यम ने जनता के बीच अपनी अलग छाप छोड़ी। लोग अपने आस पास के जानकारी लेने और संगीत के लिए इस माध्यम पर निर्भर होते चले गये वहीँ आजादी के बाद कई योजनाओं के प्रचार प्रसार से लेकर जनता तक अपनी बात पहुंचाने के लिए सरकारों ने इस माध्यम का बखूबी सहारा लिया। सामाजिक समरसता, साहित्य, कला, शिक्षा और संस्कृति से लेकर नृत्य, गायन आदि के विकास में इस माध्यम ने सक्रिय सहयोग देते हुए प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया। राष्ट्रीयता की भावना जगाने से लेकर सांप्रदायिक सौहार्द कायम रखने, राष्ट्रीय एकता के विकास में आकशवाणी ने अहम भूमिका निभाई है। इसने भारत के संघीय ढांचे को ध्यान में रखते हुए न केवल प्रांतीय प्रसारण सेवाओं को समय दिया बल्कि भारतीय संविधान की मूल आत्मा को भी आत्मसात किया है। आकाशवाणी ने राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करने और सांप्रदायिक सौहार्द को कायम रखने में अद्‌भुद भूमिका निभाई है । सर्वधर्म समभाव पर बल देते हुए इसने पूरे देश को एक नजर से देखते हुए मिसाल कायम की। यह आकाशवाणी की लोगों को एकजुट करने की ताकत ही रही, कि इसने संविधान की मूल आत्मा को कभी ठेस नहीं पहुंचाने दी। भारत के संघीय ढांचे के मद्देनजर इसने प्रांतीय सेवाओं को भी विस्तार देते हुए सराहनीय भूमिका निभाई है।

सूचना क्रांति के इस युग में टेलीविजन और इन्टरनेट जैसे संचार साधनों में वृद्धि के बावजूद आकाशवाणी की महत्ता और प्रासंगिकता आज भी कायम है। आजादी के बाद के वर्षो में देश के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विकास में आकाशवाणी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आज हमारे देश में भाषा, मजहब, साम्प्रदायिकता के नाम की खाई जिस तरह चौड़ी हो रही है उसे पाटने के लिए एक सूत्र में बांधने में आज भी आकाशवाणी कारगर साबित हो सकती है। आकाशवाणी ने अपने प्रसारणों से जहाँ लोगों को जागरूक बनाया वहीं शोषण, उत्पीड़न से उबारने के साथ ही लैंगिक भेदभाव को मिटाने में भी कन्धे से कन्धा मिलाया। आकाशवाणी का सबसे उज्जवल पक्ष यह रहा कि यह माध्यम बाजारवाद से उस तरह प्रभावित नहीं हुआ जैसा हाल के वर्षो में अन्य संचार माध्यम हुए हैं। आकाशवाणी ने अर्थोपार्जन के लिए कभी भी गुणवत्ता से समझौता नहीं किया और अपनी आचार संहिता के तहत एक नई लकीर खींचकर अपने स्वरुप को मर्यादित रखा जिसमें राष्ट्रीय सौहार्द और सदभाव को प्राथमिकता देते हुए सबको जोड़ने का बेहतर काम किया गया जिससे इसकी साख और विश्वसनीयता आज भी बरकरार है शायद यही वजह है आकाशवाणी को कोई नकार नहीं सका और देखते ही देखते पूरे राष्ट्र को इसने जोड़ने का काम बखूबी किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *सिंह, डॉ देवव्रत, भारतीय इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली*
2. *सिंह, ओमप्रकाश, संचार माध्यमों का प्रभाव, क्लासिकल पब्लिकेशन, नई दिल्ली*
3. *द्विवेदी, मनीषा और शर्मा, शशिप्रभा, रेडियो पत्रकारिता एवं प्रसारण के सिद्धांत, कनिष्क पब्लिशेर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स*
4. *हरिमोहन, रेडियो पत्रकारिता, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली*
5. *आकाशवाणी की मस्त मौली चाल का सुरीला सफर, www.dailyhunt.in*
6. *सिंह, डॉ महावीर, भारत में जनसंचार संवाद, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार*
7. *योजना, भारत सरकार के प्रकाशन*
8. *जनमाध्यम के रूप में रेडियो का विकास, http://bjmc120406.blogspot.com*
9. *शर्मा, कौशल, रेडियो प्रसारण, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली*
10. *चटर्जी, पी सी, ब्राडकास्टिंग इन इंडिया*
11. *गुप्ता, बृजमोहन, जनसंचार के विविध आयाम*
12. *कुप्पुस्वामी, वी, कम्युनिकेशन एंड सोशल डेवलपमेंट इन इंडिया, स्टर्निंग पब्लिकेशन*
13. www.allindiaradio.gov.in

    इन्टरनेट

ISSN 2277-5587

गीतावली में गोस्वामी तुलसीदास की सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टि

डॉ. अरुण कुमार मिश्रा

सहायक प्राध्यापक, दण्डिस्वामिसहजानन्द संत विनोबा महाविद्यालय, सिमरी, बक्सर (बिहार)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी रचना गीतावली में राम कथा के माध्यम से अपने सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है । वे गीतावली में राम का चरित्र एक ऐसे आदर्श पुत्र के रूप में चित्रित किए हैं जो पिता के एक आदेश पर अयोध्या का पूरा साम्राज्य छोड़कर वन में चले जाते हैं साथ ही राम को एक ऐसे राजा के रूप में भी प्रस्तुत किए हैं जो लोकमत और व्यक्तिगत आदर्श दोनों का ध्यान रखते हैं । वे दशरथ का चरित्र संतो का आदर करने वाले राजा और अपने पुत्र से अगाध प्रेम करने वाले पिता के रूप में प्रस्तुत किए हैं । वह जनक को महात्मा एवं अतिथि का आदर सत्कार करने वाले के रूप में प्रस्तुत करते हैं । सीता को एक आदर्श पत्नी के रूप में प्रस्तुत करते हैं जो पति के सुख–दुख में बराबर साथ रहना चाहती है। सीता पतिव्रत धर्म की साक्षात मूर्ति है। लक्ष्मण भाई की सेवा में तत्पर अनुज है। भरत ऐसे भाई हैं जो अयोध्या में रहकर भी वनवास वाली जिंदगी जी रहे हैं । माता द्वारा किए गए अपराध के लिए स्वयं को पापी समझते हैं । इन चरित्रों के माध्यम से गोस्वामी जी ने एक आदर्श प्रस्तुत किया है ।

संकेताक्षर : *गोस्वामी तुलसीदास, गीतावली, सामाजिक संस्कृति, राम कथा, साधना।*

हिंदी साहित्य का मध्य काल भारतीय संस्कृति की विकास परंपरा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। मध्यकाल के अंतर्गत आने वाले भक्ति काल में उदात्त काव्यों का सृजन हुआ। भक्तिकालीन काव्यों में भारतीय धर्म, साधना एवं संस्कृति का सर्वश्रेष्ठ वर्णन हुआ है। इस काल में भाव, भाषा, साहित्य, धर्म, साधना और संस्कृति में नए प्रयोग भी किए गए। इस काल में संतों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज को एक नई दिशा देने का प्रयास किया। इन संतों में गोस्वामी तुलसीदास का स्थान सर्वोपरि है। उन्होंने राम कथा के माध्यम से माता, पिता, भाई, पति, पत्नी, गुरु, राजा, आदि का आदर्श चरित्र प्रस्तुत किया है।

गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं को पढ़ने पर उसमें भारतीय संस्कृति की झलक साफ दिखाई देती है। उन्होंने अपनी रचनाओं में अपना विचार प्रेषित किया है। गोस्वामी जी वैष्णव संप्रदाय के थे परंतु भारतीय संस्कृति को नवीन एवं विकासशील रूप प्रदान करने के लिए शैव एवं अन्य संप्रदायों से सारतत्व लेकर एक सम्यक विचार प्रस्तुत किए ।

गोस्वामी जी ने अपनी रचना गीतावली में आदर्श रामराज्य का वर्णन किया है। गीतावली के राम जनमत का सहारा लेते हैं पर अपने व्यक्तिगत आदर्श को भी बनाए रखते हैं। इसका स्पष्ट वर्णन करते हुए वे लिखते है श्रीरामचंद्रजी ने अपने चरों से गुप्त समाचार की बातें की। दूतों के मुख से लोकमत को जानकर अपने महल में आ सीताजी से पूछा – प्राण प्रिये! अपनी अभिरुचि बतलाओ। तब सीताजी सकुचा कर बोली कि मैं वन में जाकर स्त्री और बालकों के सहित तपस्वियों का पूजन करना चाहती हूँ। तब करुणा सागर भगवान ने होनहार के वश सारी सहायता उपस्थित देख धैर्य धारण कर सवेरा होते ही लक्ष्मण जी को बुलाया और कहा कि भैया तुम इसी समय रथ सजाकर उस पर सीताजी को बिठाकर वाल्मीकि मुनि के आश्रम पर पहुंचा आओ। तब प्रभो! बहुत अच्छा । इस प्रकार कह अपने हाथों को माथे पर रखा और भगवान राम की आज्ञा शिरोधार्य की। वे सेवक धर्म का पूर्णतया पालन करते हुए वहाँ से चल दिए–

चरचा चरनिसों चरची जानमनि रघुराइ।
दूत-मुख सुनि लोक-धुनि घर घरनि बूझी आइ।।
प्रिया निज अभिलाष रुचि कहि कहति सिय सकुचाइ।
तीय-तनयसमेत तापस पूजिहौं बन जाइ।।
जानि करुनासिन्धु भाबी-बिबस सकल सहाइ।
धीर धरि रघुबीर भोरहि लिए लषन बोलाइ।।
तात तुरतहि साजि स्यन्दन सीय लेहु चढ़ाइ।
बालमीकि मुनीस आस्रम आइयहु पहुँचाइ।।
भलेहि नाथ, सुहाथ माथे राखि राम-रजाइ।
चले तुलसी पालि सेवक-धरम अवधि अघाइ।। [1]

गोस्वामी जी ने सामाजिक संस्कृति के अंतर्गत पारिवारिक संस्कृति में पिता-पुत्र, माता-पुत्र, पति-पत्नी, सास-बहू, सेव्य-सेवक आदि संबंधों को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है । गीतावली में इस बात पर बल दिया गया है कि पुत्र का कर्तव्य है कि अपने माता-पिता का आदर करें । राम का चरित्र एक आदर्श पुत्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है । राम कहीं भी जाने से पहले माता-पिता की अनुमति लेना आवश्यक समझते हैं । वे माता-पिता के आदेश को मानना अपना परम कर्तव्य समझते हैं । इसी भावना के चलते वे पिता की आज्ञा मानकर वन में चले जाते हैं । अयोध्या का सारा साम्राज्य त्याग देते हैं और चित्रकूट में पर्णकुटी बनाकर रहते हैं । भरत जी राम को मनाने के लिए चित्रकूट पहुंचते हैं । वे राम से अयोध्या लौटने के लिए आग्रह करते हैं । इस पर राम अपना मंतव्य देते हुए कहते हैं कि यदि मैं अपने हाथों से अपने शरीर की खाल खींचकर पिता के चरणों की जूतियां बनवाऊँ तो भी पिता दशरथ जी से मैं उऋण नहीं हो सकता, फिर उनके वाक्यों की अवहेलना करके मैं कैसे विश्वास पात्र हो सकता हूँ-

निज कर खाल खैंचि य तनुतें जौ पितु पग पानही करावौं।
होउँ न उरिन पिता दसरथतें, कैसे ताके बचन मेटि पति पावौं।। [2]

श्रीरामचंद्र अपने माता-पिता से जितना प्रेम करते हैं उससे भी ज्यादा माता पिता उनसे प्रेम करते हैं। राम वियोग में दशरथ एवं कौशल्या की दशा देखने से यह स्पष्ट होता है । राजा दशरथ ने जब सुमंत से सब समाचार जाना तब वे कहने लगे - हाय! राम के चले जाने पर भी मैं आज तक जीवित हूँ, ऐसा समझकर उनका हृदय व्याकुल हो गया । तब उन्होंने रघुनाथ जी के लिए अपना शरीर त्याग कर अपने प्रेम को प्रमाणित किया -

राम गए अजहूँ हौं जीवत, समुझत हिय अकुलान।
तुलसिदास तनु तजि रघुपति हित कियो प्रेम परवान।। [3]

राम के प्रेम में कौशल्या अपने आप में पागल हो जाती है। प्रेम की अधिकता के कारण राम वन में गए हैं इस बात को भूल जाती है । कौशल्या पहले की भांति सवेरे ही मंदिर में जाकर इस प्रकार के प्रिय वचन कह कर जगाने लगती है-हे तात! उठो मुख चंद्र पर माता बलिहारी जाती हैं। देखो सारे अनुज और सखागण द्वार पर खड़े हैं । कभी कहती हैं - भैया! बहुत विलंब हो गया, महाराज के पास जाओ और अपने बंधुओं को बुलाकर जो रूचे सो भोजन करो माता निछावर होती हैं

कबहु प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सँवारे।
उठहु तात ! बलि मातु बदन पर अनुज सखा सब द्वारे।।
कबहुँ कहति यों बड़ी बार भई जाहु भूप पहँ भैया।
बन्धु बोलि जेंइय जो भावै गई निछावरी मैया।। [4]

गोस्वामीजी ने भाई के प्रेम को भी पराकाष्ठा पर पहुँचाया है। बड़ा भाई हो या छोटा भाई उनका व्यवहार कैसा होना चाहिए इसका आदर्श रूप उन्होंने प्रस्तुत किया है। वन जाने के लिए तैयार राम को देखकर लक्ष्मण का भातृ प्रेम देखने लायक है। लक्ष्मण जी कर जोड़े खड़े हैं, उनके हृदय में धकधकी लगी हुई है, संकोच बस कुछ कहते नहीं है । मन में सोचते हैं कि इस समय तो राम तृण तोड़कर सब को त्याग रहे हैं, न जाने इस सेवक को भी साथ लेंगे या नहीं

ठढे है लखन कमलकर जोरे।
उर धकधकी, न कहत कछु सकुचनि, प्रभु परिहरत सबनि तृन तोरे ?।। [5]

श्रीराम लक्ष्मण को देखकर उनकी मनोदशा समझ गए। वह लक्ष्मण जी से बोले भैया माता से विदा मांग आओ इसके सिवा किसी भी तरह बात न बन सकेगी -

कृपासिंधु अवलोकि बंधु तन,
प्रान-कृपान बीर-सी छोरे।
तात बिदा माँगिए मातुसों,
बनिहै बात उपाइ न औरे।। [6]

भातृप्रेम संबंधी धारणा यही खत्म नहीं होती भरत जी

ISSN 2277-5587

तो इससे भी बढ़कर है । उन्हें जब ज्ञात होता है कि माता कैकयी के कारण यह सब हुआ है तो माता के अपराध से स्वयं को लज्जित महसूस करते हैं। वह स्वयं को संसार का सबसे बड़ा पापी मानते हैं। वे जब चित्रकूट में राम को देखते हैं तो उनका शरीर शिथिल पड़ जाता है और नेत्र कमलों में जल भर जाता है। वे संकोच रूपी दलदल में गड़ जाते हैं। भरत जी की यह दशा देखकर राम प्रेम से अधीर होकर उनकी तरफ दौड़ कर उन्हें हृदय से लगा कर उनकी व्यथा हर लेते हैं :

तुलसीदास दसा देखि भरतकी उठि धाए अतिहि अधीर।
लिये उठाइ उर लाइ कृपानिधि बिरह–जनित हरि पीर।।[7]

गोस्वामी जी पत्नी संबंधी व्यवहार को भी आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है। वनवास जाते समय राम अपनी पत्नी सीता को समझाते हैं कि तुम यही रहकर सास की सेवा करो। वन का मार्ग बड़ा कठिन है, कंटकाकीर्ण है, उस पर तुम अपने कोमल चरणों से कैसे चल पाओगी। तुम इतने दिनों और रात्रियों तक दुःसह, वायु, वर्षा, शीत और घाम कैसे सहन करोगी? । इतना सुन कर सीता सोची कि उनका परम कर्तव्य तो पति सेवा है । पतिव्रत धर्म का पालन करने में ही कल्याण है । तब वह बिना संकोच के स्पष्ट शब्दों में बोली कि कहिए भला आप के बिना इस घर में मेरा क्या काम ? जब प्रियतम ने राज्य त्याग दिया तो मेरे लिए तो वन ही करोड़ों स्वर्ग लोकों के समान है । मेरे लिए तो बल्कल ही अति मनोहर और निर्मल दुकुल होगा और कंद–मूल–फल ही अमृतमय अन्न होगा । मेरे नेत्र क्षण क्षण प्रभु के चरण कमलों का दर्शन करेंगे, इससे अधिक और क्या सुख की सामग्री होगी । मैं तो भोग की लालसा से राजभवन में रहूँ और पतिदेव वन में मुनियों के ठाट से निवास करें ऐसे बिरह सूचक वचनों को सुनकर आज मेरा कठोर हृदय विदिर्ण क्यों नहीं हो जाता :

कहौ तुम्ह बिनु गृह मेरो कौन काजु?
बिपिन कोटि सुरपुर समान मोको, जो पै पिय परिहरयो राजु।।
बलकल बिमल दुकूल मनोहर, कन्द–मूल–फल आमिय नाजु ।
प्रभुपद–कमल बिलोकिहैं छिन–छिन, इहि तें अधिक कहा सुख–समाजु।।
हौं रहौं भवन भोग–लोलुप ह्वै, पति कानन कियो मुनिको साजु ।
तुलसीदास ऐसे बिरह–बचन सुनि कठिन हियो बिदरो न आजु।।[8]

गोस्वामी जी ने यह स्पष्ट किया है कि सीताजी कहती हैं कि प्रभो यदि हठ पूर्वक मुझे यही छोड़कर जाएंगे तो मैं लाचार होकर अपने प्राणों को ही आपके साथ भेज दूंगी क्योंकि आपके चले जाने पर फिर प्रभु के बिना जीवित रह कर मैं अपना मुख कैसे दिखाऊंगी :

जौ हठि नाथ राखिहौ मो कहँ सँग प्रान पठावौंगी।
तुलसीदास प्रभु बिनु जिवत रहि क्यों फिरि बदन देखावौंगी?[9]

गोस्वामी जी का यह विचार है कि बिना पति के पत्नी का जीवन निरर्थक है। समाज में एक पत्नीव्रत का पालन करना चाहिए। बहुपत्नीसे जीवन नारकीय हो जाता है। उदाहरण के तौर पर दशरथ जी को देखा जा सकता है, जिन्हे बहुपत्नी के कारण प्राणों की आहुति देनी पड़ी। गोस्वामी जी का दृष्टिकोण जीवन कैसे सुखी रहेगा इसका मार्गदर्शन करता है।

गोस्वामी जी का सामुदायिक जीवन के विषय में विचार है कि सामाजिक मर्यादाओं को किसी प्रकार बचाना चाहिए। किसी को भी शिष्टाचार के नियमों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। उन्होंने छोटे–बड़े, गुरु–शिष्य, सेवक–सेव्य, पति–पत्नी आदि के व्यवहार का आदर्श प्रस्तुत किया है । समाज में सभी को शिष्टाचार का पालन करते हुए दिखाएं है । उन्होंने स्पष्ट उल्लेख किया है कि राजा दशरथ वनों में बसने वाले विश्वामित्र के अयोध्या आगमन पर कहते हैं कि मुनिवार आज आपके चरणकमल देखकर मैं जहां तक साधु समाज है, वहाँ तक गिनती में सबसे आगे हो गया हूँ :

देखि मुनि! रावरे पद आज ।
भयो प्रथम गनतीमें अबतैं हौं जहँ लौं साधु समाज।।[10]

महर्षि विश्वामित्र जब जनकपुर में पहुंचते हैं तो राजा जनक यह जानकर बहुत प्रसन्न होते हैं। वह गुरु जी एवं ब्राह्मणों को बुलाकर समाज सहित उनसे मिलने जाते हैं। जनक अपना बड़ा भाग्य समझते हैं और अनुराग से विह्वल हो जाते हैं। जनक जी विश्वामित्र के चरणों में सिर नवा, उनसे आशीर्वाद पा, उन्हें प्रसन्न चित्त से पावडे और अर्घ्यदान कर आदर पूर्वक ले आएं। भोजन, वस्त्र और निवास स्थान का व्यवस्था कर पूज्यभाव से सत्कार किए । विश्वामित्र मुनि ऐसा

व्यवहार देखकर महाराज जनक की बड़ाई करते हैं और जनक जी मुनिवर के प्रति विनीत होते हैं :

आये सुनि कौसिक जनक हरषाने हैं।
बोलि गुर भूसुर, समाज सों मिलन चले, जानि बड़े भाग अनुराग अकुलाने हैं।।

नाइ सीस पगनि, असीस पाइ प्रमुदित, पाँवड़े अरघ देत आदर सों आने हैं।
असन, बसन, बासकै सुपास सब बिधि, पूजि प्रिय पाहुने, सुभाय सनमाने हैं।।

बिनय बड़ाई ऋषि–राजौउ परसपरकरत पुलकि प्रेम आनँद अघाने हैं।
देखे राम–लखन निमेषै बिथकित भई, प्रानहु ते प्यारे लागे बिनु पहिचाने हैं।।[11]

गोस्वामी जी बड़े छोटे का भेद मिटाकर समाज में समरसता लाना चाहते हैं । समरसता लाने के लिए उन्होंने निषादराज जैसे नीची जाति के व्यक्ति को श्रीराम के गले लगावाया है और सबरी जैसी कोल–भील जाति की स्त्री को माता के समान आदर करवाया है :

लघु–भाग–भाजन उदधि उमग्यो लाभ–सुख चित चाय कै।
सो जननि ज्यों आदरी सानुज, राम भूखे भायकै।।[12]

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोस्वामी जी की दृष्टि अत्यंत विस्तृत और व्यापक है। वह अपनी कविता में पारिवारिक एवं सामाजिक कर्तव्यों पर प्रकाश डाले हैं। उनकी कविता सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से उद्भुत है। वे राम, भरत, लक्ष्मण, सीता, दशरथ, कौशल्या, जनक आदि पात्रों के माध्यम से आदर्श संबंधों को दिखाएं हैं । संसार में लोक व्यवहार संबंधी उपदेश देने वाले का उतना महत्व नहीं है जितना उन कर्मो को किसी चरित्र के रूप प्रस्तुत करने वाले का है। मनुष्य जब इन रूपों पर मुग्ध होता है तब उस प्रवृत्ति की ओर अपने आप आकर्षित हो जाता है । गोस्वामी जी इन चरित्रो मे ऐसे गुणों का समावेश किए हैं कि पाठक इन चरित्रों को आदर्श मानते हुए उनका अनुकरण करते हुए सात्विक शील की ओर उन्मुख हो।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गीतावली 7/27

2. गीतावली 2/72/2

3. गीतावली 2/59/4

4. गीतावली 2/52/2–3

5. गीतावली 2/11/1

6. गीतावली 2/11/2

7. गीतावली 2/69/4

8. गीतावली 2/7

9. गीतावली 2/6/3

10. गीतावली 2/49/1

11. गीतावली 1/61/1–2–3

12. गीतावली 3/17/4

ग्रंथ

गीतावली, सं 2062 तीसवाँ पुनर्मुद्रण प्रकाशक–गीताप्रेस, गोरखपुर

 ISSN 2277-5587

ग़ज़ल गायकी का विश्लेषणात्मक एवं सौन्दर्यात्मक अध्ययन

हितेष गन्धर्व
शोधार्थी, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

ग़ज़ल यह गेयात्मक काव्य विद्या है, जिसमें प्रेम की विभिन्न दशाओं के शब्द चित्र शेरों के माध्यम से प्रस्तुत काव्य प्रेम की क्रिडा एवं कोमल अनुभूतियों के स्वर को अथवा सामाजिक, राजनीतिक एवं हास्य–व्यंग्यात्मक भावभूमि पर आम आदमी के मानस में दबी पीडा एवं छटपटाहट को वाणी दी गई हो, और जो विषयवस्तु की दृष्टि से व्यापक होते हुए भी संक्षिप्ता एवं प्रभावोत्पादकता के गुणों से युक्त हो। 'ग़ज़ल' किसी एक व्यक्ति के हृदय की कहानी न होकर प्रत्येक व्यक्ति के दिल की दास्तान होती है। शायर या ग़ज़लकार की अभिव्यक्ति में सबकी भावनाएँ समाहित होती है। शायर या ग़ज़लकार की सही पहचान और अर्थ निकलता है कि 'ग़ज़ल' प्रेमी दिलों की धडकन है। छोटे–से शब्दों में दिल में छिपी बहुत सारी आंतरिक व्यक्तिगत और समष्टिगत, पीडा, दर्द, और प्रेम की अभिव्यक्ति, 'ग़ज़ल' मे होती है। ग़ज़ल प्रेम का प्रेमिका से वार्तालाप, नारियों से प्रेम की बातें, फारसी श्रृंगार परक गीत, 'ग़ज़ल' हिरन के बच्चे की आँख जैसे स्त्रियों से सवांद आदि।

संकेताक्षर : *ग़ज़ल, श्रृंगार, भाव, अभिव्यक्ति, संगीत, सौंदर्य, उर्दू, अनुभूति, शायरी।*

ग़ज़ल में प्रेमभाव, व्यक्तिगत, पीडा, दर्द, कम शब्दों में संगीतात्मकता के साथ, असरकारक रूप में छंदोबद्धरूप में व्यक्त होती हैं। मानवजीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति 5 से 11 शेर में व्यक्त होती है। काव्य की एक नवीन शैली विशेष उर्दू अरबी–फारसी काव्य से प्रेमभावना का व्यक्त करते हुए हिन्दी में नई अभिव्यंजना को प्रस्तुत किया, जो मानवजीवन समस्या दुःख–दर्द समाज और राजनीति से जुडता है।

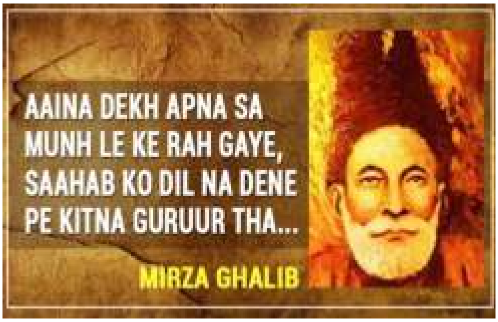

ग़ज़ल एक ऐसी छन्दोबद्ध काव्य रचना विद्या है जिसमें कवि को हर शेर में विभिन्न कथ्य प्रतिपादित करने की छूट है तथापि संपूर्ण काव्य रचना में एक विशिष्ट छंद विधान का अनुशासन पालित है एवं एक सांस्कृतिक भावमयी, संप्रेषणयुक्त भावव्यंजना अनुयूत है। ग़ज़ल का उद्भव अमीर ख़ुसरो से हुआ, इसे विकसित कबीर ने किया है। ग़ज़ल को जो स्वरूप फारसी और उर्दू में हैं, उसी स्वरूप को हिन्दी ग़ज़लकारों ने अपनाते हुए, हिन्दी में ग़ज़ल को लिखा है। शुरूआती दौरा में फारसी उर्दू की रूमानियम, सौंदर्य आदि कथ्यों को ही हिन्दी कवियो ने दोहराया मगर समायान्तर हिन्दी ग़ज़लों ने अपनी अलग पहचान बनाने में कामयाब रही। अलग पहचान कथ्य की दृष्टि से है, एक तरफ जहां उर्दू–फारसी में 'प्रेम' व 'सौंदर्य'–सूफी दर्शन पर जोर दिया गया है।

ग़ज़ल का अर्थ

'प्रेम' और 'सौदर्य' की अभिव्यक्ति को व्यक्त करने वाली काव्य की इस नवीन शैली उर्दू–फारसी काव्य प्रकार होते हुए भी हिन्दी भाषा तथा विश्व की कई भाषा में अपने विशेष गुणों के कारण लोकप्रिय हुई है। सामन्यतः 'ग़ज़ल' एक विशेष शैली हैं, जिसमें प्रेमी अपनी तरफ खींच सकी है। 'ग़ज़ल' शब्द अरबी भाषा का शब्द है। जिसका अर्थ है, सुंदर

स्त्री से प्रेमपूर्ण संवाद। ग़ज़ल ऐसा काव्यरूप है। जिसके कथ्य के केन्द्र में प्रेम होता है। डो. रोहिताश्व आस्थाना ने 'ग़ज़ल' की व्युत्पत्ति अरबस्तान में हुए ग़ज़ल नामक एक व्यक्ति से जोड़ते हुए लिखते है कि ''उस व्यक्ति ने पूरी जिन्दगी प्रेम एवं मस्ती में ही बीता दी। उसकी कविताओं का वर्ण्य विषय सदैव प्रेम ही हुआ करता था। अतः कालान्तर में इसे ग़ज़ल नाम कवि के नाम पर इस प्रकार की प्रेम परक कविताओं को ग़ज़ल की संज्ञा दी गई।'' ग़ज़ल की व्युत्पति 'ग़ज़ल' अरबी शब्द है, कसीदा से विकसित होकर प्रेमीजनों की व्यक्तिगत प्रेम पूर्ण अभिव्यक्ति विरह, मिलन, दर्द, उपालंभ आदि स्थितियों की प्रभावपूर्ण प्रस्तुती हो वही 'ग़ज़ल'। 'ग़ज़ल' नामक व्यक्ति कवि की रचनाओं से जुड़ती मृग जैसी नेंत्रों वाली सुन्दरियों की बातों का जरिया बनती 'ग़ज़ल' नारियों या प्रेमिकाओं से प्रेमिओं का संवाद या वार्तालाप हैं। मगर आज 'ग़ज़ल' ने जिस भी देश की जमीन पर विकास किया वहाँ प्रेम के विषय तक सीमित न रहकर नये आयामों को छुआ है।

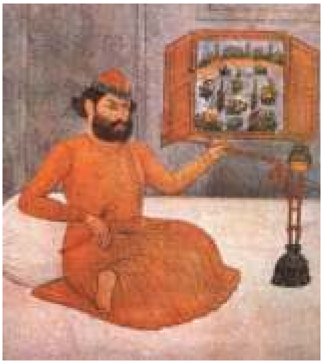

ग़ज़ल की भाषा

कोई भी भाषा अनुभूति को व्यक्त करने का सशक्त माध्यम होती हैं। वर्ण-विन्यास और नाद-सौन्दर्य होना चाहिए, ऐसी काव्य-भाषा ही भावों को प्रेषणीय बनाती हैं। कवि, ग़ज़लकार अपनी अनुभूति जिस भाषा में व्यक्त करता हैं, वह भाषा का जानकार, शब्दों का माहिर व्यक्ति होना चाहिए तभी वह अनुभूति को योग्य शब्दों के द्वारा अर्थाविभव्यंजना कर सकेगा और अपने विचारों और भाव को स्पष्ट रूप से दर्शक और पाठक तक पहुँचाता है। कवि ग़ज़ल में भाषा का प्रयोग अनुभूत सुख-दुःख, विरह-मिलन आदि अभिव्यक्ति के लिए करता हैं। यह अभिव्यक्ति का पहले सम्बन्ध उस व्यक्ति के लिए होगा उसके द्वारा यह अनुभूति उत्पन्न हुई है। तो कथ्य उस व्यक्ति और बाद में अन्य व्यक्तियों को प्रभावित कर सकें। प्रभाव तब आ सकता है, जब भाषा सरल, सहज सचोट हों।

ग़ज़ल की परिभाषा

साहित्य की किसी विधा को सही अर्थों में परिभाषित करना कठिन कार्य हैं। साहित्य या काव्य की नई विशेष शैली के रूप में प्रसिद्ध होने वाली 'ग़ज़ल' सामंतशाही परिवेश में पली और बड़ी हुई है ग़ज़ल अरबी भाषा का शब्द है और अरबी भाषा का यह शब्द काव्यरूप विधा बनकर फारसी साहित्य में प्रसिद्ध हुआ है। मूल अरबी भाषा का कसीदा फारसी साहित्य में 'ग़ज़ल' बन जाता है, और अनेकों भाषाओं को अपनी और आकर्षित करती है।

- फ़िराक गोरखपुरी- (उर्दू के प्रसिद्ध शायर व आलोचक) ने लिखा है- ''गज़ल असंबद्ध कविता है। ग़ज़ल का मिजाज मूलतः समपर्णवादी होता है।''
- जॉनिसर अख़तर (उर्दू शायर) चन्द लफ्जो में दिल की बात कहने की कला का नाम 'ग़ज़ल' है, टूटे दिल की पुकार को 'ग़ज़ल' कहते हैं-

हमसे पूछे कि 'ग़ज़ल' क्या है ?
ग़ज़ल का फन क्या है ?
चन्द लफ्जों में कोई
आग छुपा दी जाए।''

- डॉ. नगेन्द्र ''ग़ज़ल उर्दू काव्य का सर्वाधिक प्रसिद्ध और सरस भेद है। उसका स्थायी भाव प्रेम है जिसमें रहस्यानुभूति, मस्ती, रिन्दी, धार्मिक विद्रोह

ISSN 2277-5587

आदि भावनाएँ संचारी रूप में ओत-प्रोत रहती है। विषय के अनुरूप उसका एक विशिष्ट काव्य रूप भी है तो 'मतला', 'मक्ता', 'गिरह', काफिया और 'रदिफ' में परिबद्ध रहता है।

- उर्दू साहित्य का इतिहास अंग्रेजी में लिखा गया है, इसमें ग़ज़ल के बारे में मुहम्मद सादिक का मत है कि - "The Word Ghazal means conversation with women, and the form was originally reserved for erotic themes only. But in the Course of time the rules governing its subject matter come to be relaxed"
- ''ग़ज़ल वह है जिसमें ज्यादा लोगों को सच्चाई और समग्रता के साथ गेहर में प्रभावित किय जा सके।'' (दुष्यन्तकुमार)
- डॉ. हरदेव बाहरी- 'ग़ज़ल' ऐसी पद्यात्मक रचना जिसमें नायिका के सौन्दर्य एवं उसके प्रति उत्पन्न प्रेम को वर्णन हो।

ग़ज़ल का इतिहास

फारसी से ग़ज़ल उर्दू में आई। उर्दू में पहला शायर जिसका काव्य-संकलन (दीवान) प्रकाशित हुआ हैं, वह हैं मोहम्मद कुली कुतुबशाह। आप दकन के बादशाह थे और आपकी शायरी में फारसी के अलावा उर्दू और उस वक्त की दकनी बोली भी शामिल थी।

''पिया बाज पयाला पिया जाये ना।
पिया बाज यक तिल जिया जाये ना।।''

पहला दौर- वली के साथ साथ उर्दू शायरी दकन से उत्तर की ओर आई। यहां से उर्दू शायरी का पहला दौर शुरू होता हैं। उस वक्त शायर आबरू, नाजी, नज़्मून, हातिम इत्यादि थे। इन सब में वली की शायरी

सब से अच्छी थी। इस दौर में उर्दू शायरी में दकनी शब्द काफी हद तक कम हो गये थे। इसी दौर के आखिर में आने वाले शायरों के नाम इस प्रकार हैं। मजहर जाने-जानाँ, सादुल्ला 'गुलशन', ख़ान 'आरज़ू' इत्यादि। यक़ीनन इन सब ने मिलकर उर्दू शायरी को अच्छी तरक़्क़ी दी। मिसाल तौर पर उनके कुछ शेर नीचे दिये गये हैं-

ये हसरत रह गई
किस किस मज़े से जिंदगी करते।

अगर होता चमन अपना,
गुल अपना, बाग़बां अपना।।

-मज़हर जाने-जानां

ख़ुदा के वास्ते इसको न टोको।
यही एक शहर मे कातिल रहा हैं।

-मज़हर जाने-जानां

जान, तुझ पर कुछ एतबार नहीं।
कि ज़िंदगानी का क्या भरोसा हैं।।

-ख़ान आरज़ू

दूसरा दौर- इस दौर के सबसे मशहूर शायर हैं 'मीर' और 'सौदा'। इस दौर को उर्दू शायरी का 'स्वर्णकाल' कहा जाता हैं। इस दौर के अन्य शायरों में मीर 'दर्द' और मीर गुलाम हसन का नाम भी काफी मशहूर था। इस जमाने में उच्च कोटि की ग़ज़ल लिखी गईं जिसें ग़ज़ल की भाषा, ग़ज़ल का उद्देश्य और उसकी नाज़ुकी या नज़ाकतों को संवारा गया। मीर की शायरी में दर्द कुछ इस तरह उभरा कि उसे दिल और दिल्ली का मर्सिया कहा जाने लगा।

देख तो दिल कि जां से उठता हैं।
ये धुंआ सा कहां से उठ्ता हैं।।

दर्द के साथ साथ मीर की शायरी में नज़ाकत भी तारीफ के काबिल थी। इस दौर की शायरी की एक और महत्वपूर्ण बात यह हैं कि इस ज़माने के अधिकांश शायर सूफी पंथ के थे। इसलिए इस दौर की ग़ज़लों में सूफी पंथ के पवित्र विचारों को विवरण भी मिलता हैं।

वक्त ने करवट बदली और दिल्ली की सल्तनत का चिराग टिमटिमाने लगा। फैज़ाबाद और लखनऊ में, जहां दौलत की भरमार थी, शायर दिल्ली और दूसरी जगहों को छोड़कर, इकट्ठा होने लगे। इसी समय 'मुसहफी' और 'इंशा' की आपसी नोंक झोंक के कारण उर्दू शायरी की गंभीरता कम हुई। 'जुर्अत' ने बिल्कुल हलकी-फुलकी और कभी कभी सस्ती और अश्लील शायरी की। इस जमाने की शायरी का अंदाज़ा आप इन अशआर से लगा सकते हैं-

किसी के महरमे आबे रवां की याद आई।
हुबाब के जो बराबर कभी हुबाब आया।।

लेकिन यह तो 'इंशा', 'मुसहफी' और 'जुर्अत' की बात। जहां तक लखनवी अंदाज़ और बयान का सवाल हैं, उसकी बुनियादी 'नासिख' और 'आतिश' ने डाली। दुर्भाग्यवश इन दोनों की शायरी के भी हृदय और मन की कोमल तरल भावनाओं का बयान कम हैं और शारीरिक उतार-चढ़ाव, बनाव-सिंगार और लिबास का वर्णन ज़्यादा हैं। उर्दू शायरी अब दो अंदाजों में बट गयी, 'लखनवी' और 'देहलवी'। दिल्ली वाले जहां आशिक और माशूक के हृदय की गहराईयों में झांक रहे थे, वहां लखनऊ वाले महबूब के जिस्म, उसकी ख़ूबसूरती बनाव-सिंगर ओर नाज़ों -अदा पर फिदा हो रहे थे।

ग़ज़ल का इतिहास रोज़ लिखा जा रहा हैं। नये शायर ग़ज़ल के क्षितिज पर रोज़ उभर रहें हैं, और उभरते रहेंगें। मिर्ज़ा गालिब, दाग़, मोमिन, मीर, कबीर, जौक, जफ़र, हसरत, जयपुरी, फैज़-अहमद-फैज़, फिराक, निदा फाज़ली, वसीम बरेलवी, मजरूह सुल्तानपुरी, डॉ. बशीर बद्र, राहत इंदौरी, दुष्यंत कुमार, गुलजार केफ़ी आज़मी, मुहम्मद इकबाल, अकबर इलाहबादी इत्यादि शायर फ़न और अपनी शायरी से ग़ज़ल की दुनिया को रोशन कर रहे हैं।

प्रस्तुतीकरण (अँदाजे बयाँ)

ग़ज़ल में काव्य प्रकार से भिन्न, भावाभिव्यक्ति होती है, जिसे उर्दूवाले अँदाजे बयाँ कहते है। अभिव्यक्ति का यह अंदाज दूसरे काव्य प्रकार से अलग होता है। मिर्जा गालिब का एक शेर प्रस्तुत है-

''है और भी दुनिया में सुखनजर बहोत अच्छे,।
कहते है कि गालिब का है अंदाज बयां और।।''

पुराने से ख्यालों को भी कहने का ढ़ंग सही हो तो बात को अर्थ पूर्ण एवं माधुर्यपूर्ण मनरंजित बना देती है। कागज लिख देने मात्र से अभिव्यक्ति अच्छी नहीं हो सकती, ग़ज़ल का प्रत्येक शेर उसके वजन के साथ उच्चरित होता हैं, तब उसकी अभिव्यक्ति सही होती है।

शेर

'ग़ज़ल' विद्या में 'शेर' ग़ज़ल का महत्वपूर्ण अंग है। ''शेर शब्द का अर्थ-बाल या केश, जानना 'शेर' शब्द अरबी भाषा का है। जिस प्रकार किसी सुन्दर युवती की सुन्दरता की अभिवृद्धि में केश सहायक होते हैं ठीक वैसे ही किसी ग़ज़ल के भाव-सौंदर्य में निखार शेरों के माध्यम से आता हैं।'' अच्छी ग़ज़ल अच्छे शेरों से निर्मित होती है। 'शेर' स्वतंत्र होता है। ग़ज़ल में भावों और विचारों को प्रस्तुत करने के लिए ग़ज़लकार शेर का निर्माण करता है।

मिसरा

ग़ज़ल के शेर की पक्तियों को मिसरा कहा जाता है। दो मिसरा मिलकर एक शेर बनता है।

''सफर ये साँस का अब खत्म होने वाला है,
जो जागता था मुसाफिर वो सोनेवाला है।'' (निरज)

आईना-ए-ग़ज़ल में डॉ. विनय वाईकर ने 'मिसरा' के स्वरूप पर प्रकाश देते हुए लिखा है - ''हर ग़ज़ल में दो पक्तियाँ होती है। 'शेर' की हर पक्ति को मिसरा कहते हैं, शेर से पहले मिसर को 'मिसर-ए-उल' और दूसरे को 'मिसरे-ए-सानी' कहते है''।

रदीफ

शब्द समूह की पुनरावृति को रदीफ कहा जाता है। ग़ज़ल की प्रत्येक पक्ति में काफिये के बाद में आने वाले शब्द को रदीफ कहा जाता है। उर्दू शब्द कोश में

रदीफ का अर्थ ''पीछे चलने वाली.. पारिभाषित रूप में वह अक्षर, शब्द या शब्द-समूह रदीफ हाते हैं, जो किसी ग़ज़ल के प्रत्येक शेर में, काफिये के पीछे लगातार दोहरायी जाती है।''

रदीफ कभी लम्बी तो कभी एक अक्षर की भी होती है गालिब की ग़ज़ल का उदाहरण प्रस्तुत हैं-

''दिले-नादाँ तुझे हुआ क्या है,
आखिर इस दर्द की दवा क्या है।
हम मुश्ताक और वह बेजार,
या इलाही ये माजरा क्या है।
हमको उनसे वफा की है उम्मीद,
जो नहीं जानते वफा क्या है।
मैंने माना कि कुछ नहीं गालिब,
मुफ्त हाथ आये तो बुरा क्या है।।''

काफिया

ग़ज़ल के पहले 'शेर' यानी मत्ले के दोनों मिसरों में और दूसरे-शेरों की 'मिसरा-ए-सानी' में प्रयुक्त शब्द जो रदीफ से पहले आता है, उसे 'काफिया' कहा जाता है। उर्दू फारसी के विद्वान फिराक गोरखपुरी ने अपनी किताब उर्दू भाषा और साहित्य मे इस पर जिक्र करते हुए लिखा है- ''ग़ज़ल के शेरों के में अन्त में जो अन्त्यानुप्रासयुक्त शब्द आते है, उन्हें काफिया कहा जाता है। ग़ज़ल और कसीदे के 'शेरों' में एक बार रदीफ को खत्म किया जा सकता हैं, लेकिन काफिया का होना बहुत जरूरी होता हैं।'' काफिया ग़ज़ल का महत्वपूर्ण अंग है। विभिन्न विद्वानों ने इसे पारिभाषित किया है। 'काफिये' ने हों तो 'ग़ज़ल' ग़ज़ल नहीं होती। इसलिए 'काफिये' ग़ज़ल का आवश्यक अंग है।

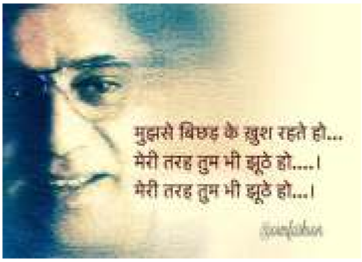

मतला

ग़ज़ल के प्रथम शेर को 'मतला' कहा जाता है। उर्दू हिन्दी शब्दकोश में 'मतला' का अर्थ 'उदय' होना, निकलना अथवा भावावेश आदि अर्थ होता है। ग़ज़ल में एक मतले का होना आवश्यक हैं। मतला ग़ज़ल की शुरूआत का संकेत देता है, कभी-कभी पूरी ग़ज़ल मतलों में हो सकती हैं।

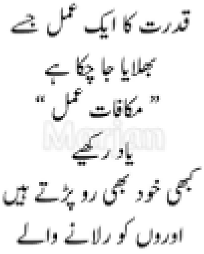

''दोनों जहान तेरी मुहब्बत में हार के,
वो जा रहा है कोई शके-गम गुजार के।''

''हर तरफ हर जगह बेसुमार आदमी,
फिर भी तनहायों का शिकार आदमी।''

(निदाफाज़ली)

मकता

मकता ग़ज़ल अंतिम शेर को कहा जाता है। शायर या कवि इस अंतिम शेर से अपने नाम को प्रस्तुत करते हैं। जिसे 'उपनाम', 'नाम' या 'तखल्लुस' कहा जाता है। ग़ज़ल के अंतिम शेर के (जिसमें साधारणतः कविगण अपना तखल्लुस भी डाल देते हैं) मकता कहते हैं।''

संगीत को त्रिवेणी संगम कहा जाता हैं। इस संगम मे तीन बातें, शब्द, तर्ज़ और आवाज़ अत्यंत अनिवार्य हैं। गज़ल की लोकप्रियता इस बात की पुष्टि करती हैं कि अच्छे शब्द के साथ अच्छी तर्ज़ और मधुर आवाज़ अत्यंत अनिवार्य हैं ग़ज़ल को दिलकश संगीत में ढ़ालने वाले संगीतकार और उसे बेहतरीन ढ़ंग से रसिकों के आगे पेश करने वाले कलाकार गायक अगर नहीं होते तो ग़जल यकीनन किताबों में ही बंद रह कर घुट जाती और सिमट जाती। इसी शृंखला में प्रख्यात दस ग़ज़ल सम्राटों की रागदारी, गायकी, साहित्य, सौन्दर्य, का विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास कर ग़ज़ल की बारीकियों, भाव, रस, सौन्दर्य एवं ग़ज़ल के साहित्य के भावार्थ को उजागर करने का प्रयास किया जा रहा है। ग़ज़ल खुद एक गायन और गायकी के क्षेत्र में विशेष शैली हैं। जिस प्रकार ताल मात्राओं और भागों में बटी होती है, उसी प्रकार ग़ज़ल के शब्द भी मात्राओं भागों में बटे होते हैं। ग़ज़ल की बनावट में सम्पूर्ण संगीत निहित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ. अनिल कुमार शर्मा, हिन्दी ग़जल सौदर्य और यथार्थ साहित्य निकेतन, 16, साहित्य विहार, बिजनौर (उ.प्र.) सं. 2006*
2. *अल्का निकम (वागदरे), दुश्यंतकुमार और सुरेश भट्ट की ग़जलों का चिंतन पक्ष अभय प्रकाशन, आवास विकास, हंसपुरम, कानपूर-208021 सं. 2008*
3. *डॉ. कुँअर बेचैन, ग़जल का व्याकरण, अयन प्रकाशन,1/20, महरौली, नई दिल्ली-110030, सं. 2012*

4. डॉ. जरीना सानी सानी, डॉ. विनय वईकर, :- आईना-ए-ग़जल, श्री. मंगेश प्रकाशन, शान्ता दुर्गा निवास, रामदास पेठ, नागपूर- 440010, सं. 1991
5. दीक्षित दनकौरी, :- ग़जल दुष्यंत के बाद (खंड-1), वाणी प्रकाशन, 21 ए दरियागंज नयी दिल्ली-110002, सं. 2009
6. दीक्षित दनकौरी, :- गज़ल दुष्यंत के बाद (खंड-2), वाणी प्रकाशन, 21 ए दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, सं. 2010
7. दीक्षित दनकौरी, :- ग़जल दुष्यंत के बाद (खंड-3), वाणी प्रकाशन, 21 ए दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, सं. 2014
8. डॉ. नरेश, :- हिन्दी ग़जल दशा और दिशा, वाणी प्रकाशन, 21 ए दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, सं. 2004
9. निश्तर खानकाही, गिरिराजशरण अग्रवाल, :- गज़ल और उसका व्याकरण हिन्दी साहित्य निकेत, 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ.प्रं.) सं.
10. डॉ. मधु खराटे, :- ग़जलकार जहीर कुरैशी की काव्यदृष्टि विद्या प्रकाशन, सी-449, गुजैनी, कानपुर - 22, सं. 2013

ISSN 2277-5587

दलित एवं आदिवासी महिलाओं की शैक्षिक स्थिति : समस्या व समाधान

पिंकी रानी
शोद्यार्थी, पटना विश्वविद्यालय, पटना (बिहार)
shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

किसी भी व्यक्ति की शिक्षा व्यक्ति, परिवार एवं समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। परंतु भारतीय शिक्षा व्यवस्था में पुरूषों एवं महिलाओं के बीच काफी विषमता पाई जाती है। ये विषमता उस समय अधिक बढ़ जाती है, जब चर्चा दलित एवं आदिवायी महिलाओं की होती है। सामान्य महिलाओं की तुलना में दलित एवं आदिचासी महिलाओं के संवैधानिक आरक्षण के बावजूद भी शैक्षिक स्थिति अत्यंत दयनीय है। इसका मूल कारण आदिवासी दलित लड़कियों की स्कूल ड्रॉपआउट की उच्च संख्या है। जिसका कारण परिवार की खराब आर्थिक स्थिति है। विद्यालय का दूर होना, स्कूलों के अंदर छुआछूत की समस्या, स्कूलों में शिक्षकों का अभाव आदि ऐसे अनेक कारण हैं जिससे प्राथमिक स्तर पर ये पिछड़ेपन का शिकार हो जाते हैं। कम उम्र में विवाह हो जाने के कारण उच्चतम शिक्षा से ये प्रायः वंचित हो जाते हैं। इन समस्याओं से सुधार हेतु शैक्षिक परिसरों को छुआछूत मुक्त बनाना तथा इन्हें रोजगार के समान अवसर उपलब्ध कराये जाने की भी जरूरत है। इन सभी उपायों से ही दलित–आदिवासी महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक व शैक्षिक पिछड़ेपन से दूर किया जा सकता है।

संकेताक्षर : *दलित, आदिवासी, महिला, शैक्षिक स्थिति, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति।*

भारतीय शिक्षा व्यवस्था में आजादी के सत्तर साल बीत जाने के बाद भी पुरुषों एवं महिलाओं की शैक्षिक स्थिति में समानता नहीं आ पाई है। पुरुषों की तुलना में महिलाओं की शैक्षिक स्थिति अब भी दयनीय है। इनकी तुलना शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में करें तो पता चलता है कि शहरी महिलाओं की तुलना में ग्रामीण महिलाओं की शैक्षिक स्थिति और भी खराब है। इन वर्गीकरण का और भी विस्तार कर अगर सामान्य महिलाओं की शैक्षिक स्थिति और दलित–आदिवासी महिलाओं की शैक्षिक स्थिति की तुलना करें तो स्थिति और भी भयावह दिखती है। दलित व आदिवासी महिलाओं की शैक्षिक स्थिति अभी सबसे बदतर स्थिति में है। आइए इस समस्या की स्थिति, कारण एवं समाधान की पड़ताल करें।

भारत की आजादी के समय भारतीय संविधान के निर्माताओं को इस बात का आभास था कि अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लोगों की सामाजिक व शैक्षिक स्थिति बहुत ही पिछड़ी हुई है। ये लोग बिना किसी संवैधानिक मदद के इससे बेहतर स्थिति में नहीं पहुँच सकते हैं। इसलिए संविधान निर्माताओं ने भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के वर्ग से आने वाले लोगों के लिए संवैधानिक आरक्षण का प्रस्ताव रखा; जिसे संविधान में शामिल किया गया। इन समुदायों के विकास के लिए संविधान में अनुच्छेद 46, 15(4), 29(2) और 350(क) के तहत विशेष उपबंध बनाकर इनकी औपचारिक शिक्षा को पूरा करने का प्रावधान किया गया है।[1] इसका उद्देश्य सामाजिक व शैक्षिक रूप से पिछड़े अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति को देश की मुख्यधारा से जोड़ना था।

आजादी के सात दशक गुजर जाने के बाद संवैधानिक आरक्षण के बावजूद भी अनुसूचित जाति व जनजाति की शैक्षिक स्थिति में वो सुधार नहीं आया जिसकी कल्पना संविधान निर्माताओं ने सपने का भारत बनाने के लिए की थी। कोई भी समाज एकांगी विकास नहीं कर सकता है। देश के संपूर्ण विकास हेतु सभी वर्गों को साथ लेकर चलने की जरूरत है। 2011 की जनगणना के हिसाब से देश की कुल आबादी में अनुसूचित जाति की संख्या 24.4 प्रतिशत है वहीं अनुसूचित जनजाति की संख्या 8.2 प्रतिशत है। लेकिन अगर इनकी साक्षरता दर को देखें तो 2001 की जनगणना

के अनुसार अनुसूचित जाति का साक्षरता दर 54.69 प्रतिशत व अनुसूचित जनजाति का प्रतिशत 34.76 है; जो देश की सामान्य जाति की शैक्षिक स्थिति से काफी कम है।[2] इससे इस बात का अनुमान लगाना काफी सहज है कि अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजातियों के शैक्षिक व सामाजिक विकास हेतु जो भी संवैधानिक प्रावधान किए गए व पूर्णतः सफल नहीं कहे जा सकते हैं।

अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं की शैक्षिक स्थिति में सुधार न होने के कई कारण हैं। सबसे बड़ा कारण इन महिलाओं के स्कूल ड्रॉप आउट की संख्या है। शिक्षा के उच्चतम स्तर की तरफ जाने के अनुपात में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजातियों की लड़कियों का स्कूल ड्रॉप आउट उच्चतम होता जाता है। अंततः एक ऐसी स्थिति आती है जब हमें उच्चतर शिक्षा में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के बच्चों का प्रतिनिधित्व नहीं के बराबर दिखता है। उच्च शिक्षा में सामान्य महिलाओं का सकल नामांकन दर 13.8 प्रतिशत है जबकि अनुसूचित जाति के महिलााओं का नामांकन दर 1.8 व अनुसूचित जनजाति के महिलाओं का सकल नामांकन दर 1.6 फीसदी है। आंकड़ों के इस अंतर से अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजातियों के महिलाओं की बदतर शैक्षिक स्थिति का अंदाजा लगाया जा सकता है। वहीं 6 से 14 वर्ष के बच्चों की शिक्षा– जिसे अनिवार्य शिक्षा के अंतर्गत रखा गया है– की स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं है। अनिवार्य शिक्षा के अंतर्गत 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए सरकार मुफ्त शिक्षा उपलब्ध कराती है। लेकिन अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजातियों के लगभग 35.1 लाख बच्चों में 54 प्रतिशत बच्चे अभी स्कूलों के बाहर है। 6 से 14 आयु वर्ग के लगभग 18.9 लाख बच्चे अब भी स्कूल नहीं जा पा रहे हैं। अनुसूचित जनजातियों के बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति काफी बुरी है। 41.4 प्रतिशत ही अनुसूचित जाति की लडकियाँ साक्षर हैं। स्कूल के बाहर रह रही आदिवासी समुदाय की लड़कियों की संख्या भी लगभग 60 फीसदी के आसपास है।[3] इन समुदायों की लड़कियों में से 24.82 प्रतिशत बालिकाएं अपनी पांचवी तक की शिक्षा पूरी नहीं कर पाती हैं। वहीं उच्च प्राथमिक स्तर तक आते–आते लगभग 50.76 प्रतिशत लड़कियों को स्कूल छोड़ना पड़ता है।

अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति की लड़कियों द्वारा स्कूल छोड़ने के कई कारण हैं। खराब आर्थिक स्थिति के कारण घरेलू कार्यों से जुड़ना, विद्यालय का दूर होना, स्कूलों के अंदर छुआछूत की समस्या, स्कूल में शिक्षकों का अभाव आदि।

अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लोगों की बदतर सामाजिक व शैक्षिक स्थिति के साथ–साथ आर्थिक स्थिति भी खस्ताहाल होती है। ऐसे में ये अपने बच्चों और खासकर बच्चियों को लंबे समय तक शिक्षा से जोड़े रहने में असमर्थ होते हैं। परिवार की आर्थिक स्थिति खराब होने पर बच्चे भी परिवार के बड़े सदस्यों के साथ काम पर जाने लगते हैं। इन वर्गों की लड़कियाँ अपनी माँ के साथ काम पर जाकर उनका हाथ बंटाती है या अपने घर में अपनी माँ की जगह चूल्हा–चौका संभाल लेती हैं। बच्चों के काम पर लग जाने से परिवार की थोड़ी तात्कालिक आर्थिक मदद तो हो जाती है परंतु बच्चों की शिक्षा पर इसका दूरगामी प्रभाव पड़ता है। वह दुबारा शिक्षा से जुड़ नहीं पाते हैं। वहीं ज्यादातर लड़कियों की पढ़ाई छूटने के उपरांत शादी कर दी जाती है। जिससे उनका शिक्षा से पूर्णतः नाता टूट जाता है। इस प्रकार कम उम्र में पढ़ाई छूटने व कुछ समय बाद विवाह हो जाने से इस समुदाय की औरतें एक ऐसे दुश्चक्र में फँस जाती है, जिससे निकलना उसके लिए आसान नहीं है।

शिक्षा से अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के दूर होने में दूसरा बड़ा कारण कई मामलों में स्कूल का घर से दूर होना, स्कूलों मे शौचालय व पेयजल आदि का अभाव होना, आने–जाने का मार्ग असुरक्षित होना और स्कूल का माहौल लड़कियों के विरुद्ध होना है। ऐसे में यदि लड़कियाँ पढ़ना भी चाहती है तो अभिभावक स्वयं उसकी पढ़ाई छुड़ा देते हैं। क्योंकि जिस सामाजिक परिवेश में उनका रहना होता है, वहाँ अभिभावक बेटियों के प्रति एक प्रकार की असुरक्षा से भरे होते हैं। ऐसे में उनके लिए शिक्षा से ज्यादा महत्व इस बात का है कि वह बेटियों को घर पर सुरक्षित रखें और किसी तरह जल्दी से उसका विवाह कर दिया जाए। ऐसे समाज में लड़कियों के लिए शिक्षा दोयम दर्जे की वस्तु मानी जाती है।

तीसरी सबसे बड़ी रूकावट छुआछूत है। दलित बच्चों व बच्चियों के साथ न सिर्फ स्कूल में पढ़ने वाले उनके गैर दलित सहपाठी उनसे भेदभाव करते हैं बल्कि कई बार उन्हें पढ़ाने वाले शिक्षक भी उनके साथ दोयम दर्जे का व्यवहार करते है। ऐसे में इस बात का बच्चों पर मानसिक प्रभाव पड़ता है जिसकी फिक्र न शिक्षक करते

ISSN 2277-5587

हैं न ही अभिभावक। एक बार जब बच्चों की मस्तिष्क पर ऐसे किसी बात का प्रभाव हो जाता है तो वह ताउम्र उस पर हावी रहता है। एन.सी.ई.आर.टी के एक अध्ययन में ऐसे कई भेदभाव के उदाहरण पाए गए। एक उदाहरण में गुजरात के गाँवों के एक विद्यालयों में अनुसूचित जाति के बच्चों को कक्षा में पीछे बैठने पर मजबूर किया जाता है। कक्षा में भागीदारी से उन्हें सक्रिय रूप से निरूत्साहित किया जाता है और वह खाने-पीने से जुड़ी वर्जनाओं का विषय होते हैं। जनजातीय बच्चों को भी इस प्रकार के भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। जैसा कि मध्य प्रदेश के जनजातीय गाँव हरदा में हुए एक शोध इस तरफ इशारा करते हैं। वहाँ शिक्षकों में यह भावना है कि कोरकू बच्चों को पढ़ाना ''गायों को पढ़ाने'' के बराबर है। गैर आदिवासी बच्चे उनके साथ मिलते जुलते नहीं, अथवा एक ही नल से पानी नहीं पीते हैं। अध्यापक उनकी कार्य पुस्तिकाओं को जाँचने से मना कर देते हैं।[4] ऐसे माहौल में दलित व जनजाति समुदाय से आने वाली लड़कियाँ ज्यादा समय तक नहीं रह पाती हैं और उसकी पढ़ाई बीच में ही छूट जाती है।

इन सब समस्याओं के बावजूद भी कुछ ऐसे प्रयास किए जा सकते हैं जो अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति की लड़कियों के लिए शिक्षा के न सिर्फ समान अवसर उपलब्ध कराए वरन उन्हें वह शिक्षा हासिल करने में भी मददगार साबित हो।

सबसे पहले हमें शैक्षिक परिसरों को छुआछूत मुक्त बनाना होगा ताकि सभी वर्गों के बच्चे बिना किसी दवाब के स्वच्छंद होकर शिक्षा ग्रहण कर सके। शिक्षकों के व्यवहार को भी सुनिश्चि किया जाए कि वे बच्चों के साथ बिना किसी भेदभाव के सभी को समान अवसर उपलब्ध करे और सामान्य बच्चों की तरह अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के बच्चों के साथ भी पेश आए।

बच्चों को किसी न किसी प्रकार के आर्थिक लाभ से जोड़ा जाए ताकि बच्चे धन की अनुपलब्धता के कारण विद्यालय न छोंड़े। हालांकि इस संदर्भ में सरकार द्वारा गंभीर प्रयास किए जाते रहें हैं और बच्चों को इसका लाभ भी मिला है। लेकिन इसे और भी ज्यादा पारदर्शी बनाए जाने की जरूरत है। ताकि समय पर जरूरतमंद बच्चों को धनाभाव न हो।[5] पढ़ाई के उपरांत उन्हें किसी कार्य से भी जोड़ने का प्रयास किया जाए ताकि उसे उसकी पढ़ाई के प्रत्यक्ष लाभ दिखे। इससे आगे आने वाली उनकी पीढ़ी भी प्रेरित होगी और पढ़ाई के महत्व को समझेंगी।

ग्रामीण स्तर पर स्कूलों के अवसंरचनात्मक विकास की आवश्यकता है। सुरक्षित व साफ पेय जल व शौचालय के अलावा आरामदेह कक्षा व उचित खेलकूद का माहौल भी बच्चों को स्कूल में रोकने के लिए कारगर है। इसके अलावा बच्चों का पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो बच्चों को बोझ न लगे। हालांकि नई शिक्षा नीति 2020 में ऐसे कई प्रयास दृष्टिगोचर होते है जो पहली से पांचवीं तक के बच्चों को स्कूल में रोकने व उसकी पढ़ाई को रोचक बनाने में मददगार साबित होंगे।[6] इसका लाभ अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के बच्चों के साथ-साथ बच्चियों को भी मिलेगा, जो उसकी आगे की पढ़ाई हेतु मार्ग प्रशस्त करने का कार्य करेंगे।

आंकड़ों पर गौर करे तो पाते हैं कि दलित व आदिवासी महिलाओं की शैक्षिक स्थिति अच्छी नहीं है। परंतु अब तक के जो भी प्रयास हुए है या हो रहे हैं उसमें सुधार लाकर दलित व आदिवासी महिलाओं की शिक्षा में सुधार लाया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *कुमार, अरुण, (संपा.), 2015, आधुनिक शिक्षा एवं दलित, पृ. सं.- 56, रावत पब्लिकेशन, जयपुर*
2. *अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों की समस्याएँ, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, (जून, 2010), पृ. सं.-7, एन.सी.ई.आर.टी*
3. *Paik, Shailaja, Dalit Women's Education inModern India, page- 209, Routledge Publication*
4. *अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों की समस्याएँ, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, (जून, 2010), पृ. सं.-29, एन.सी.ई.आर.टी*
5. *www.bbc.com*
6. *m.thewirehindi.com*

प्रेमचन्दोत्तर हिंदी उपन्यास साहित्य एवं भारतीय समाज

डॉ. जयलक्ष्मी एफ.पाटील
सहायक प्राध्यापक, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, धारवाड़ (तमिलनाडु)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

प्रेमचंदोत्तर काल में मध्यवर्ग अपनी संक्रमणशील प्रवृत्ति का ही परिचय दे रहा था। मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों का आरंभ प्रेमचंदोत्तर उपन्यास की प्रौढता की अगली मंजिल मानी जाती सकती है। व्यक्ति और समाज का यह संघर्ष आधुनिक पूँजीवादी सभ्यता की देन है। लेखक यहाँ यह कहना चाहते हैं कि जब तक धार्मिक अंधविश्वास और रुढियों की समाप्ति नहीं होती है तब तक देश न तो विकास ही कर सकेगा और न इसका उद्धार ही संभव होगा। अंधविश्वासों की व्यर्थता पर प्रकाश डालकर सारे ग्रामीण समाज को उनसे मुक्ति पाने का संदेश दिया है। उपन्यासकारों ने दोनों ही गांधीवादी और साम्यवादी, विचारधाराओं को अपने उपन्यासों में स्थान देकर यह चित्रित किया है ।

संकेताक्षर : *मजदूरवर्ग, मनोविश्लेषणात्मक, विपुलाकांक्षा, बुध्दिजीवी, जागरण, स्वावलंबी, इहलौकिक हिन्दी उपन्यास साहित्य।*

सन् 1936 के पश्चात, हिंदी साहित्य में अनेक नवीन प्रवृत्तियों का उदय हुआ, जो कि स्पष्टतः बदलते हुए युग की ही देन थी । यह युग भारतीय समाज और जनजीवन के संक्रमण का युग है । एक ओर पाश्चात्य सभ्यता संस्कृति, औद्योगिक एवं प्राविधिक विकास एवं अन्य अनेक परिवर्तनों को न तो भारतीय समाज पूरी तरह से अंगीकार ही कर सका और न ही अपनी प्राचीनता से पूरी तरह मुक्त ही हो

सका । धीरे-धीरे समाज का सामंतवादी ढाँचा टूटने लगा था और उसके स्थान पर जो पूँजीवादी समाज जन्म ले रहा था उसे वर्ण व्यवस्था और संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था से कोई विशेष लगाव नहीं था । परिवारों के विघटन के साथ नारी समस्या भी नये रूप में आई । यह उल्लेखनीय है कि नारी अब समाज की एक सामान्य सदस्या के रूप में प्रतिष्ठित हुई । इस काल में मध्यवर्ग अपनी संक्रमणशील प्रवृत्ति का ही परिचय दे रहा था । समाज को वह अपने अनुरूप नहीं पा रहा था और उसे अपने अनुकूल बनाने के लिए वह संघर्षरत था । औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप कल कारखानों के खुल जाने से मजदूर वर्ग का उदय हुआ, गाँव के किसान और श्रमिक ही शहरों में जाकर मजदूर बनने लगे थे । राष्ट्रीय कांग्रेस ने किसान और मजदूर वर्ग की स्थिति में सुधार लाने के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया था, कृषक और मजदूरों में नवीन चेतना का विकास तेजी से हुआ । मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों का आरंभ प्रेमचंदोत्तर उपन्यास की प्रौढता की अगली मंजिल मानी जा सकती है । 'मनोवैज्ञानिक उपन्यास अपनी विषय तथा शैलीगत विशेषताओं के कारण नवीन परिस्थिति तथा नवीन चेतना को अभिव्यक्ति देने के लिए अधिक सशक्त माध्यम बन गया।'[1]

प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यास एवं भारतीय समाज

मध्यवर्ग की समस्याएँ : मध्यवर्ग के शिक्षित समुदाय में जटिलता के समावेश होने के 2 मुख्य कारण थे । प्रथम तो बौद्धिक युग की चिंतनशीलता और दूसरा जीवन में संघर्ष की प्रबलता । इलाचंद्र जोशी ने तत्कालीन मध्यवर्ग की इन्हीं प्रवृत्तियों को अपने उपन्यास में चित्रित किया है । 'संन्यासी' का नायक नंदकिशोर मध्यवर्ग का एक सदस्य है । इसी के माध्यम से जोशी ने यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि किस प्रकार आज का अहं पीडित मानव अपनी विनाशकारी आंतरिक प्रवृत्ति के कारण इस दुरावस्था तक पहुँच गया है । नंदकिशोर ऐसे ही अहम् परिचालित समाज

का सदस्य है और जो 'स्त्री संसर्ग मात्र को कलुषित करार देनेवाले हमारे समाज के प्रबल शासन से बँधा हुआ है, वह समाज से विद्रोह करना चाहता है पर उसमें इतनी हिम्मत नहीं होती । इस बंधनहीन विपुलाकांक्षा के आगे समाज का पीड़न तथा संसार का बंधन कितना तुच्छ है । शांति मुझे चाहती है मैं उसे चाहता हूँ, क्या इतना ही यथोष्ट नहीं ।'[2]

जोशी जी ने तत्कालीन पाश्चात्य सभ्यता और उसका भारतीयों द्वारा ग्रहण पर लिखा है । पाश्चात्यों कि थोथी नकल कितना विकृत रूप ले लेती है, इस पर भी प्रकाश डाला गया है । रमाशंकर से नंदकिशोर पूछता है दृ 'कलचर किसे कहते हैं ?' तो रमाशंकर उत्तर देता है दृ 'कल्चर ? कल्चर किसे कहते हैं ? यह भी क्या आपको समझाना पड़ेगा । इसका मतलब आप जिससे पूछें वही वता देगा कल्चर यही है अपटूडेट फैशन से रहना, सभा सोसाइटियों में मिक्स करना, अच्छी सोसाइटी के एटीकेट से वाकीफ रहना, किस समय किस तरह का सूट पहनना चाहिए, इस बात की जानकारी रखना, धडल्ले से शानदार अंग्रेजी बोलना यही और क्या ।'[3] तत्कालीन युवक वर्ग किस तरह पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण कर रहा था, उपर्युक्त पंक्तियाँ इसे स्पष्ट करती है ।

अज्ञेय ने भी जोशी के समान मध्यवर्गीय व्यक्ति की समस्याओं को केंद्रित करके अपने उपन्यासों का प्रणयन किया । वस्तुतः अज्ञेय स्वयं अपने वर्ग की सीमाओं से परिचित थे और उनके पात्रों का विद्रोह और धारणायें भी मध्यवर्गीय स्वतंत्रता के भ्रम पर आधारित है । 'शेखर एक जीवनी' का कथानक विद्रोही है – वस्तुतः यह स्थिति है अज्ञेयकालीन बुद्धिजीवी मध्यवर्ग की । उसके मानस की यह वास्तविक समस्या है । वह किसी संस्था, विचार या समाज से विद्रोह नहीं करता, अपितु उसका विद्रोह इस दृश्य जगत के अस्तित्व मात्र से है । 'हम इस या उस दुर्व्यवस्था के नहीं हम इस ऐसेपन के ही एतादृश्यत्व मात्र के विरोधी हैं, हम सभी कुछ बदलना चाहते हैं, हमारी विद्रोह प्रेरणा धर्म के, राजसत्ता के, अर्थ सत्ता के और अंत में अपने व्यक्ति के प्रति विद्रोही है।'[4] अज्ञेय इस बात को मानते हैं कि समाज के लिए यह श्रेयस्कर है कि जो व्यक्ति विश्वास करते हैं कि पुराने नैतिक मूल्य मृत हैं, उन्हें उनका विरोध करना चाहिए । अर्थात् वर्तमान जीवन मूल्यों तथा परंपरागत मान्यताओं के प्रति उसमें आदर भाव नहीं होगा । फलतः वह विद्रोही होगा । व्यक्ति और समाज का यह संघर्ष आधुनिक पूँजीवादी सभ्यता की ही देन है । यह स्पष्ट है कि अज्ञेय ने अपने उपन्यास में संक्रमणकालीन भारतीय समाज के मध्यवर्गीय नवयुवक की स्थितियों को स्पष्ट किया है ।

आधुनिक युग चेतना : 1946 के आसपास जातिवाद, सांप्रदायिकता आपसी भेद–भाव, प्रांतीयता आदि अनेक ऐसे तत्व से जो भारतीय समाज और राष्ट्रीय एकता के लिए घातक थे । भारतीय समाज में जातिवाद ने जिस गलत ढंग का अपना प्रभाव डाल रखा था – भट्टिनी के माध्यम से द्विवेदीजी ने जातिवाद का विरोध करके आधुनिक युग चेतना का इन शब्दों में स्वर दिया है दृ 'तुम यदि किसी यवन कन्या से विवाह करो तो इस देश में यह एक भयंकर सामाजिक विद्रोह माना जाएगा परंतु यह क्या सत्य नहीं है कि यवन कन्या भी मनुष्य है और ब्राह्मण युवा भी मनुष्य है।'[5] आर्यवर्त को आक्रामक दस्युओं से मुक्त कराने का जो स्वप्न लेखक ने देखा था, वस्तुतः वह भारत को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराने का जो स्वप्न लेखक ने देखा था, वस्तुतः वह भारत को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराने का ही स्वप्न था। और यह स्वप्न तब तक सत्य नहीं हो सकता था, जब तक जन–मानस विदेशी शासन के विरुद्ध कमर कसकर तत्पर न हो जाए । इसके साथ ही भारतीय समाज की गलित वर्जनाओं, झूठी रूढ़ियों, भ्रांत किन्तु हजारों वर्षो से पिसती मानव विरोधी धारणाओं को उन्होंने अकुतोभय होकर सामना करने का मंत्र दिया । किसी से भी न डरना, गुरू से भी नहीं, मंत्र से भी नहीं, लोक से भी नहीं, वेद से भी नहीं।' यह स्थिति मूल्यों के संपूर्ण विघटन के समय हर समाज में आती है । यह आधुनिक युग–चेतना का ही फल है ।

नवीन जागरण : भारतीय नारी को उसकी वर्तमान स्थिति से मुक्ति दिलाने के लिए अश्क ने देश के नवयुवक वर्ग को आगे बढ़ने के लिए ललकारा है। क्यों कि उन्हें विश्वास था कि देश का प्रगतिशील युवक इसे समय की पुकार समझकर, आगे बढकर पहल करने के लिए तैयार है । 'गर्म राख' का हरीश इस कार्य के लिए प्रस्तुत होता है दृ 'नारी की स्थिति भारत में पण्यवस्तु से अधिक नहीं रही और हमें जहाँ पूँजी का तिलस्म तोड़कर मजदूरों को उसके इंद्रजाल से मुक्त करना है । वहाँ नारी को भी अपनी स्वतंत्र सत्ता पाने और पुरुष को उसे स्वीकर करने को तैयार और जरूरत पडने पर विवश करना है।'[6] वैसे पहले की नारी

और तत्कालीन नारी की स्थिति में बहुत परिवर्तन आ चुका था । उसमें नयी चेतना विकसित हो रही थी । चेतन की पत्नी चंदा, चेतन के संकेत पर घूँघट काढना बंद कर देती है । देखा जाए तो चंदा पहले से ही इसके लिए प्रस्तुत थी और ज्यों ही उसे पति की स्वीकृति मिलती है वह उससे तत्काल मुक्ति ले लेती है । अश्क ने भारतीय समाज में नारी की स्थिति पर तो प्रकाश डाला ही साथ-साथ उसमें जो नवीन जागरण आ रहा था उसका भी याथातथ्य चित्रण किया है ।

धर्म के नाम पर शोषण : उपेंद्रनाथ अश्क ने धर्म के नाम पर होनेवाले शोषण और ढोंग पर तीव्र कटाक्ष किया है । धर्म को अश्क पूँजी का ही दूसरा रूप मानते हैं दृ यह धर्म क्या पूँजी का ही दूसरा रूप नहीं ? पूँजी ही की तरह यह हजारों गरीबों की रक्त स्वेद की कमाई पर फूलफलकर मोटा नहीं हो रहा है क्या ?[7] धर्म के नाम पर भारतीय समाज में क्या नहीं होता है लेकिन अंधविश्वास, परलोक सुधार की भावना ने जनता को इतना त्रस्त कर रखा है कि उसे सब कुछ स्वीकार है । स्पष्ट है कि लेखक यहाँ यही कहना चाहता है कि जब तक धार्मिक अंधविश्वास और रूढ़ियों की समाप्ति नहीं होती है तब तक देश न तो विकास ही कर सकेगा और न इसका उद्धार ही संभव होगा ।

ग्राम में व्याप्त अंधविश्वास : नागार्जुन ने इस प्रकार के अंधविश्वासों की व्यर्थता पर प्रकाश डालकर सारे ग्रामीण समाज को उनसे मुक्ति पाने का संदेश दिया है। मेरी छाया में बैठकर तेरी इस बस्ती रूपउली के ब्राह्मण ने मिट्टी के ग्यारह लाख शिवलिंग बनाए और उनकी सामूहिक पूजा की, फिर भी मेध की कृपा नहीं हुई, नहीं हुई !! नहीं हुई !! ग्वालों अहीरों और धानुकों ने यहीं चार दिन तक मुइयाँ महाराज का पूजन किया, दस भेडे, बलि चढ़ाई और दो जवान भाव खेलते-खेलते लहूलुहान होकर गिर पड़े थे फिर भी राजा इन्दर खुश नहीं हुआ ! नहीं हुआ !! नहीं हुआ !!'[8] इन्हीं अंधविश्वासों के कारण गाँवों में नवीन चेतना का विकास भी रूद्ध हो गया है । भारतीय समाज को जातिवाद के जहर ने बहुत हानि पहुँचाई है, रेणु स्वयं लिखते हैं दृ 'पिछले 9-10 वर्षो से जातिवाद ने काफी जोर पकड़ा है । राजनीतिक पार्टिया भी जातिवाद की सहायता से संगठन करना जायज समझती है। राजनीति के दंगल में सबकुछ माफ है।'[9]

गाँधीवादी और साम्यवादी विचारधारा : सन् 1947 के बाद, उस समय राजनीति में साम्यवादी विचारधारा और गाँधीवादी विचारधारा को ही प्रमुखता थी । उपन्यासकारों ने दोनों ही विचारधाराओं को अपने उपन्यासों में स्थान देकर यह चित्रित किया है कि ग्रामीण समाज उसे किस रूप में अंगीकार करता है । बालदेव कांग्रेस का पुराना कार्यकर्ता है, अतः वह स्थान-स्थान पर गाँधी जी के आदर्शों और सिद्धान्तों की बात करता है । - 'गन्ही महात्मा की .. जै'[10] ही उसके लिए सारी परिस्थितियों पर जय पाने के लिए पर्याप्त है । वह हिंसा और आंदोलनों के खिलाफ है दृ 'पियारे भाइयो । आप लोग 'आंदोलन' किए हैं, वह अच्छा नहीं.. आप लोग हिंसावाद करने जा रहे थे । इसके लिए हम को 'अनसन' करना होगा । भारथमात का गाँधीजी का यह रास्ता नहीं.. ।'[11]

गाँधीवादी विचारधारा के समानंतर ही साम्यवादी विचारधारा ने भी गाँवों में अपना व्यापक प्रभाव डाल रखा था । किसानों में साम्यवाद के प्रति अधिक रूचि थी, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि उनके अधिकारों की उचित रीति रीति से रक्षा करते समय साम्यवाद ही समर्थ होगा । बालदेव को अपनी सभा में सुनने से किसान अस्वीकार कर देते हैं । बालदेवजी आपका व्याख्यान हम लोग बहुत सुन चुके हैं । आप पूँजीवादी हैं । इस सभा में आप नहीं बोल सकते ।'[12] किसानों को यह स्पष्ट हो गया था कि कांग्रेस उनके हितों को संरक्षण देने में असमर्थ है । जमींदारी प्रथा समाप्त होने के बाद जमींदारों ने अपनी जोती हुई भूमि से अधिक से अधिक वसूलने का प्रयास आरंभ किया । यहाँ तक कि ऐसे जमीन और तालाब आदि जो कि जमींदार की निजी संपत्ति नहीं थे, उनको भी बेचकर पैसा बनाने के प्रयास में उन साधारण मछुआरों की उपेक्षा कर जाते थे जिनकी जीविका का आधार ही ये तालाब थे । पर वे भी इस अन्याय का डटकर विरोध करते हैं । 'यह पानी तो सदा से हमारा रहा है, किसी भी हालत में हम इसे छोड नहीं सकते, पानी और माटी न कभी बिके है और न कभी बिकेंगे । गढ पोखर का पानी मामूली पानी नहीं, वह तो हमारे शरीर का लहू है, जिंदगी का निचोड़ ।'[13] अपने अधिकारों की भावना का विकास तेजी से तत्कालीन युग में हुआ ।

विवाह और प्रेम की स्वाधीनता : भारतीय समाज में विवाह और प्रेम की स्वाधीनता पर नागर जी के उदार दृष्टि से विचार किया है । यदि समाज में पुरुष और नारी को अपनी इच्छा के अनुसार चुनाव का अवसर मिल जाए तो कई एक पारिवारिक और सामाजिक

ISSN 2277-5587

समस्याएँ आसानी से हल हो सकती है । शीला स्विंग इस विचारधारा का पक्ष लेती हुई कहती है – 'मैं भी इसी नतीजे पर पहुँची हूँ कि शादी का रिवाज इन्सानों से धोखाधडी, झूठ और अत्याचारों को जगाता है । इसे हटा दीजिए, फिर देखिए, औरत मर्द के रिश्तें कितनी जल्दी नार्मल हो जायेंगी।'[14] अर्थात् यदि विवाह केवल जाति, परिवार, कुल के आधार पर न करके, दोनों के रुचि के आधार पर किया जाए तो ज्यादा ठीक हों दृ 'शादी और उसका मारल कोड समाज को उठाने के बजाय गिराते हैं । इन्हें खत्म कर देना चाहिए।'[15]

नागरजी संबंधों में छूट देने के पक्षपाती हैं। मेरा खयाल है हमारे यहाँ के लड़कों की गंदी छेड़छाड़ का कारण यही है कि हमारे यहाँ स्त्री–पुरूषों के बीच में मुसलमानी मुगलिया जमाने का पर्दा पड़ चुका है। गांधी आंदोलन और नए युग की कृपा से हमारे लड़के–लड़कियाँ यद्यपि अब पहले से बहुत बदले हैं फिर भी हमारे यहाँ सामंती दुराचारों की चेतना उनके यौवन की रंगीन कल्पनाओं को उच्छृंखल बना जाती है।'[16] नागरजी ने परंपरागत नैतिकता और सतीत्व के आदर्शों का कसकर खण्डन किया है । यदि पुरुष और स्त्री को एक दूसरे को समझने का अवसर मिलें तो अनेक समस्याएँ अपने आप ही सुलझ जाती हैं– 'भूषण चाचाजी । जो मर्द–औरत एक साथ रहना चाहते हैं, उन्हें जबरदस्ती दूर रखिएगा तो वे मिलने की चेष्टा में बदमाश बनेंगे ही । उन्हें एक साथ रहने दीजिए बदमाशी खत्म हो जाएगी । .. आखिर उसे किसी मर्द के हवाले करिएगा ही ? जिसे वह चाहती है, वही क्या बुरा है ?

चौधरी – अरे भाई ब्याह भी तो कोई चीज है ?

भूषण – उसी से ब्याह भी कर लेगी ..'[17] यशपाल स्त्री को समाज में भोग्या नहीं अपितु सहकर्मिणी का स्थान देते हैं ।

ज्वलंत समस्याएँ : यशपाल ने अपने उपन्यासों में शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए श्रमिक संगठनों की आवश्यकता पर जोर दिया– 'यूनियन को तू क्या समझता है ? सौ आदमी इकट्ठे हो जाए .. तो पहाड को धकेल दें । और अकेला–अकेला ड्राइवर क्या है ? जैसे गडेरी चूसकर फेंक दो ।'[18] जब तक मजदूर एकत्र होकर अपने अधिकार के लिए संघर्ष नहीं करेंगे तब तक कुछ नहीं बनेगा । 'मजदूरों में इस शक्ति को जो आकाश में गरजनेवाली बिजली की भाँति दुर्ममनीय है, कैसे संगठन के तार द्वारा क्रांति के उपयोग में लाया जा सकता है।'[19]

मुस्लिम और हिंदू वैमनस्य के परिणामस्वरूप देश के अनेक स्थानों पर सांप्रदायिक दंगे हुए और हजारों लाखों लोगों को उसके घातक परिणाम भुगतने पड़े । यशपाल ने विभाजन का दृश्य अपनी आँखों से देखा था– चाहे हिन्दू हो या मुसलमान दोनों ही अपनी सांप्रदायिक भावनाओं से प्रेरित होकर किस प्रकार जहर उगलते थे दृ 'झूठ सच' में इसका बड़ा ही सजीव वर्णन है – 'तास्सुब की इंतहा..। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कारकून पर लीगी प्रोफेसर का कहरा मौत विर जरिए से मालूम हुआ है कि सनातन धर्म कालेज के तालिबइल्म सोमराज साहनी पर अरसे से लीगी प्रोफेसर दीन मुहम्मद की नाराजगी चली आ रही थी । वह तास्सुब का शिकार होने से बच नहीं सका । लीग को सल्तनत क्या रंग लावेगी।'[20] प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ बात का बतगंड बना सांप्रदायिकता को और भी उभारती थीं ।

नारी के अधिकार की रक्षा : नारी संबंधी दृष्टिकोण में परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे थे । नारी को सामाजिक मुक्ति दिलाने के लिए किए जाने वाले संघर्ष को समर्थन देने की प्रेरणा भी दी । दूर गाँवों की नारी में भी जागृति के चिह्न आ गए थे और वह भी अपने सामाजिक अस्तित्व के प्रति जागरूक हो रही थी । पिछले इलाकों की नारियाँ भी आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी हो रही है । वे अब स्पष्ट रूप से यह कहती है कि नारी के लिए भी वहीं अधिकार है जो पुरुष के लिए – 'तो इसमें क्या हर्ज हुजूर । जिनगी और जहान और के लिए नहीं है क्या ?'[21] आर्थिक दृष्टि से जो नारियाँ स्वतंत्र हैं वे रूढियों से उतनी नहीं डरती – उनके व्यक्तित्व को विकास स्वतंत्र और पुरुष के समानांतर ही हो रहा था– वंशी उनमें नहीं है जो आदमियों की कमाई खाती है । वह स्वयं कमा सकती है । बल्कि कमाती है । बाजार मछली लेकर जाती है । सब ऊपर की देखभाल करती है।'[22] अब उसे नारी का वही पुराना सब कुछ सहनेवाला और फिर भी मौन रहने वाला रूप पसंद नहीं आता । मैं अपना रास्ता आप बनाऊँगी, सारिका, मुझे किसी की परवाह नहीं है । मुझे एक तरह का घिसापिटा जीवन पसंद नहीं है । मैं जीवन के रंग, उसके उतार–चढ़ाव देखना चाहती हूँ सारिका । दुख देखना चाहती हूँ तो सुख भी ।'[23]

नारी में जो नवीन चेतना का प्रकाश फैला, उसके मूल में युगीन चेतना का प्रभाव काम कर रहा है । लेखकों ने इसी युग चेतना का बढ़कर समर्थन किया, जिसके

अनुसार नारी के अधिकारों की रक्षा एवं उन्हें तद्वत नवीन सुविधाएँ तथा समान अधिकार दिलाने के यत्न जारी थे । ये नारियाँ शहरों की नारियाँ नहीं है अपितु सुदुर पिछडे इलाकों में रहनेवाली है । प्रारंभ के उपन्यासों की नयी 'धनिया' आदि और इन उपन्यासों की नारियों की चेतना और दृष्टिकोण दोनों में हो, बहुत परिवर्तन आ गया है ।

निष्कर्ष

भारतीय समाज की प्रगति के मार्ग में जातिवाद, सांप्रदायिकता और धर्म जैसे बाधक तत्वों को लेकर प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों ने गहरा व्यंग्य किया है । जब तक इन तत्वों का बहिष्कार भारतीय जन-जीवन से नहीं होता तब तक प्रगति की गति देश और समाज दोनों की ही धीमी रहेगी । उपन्यासकार समाज का सबसे संवेदनशील सदस्य होता है । अत्याचार और शोषण का वह डटकर विरोध करता है । सन् 1936 से कुछ पहले ही यहाँ बुद्धिजीवी वर्ग पर मॉर्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव पडने लग था । मॉर्क्स ने एक ठोस इहलौकिक जीवन दर्शन दिया और पीडित मानवता के कल्याण के द्वारा उन्मुक्त कर दिया। स्वाभाविक या कि हमारे देश के लेखकों पर भी उसके जीवन दर्शन का प्रभाव पड़ता। कुछ रचनात्मक साहित्यकारों ने युग के माँग के फलस्वरूप स्वयं उस जीवन दर्शन में विश्वास करने के कारण अपनी कृतियों में उसका आकलन किया। ऐसे लोगों में यशपाल प्रमुख हैं। यशपाल ने अर्थगत विषमताओं को लेते हुए जगह-जगह वर्ग-संघर्ष पर बल दिया है जो मार्क्सवादी विचारधारा में प्रमुख रूप से चित्रित किया जाता है। अमृतलाल नागर और रेणु की कोटि के उपन्यासकार भारतीय जीवन और समाज को चित्रित करते समय प्रेमचंद के उदारवादी दृष्टिकोण को ही अपनाते हैं । युग और समाज और रचनात्मक कृतियों का संबंध जटिल होता है, फिर भी निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यह युग जागरण का युग था और मुक्ति की कामना भारतीय समाज में व्याप्त थी ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 डॉ. सुषमा धवन - हिंदी उपन्यास

2 इलाचंद जोशी - सन्यासी

3 अज्ञेय - शेखर एक जीवनी

4 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी दृ बाणभट्ट की आत्मकथा

5 उपेन्द्रनाथ अश्क - गर्म राख

6 उपेन्द्रनाथ अश्क - गिरती दीवारें

7 नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ

8 फणिश्वर नाथ रेणु - परती परिकथा

9 रेणु - मैला आँचल

10 नागार्जुन - वरुण के बेटे

11 अमृतलाल नागर - बूँद और समुद्र

12 अमृतलाल नागर - ये कोठे बालियाँ

13 यशपाल - मनुष्य के रूप

14 यशपाल - देश द्रोही

15 यशपाल - दादा कामरेड

16 यशपाल - झूठा सच

17 उदयशंकर भट्ट - सागर, लहरें और मनुष्य

18 डॉ. मुकुंद द्विवेदी - हिंदी उपन्यस युग चेतन और पाठकीय संवेदना

मुक्तिबोध की रचनाओं का शिल्प और विखंडनवाद (‘अंधेरे में’ और ‘ब्रह्मराक्षस’)

डॉ. सुजाता गुप्ता
अतिथि शिक्षक, जगदीश नंदन महाविद्यालय, मधुबनी (बिहार)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

बिखराव तथा विखंडन की मानसिकता उत्तर आधुनिक विमर्श का एक अभिन्न हिस्सा है। व्यक्ति मानस की इसी विस्तृत एवं विखंडित, साथ ही जटिल कल्पनाओं का आयतन है, मुक्तिबोध की कविताएँ। मनुष्य की जीवन स्थितियों का विखंडन एवं बदलते सामाजिक परिदृश्य के अलावा मनुष्य की अपनी निजी सत्ता है, जिसमें वह और उसके विचार हैं, इसका परिचायक है मुक्तिबोध की कविताएँ। महायुद्ध एवं व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा के बीच अदना-सा मनुष्य है, लेकिन उसका मस्तिष्क अत्यंत ही विराट और भव्य है। जिसमें विचार, संघर्ष, ज्ञान-विज्ञान एवं सूचनाओं का व्यापक समावेश है। युद्ध की व्याप्ति केवल बाह्यजगत में ही नहीं दिखलाई पड़ती, बल्कि मानव का अंतःकरण निरंतर द्वंद्व एवं संघर्षों में पिसता रहता है ।

संकेताक्षर : *विखंडन, साकारात्मक, नाकारात्मक, संघर्षरत, जिजीविषा, अस्तित्ववाद, अनुभूतिशील, तार्किक, द्वंद्व, फैंटेसी, प्रतीकात्मक, मिथ, अहमण्यता, नाटकीयता।*

आलेख ‘‘विखंडन विषयक विचार चिंतन वस्तुतः आधुनिक काल की पैदाइश हैं। विखंडन मूलतः एक वृति है, एक भाव है,इसमें सकारात्मकता की अपेक्षा नकारात्मकता निहित होती है। यह एक ऐसी क्रिया भाव है, जिसमें विकास की अपेक्षा विनाश, जोड़ने की अपेक्षा तोड़ना, बनाने की अपेक्षा बिगाड़ना, रोकने की अपेक्षा काटना,समेटने की अपेक्षा बिखेरना और जुटाने की अपेक्षा बाँटना निहित होता है।’’[1] यह धारणा मुक्तिबोध की रचनाओं में ठोस जमीन पाती दिखलाई देती है। मनुष्य की संरचना को सामान्य एवं सरल से हटकर, उसे एक विखंडित रूप में परिवर्तित कर प्रत्यक्ष दिखलाते हैं, मुक्तिबोध। मनुष्य का प्रत्यक्ष रूप उलझा, विकृत, कुछ कर पाने की छटपटाहट और कुछ ना कर सकने की टीस, ज्ञान-विज्ञान,विश्व सभ्यताएं और संस्कृतियों का दबाव, इतना सब कुछ बस कुछ भार के मस्तिष्क में समाहित होता है। इतनी चीजों का लगातार घर्षण उसकी ऊष्मा जिसमें केवल और केवल इजाफा ही संभव है- जिसकी पुनः संरचना नहीं होती तो, फिर वह मनुष्य सरल और सामान्य कैसे हो सकता है! प्रत्येक मनुष्य की एक जटिल संरचना है और इस सत्य का सरलीकरण संभव नहीं है। दूसरी ओर ‘खंडन’ शब्द से ‘विखंडन’ शब्द की निर्मित हुई है, जिसका अर्थ मानक हिंदी कोष में दिया गया है, ‘‘पहला, खंड खंड अथवा टुकड़े करने की क्रिया का भाव, दूसरा विभक्त या विभाजित करना, हिस्सों में बांटना,तीसरा कही हुई कोई बात या प्रतिपादित किए हुए सिद्धांतों के दोष दिखला कर अमान्य या गलत ठहराना (कंट्राडिक्शन) चौथा अपने संबंध में किसी द्वारा लगाए आरोप या अभियोग का निराकरण करते हुए, उसे झूठा सिद्ध करना (रिफ्यूटेशन)’’।[2] अनुभव और विचार, दोनों ही स्तर-पर मुक्तिबोध सरलीकरण के विरुद्ध रहे हैं। उनके विधान जटिलता में प्रस्तुत हैं। उन्होंने उन सभी काव्यों को परिवेशगत सामान्यीकृत ना कर, जटिलता में प्रस्तुत किया है। मुक्तिबोध ने आज के, संघर्षरत जीवन को उसके प्रत्येक खंडों पर लड़ते, टूटते, थकते मनुष्य के संघर्षों को देख रचनात्मक रूप दिया है। इन रूपों में मनुष्य एक सामान्य और संघर्षरत व्यक्तित्व है। उसकी अदम्य जिजीविषा और जिम्मेदारी को आगे बढ़कर स्वीकारना, मनुष्य की अपराजेयता का द्योतक है। एक और मध्य वर्ग की सुविधा जीविता और आदर्शवादिता का द्वंद और दूसरी ओर अस्तित्ववादी चिंतन का उदय, खंडित होती मान्यताएं, मुक्तिबोध इसी द्वंद एवं तनाव के कवि हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध का वातावरण ही बौद्धिकता एवं ज्ञान विज्ञान का युग था। प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान की तार्किकता एवं वैज्ञानिकता से प्रभावित था। ‘विखंडन’ शब्द अंग्रेजी के ‘डी कांट्रडिक्शन’ का हिंदी रूप राय है।

इसमें भी क्षति पहुंचाने, काट लेने, तोड़ देने, नष्ट करने आदि का भाव निहित है। विखंडन शब्द नकारात्मक सोच विचार और व्यवहार को दर्शाता है। इसमें रचनात्मक मानसिकता समावेशित होती है। आधुनिक काल में व्यक्ति के आचरण में विखंडनवादी व्यवहार बढ़ रहा है। मुक्तिबोध का साहित्य भी इसी दृष्टि को दर्शाता है। विखंडन–विमर्श भी आधुनिक काल का ही चिंतन विषय है। मुक्तिबोध की कविताओं की बुनावट स्वप्नों जैसी होती है जिसमें स्पष्ट कुछ भी नहीं दिखता। सब कुछ रहस्यमई डरावना एवं नाटकीयता से भरपूर होता है। दृश्य की सघनता अंधेरे के साथ बढ़ती जाती है। मुक्तिबोध की कविताओं में सृजन की कई अंतर प्रक्रिया दिखलाई पड़ती है। यदि, आप एक अन्वेषक की भांति, उनकी कविताओं की जांच करते हैं। वैज्ञानिक कल्पना हो तो काव्य का प्रस्तुतिकरण रहस्यमय–सा हो जाता है। कविताओं के प्रयोग, चित्र, बिंब और परिवेश अपनी–अपनी जटिलताओं में भयावह दिखलाई पड़ते हैं। सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उनकी कविताओं में कभी भी सुकून महसूस नहीं होता। बल्कि एक सजग रचनात्मकता होती है। जो यथार्थ को उसके सारे खंडित अस्तित्व के साथ स्वीकार करती चली जाती है। इन कविताओं की बूनावट जटिल और दुरुह होती है। सर्वाधिक कठिनाई दृश्यों को समझने में आती है, क्योंकि कविताओं का संदेश जितना सपाट होता है, उसकी प्रस्तुति उतनी ही अधिक रहस्यमयी, डरावनी और नाटकीयता से भरपूर होती है। डॉ. नामवर सिंह के शब्दों में ''नई कविता में मुक्तिबोध की भी स्थिति वही है जो छायावाद में निराला की थी। निराला के समान ही मुक्तिबोध ने भी अपने युग के सामान्य काव्य–मूल्यों को प्रतिफलित करने के साथ ही उसकी सीमा को चुनौती देकर, उस सर्जनात्मक विशिष्टता को चरितार्थ किया, जिससे समकालीन काव्य का सही मूल्यांकन संभव हो सका है।''[3] उनकी काव्य–कला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने मानव जीवन की जटिल संवेदना और उसके अंतर्द्वंदों की सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए, फैंटेसियों का कलात्मक उपयोग किया, जिसे मुक्तिबोध की काव्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि कहा जा सकता है। फैंटेसी में जासूसी कला के समान परिकल्पनाओं और विचारों की, एक के बाद एक क्रमशः अनेक परतें खुलती जाती हैं। यहां कवि की मस्तिष्क की उर्वरता के सच्चे दर्शन होते हैं। मुक्तिबोध की शायद ही कोई ऐसी कविता हो, जहां उन्होंने जटिल अनुभूतियों की अभिव्यंजना के लिए फैंटेसी का आश्रय ना लिया हो। 'अंधेरे में' रचना की कुछ पंक्तियों के द्वारा इसे समझा जा सकता है–

खुद–ब–खुद
कोई बड़ा चेहरा बन जाता है,
स्वयमपि
मुख बन जाता है दिवाल पर,
नुकीली नाक और
भव्य ललाट है,
दृढ़ हनु
कोई अनजानी अन–पहचानी आकृति।
कौन वह दिखाई जो देता,
पर नहीं जाना जाता है!!
कौन मनु ?

फैंटेसी की कला को उन्होंने अधिक तरह के प्रकृति के नानाविध उपकरणों से सुसज्जित किया है। 'लकड़ी का रावण' नामक कविता उक्त कला का उत्कृष्ट प्रदर्शन है। प्रकृति के अतिरिक्त उन्होंने अधिकतर प्रकृति में पाए जाने वाले पशु–पक्षियों को भी प्रतीकात्मक रूप में प्रयुक्त किया है। कुँवर नारायण ने मुक्तिबोध पर लिखा है कि, ''मुक्तिबोध का कथ्य या संदेश जितना स्पष्ट और सीधा है उनकी कविताओं की बनावट उतनी ही जटिल और उलझी हुई है, वे सहज बोधगम्य नहीं है'' मुक्तिबोध की रचनाओं में कहीं–कहीं अस्पष्टता, दुरुहता का आभास होने लगता है और यह अक्सर वहां होता है, जहां कवि ने फैंटेसी के बहुत लंबे चौड़े ताने–बाने का जाल बिछाया है। 'चांद का मुंह टेढ़ा है' में मुक्तिबोध की अधिकांश कविताओं का संकलन है, अतः यह मुक्तिबोध के काव्यबोध के लिए बहुत ही पर्याप्त उपाद्य है। इन कविताओं के पर्याप्त विषय वैविध्य हैं। कवि के लिए कविश्रम साध्य एवं मस्तिष्क की क्षमताओं का बल प्रयोग है। स्वभावतः इनकी कविताओं में बुद्धिजन प्रतीक विधान पर्याप्त मात्रा में है। इनकी कविताओं से स्पष्ट है कि वे सच्चे अर्थों में एक अनुभूतिशील कवि थे। आधुनिक हिंदी साहित्य को इनसे बहुत ही आशाएं थी। नामवर सिंह ने तनाव को द्वंद से ही उत्पन्न बतलाया है, जिसे मुक्तिबोध और अज्ञेय–दोनों ने ही स्वीकार किया है। लेकिन नामवर सिंह ने मुक्तिबोध द्वारा निरूपित तनाव को ही वांछनीय माना है। परिवेश और स्वयं के साथ उपजा दोहरा तनाव 'ब्रह्मराक्षस' में दिखलाई देता है। ब्रह्मराक्षस, एक बौद्धिक एवं तार्किक चरित्र के रूप में काव्य में आया है। कवि की रचनाएं सदैव सामान्य से हटकर होती हैं, जिसमें वह अपने भाव एवं विचारों को सटीक रूप देने के लिए प्रभावमेयता की दृष्टि से अनेक प्रतीक एवं फैंटेसी की रचना करता है। मुक्तिबोध के अनुसार, ''फैण्टेसी में मन की निगूढ़ वृत्तियों का अनुभूत जीवन

ISSN 2277-5587

समस्याओं का इच्छित जीवन स्थितियों का प्रक्षेप होता है।''[5] ब्रह्मराक्षस कविता में पौराणिक बिंब को लेकर फैंटेसी की रचना की गई है। ब्रह्मराक्षस, एक गुरु का प्रतीक है, जिसमें ज्ञान की अतिशयता है, लेकिन उसकी सार्थकता कुछ नहीं है। वह ज्ञान ही उसे आतंकित कर रहा है। वह अपनी महानता में इतना खोया हुआ है कि कुछ न कर पाने की छटपटाहट उसे मथ रही है। यहां एक मिथ है, जो अपनी परंपरा का पोषक है। विचारों में आयी क्रांति और विज्ञान, मशीनीकरण की दुनिया ने पूर्ववर्ती स्थापनाओं को खंडित कर दिया, जिसमें साहित्य भी था। मुक्तिबोध की कविताओं का शिल्प, स्थापित एवं रूढ़िवादी प्रचलन से अलग एक निजी प्रक्रिया है। कभी अपनी जटिलताओं को नवीन शिल्प में गढ़ता है। इस फैंटेसी में विडंबना और विखंडनवाद का क्रूर यथार्थ छिपा है। कभी कि यह सृजनात्मकता, विद्रूपता एवं विसंगतियों को एक नयी रचनात्मक भूमि देता है,तो यह काव्य में एक विलक्षण बात थी। कवि की कविताएं, विशेष रूप से लंबी कविताओं का भाव विद्रूप हैं। बिंबो एवं चित्रों का भरपूर इस्तेमाल हुआ है। कविताएं परिवेश की भांति ही जटिल हैं। 'ब्रह्मराक्षस' कविता का अंशः–

बावड़ी की उन गहराइयों में शून्य
ब्रह्मराक्षस एक पैठा है,
व भीतर से उमड़ती गूँज की भी गूँज,
हड़बड़ाहट शब्द पागल से।
गहन अनुमानिता
तन की मलिनता
दूर करने के लिए प्रतिपल
पाप छाया दूर करने के लिए, दिन–रात
स्वच्छ करने –
ब्रह्मराक्षस
घिस रहा है देह
हाथ के पंजे बराबर,
बाँह–छाती–मुँह छपाछप
खूब करते साफ,
फिर भी मैल
फिर भी मैल!!

इस जटिलता को अपनी पूर्णता में पेश करने के लिए मुक्तिबोध ऐसे रहस्यमय वातावरण की रचना करते हैं, जिसका लंबा–लंबा विन्यास उलझावन या नाटकीय रहता है। फंतासी का प्रयोग कविताओं में मिथकीय बुनावट और और जिंदगी की दहशत, उसकी गहरी व्यग्रता, अर्ध विक्षिप्त मनःस्थितियां और एक बुरे सपने की तरह सामान्य मनुष्य का विकृत और बिखरा यथार्थ सब कुछ समकालीन जीवन को एक भयावह सपने की ओर ले जाता है । 'अंधेरे में' कविता की पंक्तियां स्पष्ट है :–

वह रहस्यमय व्यक्ति
अब तक ना पाई गई मेरी अभिव्यक्ति है,
पूर्ण अवस्था वह,
निज संभावनाओं, निहित प्रभाओं, प्रतिभाओं की
मेरे परिपूर्ण का आविर्भाव,
हृदय में रिस रहे ज्ञान का तनाव वह,
आत्मा की प्रतिमा।

मिथक को कविता की केंद्रीय भूमि बनाना उनकी कविता को उनके अनुभवों का बहुआयामी प्रदर्शन है। मिथकीय ढांचे में डालकर, उनका यह विलक्षण अनुभव काव्य को एक सर्वकालिक उपयोगिता प्रदान करता है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह कि उनकी कविताओं में स्थिरता की कमी है। विचारों की अभिव्यक्ति इतनी इतनी त्वरित है, जिसमें समाहित एक अदना –सा मनुष्य बिल्कुल ही हतप्रभ रह जाता है। जैसे 'ब्रह्मराक्षस' कविता में मनुष्य की इसी छटपटाहट को दर्शाया गया है। यह एक मिथ है, जो अपनी परंपरा का पोषक है। बदलती परिस्थितियों के अनुसार वह अर्थात ब्रह्मराक्षस खुद को नहीं बदल सका है, जिस कारण उसमें अहमण्यता का भाव आ गया है । उसका ज्ञान अहंकार में परिवर्तित हो गया है, इसीलिए वह सारे प्राकृतिक उपादान को भी अपने से निम्न स्तर मानता है। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो, सूर्य चंद्रमा आदि सभी उसे झुककर प्रणाम करते हैं। सभी उसकी वंदना करते हैं। वह अपनी महानता में इस कदर खो गया है कि ज्ञान के तर्क उसके शरीर पर मैल की तरह जम गए हैं। वह उन से पीछा छुड़ाने के लिए बार–बार अपने शरीर को रगड़े जा रहा है। कविता में नाटकीयता को प्रस्तुत किया गया है। वातावरण, रहस्य, सघनता, चरित्र और प्रकाश योजना, दृश्य बंध हैं, यह सभी चीजें फेंटेसी के मुख्य्य शर्तो के रूप में काव्य में प्रयुक्त होती दिखलाई पड़ती है। बाबड़ी, का प्रयोग रहस्य की अवधारणा के लिए किया गया है, जिसकी अतल गहराइयों में एक ब्रह्मराक्षस बैठा है। कुल मिलाकर यहां एक तिलिस्मी वातावरण का निर्माण होता दिखलाई पड़ता है, जिसमें नाटकीयता अपने चरम पर होती है। पूरे दृश्य पटल पर एक ऐसे रहस्य की अवधारणा होती है,जिससे कि समूचा दृश्य एक कौतूहल पूर्ण वातावरण में बदल जाता है। मुक्तिबोध उसी ब्रह्मराक्षस के 'सजल उर शिष्य' होकर उसके अधूरे कार्य को, उसकी वेदना के स्रोत को संगतपूर्ण निष्कर्षो तक पहुंचाना चाहते हैं।

शायद मुक्तिबोध सामान्य जीवन में भी इसी प्रकार की तार्किकता रखते थे। मुक्तिबोध शिष्य की भूमिका में है और ब्रह्मराक्षस कल्पित गुरु की भूमिका में। गुरु, ज्ञान का प्रारंभिक स्रोत है, जिसकी आज महत्ता नहीं है। कविता परंपराओं की टक्कराहट है। मुक्तिबोध का जीवन भी उसी गुरु की भांति ट्रेजेडी में पिसा दिखाई देता है।परंपराओं की टक्कराहट इस कविता का मूल भाव है। अपने आप में निर्वासन को भोगता अतल गहराइयों में डूबा हुआ जीवन कुछ–न–कुछ मुक्तिबोध से सामंजस्य रखता है। अफवाह, गहरे जल के भीतर दूर तक चली गई सीढ़ियां हैं। बीहड़ उजाड़ में बने ऊंचे–ऊंचे जीने हैं, मस्तिष्क के भीतर एक और अवचेतन मस्तिष्क उसके भीतर एक कक्ष और कक्ष के भीतर एक गुप्त प्रकोष्ठ। मुक्तिबोध की लंबी कविताएं लकड़ी का रावण, ब्रह्मराक्षस, अंधेरे में नई कविता की प्रदीर्घ कविताएँ कही जा सकती हैं। इसमें कवि ने फेंटेसी, प्रतीकात्मकता और अंतर्द्वंद आदि स्थितियों की कलात्मक अभिव्यंजना की है। एक ओर मध्यवर्गीय सुविधाजीविता और आदर्शवादिता का द्वंद और दूसरी ओर विखंडनवादी चिंतन का उदय, मुक्तिबोध इसी द्वंद एवं तनाव के कवि हैं। प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान की तार्किकता एवं वैज्ञानिकता से प्रभावित था और मुक्तिबोध अपवाद नहीं थे।अशोक वाजपेयी जी ने लिखा है,''अपनी सारी दुरुहता और उबड़–खाबड़पन के बावजूद मुक्तिबोध आज की कविता की उग्रता, सामाजिक चेतना, सृजनात्मक साहस और वैचारिक प्रतिश्रुति के उद्‌गम कवि हैं।''[6] विघटनवादी मानसिकता एक बहुत बड़ा अवरोध है। बस यहीं मुक्तिबोध की कविताएं विखंडनवाद से विचलित होती दिखलाई पड़ती हैं, क्योंकि मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में जुड़ी अनुभूतियों को व्यक्तिगत संवेदना के स्तर से हटाकर, अपने परिवेश के गहरे स्तर पर जोड़ा है। उनकी कविताएं अनेक आवर्त में लिपटी तथा कवि को आलोचक दृष्टि, कथा रचनात्मक संदर्भ में इनकी सार्थकता और निरक्षरता की जांच करती चलती है। सहज मानवीय रूप से मुक्तिबोध को प्रगतिवादी कविता के संदर्भ में रखा जाता है परन्तु मुख्य रूप से वह प्रगतिवादी और नई कविता के बीच की विचार धारा के कवि कहे जा सकते हैं। उनकी कविता में और सुरक्षा और निश्चय की भावना अधिक है। जिसका समाधान व प्रगतिशील दृष्टिकोण से ढूंढने का प्रयास तो करते हैं मगर शिल्प का खुरदुरापन उन्हें कला के तीन महत्वपूर्ण जनों से जोड़ता है।' एक साहित्यिक की डायरी में 'वे लिखते हैं कि पहला चरण ; जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव। दूसरा क्षण ; अनुभव का अपने कसकते दुखते हुए मूल्यों से पृथक हो जाना, एक ऐसी फैंटेसी का रूप धारण कर लेना, मानो वह आंख के सामने ही खड़ी हो। तीसरा चरण ; फैंटेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया और उस प्रक्रिया के परिपूर्णता तक सृजन का जो कार्य होता है उससे कृति विकसित होती जाती है (एक साहित्यिक की डायरी)। मुख्य रूप से हम कहे तो मुक्तिबोध की कविताओं का शिल्प सृजन की कई नयी रचना, संरचनाओं को जोड़ता है। इन अंतः प्रक्रियाओं से चलते हुए एक व्यक्ति ही मानो एक वैज्ञानिक कल्पनाशीलता में घुलता जाता है और इस प्रकार से वह अनेक बिंब प्रतीक चित्र और संकेतों का प्रयोग करता दिखलाई पड़ता है। परिवेश की जटिलता, उसका विखंडन, मुक्तिबोध की कविताओं में विशेष रुप से 'अंधेरे में' और 'ब्रह्मराक्षस' में स्पष्ट नजर आता है। कविताओं का सौंदर्य, बेचैनी के वातावरण में सृजित हुआ है। सुकून कहीं नहीं है, यदि है तो, बस इतना कि जटिलताएं और उलझनें मनुष्य को किस प्रकार से बेचैन बना रही हैं। मुख्य रूप से मुक्तिबोध जीवन की भयावहता को अपने काव्य में चित्र करते हैं और यह भयावहता कुछ–कुछ हद तक विखंडन से जरूर मिलती–जुलती दिखलाई पड़ती है। डॉक्टर इंद्रनाथ मदान के अनुसार, ''मुक्तिबोध पर टॉलस्टॉय, वर्गसां और मार्क्सवाद का स्पष्ट प्रभाव है। इनकी कविताओं में तथाकथित अस्तित्ववादियों के क्षणवाद के स्थान पर शाश्वत, आशावाद जीवन की विद्रूपता और क्षणभंगुरता के स्थान पर उसकी सुंदरता और गतिशीलता,निराशा के स्थान पर आस्था तथा व्यक्ति के दर्पित अहम के स्थान पर समस्त की चेतना चित्रित है। काव्य सृजन के प्रति उनका दृष्टिकोण सर्वदा प्रगतिशील रहा है, अतः इन्हें आधुनिक हिंदी कविता के बाद के किसी सकरे कटघरे में सीमित करना उचित नहीं।''[7]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ. अर्जुन चह्वाण, विमर्श के विविध आयाम, पृ–16*
2. *वही, पृ–61–62*
3. *डॉ.नामवर सिंह, कविता के नये प्रतिमान, पृ–54*
4. *'मुक्तिबोध की कविता की बनावट' – कुँवर नारायण, कविता का अनुवाद*
5. *गजानन माधव मुक्तिबोध, एक साहित्यिक की डायरी–, पृ.21*
6. *अशोक वाजपेयी, भूरी भूरी खाक धूल(भूमिका)*
7. *संपा लक्ष्मण दत्त, गजानन माधव मुक्तिबोध, (इन्द्रनाथ मदान), पृ–95*

ISSN 2277-5587

गाँव का प्रतिनिधित्व करता मैला आँचल

डॉ. वसीम राजा
शोद्यार्थी, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

गाँव का प्रतिनिधित्व करता 'मैला आँचल' उपन्यास भारत के सभी गाँवों को केद्र में रखकर लिखा गया है। इसमें अँचल विशेष की भाषा का अधिकाधिक उपयोग किया गया है। ताकि इस जन समुदाय की इच्छा–आकांक्षा, रीति–रिवाज, पर्व–त्यौहार, सोच–विचार, आचार–व्यवहार को ज्यादा से ज्यादा प्रामाणिक रूप में चित्रित किया जा सके। इतना ही नहीं 'रेणु' ने बिहार के मिथिला अंचल को आधार बनाकर जहाँ इस अँचल के जन सामान्य के सुख–दुःख, रहन–सहन, संस्कृति–संघर्ष और लोक–जीवन को अत्यंत कुशलता एवं कलात्मकता से इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है। सचमुच भारत गाँवो वाला देश है यहाँ की सत्तर प्रतिशत जनता आज भी गाँवों में निवास करती है। गाँव का वातावरण स्वच्छ और सरल होता है। रोजगार की तलाश में लोग जरूर शहर की ओर पलायन करते है पर जब कोई मुसीबत आती है तो लोग अपने गाँव को ही याद करते है आज भी गाँँव की राजनीति होती है। विकास –विकास रटा जाता है पर यह विकास कभी बड़ा नहीं हो पाता हैं। गाँँव में आज भी लोग मूलभुत सुविधाओं से वंचित है। बीमार का सही ढंग से उपचार नहीं हो पाता है। गाँवों के लोगों का इलाज झोलाछाप डाक्टरों के भरोसे ही चलता है। आज भी जब टेक्नोलाजी इतना विकसित है फिर भी लोग गंदी, भ्रष्ट राजनीति, धार्मिक आडम्बरों के कारणगाँव आज भी पिछड़ा ही प्रतीत होता है। किसी को भी धर्म के नाम पर ठगा जा सकता है।

संकेताक्षर : *मैला आंचल, विकास, स्थानीयता, रोजगार, आँचलिक, कथानक, समाप्त, क्षुद्रता, अवसरवादिता।*

गाँव का विकास न होना इस देश के लिए एक दुर्घटना है।
पिछड़े इलाकों में विकास की रोशनी पहुँचना एक सपना है।।
उपन्यास को पढ़ा तो जाना ग्रामीण जीवन में सब अपना है।
'मैला आँचल' आंचलिकता की सर्वश्रेष्ठ उतकृष्ट रचना है।।

''मैला आँचल'' उपन्यास में फणीश्वरनाथ 'रेणु' जी ने बिहार के तत्कालीन पूर्णियाँ और वर्तमान के अररिया जिले के 'मेरीगंज' नामक गाँव का संपूर्ण वर्णन किया गया है। यही कारण है की रेणु ने अपने 'मैला आँचल' उपन्यास के कथानक का आधार तत्कालीन पूर्णियाँ के विशाल क्षेत्र को न बनाकर इस क्षेत्र के केवल एक गाँव 'मेरीगंज' को ही केन्द्र में रखा है और यह गाँव भी पिछड़े गाँव के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया गया है। जो भारत के समस्त गाँवों का प्रतिनिधित्व करता है। ''कथा की सारी अच्छाईयों और बुराईयों के साथ साहित्य की दहलीज पर आ खड़ा हुआ हूँ, पता नहीं अच्छा किया या बुरा। जो भी हो, अपनी निष्ठा में कमी महसूस नहीं करता''।[1]

'मैला आँचल' उपन्यास में अँचल विशेष की भाषा का अधिकाधिक उपयोग किया गया है। ताकि इस जन समुदाय की इच्छा–आकांक्षा, रीति–रिवाज, पर्व–त्यौहार, सोच–विचार, आचार–व्यवहार को ज्यादा से ज्यादा प्रामाणिक रूप में चित्रित किया जा सके। इतना ही नहीं 'रेणु' ने बिहार के मिथिला अंचल को आधार बनाकर जहाँ इस अँचल के जन सामान्य के सुख–दुःख, रहन–सहन, संस्कृति–संघर्ष और लोक–जीवन को अत्यंत कुशलता एवं कलात्मकता से इस

उपन्यास में प्रस्तुत किया है। सचमुच भारत गाँवो वाला देश है यहाँ की सत्तर प्रतिशत जनता आज भी गाँवों में निवास करती है। गाँव का वातावरण स्वच्छ और सरल होता है। रोजगार की तलाश में लोग जरुर शहर की ओर पलायन करते है पर जब कोई मुसीबत आती है तो लोग अपने गाँव को ही याद करते है। 'रेणु' ने अपने आंचलिक उपन्यास मैला आँँचल की प्रस्तावना में कहा है, यह है 'मैला आँचल' एक आँचलिक उपन्यास। कथानक है– पूर्णियाँँ। मैने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को–पिछड़े गाँवों का प्रतीक मानकर–इस उपन्यास–कथा का क्षेत्र बनाया है।[2]

'मेरीगंज' गाँँव की संपूर्ण पृष्ठभूमि–टोलों, समुदायों, वर्णों, संप्रदायों, जातियों, बिरादरियों, मठों, मंदिरों का है। जिससे रेणु जी खूब परिचित थे। इस गाँँव की स्थितियों, स्थानीयता से इस तरह परिचित थे कि इस गाँव के प्रत्येक घर के मुखिया ही नहीं, अन्य सदस्यों से भी उनकी बहुत अच्छी जान पहचान थी। यही वजह थी कि 'रेणु' गाँँव के कई लोगों को न सिर्फ नाम से जानते व पहचानते थे, अपितु उन्हें व्यक्तिगत रूप से जानते व पहचानते थें। यही वजह है कि उन्होंने इस गाँव को केन्द्र में रखकर अपनी सम्पूर्ण कथावस्तु सृजित किया है।

'मेरीगंज' एक बड़ा गाँव है, बारहों बरन के लोग रहते हैं। गाँव के पूरब एक धारा है, जिसे 'कमला नदी' कहते है। बरसात में कमला भर जाती है, बांकी मौसम में बड़े–बड़े गढ़ों में पानी जमा रहता है–मछलियों और कमल के फूलों से भरे हुए गढ़े ! पौष पूर्णिमा के दिन इन्हीं गढ़ों में कोशी –स्नान के लिए सुबह से शाम तक भीड़ लगी रहती है। रौतहट स्टेशन से हलवाई और परचून की दुकाने आती है, कमला मैया के महातम के बारे में गाँँव के लोग तरह–तरह की कहानियाँ कहते है। ...... गाँँव में किसी के यहाँ शादी–ब्याह या श्राद्ध का भोज हो, गृहपति स्नान करके, गले में कपड़े का खूँट डालकर, कमला मैया को पान–सुपारी से निमंत्रित करता था। इसके बाद पानी में हिलोरे उठने लगती थी, ठीक जैसे नील के हौज में नील मथा जा रहा हों। फिर किनारे पर चांदी के थालों, कटोरों और गिलासों का ढेर लग जाता था। गृहपति सभी बर्तनों को गिनकर ले जाता था और भोज समाप्त होते ही कमला मैया को लौटा आता था। लेकिन सभी की नीयत एक जैसी नहीं होती। एक बार एक गृहपति ने कुछ थालियाँ और कटोरे चुरा रखे। बस, उसी दिन से मैया ने बर्तनदान बंद कर दिया और उस गृहपति का तो वंश ही खत्म हो गया–एकदम निर्मूल! उस बिगड़ी नीयतवाले गृहपति के बारे में गाँँव में दो राये हैं– राजपूत टोली के लोगों का कहना है वह कायस्थ टोली का गृह पति था, कायस्थ टोली वाले कहते है, वह राजपूत था।''[3]

''राजपूतों और कायस्थों में पुश्तैनी मन–मुटाव और झगड़े होते आए है। ब्राह्मणों की संख्याँ कम है, इसलिए वे हमेशा तीसरी शक्ति का कर्तव्य पूरा करते रहे है। अभी कुछ दिनों से यादवों के दल ने भी जोर पकड़ा है।''[4]

'मेरीगंज' अँँचल की कई एक विशेषताओं को, 'रेणु' ने अपने प्रमुख पात्र डॉ. प्रशांत के माध्यम से भी प्रस्तुत किया है। यही वजह है कि 'मेरीगंज' की आंचलिक स्थिति का वर्णन डॉ. प्रशांत ने ममता को लिखें पत्र में कुछ इस तरह किया है। ''यह एक नई दुनिया है। इसे वज्र देहायत कह सकती हो। गाफव का चौंकीदार सप्ताह में एक बार हाजरी देने थाने पर जाता है, वह मेरी डाक लाएगा और ले जाएगा''[5]

'रेणु' ने अपने आँँचलिक उपन्यास 'मैला आँचल' के 'मेरीगंज' गाँव की सामान्य आँँचलिक स्थिति का वर्णन करते हुए आगे कहा हैं कि 'मेरीगंज' का सारा क्षेत्र मलेरिया से बुरी तरह ग्रस्त है। संथाल लोग बाहर से आए हैं, वे गाँँव के बाहर बसे हुउए है। गाँँव का मठ, जहाँँ का महंत सेवाराम है और बाद में रामदास बनता है, गाँँव की सारी हलचल का केन्द्र है। यहाँ तक कि मठ के भंडार में भी जात–पात का घृणित रूप उभरकर सामने आ जाता है। सच तो यह है कि यह उपन्यास आँँचलिक उपन्यास की प्रवृति आरंभ करने वाला उपन्यास तो है, लेकिन इसकी शक्ति केवल इसकी आँँचलिकता के कारण नहीं, वरन् एक ऐतिहासिक दौर के संक्रमण को आँँचलिकता के परिवेश में चित्रित करने के कारण भी है। यहाँ तक कि इस उपन्यास में देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक महत्व की भी बखूबी चर्चा की गई है।

इस तरह हम कह सकते है कि फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने 'मेरीगंज' की जो सामान्य आंचलिक स्थिति का जीवंत वर्णन अपने उपन्यास 'मैला आँँचल में किया है, वह अविस्मरणीय है। 'मेरीगंज' जैसे पिछड़े ग्रामअंचल में मलेरिया केंद्र खुल जाने से जन जीवन में जो एक तरह की हलचल पैदा हो जाती है, वह निःसंदेह एक यादगार घटना बन जाती है। सच तो यह है कि 'मेरीगंज' वस्तुतः केवल बिहार के एक अँँचल विशेष के पिछड़े

गाँवों का प्रतीक भर नहीं है, यह तो ग्रमवासिनी भारत माता के घुल भरे मैले से आँचल का संपूर्ण चित्र बन जाता है।

हम कह सकते हैं कि '' 'रेणु' की सृजनात्मकता का कमाल इस बात में है कि उन्होंने अपना कथानक इस प्रकार बुना है कि आँचलिकता के चित्रण के रूप में 'मेरीगंज' का भौगोलिक चित्र ही नहीं, वहाँ का सामाजिक और सांस्कृतिक चित्र भी उद्घाटित होता है, लेकिन इससे बढ़कर औपनिवेशिक शासन- व्यवस्था का नग्न चित्र भी साथ-साथ उद्घाटित होता है।[6]

'मैला आँचल' आँचलिक उपन्यास में स्वतंत्रता के पश्चात् नेताओं और नौकरशाही में व्याप्त भ्रष्टाचार यथार्थ वर्णन किया गया है। यही वजह है कि स्वतंत्रता के पश्चात् राजनैतिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि में भ्रष्टाचार की एक तरह से आपाधापी-सी मच गई इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि देश की स्थिति बड़ी दयनीय हो गई शासक दल के रूप में कांग्रेस पदस्थापित थी, मगर यही कांग्रेसी अपने स्वार्थ के लिए भ्रष्टाचार में लिप्त होते चले गए। यहाँ तक कि इन्होंने नौकरशाही को भी भ्रष्ट कर दिया। फलतः इसकी देखा-देखी अन्य राजनीतिक पार्टियों की भी कमोबेश यही स्थिति हो गई। इस उपन्यास में आजादी के बाद पैदा हुई राजनीतिक क्षुद्रताओं को बहुत गहराई से देखा गया है और इस नए वर्ग की अवसरवादिता और स्वार्थी वृति को बड़ी गहनता से उजागर किया गया है। इस उपन्यास में आजादी के साथ ही देश में फैले साम्प्रदायिक दंगों की चर्चा भी बड़ी साफगोई से की गई है। यहाँ तक कि आजादी के बाद स्वतंत्रता सैनानियों का भी बड़ा खराब हश्र होता है। इस तथ्य को भी 'रेणु' ने अपने इस उपन्यास में बड़ी गंभीरता से स्थान दिया है। आज भी गाँव की राजनीति होती है। विकास -विकास रटा जाता है पर यह विकास कभी बड़ा नहीं हो पाता हैं। गाँव में आज भी लोग मूलभुत सुविधाओं से वंचित है। बीमार का सही ढंग से उपचार नहीं हो पाता है। गाँवों के लोगों का इलाज झोलाछाप डाक्टरों के भरोसे ही चलता है। आज भी जब टेकनोलाजी इतना विकसित है फिर भी लोग गंदी, भ्रष्ट राजनीति, धार्मिक आडम्बरों के कारण गाँव आज भी पिछड़ा ही प्रतीत होता है। किसी को भी धर्म के नाम पर ठगा जा सकता है।

निष्कर्षत हम कह सकते हैं कि 'मैला आँचल' उपन्यास आज के ग्रामीण परिवेश का भी प्रतिनिधित्व करता है। आज हम लोग कोरोना महामारी में देखते है कि किस प्रकार शहर में काम करने वाले लोग गाँव की ओर लौट रहे है। अगर गाँव में रोजगार मिलने लगे, अन्य आवश्यक सुविधाएँ हो तो शहर की तरफ लोगों का पलायन रूक सकता है।

भारत गावों का देश है,
हमसब गावों से प्यार करें।
गाँवों में विकास नहीं!
गलती को सब स्वीकार करेंं।
राजनेता गवों को गोद लें।
गरीबों का उद्धार करें।
आओ फणीश्वरनाथ रेणु के
सपनो को साकार करें।।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *फणीश्वरनाथ 'रेणु' मैला आँचल पृष्ठ संख्या-05*
2. *फणीश्वरनाथ 'रेणु' मैला आँचल पृष्ठ संख्या-05*
3. *फणीश्वरनाथ 'रेणु' मैला आँचल पृष्ठ संख्या-15,16*
4. *फणीश्वरनाथ 'रेणु' मैला आँचल पृष्ठ संख्या-16*
5. *फणीश्वरनाथ 'रेणु' मैला आँचल पृष्ठ संख्या-58*
6. *डॉ. चमनलाल, 'मैला आँचल' और आँचलिक उपन्यास की अवधारणा पृष्ठ संख्या-14*

21 वीं सदी की हिंदी कविता में संवैधानिक मूल्य

सुभद्रा कुमारी सिन्हा
सहायक प्राध्यापक, जे. ई. एस. महाविद्यालय, जालना (महाराष्ट्र)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

किसी भी लोकतांत्रिक देश की संवैधानिक व्यवस्था में नागरिकों के सर्वांगीण विकास के लिए कुछ मूलभूत अधिकारों की व्यवस्था की गई है। इसे ही संवैधानिक मूल्य कहा जाता है। जो देश की प्रगति में सहायक होते हैं। समस्या तब उत्पन्न होती है जब इन संवैधानिक मूल्यों का हनन किया जाने लगे। भारतीय संविधान में पुरूषों एवं महिलाओं को समान अधिकार दिए जाने के बावजूद सामाजिक स्तर पर दोनों में भेदभाव किया जाता हैं। समाज में वर्ण एवं जाति के आधार पर भी शोषण एवं अतिक्रमण जारी है। शिक्षा ही वह सशक्त अधिकार है जिसके माध्यम से संवैधानिक मूल्यों को समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुँचाया जा सकता है। लेकिन हकीकत यह है कि अभी भी देश में लगभग 30 करोड लोग अनपढ़ हैं। अतः जब संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकारों की धज्जियाँ उड़ाई जानी लगे तब इस पर प्रश्न खड़ा करना लाजिमी हो जाता है। आज हिंदी के अनेक वरिष्ठ एवं युवा कवियों की कविता गरीबी, भूखमरी, बाल श्रमिक, महिला की स्थिति, घरेलू हिंसा इत्यादि से टकराते हुए समाज के समक्ष प्रश्न खड़ा करती है। हिंदी कविता इन समस्याओं से टकराने की सीधे-सीधे चाहत रखती है।

संकेताक्षर : *संवैधानिक मूल्य, संविधान, साम्प्रदायिकता, लोकतंत्र, पैतृक सम्पति, जनतंत्र, नीति-निर्देशक तत्व।*

विश्व में एक समय ऐसा था जब सभ्यता एवं संस्कृति का विकास तो हुआ लेकिन उस विकास के साथ-साथ मनुष्य के उत्पीड़न, शोषण एवं दमन का दौर भी आरम्भ हो गया था। जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत चरितार्थ थी। स्वतंत्रता के बाद हमारा संविधान बना। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 से अनुच्छेद 32 के मध्य वर्णित मौलिक अधिकारों के अंतर्गत विभिन्न राजनीतिक, नागरिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकारों की व्यवस्था बिना किसी भेदभाव के स्त्री पुरुष नागरिकों को प्रदान की गई। साथ ही साथ नीति-निर्देशक तत्व जो अनुच्छेद 39, 41 और 42 में निहित है उसके अंतर्गत जो भी सुविधाएँ मनुष्य को प्रदान की गई उस सुविधाओं से राज्य उसे वंचित नहीं कर सकता है। 1950 में अपना संविधान बनने के बाद पहली बार मौलिक अधिकार समानता का अधिकार, अभिव्यक्ति और सम्पत्ति का अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार सामाजिक न्याय जैसे मुद्दों की बात हुई। संविधान में इतने सारे दिए गए समान अधिकारों के बावजूद समाज के विभिन्न क्षेत्रों में विषमताएँ विद्यमान है।

भारत के संविधान निर्माता डॉ. भीमराव आंबेडकर ने इस सशक्त संदेश के साथ अपने वक्तव्य का समापन किया थाः ''भारतीय जनतंत्र के स्थापना दिवस 26 जनवरी 1950 से हम एक विचित्र विरोधाभासपूर्ण जीवन का आरम्भ करने जा रहे हैं। राजनीतिक स्तर पर तो हम पूर्ण समानता की रचना कर लेंगे, किन्तु सामाजिक और आर्थिक जीवन की विषमताएँ विद्यमान रहेंगी।''[1] समय के साथ-साथ संविधान में संशोधन भी किये जाते रहे है तथा विभिन्न तरह के कानून भी बनाया जाता रहा है। जैसे श्रम कानून, दहेज कानून, सती प्रथा कानून, विदेशी मुद्रा कानून और भी न जाने कितने तरह के कानून। लेकिन जो भी कानून बने उसमें पूर्णता का अभाव ही बना रहा। अगर कानून अपने आप में पूर्ण न हो तो उसे लागू करना अर्थहीन हो जाता है। ये अधिकतर कानून उसके नाम पर बनाए जाते हैं जो अशिक्षित, दलित, शोषित, वंचित एवं अंगूठा छाप हैं। इसलिए वे इन कानूनों से तो अनभिज्ञ ही रहते हैं। पढ़े-लिख

ISSN 2277-5587

लोगों की बात तो छोड़ ही दीजिए कानून विशेषज्ञों एवं वकीलों में शायद ही कोई ऐसा मिले जिसे देश के सभी कानूनों की पूर्ण जानकारी हो। वरिष्ठ अधिवक्ता अरविन्द जैन लिखते हैं– ''आज देश में बेरोजगारी, गरीबी, भूखमरी, अशिक्षा, अकाल जैसी समस्याएँ हैं। बाल मजदूरी के खिलाफ कानून बना, बाल विवाह के खिलाफ कानून बना क्या इनमें से कोई भी समस्या हल हो पाई ? जाहिर है नहीं। और ऐसा नहीं है कि इन कानूनों का पालन ठीक से नहीं हो पाने के कारण यह समस्या जैसी की तैसी मौजूद है। अगर इन कानूनों को पूरी इमानदारी से लागू किया जाए तब भी इनमें से कोई समस्या खत्म नहीं होने वाली, क्योंकि हमने जो कानून बनाए उसका अगर बारीकी से अध्ययन करें तो पता चलेगा कि ये इतने आधे–अधूरे हैं कि इनके लागू करने से भी कुछ नहीं होगा। अब तक सैकड़ों नए कानून बने, सैकड़ों बार संशोधन हुआ लेकिन कानून के मूल ढाँचे में कोई खास परिवर्तन नहीं होनेवाला।''[2]

संविधान द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रता, समानता के मूलाधिकारों के बावजूद भी लोग प्रताड़ित किए जा रहे हैं। शोषण के विरूद्ध अधिकार प्राप्त होने पर भी समाज में शोषण बरकरार है। मनुष्य के अधिकारों का उल्लंघन न हो और उसे पूर्ण न्याय मिल सके इसके लिए 1993 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना की गई। सभी को स्वतंत्रता, समानता, शिक्षा का बराबर अधिकार दिया गया है इसके बावजूद भी समाज में विभिन्न पैमानों पर असमानताएँ बरकरार है। जब समानता की बात की जाए तो असमानता के ग्राफ को देखना चाहिए। समाज का एक वर्ग भूखमरी के कगार पर है तो दूसरा वर्ग अकूत सम्पत्ति का स्वामी है। पिछड़े, गरीब दलित, अनुसूचित जाति एवं जनजाति को आरक्षण दिया गया। उसके विकास के लिए कई तरह के कानून बने तथा योजनाओं पर अरबों–खरबों रुपये खर्च किए गए। लेकिन फिर भी भारत की जनसंख्या का लगभग 40 प्रतिशत भाग गरीबी रेखा या उसी के आस–पास अपना जीवन यापन कर रही है। हमारे संविधान में जिसे अनुसूचित जाति/जनजाति का दर्जा मिला है उसकी स्थिति तो और भी चिंताजनक है। प्रो. अमर्त्य सेन 'गरीबी और अकाल' में लिखते हैं – ''समाज का वह वर्ग जो शोषित पीड़ित है, जिसे दो वक्त की रोटी के लिए खून पसीना एक करने के बावजूद पर्याप्त भोजन मयस्सर नहीं होती उनके लिए स्वतंत्रता, समानता, शिक्षा आदि जैसे शब्द बेमानी है। ऐसा नहीं है कि हमारे संविधान में स्वतंत्रता, समानता, बंधुता या राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक न्याय की बात न की गई हो किन्तु ये बातें उस वर्ग के लिए अर्थहीन है जो रोटी, कपडा और मकान जैसी बुनियादी आवश्यकताओं से महरूम है।''[3]

दमन, अन्याय, विषमता और विद्रूपता को वहन करने वाली व्यवस्था और स्थितियाँ सिर्फ कथा, साहित्य में ही जगह नहीं बनाती बल्कि काव्य में भी यह विपुल मात्रा में दिखायी देती है। संवैधानिक मूल्यों की आज किस तरह धज्जियाँ उड़ायी जा रही है यह आज के अनेक वरिष्ठ एवं युवा कवियों की कविताओं के केन्द्र में है। इन प्रमुख कवियों में राजेश जोशी, ओम प्रकाश वाल्मीकि, कँवल भारती, अरूण कमल, अनामिका, कात्यायनी, जया जादवानी, उमा शंकर चौधरी आदि के नाम लिये जा सकते हैं। इन कवियों की कविता हिंसा, आतंकवाद, गरीबी, विषमता, बालश्रमिक एवं महिला श्रमिक की दयनीय स्थिति, बलात्कार, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा से टकराते हुए समाज के समक्ष प्रश्न खड़ा करती है। व्यक्तियों में लालच, संकीर्णता, स्वार्थपरता, संवेदनहीनता की वृद्धि के कारण वे किस तरह आपस में एक–दूसरे के अधिकारों के शत्रू साबित हो रहे हैं।

स्वतंत्र भारत में स्त्रियों के लिए कई कानून बनाए गए। संविधान का अनुच्छेद 14 से 18 में स्त्री और पुरुष को समानता का अधिकार दिया गया है। इसमें महिला और पुरुष दोनों को समान रूप से जीविका का निर्वहन हेतु पर्याप्त साधन उपलब्ध कराने की चर्चा की गई है। पैतृक सम्पत्ति में अधिकार दिलाने से लेकर घरेलू हिंसा और दहेज लेने–देने तथा बलात्कार के विरूद्ध कानून। इतने सारे कानूनों के बावजूद क्या स्त्रियों की वस्तु स्थिति में कोई विशेष सुधार हुआ है। इस पर विचार विश्लेषण करने की आवश्यकता है। सिर्फ कानून बना देने से नारी मुक्ति आंदोलन सफल नहीं हो सकता। जैसे–जैसे नारी–मुक्ति आंदोलन के माध्यम से स्त्रियाँ समानाधिकार, न्याय, बराबरी और मुक्ति के लिए सड़कों पर उतरती है वैसे–वैसे प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से उसका दमन, शोषण, उत्पीड़न बढ़ता जाता है। जरूरत है समाज की मानसिकता में सकारात्मक बदलाव लाने की।

आज की स्त्री अनुभव कर रही है कि वह जिस समाज की ओर कदम रख रही है वहाँ वर्जनाओं, स्पर्धाओं, शोषणों व दबावों की प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दीवारें है। जहाँ स्त्री एक ओर अपने स्वत्व व अधिकारों के प्रति सजग

हैं वही दूसरी ओर उसके साथ शोषण की घटनाओं में भी वृद्धि हो रही है। स्वतंत्र भारत में आज स्त्रियों की एक बड़ी आबादी सामाजिक न्याय, सम्मान व स्वतंत्रता से वंचित हैं। वे आर्थिक अभाव, रोजगार की समस्या, अशिक्षा, एवं स्वास्थ संबंधी समस्या से जूझ रही हैं। आज भी पुरूष वर्ग में ऐसे पुरूष हैं जो ये नहीं चाहता कि पत्नी स्वाबलम्बी बने और स्वतंत्रता का अनुभव करे। वे यह मानने के लिए तैयार नहीं कि पत्नी भी एक व्यक्ति है, उसे भी सम्मान से जीने का हक है। स्त्री का आज यही वजूद है। फाँसिसी लेखक ज्याॅ जेने ने अपने जर्नल में लिखा था : ''आखिर कब यह नाजूक खिलौना हमारा दोस्त होगा, हमसे बराबरी में बहस करेगा?''[4] निर्मला पुतूल की कविता पुरूष समाज से सवाल करती है–

''क्या तुम जानते हो
पुरुष से भिन्न
एक स्त्री का एकान्त ?
बता सकते हो
सदियों से अपना घर तलाशती
एक बेचैन स्त्री को
उसके घर का पता ?
अगर नहीं
तो फिर क्या जानते हो तुम
रसोई और बिस्तर के गणित से परे
एक स्त्री के बारे में................ ?''[5]

प्रभा खेतान कहती हैं – ''स्त्री महज एक विचार नहीं है। स्त्री पुरूष एक दूसरे के सम्पूरक होते हुए भी सम्पूरक प्रक्रिया में पुरूष विधेयक और स्त्री की इस निषेधक भूमिका के प्रति पुरूष स्वयं मोहासक्त है। स्त्री की अपनी संस्कृति है, अपना इतिहास है, जीवन और परम्परा है जो पुरूष से भिन्न है। साहित्य के इतिहास में इस भिन्न तो माना जाता रहा किन्तु भिन्नता को अलग पहचान नहीं दी गई। साहित्य जगत में भी स्त्री–पुरूष की सत्ता स्वीकृत हुई तथा स्त्री के सार तत्व की खोज की गई। सत्ता की शक्ति स्त्री को माना गया किन्तु इस शक्ति का आधार पुरूष था, अलग से स्त्री शक्ति की सत्ता नहीं थी। नतीजतन स्त्री–सत्ता को अलग पहचान ही नहीं मिली।''[6]

ऐसा नहीं है कि स्त्रियों के लिए बने कानूनों का फायदा स्त्रियों को नहीं मिल रहा है। संवैधानिक अधिकारों में विभिन्न कानूनों के द्वारा महिलाओं को पुरूष के समान अधिकार मिलने से उनकी स्थिति में परिवर्तन हुआ है, लेकिन पूरी तरह नहीं। अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए संघर्ष करती हुई स्त्रियों ने लम्बा रास्ता तय कर लिया है। परन्तु आज भी एक बड़ा हिस्सा सदियों से सामाजिक अन्याय का शिकार है। जब–जब स्त्री अपनी उपस्थिति दर्ज करना चाहती है तब–तब न जाने कितने रीति रिवाजों, परम्पराओं के नाम पर उसके पैरों में बेड़िया डाली जाती है। जया जादवानी अपनी कविता में लिखती हैं –

''जैसे हाशिये पर लिख देते हैं
बहुत फालतू शब्द और
कभी नहीं पढते उन्हें
ऐसे ही वह लिखी गयी और
पढी नहीं गयी कभी
जबकि उसी से शुरू हुई थी
पूरी एक किताब।''[7]

स्त्री–पुरूष दोनों को समान रूप से शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। परन्तु इसका लाभ नगर की स्त्रियों को अधिक मिला है। गाँव की अधिकांश स्त्रियाँ आज भी शिक्षा से वंचित है। इसलिए शिक्षा के अभाव में उनका शोषण, उत्पीडन जारी रहता है। कवि भयोराज सिंह बेचैन ने अशिक्षित स्त्री की पीड़ा को वाणी दी है–

''मैं न पढ़ी
न मेरे बालका
शोषण करे हैं
मिल मालिका।''[8]

'होइहें सोई सो पुरूष रचि राखा' के तर्ज पर स्त्री ने एक जीव के रूप में जन्म तो लिया मगर जीवन की बागडोर पुरूष के हाथों में ही लटकी रही। पुरूष की सत्ता पर अपनी मान्यताएँ ही नहीं सब कुछ समर्पित करती रही। महादेवी वर्मा 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में लिखती हैं – ''भारतीय पुरूष जैसे अपने मनोरंजन के लिए रंग–बिरंगे पक्षी पाल लेता है, उपयोग के लिए गाय–घोड़े पाल लेता है, उसी प्रकार वह एक स्त्री को भी पालता है तथा अपने पालिक पशु, पक्षियों के समान ही उसके शरीर और मन पर अपना अधिकार समझता है।''[9]

भारतीय संविधान में स्वतंत्रता का अधिकार मूल अधिकारों में सम्मिलित है। धारा 19, 20, 21 तथा 22 में नागरिकों को बोलने एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान की गई है। हमारे देश में अभिव्यक्ति की आजादी की बात बड़े जोर–शोर से की जाती है। हम

ISSN 2277-5587

लोकतंत्र की खुब दुहाई देते हैं लेकिन हकीकत में इसके खतरे से भी हम अनजान नहीं है। हमारी नजरों से अनेकों ऐसे प्रकरण गुजरता है जिसमें अपने विचारों को अभिव्यक्त करना भी सजा मानी जाती है। तस्लीमा नसरीन प्रकरण पर कवि अग्निशेखर की कविता सटीक व्यंग करती है–

"उठाये उसने/अभिव्यक्ति के खतरे/
उठाया हमने/सिर पर आकाश/
उधेड़ी उसने सीवन/सी लिए हमने होंठ/
उसने कहा लज्जा!/हमने कहा खास नहीं/
उस पर मँडराये बादल/हमने खोली छतरियाँ
उसने माँगी शरण/हमने दी काल कोठरी/
वह बुदबुदाती रही/कोलकत्ता/कोलकत्ता/
फुटनोट/चली गयी हमारे देश से/
बला टली हमारे देश से/"[10]

भारतीय संविधान में शिक्षा समवर्ती सूची के अन्तर्गत आता है। शिक्षा हमारा मूल अधिकार है। संसद के द्वारा शिक्षा का अधिकार कानून भी बनाया गया जिसके अन्तर्गत 6 से 14 वर्ष तक के आयु के बच्चों को शिक्षा अनिवार्य तथा मुफ्त घोषित की गई है। लेकिन आज भी हमारे समाज में कई ऐसे बच्चे हैं जो शिक्षा से वंचित हैं। जब अपने पेट पर ही लाले पड़े हो तो फिर शिक्षा का प्रश्न ही कहां उठता है।

कवि उमाशंकर चौधरी अपनी कविता 'आग' में कहते हैं–

"वह बच्ची जिसकी उम्र
दस–बारह वर्ष के करीब है और जिसने
अपनी दो कोमल उँगलियों के बीच
फँसा रखे हैं पत्थर के दो चिकने टुकड़े
इस भीड़ भरी बस में
निकालने की करती है कोशिश
अपने गले से अनुराधा पौडवाल की आवाज"[11]

स्वतंत्रता के इतने वर्ष बीत जाने के बाद भी अनाथालय तथा मलिन बस्तियों के बच्चे उपेक्षित जिंदगी जीने को मजबूर हैं। सारे अधिकार मिलने के बावजूद अपनी अज्ञानता के कारण या लोगों के निज स्वार्थ के कारण अपने ही अधिकारों से वंचित जीवन जीने को विवश हैं। अनामिका अपनी कविता 'कूड़ा बीनते बच्चें' में मलिन बस्तियों के बच्चों की वास्वतिकता को प्रस्तुत करती हैं–

"उन्हें हमेशा जल्दी रहती है
उनके पेट में चूहे कूदते हैं
और खून में दौड़ती है गिलहरी
बड़े–बड़े डग भरते चलते हैं वे तो
उनका ढीलाढाला–कुर्ता
तन जाता है फूलकर
उनके पीछे
जैसे कि हो पाल कश्ती का।"[12]

14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों से काम करवाना यह बालश्रम के अंतर्गत आता है। जिस सुनहरे समय में इन बच्चों का समय स्कूल में कॉपी–किताब एवं दोस्तों के साथ बिताना चाहिए उस समय ये बच्चे परिवार का भरण पोषण के लिए मजदूरी करते हैं। गरीबी, बेबसी, लाचारी तथा माता–पिता की प्रताड़ना के चलते ये बच्चे बाल मजदूरी की दलदल में फंसते चले जाते हैं।

बालश्रम निश्चित रूप से मानव अधिकारों का उल्लंघन है। एशियाई और अफ्रीका के अधिकांश देशों में इसे देखा जा सकता है। बालश्रम का प्रधान कारण वहाँ की गरीबी है। इसे तब तक नहीं रोका जा सकता जब तक वहाँ की सरकारों द्वारा कोई ठोस कदम न उठाये जायें।

अरूण कमल की कविता संग्रह 'नये इलाके में' एक छोटी सी कविता है 'संविधान का अंतिम संशोधन' जिसमें कवि ने शासन तंत्र के नकाब को उठाया है कि किस प्रकार शासक वर्ग जनता को अपने इशारे पर नचाता है

और कोई उसका विरोध नहीं कर सकता। वह जो भी वस्तु जनता को जिस रूप में दिखाना चाहता है उन्हें वह उसी रूप में देखनी होगी। आज का शासक जनता के हित के बारे में सोचना तो दूर बल्कि उसे उत्पीड़ित करने में कोई कसर नहीं छोड़ता। निरीह और साधनहीन वर्ग शासक की इस मनमानी का अधिक शिकार बनता है। शासक वर्ग को आज जनता से कोई सरोकार नहीं होता। कवि कहते हैं –

"संसद के संयुक्त अधिवेशन ने ध्वनि मत से
संविधान का अंतिम संशोधन पारित कर दिया
जिसके अनुसार अब किसी भी सिक्के में
एक ही पहलू होगा।"[13]

निष्कर्ष

कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से यह चिंता व्यक्त की है आज किस तरह खुलेआम संवैधानिक मूल्यों का हनन हो रहा है। साम्प्रदायिकता, जातिवाद, शोषण, भेदभाव, अशिक्षा, असमानता इन सभी सामाजिक कोढ़ का तभी खात्मा होगा जब मनुष्य मूल्य आधारित समाज व्यवस्था में विश्वास रखेंगे।

और तभी सतत मानवीय विकास संभव हो सकेगा। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में ही संविधान का दर्शन छिपा है। जो भारतीय लोगों को सदैव संविधान के आदर्श मूल्यों को प्राप्त करने के लिए प्रेरणा देता रहेगा। संवैधानिक मूल्यों की रक्षा किए बिना बेहतर एवं स्वस्थ समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अमर्त्य सेन, The Argumentative Indian का हिंदी अनुवाद – भारतीय अर्थतन्त्र इतिहास और संस्कृति, राजपाल एण्ड संस, संस्करण 2 16, पृ.सं 45
2. अरविन्द जैन, न्यायक्षेत्र : अन्यायक्षेत्रे, राजकमल प्रकाशन, पहली आवृत्ति 21, पृ.सं. 1
3. नीलिमा सिंह,(सं.) भूमंडलीकरण और भारत में मानवाधिकार, – अध्ययन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स, संस्करण 2 12, पृ.सं.–45.
4. अरविन्द जैन, औरत अस्तित्व और अस्मिता, राजकमल प्रकाशन, पहली आवृत्ति 2 13, पृ.सं. 11
5. रमणिका गुप्ता, (सम्पा.) आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, वाणी प्रकाशन, आवृत्ति संस्करण 2 14, पृ. सं. 72.
6. अरविन्द जैन, औरत अस्तित्व और अस्मिता, राजकमल प्रकाशन, पहली आवृत्ति 2 12, पृ.सं. 3
7. वागर्थ, अंक 229 अगस्त 2 14, सं. एकान्त श्रीवास्तव, कुसुम खेमानी पृ.सं.1 9.
8. आजकल, मार्च 2 14 सं. राकेश रेणु, फरहत परवीन पृ.सं.43
9. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2 8, पृ.सं. 83
10. संवेद–66 जुलाई 293, सं. किशन कालजयी, पृ.सं. 84
11. उमाशंकर चौधरी, कहते है तब शहंशाह सो रहे थे, भारतीय ज्ञानपीठ, दुसरा संस्करण 2011, पृ.सं. 19
12. अनामिका, कवि ने कहा, किताब घर प्रकाशन, संस्करण 2011, पृ.सं.18
13. संवेद–66 जुलाई 2013, सं. किशन कालजयी, पृ.सं. 118

उत्तराखंड का पर्यटन और मीडिया दृष्टि

सुनील भारती
शोधार्थी, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

पिछले कुछ दशकों में सामाजिक परिवेश में बहुत तेजी से बदलाव हुए हैं। हाल के वर्षो में पर्यटन ने ना केवल रोजगार के अवसर पैदा किये हैं वरन अपनी उपस्थिति से विकास के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में उपस्थिति दर्ज कराई है। पर्यटन किसी भी देश के विकास में बड़ी भूमिका निभाता है। भारत में भी अतिथियों को सम्मान देने की पुरानी परंपरा रही है। देवभूमि उत्तराखंड में भी पर्यटन को एक महत्वपूर्ण संसाधन के रूप में देखा जाता है। पर्यटन विकास की राज्य में असीमित संभावनाएं हैं लेकिन यहाँ पर पर्यटन को रोजगार से जोड़े जाने की जरूरत है। सामाजिक परिवर्तनों और लोगों तक सूचना पहुंचाने में मीडिया की बड़ी भूमिका है लेकिन उत्तराखंड में पर्यटन विकास योजनाओं की कमी है। साथ ही मीडिया में उत्तराखंड के पर्यटन को कवरेज नहीं मिल पाती जिससे उत्तराखंड के अनछुए स्थलों के बारे में लोगों को जानकारी नहीं मिल पाती । मीडिया इसमें अहम भूमिका निभाकर इन क्षेत्रों के विकास में मददगार साबित हो सकता है। उत्तराखंड में अगर पर्यटन की संभावनाओं को तराशा गया तो पर्यटन विकास को नए पंख लग सकते हैं।

संकेताक्षर : *उत्तराखंड, पर्यटन, रोजगार, मीडिया, रिपोर्टिंग।*

मानव प्रागैतिहासिक काल से ही भ्रमण करता रहा है। खानाबदोशों की अनियमित यात्राएं हों या रोमन शहनशाहों का सुनियोजित विलासमय भ्रमण, अनजाने को जानने की चाह ही उन्हें पर्यटन करने के लिए उत्प्रेरित करती रही है। अनजाने देश, लोग, संस्कृति या रहन सहन जानने परखने की चाह मनुष्य की प्रकृति में है इसलिए वह दुर्गम स्थानों में जाने में भी नहीं हिचकता है। इन्हीं साहसी पर्यटकों यात्राओं के फलस्वरूप ही हमें सम्पूर्ण दुनिया की जानकारी मिली है। आज दुनिया बदल गई है। वैज्ञानिक प्रगति तथा तकनीकी ज्ञान के विकास के साथ हम बहुत आगे हैं, पर मानव प्रकृति में निहित अनजान को जानने की चाहत में कोई बदलाव नहीं आया है, इसीलिए हम आज भी पर्यटन करते हैं, पर उसका स्वरुप बदल गया है। खानाबदोशों की यात्राएं आज आधुनिक पर्यटन के रूप में ढल गया है। पर्यटन विकसित उद्योग बन गया है।

विश्व पर्यटन संस्था के अनुसार अगले दस वर्षो में पर्यटन विश्व का पहला निर्यातक उद्योग बन जायेगा क्योंकि प्रति दस वर्षो में यह 8 से 10 प्रतिशत बढ़ता जा रहा है । विकासशील देशों में यह प्रतिशत और भी ज्यादा है क्योंकि उनकी भौगौलिक स्थिति, मौसम, सांस्कृतिक धरोहर और प्राचीन सभ्यता का इतिहास, पर्यटकों को विकसित देशों की तुलना में ज्यादा आकर्षित करता है और यह उद्योग केन्द्र से बाहर फैलती लहरों की भांति बढ़ता जा रहा है। यह अनहोनी दो कारणों से संभव हो पाई । पहला कारण विश्व के कई देशों की बढ़ती सम्पन्नता जिससे लोगों में दूसरे देशों में जाकर खर्च करने की ताकत बढ़ी। इसके बगैर अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन का बढ़ना संभव नहीं था। दूसरा कारण है हवाई यात्रा के बढ़ते चरण जिससे लोग दुनिया के एक कोने से दूसरे कोने तक आसानी से पहुंचने लगे। यात्रा व्यय भी घटने लगा। इन्हीं दोनों कारणों से पर्यटन आज केवल धनिक वर्ग का मनोरंजन नहीं रहा बल्कि सामूहिक गतिविधि का रूप धारण कर लिया है । आज पर्यटन ने देश, काल, जाति, धर्म, राष्ट्रीयता, राजनीतिक मान्यता, भाषा तथा कार्य की सीमा को लांघकर लोगों को एक दूसरे से मिलने तथा उन्हें समझने बूझने का मौका दिया है ।

भारत में पर्यटन उद्योग का विशेष स्थान है। यह देश के लिए तीसरा सबसे बड़ा निवेश विदेशी मुद्रा व्यवसाय है जो प्राकृतिक और सांस्कृतिक जीवन खुशहाल बनाता है। हाल के वर्षो में पर्यटन ने ना केवल रोजगार के अवसर पैदा किये हैं वरन अपनी उपस्थिति से विकास के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में उपस्थिति दर्ज कराई है। बदलते हुए सामजिक और आर्थिक परिप्रेक्ष्य में अब पर्यटन का दायरा भी बढ़ा है। शहरों की भागदौड़ भरी जिंदगी में भी बदलाव ने आहट दी है । शहर के आस पास के गाँव अब बहुत कुछ लुभावना करने लगे हैं, वहां पर पर्यटकों की आवक भी बढ़ी है। ग्रामीण भी पर्यटन से होने वाले फायदे को पहचान रहे हैं और यह संभावना जताई जा रही है। उद्योग को विकसित करने से गाँव सम्पन्न होंगे। आधुनिक भारत में पर्यटन का वास्तविक विकास 1980 के दशक और उसके बाद सरकारों ने पर्यटन के विकास के लिए अनेक कदम उठाये हैं।

भारत में पर्यटन एक बड़े उद्योग के रूप में उभर रहा है। भारतीय पर्यटन मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2012 -13 में देश के जी.डी.पी. में इसका योगदान 6.88 प्रतिशत रहा जबकि 2012 -13 में रोजगार प्राप्त करने में योगदान 12. 36 प्रतिशत रहा। एक अनुमान के अनुसार पर्यटन की जीडीपी का विस्तार 1990 और 2011 के बीच में 29 प्रतिशत हुआ है और इसमें इस दशक में 77 प्रतिशत की वार्षिक दर से वृद्धि का अनुमान है। 2011 के एक पूर्वानुमान में वर्ल्ड ट्रेवल एन्ड टूरिज्म काउन्सिल ने 2011 से 2021 के बीच 8.8 प्रतिशत की वार्षिक प्रगति का अनुमान लगाया है। सबसे तेजी से बढ़ने वाले पर्यटन उद्योग के साथ देशों में पांचवा स्थान प्रदान किया है।

धरती का स्वर्ग कहा जाने वाला उत्तराखंड लोगों में देवभूमि के रूप में प्रसिद्ध है। संपूर्ण राष्ट्र में भावनात्मक एकता तथा ज्ञानवर्धन के क्षेत्र में पर्यटन का प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट स्थान रहा है। भिन्न-भिन्न क्षेत्र के लोगों के रहन सहन, संस्कृति, भाषा एवं तौर तरीकों के सम्बन्ध में पर्यटन के माध्यम से ही प्रत्यक्ष रूप से जानकारी प्राप्त हो सकती है। पर्यटन के क्षेत्र में उत्तराखंड एक विशिष्ट स्थान रखता है। क्षेत्र के विश्व प्रसिद्ध चारधाम (श्री बद्रीनाथ, श्री केदारनाथ, गंगोत्री,यमुनोत्री) अनादि काल से ही यात्रियों एवं धर्मिक पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र रहे हैं। साथ ही हेमकुंड साहिब, नानकमत्ता, रीठा साहिब, अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पिरान कलियर, कैलाश मानसरोवर एवं छोटा कैलाश की यात्रा करने वाले यात्री भी निरंतर इस क्षेत्र में आते रहते हैं। इसके अतिरिक्त विश्व प्रसिद्ध फूलों की घाटी, सुदूर क्षेत्रों तक फैले हरे-भरे घास के बुग्याल, विशाल हिमालय की श्रृंखलाएं, पतित पावनी गंगा यमुना के उद्गम एवं शीतल जलवायु युक्त मनोरम स्थल, नैनीताल व मसूरी तथा वन्य जीव प्रेमियों के आकर्षण कार्बेट नेशनल पार्क, राजाजी नेशनल पार्क यहां की विशेषता को चार चांद लगा रहे हैं। एशिया के सबसे बड़े बांध टिहरी बांध में वाटर स्पोर्ट समेत पर्यटन को बढ़ावा देने वाली कई महत्वाकांक्षी योजनाएं उत्तराखंड को पर्यटन के विश्व पटल पर अंकित करने के लिए काफी हैं।

उत्तराखंड के आर्थिक संसाधनों के विकास के लिए पर्यटन को एक महत्वपूर्ण संसाधन के रूप में देखा जाता है। पर्यटन के विभिन्न रूपों के विकास की राज्य में असीमित संभावनाएं हैं। पर्यटन को रोजगार से जोड़े जाने की जरूरत है जिससे यहाँ सांस्कृतिक पर्यटन के विकास की नई संभावनाए विकसित हो सकती हैं। उत्तराखंड में अगर पर्यटन की संभावनाओं को तराशा गया तो देश के पर्यटन विकास को नए पंख लग सकते हैं। यहाँ धार्मिक, साहसिक, योग का संगम सांस्कृतिक पर्यटन की नई संभावनाओं को व्यक्त करता है। सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर्यटन गतिविधियों को न केवल नया आयाम दे सकती है बल्कि यह राज्य के पर्यटन राजस्व को भी बढ़ा सकती है। लुप्त होती सांस्कृतिक परम्पराओं, नृत्य और गायन शैलियों और लोक कलाकारों और रंगकर्म से जुड़े संस्कृतिकर्मियों के लिए रोजगार के साधन भी जुड़ सकते हैं। विश्व में अनेक देश केवल पर्यटन से प्राप्त राजस्व से अपना गुजारा कर रहे हैं। पड़ोसी देश इसका जीता जागता उदाहरण है। थाईलैंड, मलेशिया, श्रीलंका, मालदीव आदि छोटे छोटे देशों के राजस्व का अधिकाँश भाग केवल पर्यटन से आता है। माना जा सकता है नेपाल में एवरेस्ट अथवा इंडोनेशिया और थाईलैंड में खूबसूरत समुद्रीतट भी पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र है किन्तु उससे भी बड़ा आकर्षण है इन देशों में पर्यटकों की रुचियों को ध्यान में रखते हुए संजोकर रखी गयी विशिष्ट सांस्कृतिक परम्पराएँ। थाईलैंड, इंडोनेशिया इत्यादि देशों ने अपनी रामायण कालीन संस्कृति आज भी बचा कर रखी हुई है। इन छोटे छोटे देशों में

ISSN 2277-5587

सांस्कृतिक पर्यटन यूँ ही सुरक्षित नहीं है व्यापक शोध परंपरा का संरक्षण और आवश्यकता का सामंजस्य बनाते हुए इन देशों की सरकारों ने सांस्कृतिक पर्यटन को बचाया ही नहीं है बल्कि उसका विस्तार भी किया है और विश्व भर में एक पहचान बनाई है ।

उत्तराखंड भी अनन्त सांस्कृतिक परम्परा से भरपूर है। एक पर्यटक केवल घूमने के लिए नहीं बल्कि उस इलाके के प्रति एक जिज्ञासा का भाव लिए आता है। दुर्भाग्य से उत्तराखंड में केवल चार धाम और हरिद्वार ही पर्यटक यात्रा स्थली बन कर रह गया है। राज्य गठन के बाद भी इसके सांस्कृतिक संरक्षण पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। आज जबकि पर्यटन भी एक प्रतिस्पर्धात्मक दौर में खड़ा है देश के सभी राज्यों में पर्यटकों की होड़ मची हुई है ऐसे में उत्तराखंड यदि पर्यटन में सांस्कृतिक प्रदूषण के बजाए सांस्कृतिक सम्मिश्रण की तरफ ध्यान दे तो विश्व को देवभूमि की नहीं बल्कि देवसंस्कृति के दर्शन भी हो सकते हैं लेकिन यह होगा कैसे यह यक्ष प्रश्न है ? राजस्थान ने तो रेगिस्तान के सूनेपन में सारंगी और घुंघरुओं के मधुर ध्वनि के बीच डूबते उतरते लोक धुनों से कारोबार किया है। क्या आज हम और आप लोक नर्तकों के बिना राजस्थान की कल्पना कर सकते हैं। उत्तराखंड के साथ विडम्बना यह है कि यहाँ के सांस्कृतिक पहलू पर तो किसी भी दृष्टिकोण से काम नहीं हुआ है और ना शैक्षिक। न तो विश्वविद्यालयों में संस्कृति विभाग खुले और न ही पूर्व और वर्तमान संस्थाओं ने संस्कृति को बढ़ावा तो दूर की बात है बचाने के लिए कोई काम नहीं किया। यह लोक नृत्यों, लोकोत्सवों, मेले, ढोलों और रंगीन परम्पराओं का प्रदेश है। यह सत्य है कि यह देवभूमि है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि यह केवल मंदिरों, आध्यात्म और साधु संतों तक ही सीमित प्रदेश है। यहाँ भोटिया जैसी साहासिक और विलक्षण वेशभूषा और सांस्कृतिक सौन्दर्य से भरपूर जनजातियां हैं तो जौनसार के रंगीन लोकनृत्य और लोकगीत हैं जो आध्यात्म और मनोरंजन दोनों का संगम है। बिनसर जैस आध्यात्मिक मेले हैं तो पौड़ी में देवीखाल का वृचित्र गेंदू अपने आप में एक स्पोर्ट्स एडवेंचर से कम नहीं है। ऐसा ही एडवेंचर देवीधुरा के मेले में देखने को मिलता है जहाँ पाषाण युद्ध खेला जाता है। गढ़वाल और कुमाऊं के लोकगीत, लोक नृत्य परंपरागत वाद्ययन्त्रों की भरमार है और हुड़किया, दमुआ जैसे लोकगायन की विधाएं। कुमाऊं में जागर (देव पूजा) लगाने के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले ढोल-नगाड़ों के साथ ही हुड़के वादन की परंपरा लुप्त होने के कगार पर है। अतीत में चंद शासकों के दौर में हुड़का गायन का विशेष महत्व था तथा कुमाऊंनी क्षेत्र की विरासत मानी जाने वाली झोड़ा, चांचरी और छपेली के गायन में हुड़के का खासा प्रयोग होता था। इसके अलावा हुड़किया बैल का प्रयोग लोग कृषि कार्य में सामूहिक रूप से करते थे। आज संगठित कृषि न करने के कारण यह विधा विलुप्त हो रही है। इनकी अपनी परंपराएं हैं जिन्हें पर्यटन से और अधिक रुचिकर बनाया जा सकता है।

पर्यटन विकास की प्रथम सीढ़ी यातायात को माना जाता है। उत्तराखंड में अधिकांश जिलों में यातायात व्यवस्था ढुलमुल है वहीँ प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण स्थलों के प्राकृतिक संसाधनों का हम दोहन नहीं कर पा रहे हैं । जल, जमीन, जंगल का सवाल जस का तस है । पर्यटन दृष्टि से सुन्दर स्थानों में अब माफिया प्रवृति के लोग जमीनों को औने पौने दामो में न केवल बेच रहे हैं बल्कि खरीद फरोख्त करने में भी लगे हुए हैं जिससे प्रकृति की सुन्दरता पर ग्रहण लग रहा है। किसी भी उद्योग को स्थापित करने में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका होती है लेकिन उत्तराखंड में पर्यटन विकास निगम और राज्य के नीति नियंताओं के पास योजनाओं की कमी है साथ ही कारगर नीतियों के अभाव के चलते मीडिया में उत्तराखंड के पर्यटन को वह कवरेज नहीं मिल पाती जिसकी दरकार है। ईको टूरिज्म के लिए यहाँ पर अपार संभावनाएं हैं तो धार्मिक पर्यटन यहाँ पर फल फूल सकता है लेकिन कारगर नीतियां न होने के चलते कई पर्यटन स्थल उपेक्षा का दंश झेलने को मजबूर हैं । उत्तराखंड बने 19 बरस बीत चुके हैं लेकिन पर्यटन को लेकर कोई कारगर नीति नहीं बन सकी है। इच्छा शक्ति के अभाव के चलते और कारगर नियोजन न हो पाने के चलते राज्य के किसी जिले में नया पर्यटक स्थल अस्तित्व में नहीं आ पाया और न ही सांस्कृतिक महत्व के किसी स्थल के लिए अलग से किसी बजट का प्रावधान किया गया। यू पी के समय में जो पर्यटन का ढांचा बना था उसमें एक इंच की तब्दीली नहीं हो पाई है। हाँ इतना जरूर है इन 19 बरस में सरकारों ने उत्तराखंड को स्विटजरलैंड बनाने, उर्जा प्रदेश, हर्बल प्रदेश, आयुष प्रदेश बनाने के दावे जरूर किये परन्तु हकीकत में जमीनी स्तर पर कुछ भी काम नहीं किया गया।

मीडिया और पर्यटन एक दूसरे के पूरक हैं। उत्तराखंड

के अनछुए स्थलों को आम जनमानस तक पहुंचाकर सैलानियों को यहां लाने में मीडिया अहम भूमिका निभाकर न केवल इन क्षेत्रों के विकास में मददगार साबित होगा, बल्कि स्थानीय लोगों को रोजगार के अवसर भी उपलब्ध हो सकेंगे। इन क्षेत्रों को सरकार, मीडिया और व्यवसायी मिलकर आपसी सहभागिता से विकसित करें, तो सैलानियों का ठहराव यहां कई दिनों तक और बढ़ाया जा सकता है जिससे न केवल उत्तराखंड के पर्यटन को नया आयाम मिलेगा बल्कि रोजगार अवसर भी बढ़ेंगे। उत्तराखंड का नैसर्गिक सौंदर्य यहाँ की खूबसूरती में चार चांद लगाता है, लेकिन आज भी पर्यटक केवल नैनीताल, मसूरी, हरिद्वार, देहरादून, चार धाम की सैर कर वापस लौट जाते हैं जबकि जिले की हर पहाड़ी पर कई ऐसे अनछुए क्षेत्र हैं, जहां पर्यटन की अपार संभावनाएं हैं। मीडिया इन स्थलों को विकसित और प्रचारित करने का अपना एजेंडा निर्धारित कर सकता है जिसके तहत राज्य की पर्यटन से जुड़ी गतिविधि को मीडिया द्वारा लोगों तक पहुचाने की कोशिश होनी चाहिए जिससे उत्तराखंड के पर्यटन से जुड़े कई अनछुए पहलू से लोग रूबरू हो सकें। उत्तराखंड से सम्बन्धित विभिन्न आयोजनों में हम राज्य की सांस्कृतिक छटाओं में क्या देखते हैं ? सरकार द्वारा किराए पर लाई गयी सांस्कृतिक मंडलियां जिन्हें न भाषा की और न नृत्य की विशेष जानकारी है। केवल बेडु पाको बारह मासा गा देने से लोकसंस्कृति का प्रदर्शन नहीं हो जाता। अगर इस शैली को उन्नत किया जाए और मीडिया शिद्दत से यहाँ की पर्यटन गतिविधियों को फोकस करे तो पर्यटकों के मनोरंजन के साथ ही उनका ज्ञानवर्धन भी हो सकता है।

उत्तराखंड में बादल, भूस्खलन सरीखी प्राकृतिक आपदा का असर सीधे तौर पर राज्य के पर्यटन कारोबार पर पड़ा है। आम तौर पर मार्च के पहले पखवाड़े तक यहां रहने वाले सैलानियों की तादात में अचानक गिरावट आई है। टीवी पर प्राकृतिक आपदा के समाचार आने के बाद तो पर्यटक इतने भयभीत हो गए कि सुरक्षित क्षेत्र रामनगर, भीमताल, रामगढ़, नैनीताल, देहरादून, मंसूरी, हरिद्वार आदि में भी सैलानियों की संख्या कम हो गई है। मिसाल के तौर पर सरोवर नगरी नैनीताल में आम तौर पर गर्मियों का सीजन जुलाई के दूसरे सप्ताह तक चलता है लेकिन बीते बरस यहाँ पर्यटकों की संख्या गिर गई। इसका असर टैक्सी चालकों के साथ ही नाव चालक व घोड़ा चलाने वालों की आय पर पड़ा। मीडिया में बादल फटने की घटना को इस तरीके से पेश किया गया मानो समूचे उत्तरांखड को आपदागस्त मान लिया गया जिसके बाद पर्यटकों ने उत्तराखंड के किसी इलाके में जाना पसंद नहीं किया। कई बार उत्तराखंड की घटनाओं के बारे में निगेटिव रिपोर्टिंग देखने को मिलती है जिससे राज्य के पर्यटन की सेहत को नुकसान हो जाता है और मीडिया को चाहिए वह ऐसी घटनाओं को तिल का ताड़ बनाकर पेश ना करें जिससे पर्यटन विकास को नया आयाम मिले।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *पर्यटन एक अध्ययन – गुप्ता डॉ पापिया, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल , 2011*
2. *पाण्डे, हर्षवर्धन, संपादकीय, हिल संदेश, (9–15 मार्च 2007), नई दिल्ली*
3. *समग्र विकास और पर्यटन, पाण्डेय, मंजू, सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2016*
4. *रावत ताज, पर्यटन व्यवसाय के विविध आयाम, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली मोहन हरि, उत्तराँचल में पर्यटन, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली*
5. *भट्ठ, त्रिलोकचंद्र, उत्तराँचल के देवालय, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली*
6. *www.merapahadforum.com*
7. *www.samaysakshya.co.in*
8. *www.jagran.com*
9. *www.livehindustan.com*

हाईस्कूलों में किशोर छात्र एवं छात्राओं के बीच संवेगात्मक बुद्धि और आक्रामकता का प्रभाव का अध्ययन

डॉ. रंजना कुमारी
सहायक प्रध्यापक (गेस्ट फैकल्टी), पूर्णियाँ महिला महाविद्यालय, पूर्णियाँ (बिहार)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

अध्ययन का उद्देश्य हाई स्कूल के किशोर छात्रों एवं छात्राओं के बीच आक्रामकता पर संवेगात्मक बुद्धि की आकलन भूमिका निर्धारित करना है।बुश, ए.एच. और पेरी, एम (1992) द्वारा बुश-पेरी एग्रेसन प्रश्नावली बनाया गया,जिसके द्वारा किशोर छात्रों के आक्रामकता का आकलन किया गया। किशोर छात्रों की संवेगात्मक बुद्धिमता को मापने के इमोशनल इंटेलिजेंस स्केल (EIS) जिसको डॉ. अरुण कुमार सिंह और डॉ. श्रुति नारायण द्वारा 2014 में विकसित किया गया है का उपयोग किया गया था। इस शोध अध्ययन में साधारण यादृच्छिक नमूना के माध्यम से 40 लड़कों और 40 लड़कियों की उम्र 14 वर्ष और 18 वर्ष के बीच थी, प्रहलादपुर हाई स्कूल, मुजफ्फरपुर से चुना गया। परीक्षण के परिणामों के विस्लेषण के लिए माध्य, माध्यिका, मानक विचलन और टी परीक्षण का उपयोग किया गया था। विश्लेषण से पता चला है कि किशोर छात्रों में किशोर छात्राओ की तुलना में अधिक आक्रामकता पाया गया एवं संवेगात्मक बुद्धिमता का स्तर कम था।

संकेताक्षर : *संवेगात्मक बुद्धि, आक्रामकता, स्कूल, छात्र, किशोरावस्था एवं पुरुष और महिला।*

किशोरावस्था में आमतौर पर 13 और 19 वर्ष के बीच के वर्षों का वर्णन किया जाता है और इसे बचपन से वयस्कता तक के संक्रमणकालीन चरण माना जा सकता है। हालांकि, किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन पहले से शुरू हो सकते हैं, पूर्व या 'किशोर' वर्ष (उम्र 12 से 9 वर्ष)।

किशोरावस्था की सामान्य समस्यायें ये निम्नलिखित हैं-

क. शारीरिक परिवर्तन

किशोरावस्था के दौरान देखे गए शारीरिक परिवर्तन, किशोरावस्था के शरीर में वयस्क से बच्चे के रूप में परिवर्तित होने वाले हार्मोनल परिवर्तनों के परिणामस्वरूप होते हैं। यह चरण, 9 और 16 वर्ष की आयु के बीच शुरू होता है और 18 और 22 वर्ष की आयु के बीच समाप्त होता है। यौन हार्मोन इन शारीरिक परिवर्तनों के लिए जिम्मेदार हैं यह एक लड़के का शरीर से अधिक टेस्टोस्टेरोन पैदा करता है जबकि एक लड़की का शरीर से अधिक एस्ट्रोजन का उत्पादन करता है।

ख. भावनात्मक परिवर्तन और समस्याएं

- किशोरावस्था वयस्कता और बचपन के बीच की उम्र है। किशोर अक्सर अपनी भूमिका के बारे में भ्रमित होते हैं।
- वे अत्यधिक भावुक महसूस करते हैं (इसका कारण हॉरमोन हैं)।
- किशोर लड़कों और लड़कियों में मूड स्विंग होना आम है।
- शारीरिक रूप से आत्म-चेतना में परिवर्तन होता है।
- इस समय हीनता या श्रेष्ठता की भावनाएँ अधिक उत्पन्न हो सकती हैं।

ग. व्यवहार परिवर्तन

- अधिकतर देखा गया है की किशोरों में आवेगी व्यवहार होता है, जो आपके बच्चे के साथ–साथ दूसरों के लिए भी हानिकारक हो सकता है।
- किशोरावस्था मे बच्चे हठी हो जाते हैं । नई चीजों को करने की कोशिश करना और जोखिम उठाना चाहते हैं।
- किशोर लड़कों में उग्र हार्मोन उन्हें शारीरिक परिवर्तन लाने के लिए भी प्रेरित करते हैं।
- झूठ बोलना किशोर व्यवहार मुद्दों में से एक आम समस्या है।

संवेगात्मक बुद्धि

मेयर और सलोवी की इन दो अवधारणाओं में के बारे मे पता लगाने की कोशिश की गई, लेकिन वास्तविक अवधारणा डैनियल गोलेमैन के द्वारा समाज की मुख्यधारा में लोकप्रिय हो गई है। इमोशनल इंटेलिजेंस विषय से दो अवधारणाएँ निकलती हैं – एक है इमोशन और दूसरी है इंटेलिजेंस। महत्वपूर्ण प्रश्न हैं–क्या संवेगात्मक बुद्धि में संवेग या बुद्धि होती है? यदि हाँ, तो इन दोनों अवधारणाओं में परस्पर संबंध क्या है? संवेगात्मक बुद्धि के मूल को देखते हुए हम अक्सर दो के बारे में बात करते हैं यह वह बुद्धि है जो संवेगों से निकलती है या संवेगों ने बुद्धि की अवधारणा को जन्म दिया है। इस की अवधारणा को डैनियल गोलेमैन की पुस्तक संवेगात्मक बुद्धि पर प्रकाशित होने के बाद लोकप्रिय बनाया गया है ‘‘वाइ इट केन मैटर देन आई क्यू?” (“Why It Can Matter Than I-Q”)

संवेगात्मक बुद्धि – डैनियल गोलेमैन के अनुसार, ‘‘संवेगात्मक बुद्धि एक मास्टर योग्यता है, एक ऐसी क्षमता जो अन्य सभी क्षमताओं को गहराई से प्रभावित करती है, या तो उन्हें सुविधा प्रदान करती है या उनके साथ हस्तक्षेप करती है’’।

लीसा, जे.एम. (2004) के अनुसार, ‘‘संवेगात्मक परिपक्वता अपने साथ स्वतंत्रता के लिए क्षमता लेकर आती है, एजेंट के लिए कार्रवाई करने की इच्छा की क्षमता के साथ–साथ संबद्ध होता है। यह स्वतंत्र रूप से आरंभ करता है और प्रेम संबंधों को बनाए रखता है’’।

उच्च संवेगात्मक बुद्धि की आवश्यकता किशोरों क्यों होती है?

अकादमिक रूप से तेज रहने वाले किशोर कभी–कभी सामाजिक और पारस्परिक रूप से अक्षम हो सकते हैं। लेकिन संवेगात्मक भावों को बढ़ाकर, किशोर जो कुछ करने के लिए, अधिक उत्पादक और सफल बन सकते हैं। उच्च संवेगात्मक बुद्धि निश्चित रूप से किशोरों को संघर्ष को कम करके, रिश्तों में सुधार और बेहतर समझ के द्वारा तनाव को कम करने में मदद करेगी। संवेगात्मक बुद्धि के 5 प्रमुख घटक

1. **आत्म–जागरूकताः** परिश्रम से अध्ययन करने की गहरी समझ यानी मजबूती, कमजोरियों, मौकों, धमकी, आवशयकता और प्रणोद
2. **स्व–विनियमनः** खुद से बातचीत होती है, जो उन्हें अपनी भावनाओं के कैदी होने से मुक्त करती है।
3. **प्रेरणाः** इसके लिए स्पष्ट लक्ष्य और सकारात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है।
4. **सहानुभूतिः** यह समझने की क्षमता का होना कि दूसरे क्या महसूस कर रहे हैं?
5. **सामाजिक कौशलः** अच्छे पारस्परिक कौशल का विकास जीवन और करियर में सफलता के लिए महत्वपूर्ण है।

किशोरों में आक्रामक व्यवहार

आक्रामकता को हानिकारक व्यवहार के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो सामाजिक सम्मेलनों का उल्लंघन करता है और जिसमें किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु को नुकसान पहुंचाने या घायल करने के लिए जानबूझकर इरादे शामिल हो सकते हैं (बंदुरा, 1973; बर्कोविट्ज, 1993)। मानव वयस्कों और छोटे बच्चों में आक्रामक उपप्रकारों की जांच करने वाले शोधकर्ताओं ने आमतौर पर निष्कर्ष निकाला है कि आक्रामक उपप्रकारों का एक प्रकार द्वंद्व है जिसे विभिन्न रूप में वर्णित किया गया हैः (क), आवेगी, प्रतिक्रियाशील, स्नेहपूर्ण या गैर–नियोजितय और (ख), पूर्वनियोजित, सक्रिय, वाद्य, शिकारी, या नियंत्रित (जैसे, हीलब्रून एट अल, 1978; कोकरो, 1989; एटकिंस एट अल 1993; बैराट एट अल 1997a; विटारो एट अल 2002; मैकएलीस्ट्रीमेट 2004)। इस जांच के उद्देश्य के लिए, आवेगी आक्रामकता और पूर्व निर्धारित एंडरसन और Huesmann, (2003) की आक्रामकता को एक दूसरे व्यक्ति के प्रति व्यवहार के रूप में परिभाषित किया गया है, जो निकटस्थ (तत्काल) नुकसान के इरादे से किया गया था। आक्रामकता एक जटिल व्यवहार है जिसे फ्रायड (सकल, 1992) के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत, लोरेंज (1966) के नैतिक

 ISSN 2277-5587

सिद्धांत, और बंडुरा (1963) के सामाजिक शिक्षण सिद्धांत सहित सैद्धांतिक दृष्टिकोणों की एक विस्तृत श्रृंखला से अध्ययन किया गया है। सिद्धांतकारों ने प्रस्तावित किया है कि आक्रामकता कई अलग–अलग रूपों में मौजूद है (बर्कोविट्ज और डोनरस्टीन, 1982; बूस, 1961; डॉज एंड कोए, 1987; मोयेर, 1976)।

उद्देश्य

अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य बनाए गए हैं

- हाई स्कूल के छात्रों के बीच संवेगात्मक बुद्धि का आकलन करने के लिए।
- हाई स्कूल के छात्रों के बीच समग्र संवेगात्मक बुद्धि का आकलन करने के लिए।
- हाई स्कूल के छात्रों के बीच आक्रामकता का आकलन करने के लिए।
- हाई स्कूल के छात्रों के बीच समग्र आक्रामकता का आकलन करने के लिए।

परिकल्पना

1. H1: छात्रों में संवेगात्मक बुद्धि चर में लिंग का प्रभाव होगा।
2. H2: किशोर छात्रों एवं छात्राओं में समग्र संवेगात्मक बुद्धि चर पर लिंग का प्रभाव नहीं होगा।
3. H3: किशोर छात्रों एवं छात्राओं में आक्रामकता चर में लिंग का प्रभाव नहीं होगा।
4. H4: किशोर छात्रों एवं छात्राओं में समग्र आक्रामकता चर पर लिंग का प्रभाव नहीं होगा।

अनुसंधान पद्धति

नमूने का आकार

इस शोध अध्ययन में साधारण या दृच्छिक नमूना के माध्यम से 40 लड़कों और 40 लड़कियों की उम्र 14 वर्ष और 18 वर्ष के बीच थी, जो प्रहलादपुर हाई स्कूल, मुजफ्फरपुर से चुना गया।

स्टैण्डर्ड इंस्ट्रूमेंट – प्रश्नावली

बुश, ए.एच. और पेरी, एम (1992) द्वारा बुश–पेरी एग्रेसन प्रश्नावली बनाया गया, जिसके द्वारा किशोर छात्रों के आक्रामकता का आकलन किया गया। किशोर छात्रों की संवेगात्मक बुद्धिमता को मापने के इमोशनल इंटेलिजेंस स्केल (EIS) जिसको डॉ. अरुण कुमार सिंह और डॉ. श्रुति नारायण (2014) में विकसित किया गया है का उपयोग किया गया।

आंकड़ों के लिए सांख्यिकीय विश्लेषण

एकत्र आंकड़ों का विश्लेषण विभिन्न सांख्यिकीय तकनीक जैसे कि माध्य माध्यिका, स्टैंडर्ड डिविएशन, टी–टेस्ट और हिस्टोग्राम माइक्रोसॉफ्ट एक्सेल की मदद से किया गया है।

परिकल्पना (H1): H1 छात्रों में संवेगात्मक बुद्धि चर के विभिन्न आयामों में लिंग का प्रभाव होगा।

तालिका 1

संवेगों को समझना (Understanding Emotion)

Gender	N	Mean	Median	S.D	df	t-value	Level of significance
Male	40	1.8	2	0.65	78	9.74	0.01
Female	40	3.35	4	0.77			

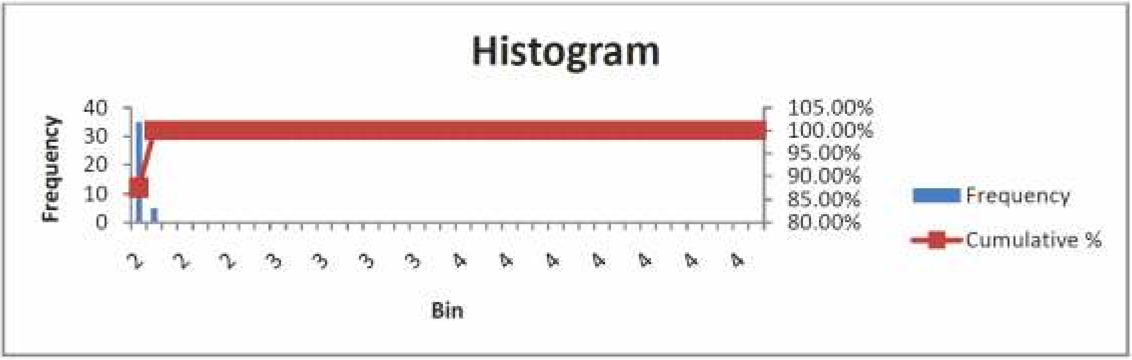

तालिका 1 – किशोर छात्र और छात्राओं में संवेगात्मक बुद्धि चर स्कोर की तुलना करने के लिए संवेगात्मक बुद्धि परीक्षण का उपयोग किया गया था। किशोर छात्रों का माध्य = 1.8, मानक विचलन = 0.65 और किशोर छात्राओं (माध्य = 3.35, मानक विचलन = 0.77); टी अनुपात = 12.37) इंगित करता है कि संवेगात्मक बुद्धि चर के एक आयाम संवेगों को समझना पर किशोर छात्राओं की संवेगात्मक बुद्धि किशोर छात्रों की तुलना में ज्यादा उत्तम थी। यही कारण है कि उपरोक्त परिकल्पना खारिज कर दी गई है।

तालिका 2
प्रेरणा को समझना (Understanding Motivation)

Gender	N	Mean	Median	S.D	df	t-value	Level of significance
Male	40	3.23	3	0.77	78	21.15	0.01
Female	40	6.92	7	0.79			

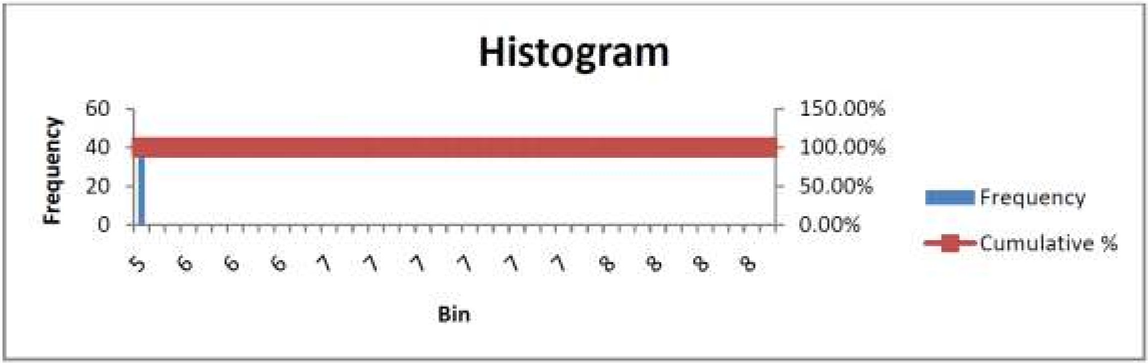

तालिका 2 – किशोर छात्र और छात्राओं में संवेगात्मक बुद्धि चर स्कोर की तुलना करने के लिए संवेगात्मक बुद्धि परीक्षण का उपयोग किया गया था । किशोर छात्रों का माध्य= 3.23, मानक विचलन = 0.77 और किशोर छात्राओं (माध्य = 6.92., मानक विचलन = 0.79); टी अनुपात = 21.15) यह 0.01 के स्तर पर सार्थक है और इंगित करता है कि संवेगात्मक बुद्धि चर के इस आयाम पर किशोर छात्र एवं छात्राओं के बीच सार्थक अंतर है। इस आयाम ''प्रेरणा को समझना'' पर किशोर छात्राओं की संवेगात्मक बुद्धि किशोर छात्रों की तुलना में ज्यादा उत्तम थी। यही कारण है कि उपरोक्त परिकल्पना खारिज कर दी गई है।

तालिका 3
पराहानुभूति संबंध (Empathy)

Gender	N	Mean	Median	S.D	df	t-value	Level of significance
Male	40	3.3	3	1.067	78	15.09	0.01
Female	40	7.15	7	1.21			

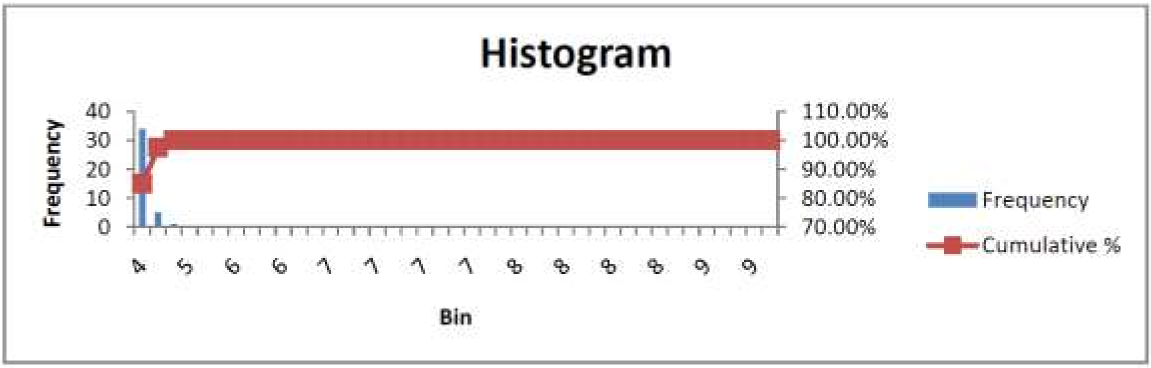

 ISSN 2277-5587

तालिका 3 – किशोर छात्र और छात्राओं में संवेगात्मक बुद्धि चर स्कोर की तुलना करने के लिए संवेगात्मक बुद्धि परीक्षण का उपयोग किया गया था । किशोर छात्रों का माध्य= 3.3, मानक विचलन =1.067 और किशोर छात्राओं (माध्य = 7.15., मानक विचलन = 1.21); टी अनुपात=15.09) यह 0.01 के स्तर पर सार्थक है और इंगित करता है कि संवेगात्मक बुद्धि चर के इस आयाम पर किशोर छात्र एवं छात्राओं के बीच सार्थक अंतर है। इस आयाम 'पराहानुभूति संबंध' पर किशोर छात्राओं की संवेगात्मक बुद्धि किशोर छात्रों की तुलना में ज्यादा उत्तम थी । यही कारण है कि उपरोक्त परिकल्पना खारिज कर दी गई है।

तालिका 4
रिश्ता संभालना (Handling Relationship)

Gender	N	Mean	Median	S.D	df	t-value	Level of significance
Male	40	3.025	3	0.89	78	15.8	0.01
Female	40	7.15	7	1.38			

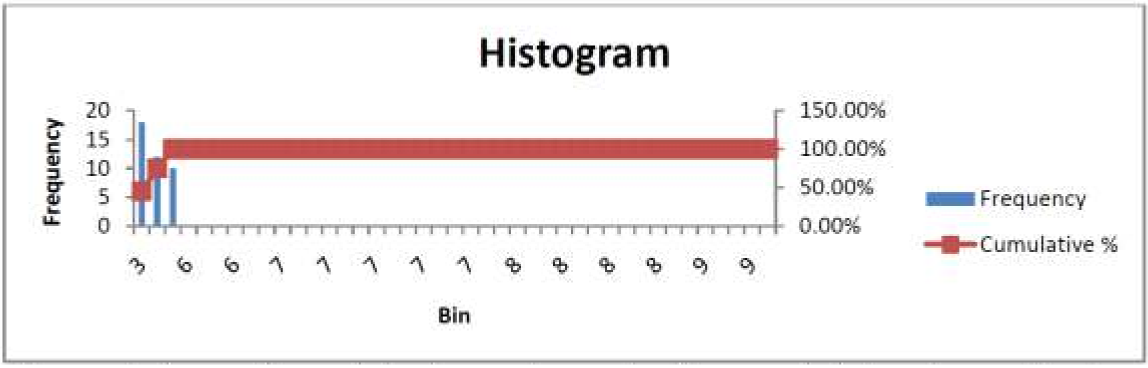

तालिका 4– किशोर छात्र और छात्राओं में संवेगात्मक बुद्धि चर स्कोर की तुलना करने के लिए संवेगात्मक बुद्धि परीक्षण का उपयोग किया गया था । किशोर छात्रों का माध्य= 3.025, मानक विचलन =0.89 और किशोर छात्राओं (माध्य = 7.15., मानक विचलन = 1.38); टी अनुपात = 15.08) यह 0.01 के स्तर पर सार्थक है और इंगित करता है कि संवेगात्मक बुद्धि चर के इस आयाम पर किशोर छात्र एवं छात्राओं के बीच सार्थक अंतर है। इस आयाम ''रिश्ता संभालना'' पर किशोर छात्राओं की संवेगात्मक बुद्धि किशोर छात्रों की तुलना में ज्यादा उत्तम थी । यही कारण है कि उपरोक्त परिकल्पना खारिज कर दी गई है।

परिकल्पना **(H2) : H2** किशोर छात्रों एवं छात्राओं में समग्र संवेगात्मक बुद्धि चर पर लिंग का प्रभाव होगा

तालिका 5
किशोर छात्रों एवं छात्राओं की समग्र संवेगात्मक बुद्धि

Gender	N	Mean	Median	S.D	df	t-value	Level of significance
Male	40	11.35	11.00	1.79	78	28.68	0.01
Female	40	24.575	24.5	2.25			

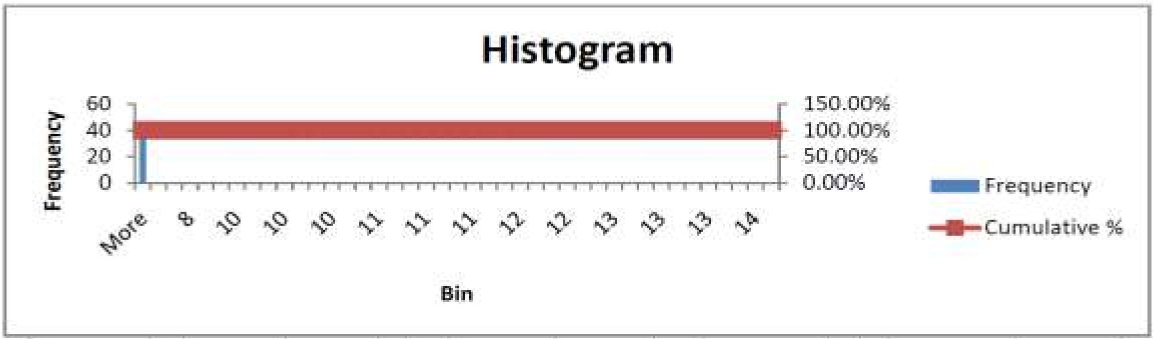

तालिका 5 – किशोर छात्र और छात्राओं में संवेगात्मक बुद्धि चर स्कोर की तुलना करने के लिए समग्र संवेगात्मक बुद्धि परीक्षण का उपयोग किया गया था। किशोर छात्रों का माध्य = 11.35, मानक विचलन = 1.79 और किशोर छात्राओं (माध्य = 24.575, मानक विचलन = 2.25); टी अनुपात = 28.68) यह 0.01 के स्तर पर सार्थक है और इंगित करता है कि समग्र संवेगात्मक बुद्धि पर किशोर छात्र एवं छात्राओं के बीच सार्थक अंतर है। इस आयाम ''समग्र संवेगात्मक बुद्धि'' पर किशोर छात्राओं की संवेगात्मक बुद्धि किशोर छात्रों की तुलना में ज्यादा उत्तम थी। यही कारण है कि उपरोक्त परिकल्पना खारिज कर दी गई है।

परिकल्पना **(H3) : H3** छात्रों में आक्रामकता चर का विभिन्न आयामों में लिंग का प्रभाव होगा

तालिका 6

शारीरिक आक्रामकता (Physical Aggression)

Gender	N	Mean	Median	S.D	df	t-value	Level of significance
Male	40	25.05	25	4.84	78	11.17	0.01
Female	40	14.37	13	3.60			

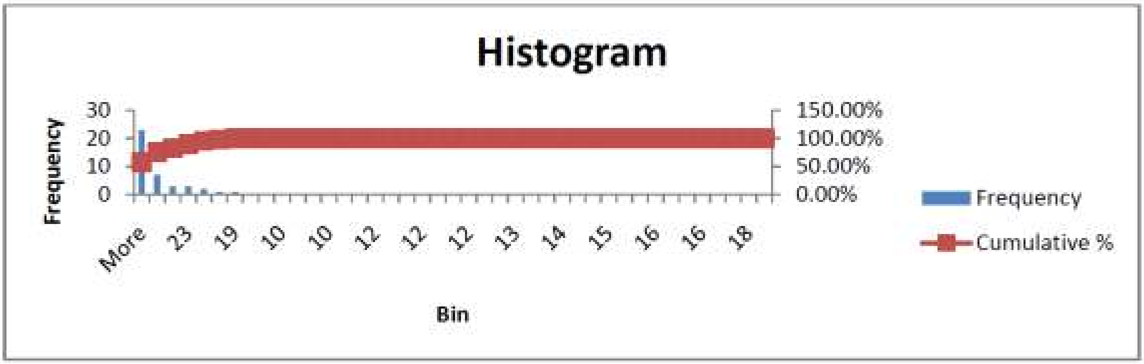

तालिका 6 – किशोर छात्र और छात्राओं में आक्रामकता चर पर स्कोर की तुलना करने के लिए बुश–पेरी एग्रेसन प्रश्नावली का उपयोग किया गया था। किशोर छात्रों का माध्य = 25.05, मानक विचलन 4.84 और किशोर छात्राओं (माध्य = 14. 37, मानक विचलन = 3.60); टी अनुपात = 11. 17) यह 0.01 के स्तर पर सार्थक है और इंगित करता है कि आक्रामकता चर के इस आयाम पर किशोर छात्र एवं छात्राओं के बीच सार्थक अंतर है। इस आयाम ''शारीरिक आक्रामकता'' पर किशोर छात्राओं की आक्रामकता स्तर किशोर छात्रों की तुलना में कम थी। यही कारण है कि उपरोक्त परिकल्पना खारिज कर दी गई है।

तालिका 7

क्रोध (Anger)

Gender	N	Mean	Median	S.D	df	t-value	Level of significance
Male	40	25.52	25.5	3.95	78	18.13	0.01
Female	40	11.37	11	2.94			

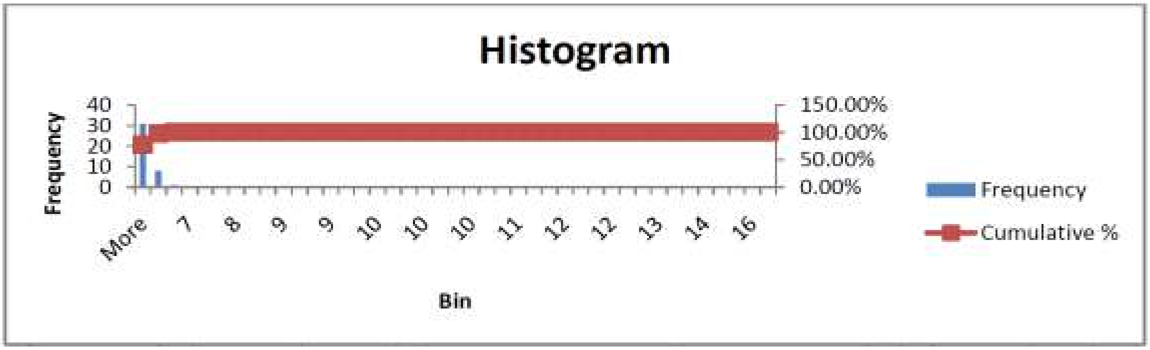

तालिका 7 – किशोर छात्र और छात्राओं में आक्रामकता चर पर स्कोर की तुलना करने के लिए बुश–पेरी एग्रेसन प्रश्नावली का उपयोग किया गया था। किशोर छात्रों का माध्य = 25.52, मानक विचलन 3.95 और किशोर छात्राओं (माध्य = 11. 37, मानक विचलन = 2.94); टी अनुपात = 18. 13) यह 0.01 के स्तर पर सार्थक है और इंगित करता है कि आक्रामकता चर के इस आयाम पर किशोर छात्र एवं छात्राओं के बीच सार्थक अंतर है। इस आयाम ''क्रोध'' पर किशोर छात्राओं की आक्रामकता स्तर किशोर छात्रों की तुलना में कम थी। यही कारण है कि उपरोक्त परिकल्पना खारिज कर दी गई है।

तालिका 8

शत्रुता (Hostility)

Gender	N	Mean	Median	S.D	df	t-value	Level of significance
Male	40	23.05	22	4.73	78	11.10	0.01
Female	40	13.42	13	2.78			

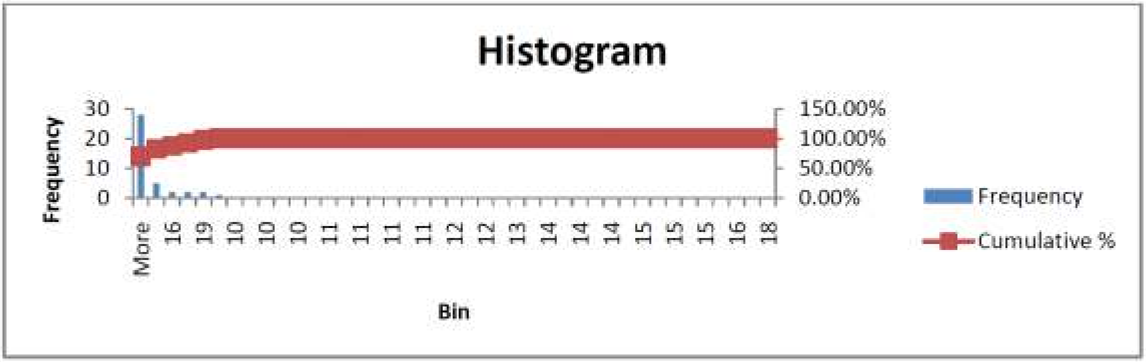

तालिका 8 – किशोर छात्र और छात्राओं में आक्रामकता चर पर स्कोर की तुलना करने के लिए बुश–पेरी एग्रेसन प्रश्नावली का उपयोग किया गया था। किशोर छात्रों का माध्य = 23.05, मानक विचलन 4.73 और किशोर छात्राओं (माध्य = 13.42 मानक विचलन = 2.78); टी अनुपात = 11.10) यह 0.01 के स्तर पर सार्थक है और इंगित करता है कि आक्रामकता चर के इस आयाम पर किशोर छात्र एवं छात्राओं के बीच सार्थक अंतर है। इस आयाम ''शत्रुता'' पर किशोर छात्राओं की आक्रामकता स्तर किशोर छात्रों की तुलना में कम थी। यही कारण है कि उपरोक्त परिकल्पना खारिज कर दी गई है।

तालिका 9

शाब्दिक आक्रामकता (Verbal Aggression)

Gender	N	Mean	Median	S.D	df	t-value	Level of significance
Male	40	20.2	20	3.29	78	17.91	0.01
Female	40	7.6	7	2.98			

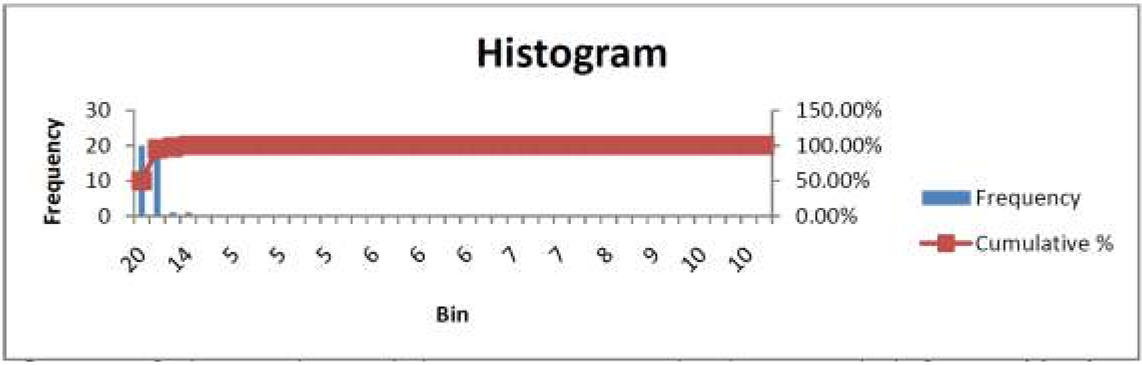

तालिका 9 – किशोर छात्र और छात्राओं में आक्रामकता चर पर स्कोर की तुलना करने के लिए बुश–पेरी एग्रेसन प्रश्नावली का उपयोग किया गया था। किशोर छात्रों का माध्य = 20.2, मानक विचलन 3.29 और किशोर छात्राओं (माध्य = 7.6 मानक विचलन = 2.98); टी अनुपात = 17.91) यह 0.01 के स्तर पर सार्थक है और इंगित करता है कि आक्रामकता चर के इस आयाम पर किशोर छात्र एवं छात्राओं के बीच सार्थक अंतर है। इस आयाम ''शाब्दिक आक्रामकता'' पर किशोर छात्राओं की आक्रामकता स्तर किशोर छात्रों की तुलना में कम थी। यही कारण है कि उपरोक्त परिकल्पना खारिज कर दी गई है।

परिकल्पना **(H4) : H4** किशोर छात्रों एवं छात्राओं में समग्र आक्रामकता चर पर लिंग का प्रभाव होगा।

तालिका 10
किशोर छात्रों एवं छात्राओं की समग्र आक्रामकता

Gender	N	Mean	Median	S.D	df	t-value	Level of significance
Male	40	93.82	94	10.88	78	22.99	0.01
Female	40	46.77	46.5	6.99			

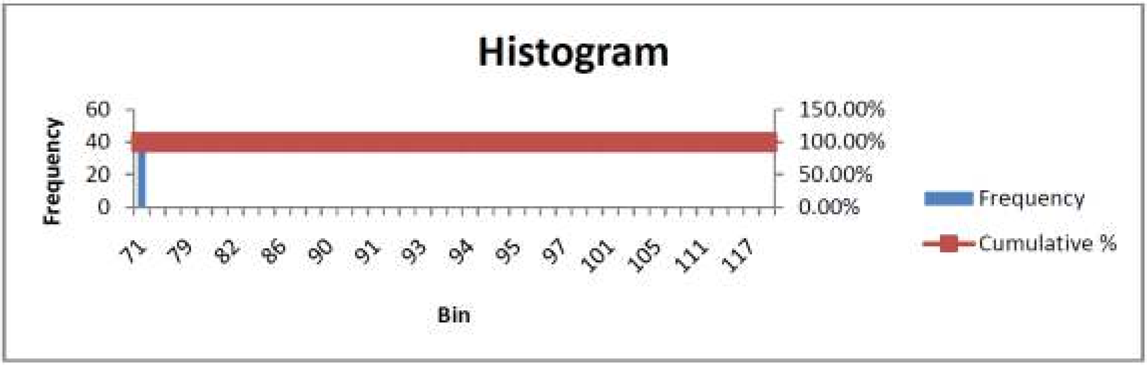

तालिका 10 – किशोर छात्र और छात्राओं में आक्रामकता चर पर स्कोर की तुलना करने के लिए बुश–पेरी एग्रेसन प्रश्नावली का उपयोग किया गया था जिसमें किशोर छात्र और छात्राओं के स्कोर में महत्वपूर्ण अंतर था। किशोर छात्रों का माध्य = 93.82, मानक विचलन 10.88 और किशोर छात्राओं (माध्य = 46.77, मानक विचलन = 6.99); टी अनुपात = 22.99)। यह 0.01 के स्तर पर सार्थक है और इंगित करता है कि समग्र आक्रामकता चर पर किशोर छात्र एवं छात्राओं के बीच सार्थक अंतर है। ''समग्र आक्रामकता'' पर किशोर छात्राओं की आक्रामकता स्तर किशोर छात्रों की तुलना में कम थी। यही कारण है कि उपरोक्त परिकल्पना खारिज कर दी गई है।

निष्कर्ष

ऊपर प्रस्तुत सांख्यिकीय विश्लेषण और गहन चर्चाओं से, इस लेख का जो निष्कर्ष आया है वह यह है की सांख्यिकीय विश्लेषण से पता चला है कि किशोर छात्र एवं छात्राओं के बीच सांवेगिक बुद्धि मे अंतर था। और किशोर छात्राओं की सांवेगिक बुद्धि अधिक थी। किशोर छात्राओं का आक्रामकता स्तर किशोर छात्र से कम था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *Mayer, J. D. & Salovey, P. (1993). The intelligence of emotional intelligence. Intelligence, 17, 433-442.*
2. *Mayer JD, Salovey P. Emotional intelligence and the construction and regulation of feelings. Applied & Preventive Psychology. 1995; 4:197-208. 17.*
3. *Mayer JD, Salovey P, Caruso DR. Models of Emotional intelligence. In R. Sternberg (Ed.), Handbook of Intelligence Cambridge, UK: Cambridge University Press. 2000, 396- 420.*
4. *Goleman, D. (1995). Emotional Intelligence. New York: Bantam Books.*
5. *Goleman D. Working with Emotional Intelligence. New York: Bantam Books, 1998.*
6. *John w. Santrock.(2007).Adolescence.New York :Tata McGraw Hill publisher .182-183, Journal of*

Indian academy of Applied Psychology, 2006, Vol.32, No. 1, 66-70.

7. *Lisa JM. Speak the Truth and Point to Hope: The Leader's Journey to Maturity, USA: Kendall Hunt Publishing Company, 2004.*
8. *Bandura, A. (1973). Social learning theory of aggression. In J. F. Knutson (Ed.), The control of aggression: Implications from basic research. Chicago: Aldine.*
9. *Ciarrochi et al, Personality and Individual Differences 31 (2001) 1105-1119*
10. *Ciarrochi, J.V., A.Y.C. Chan and P. Caputi (2000), A Critical evaluation of the emotional intelligence, construction personality individual difference, 28: 539-561.*
11. *Ap DijksterhuisLoran F. Nordgren,A Theory of Unconscious Thought*
12. *Buss, Personality and Individual DifferencesVolume 38, Issue 2, January 2005, Pages 337-346*
13. *Mayer, J. D., & Geher, G. (1996). Emotional Intelligence and the Identification of Emotion. Intelligence, 22, 89-113.http://dx.doi.org/10.1016/S0160-2896(96)90011-2*
14. *Robert A.Baron | Grishwar Misra; 5th edition. PSYCHOLOGY Indian Subcontinent Edition; Pearson (12), 172-174.*
15. *Salovety, Peter and John Majer (1997); What is Emotional Intelligence? In P. Salovety and D.J. Sluyter (eds), Emotional Development and Emotional Intelligence, Basic Books; New York.*
16. *Moyer K.E. Kinds of Aggression and their physiological Basis, Commun. Behav. Biol. Pt. A 2 65-87, 1968*

जयपुर जिले के घटते भू-जल संसाधनों का भौगोलिक विश्लेषणात्मक अध्ययन

सतीश कुमार दायमा
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

संसाधनों पर भौतिकतावादी जीवन से नकारात्मक प्रभाव बढ़ता जा रहा है। पर्यावरण अवनयन हो रहा है। ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव व घटती वर्षा की मात्रा से जल संसाधनों पर पिछले कुछ दशक से ह्रास का प्रभाव साफ परिलक्षित हो रहा है। हमारे वैदिक साहित्य में जो जल की महत्ता थी वह आज के युग में लुप्त होने की कगार पर है। जल संसाधनों पर औद्योगिकरण व नगरीयकरण का प्रभाव दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। वर्ष 1990 के दशक के बाद से भू-जल स्तर गुलाबी नगरी जयपुर का लगातार कम होता जा रहा है। वर्ष 2000 के बाद भू-जल स्तर 20-25 फीट औसत से भू-जल स्तर का तीव्र गति से अवनयन हुआ है। संविधान की धारा 51 पर्यावरण संरक्षण प्रत्येक नागरीक का कर्त्तव्य है।

***संकेताक्षर :** संसाधन, पर्यावरण अवनयन, परिलक्षित, औद्योगिकरण, नगरीयकरण, जयपुर, भू-जल स्तर।*

जल मेव जीवनम वेद पुराणों में लिखी गई उक्ति भारतीय संस्कृति में जल की महत्ता को प्रदर्शित करती है ''जल ही जीवन है'' ''जल है तो कल है'' जल को हमारे प्राचीन ग्रन्थों में विदित्त पाँच तत्वों में स्थान दिया गया है, जिनसे मानव शरीर की रचना होती है। जैसा कि -

''क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा
पंच रत्न-रच यह अधम शरीरा।''

निम्न पंक्तियां वर्तमान समय में सत्य चरितार्थ हो रही है। यद्यपि मध्यकालीन महाकवि रहिम दास जी ने भी जल के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि-

''रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून
पानी गये न ऊबरे, मोती, मानुष चून''

वर्तमान समय में तीव्र गति से बढ़ रही जनसंख्या व औद्योगिकरण के कारण समूचे जल संसाधनों का तीव्र गति से ह्यास होता जा रहा है। भू-जल संकट की समस्या न केवल विश्व, भारत, राज्य अपितु हमारे गुलाबी नगरी पर भी पिछले दशकों से इसका प्रभाव बढ़ता हुआ नजर आ रहा है। जयपुर जिले में सभी जगह जलस्तर समान नहीं है इसका मुख्य कारण वर्षा की कमी, भू-जल उपयोग का लगातार बढ़ना तथा तीव्र नगरीयकरण है। 1990 के बाद जिले का भू-जल स्तर तीव्र गति से गिरा है। वर्ष 2000 के बाद भू-जल संसाधनों में 20-25 फीट औसत से भू-जल स्तर का तीव्र गति से अवनयन हुआ है।

संविधान की धारा 51 के अनुसार पर्यावरण संरक्षण प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। जल संसाधनों को बचनो हेतु एवं औद्योगिक इकाइयों पर लगाम रखने के लिए ''जल प्रदूषण नियंत्रण एवं रोकथाम अधिनियम'' 1974 में लागू किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र

''गुलाबी नगरी'' के नाम से विश्व विख्यात जयपुर जिले की भौगोलिक स्थिति 26°23' से 27°51' उत्तरी अक्षांश व

ISSN 2277-5587

74°55' से 76°50' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। औसत समुद्र तल 425 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। उत्तर में सीकर जिला व हरियाणा का महेन्द्रगढ़ जिला, दक्षिण में टोंक, पूर्व के अलवर, दौसा व सवाई माधोपुर जिले एवं पश्चिम में नागौर व अजमेर जिले हैं। 2011 के जनसंख्या आंकड़ों के अनुसार जिले में कुल जनसंख्या 66,63,971 है। जनसंख्या घनत्व 595 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. है।

सम्पूर्ण जिला 16 तहसीलों में बंटा है– आमेर, बस्सी, चाकसू, कोटखावदा, चौमूं, जयपुर, जमवारामगढ़, कोटपुतली, मोजमाबाद, दूदू, फागी, किशनगढ़–रेनवाल, फुलेरा, सांगानेर, शाहपुरा, विराटनगर।

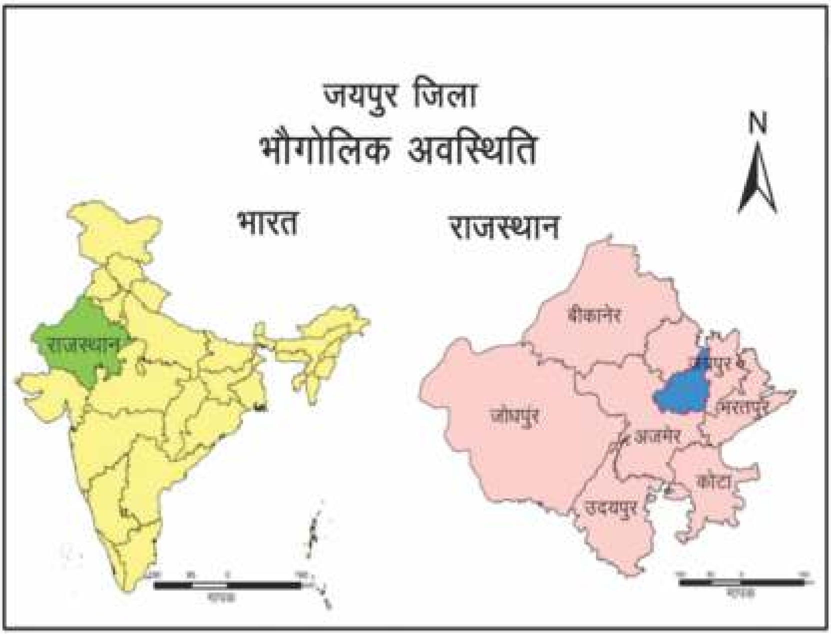

अध्ययन क्षेत्र

स्रोत : प्रशानिक मानचित्रावली (भारत की जनगणना 2011)

उद्देश्य

जयपुर जिले के अधिकांश क्षेत्र में सीमित सतही जल भण्डारों के कारण माँग की अधिकांश आपूर्ति भू–जल भण्डारों पर ही निर्भर है। जनसंख्या के लगातार वृद्धि तथा पेयजल, कृषि उपयोग एवं उद्योग धन्धों हेतु जल की बढ़ती माँग के कारण उपयोगी भू–जल भण्डारों से अत्याधिक दोहन हो रहा है। इसके परिणामस्वरूप व्यापक क्षेत्र में भू–जल स्तर में निरन्तर गिरावट एवं कतिपय क्षेत्रों में गुणवत्ता में कमी आ रही है।

प्रस्तुत शोध में राजस्थान के जयपुर जिले में भू–जल विकास एवं प्रबन्धन तथा निरन्तर गिरते भू–जल स्तर को ऊपर उठाने हेतु चलाये जा रहे भू–जल पुनर्भरण तकनीकों सम्बन्धी कार्यक्रमों का वर्तमान स्वरूप तथा भावी संचालन एवं प्रबन्धन के लिए विभिन्न आयामों का अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत शोध के निम्न उद्देश्य हैं–

- गिरते भू–जल स्तर को रोकने का प्रयास होगा।
- कृषि कार्यों व औद्योगिक कार्यो में भू–जल दोहन सीमित करना।
- वर्षा जल संचयन द्वारा भूमिगत जल का पुर्नभरण करना।
- भू–जल विकास एवं भू–जल पुर्नभरण की आधुनिक तकनीकों के उपयोग पर बल देना।
- सरकार व जनसहभागिता द्वारा भू–जल अवनयन के सतत विकास पर ध्यान देना।

परिकल्पनाएँ

किसी भी अध्ययन के पीछे शोधार्थी के मस्तिष्क में उस अध्ययन विशेष के सन्दर्भ में पूर्व परिकल्पनाएँ होती है जिन्हें आधार मानकर वह अध्ययन करता है। शोध कार्य में शोधार्थी की परिकल्पनाएँ महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

पिछले तीन दशक से जिले में कृषि, औद्योगिकरण, तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण पेयजल की बढ़ती माँग के साथ–साथ वर्तमान समय में भू–जल पुर्नभरण की अपेक्षा भू–जल दोहन की दर कई गुणा अधिक हो गई है। भू–जल विकास विभाग ने चिन्ता व्यक्त की है कि यदि इस गति से भू–जल दोहन किया जाता रहा तो आगामी 2 दशक में प्रदेश के भू–जल का भण्डार पूर्णतया समाप्ति के कगार पर होगा।

अध्ययन क्षेत्र में शोधार्थी की निम्नलिखित परिकल्पनाएँ हैं–

- जयपुर जिले के भू–जल पुनर्भरण की अपेक्षा भू–जल दोहन को जान सकेंगे।
- भू–जल प्रबन्धन एवं पुनर्भरण तकनीकों के द्वारा गिरते भू–जल स्तर को बचा सकेंगे।
- जिले के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक गतिविधियों में जल के बढ़ते अपव्यय पर रोक हो सकेगी।
- सरकारी योजनाओं से जन–सहभागिता में गिरते भू–जल स्तर के प्रति चेतना का विकास हो सकेगा।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध ''जयपुर जिले के घटते भू–जल संसाधनों का भौगोलिक विश्लेषणात्मक अध्ययन में सूक्ष्म स्तरीय अध्ययन" है, जिसमें दो प्रकार की शोध विधि अपनाई गई है।

(1) प्राथमिक आँकड़े (2) द्वितीय आँकड़े

प्राथमिक आँकड़े

अनुभव जन्य तथा स्थानीय लोगों से प्राप्त किये गये हैं।

द्वितीय आँकड़े

- सरकारी, गैर सरकारी स्रोतों से प्राप्त किये
- भू–जल विकास विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर।
- सिंचाई विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर।
- केन्द्रीय भू–जल बोर्ड, जयपुर।
- जन स्वास्थ्य अभियांत्रिक विभाग, जयपुर।
- राजस्थान भू–जल बोर्ड, जयपुर।
- भारतीय मौसम विभाग, जयपुर।

साहित्य समीक्षा

प्रस्तुत शोध विषय पर पिछले दो–तीन दशकों से बहुत ध्यान केन्द्रीत किया गया है। गिरते भू–जल स्तर पर वैज्ञानिकों, राज्य सरकार, केन्द्रीय सरकार, गैर सरकारी ऐजेन्सियाँ, अर्थशास्त्रियों, सामाजिकविदों एवं भूगोलविदों द्वारा अपने अपने ढंगों द्वारा अध्ययन किया गया है। इस विषय पर कुछ अध्ययन क्रमबध रूप से

ISSN 2277-5587

क्षेत्रीय स्तर पर, कुल जिला स्तर पर किया है।

- के.एम. पिल्लई (1987) 'वाटर मैनेजमेंट एण्ड प्लानिंग' में जल संसाधन नियोजन एवं व्यवस्था पर कार्य किया है।
- पी.एस. शेखावत (1928) ''रूरल ड्रिंकिंग वाटर सप्लाई इन द राजस्थान" में उन्होंने मरूस्थलीय राजस्थान में ग्रामीण जलापूर्ति का अध्ययन किया है।
- डॉ. हरिमोहन सक्सैना, पर्यावरण एवं प्रदूषण (2017), राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी।
- प्रो. एस.सी. कलवार 'जयपुर नगर नियोजन' (2015) में शहर की जलापूर्ति पर विस्तृत विवेचना की है।

भू–जल की स्थिति – अध्ययन क्षेत्र में भू–जल की स्थिति में बहुत असमानता पाई जाती है जो कि यह अनेक कारणों से प्रभावित है, जैसे– वर्षा जल प्राप्ति में असमानता, तीव्र औद्योगिकरण, बढ़ता नगरीयकरण, अनियोजित कृषि, सिचांई, भू–जल उपलब्धता, भू–जल सामर्थ्य आदि।

भू–जल उपलब्धता– क्षेत्रीय भिन्नता के आधार पर भू–जल उपलब्धता को भी निम्न श्रेणियों में रखा जा सकता है–

1. **अधिक भू–जल उपलब्धता वाले क्षेत्र** (55 सेमी. से अधिक वर्षा वाले क्षेत्र)– इसके अन्तर्गत अध्ययन क्षेत्र का उत्तरी पूर्वी भाग शामिल है जिसमें कोटपुतली तहसील का पूर्वी भाग है एवं जिले के द. पूर्वी भाग चाकसू एवं बस्सी तहसील के पूर्वी भाग सम्मलित है। कुल क्षेत्र का 80 प्रतिशत भाग इसमें आता है।
2. **मध्य भू–जल उपलब्धता वाले क्षेत्र** (50–55 सेमी. वर्षा वाले क्षेत्र)– इस श्रेणी में अध्ययन क्षेत्र जयपुर जिले का लगभग 80 प्रतिशत क्षेत्र शामिल है। यह मध्यवर्ती क्षेत्र है जिसमें विराटनगर, शाहपुरा, चौंमू, आमेर, सांगानेर, जमवारामगढ़, फागी तहसीले शामिल हैं।
3. **न्यून भू–जल उपलब्धता वाले क्षेत्र** (50 सेमी. से कम)– इस श्रेणी में जयपुर जिले का पश्चिमी क्षेत्र शामिल है इस श्रेणी में जिले का लगभग 12 प्रतिशत क्षेत्र शामिल है जिसके अन्तर्गत फुलेरा, दूदू तहसीले सम्मलित हैं। यहाँ पर कम वर्षा का कारण क्षेत्र का मरूस्थलीय स्वरूप है। इस क्षेत्र में विश्व प्रसिद्ध नमकीन झील सांभर भी स्थित है।

भू–जल स्तर का वितरण

जयपुर जिले में भू–जल स्तर में असमानता पाई जाती है जिसके कारण वर्षा जल की प्राप्ति, धरातलीय संरचना, मिट्टी की प्रकृति, नगरीयकरण, औद्योगिकरण आदि है। अध्ययन क्षेत्र का भू–जल स्तर का विवरण निम्न प्रकार है–

1. **उच्च भू–जल स्तर क्षेत्र–** इसके अन्तर्गत अध्ययन क्षेत्र का दक्षिणी पूर्वी भाग – चाकसू, बस्सी तहसील का दक्षिण क्षेत्र शामिल है यहाँ पर 35 मीटर कम गहरा जल स्तर पाया जाता है। यहाँ पर नदी प्रवाह अच्छा है जिससे कृषि विकास की संभावनाएं हैं।
2. **मध्यम भू–जलस्तर क्षेत्र–** इसके अन्तर्गत 35 से 45 मीटर तक गहराई वाले क्षेत्र शामिल हैं, जिसमें जमवारामगढ़, बस्सी, चाकसू, फागी, दूदू, फुलेरा तहसीले शामिल हैं, यहाँ मध्यम भू–जल स्तर का कारण पूर्वी तथा पश्चिमी क्षेत्रों में जनसंख्या दबाव अधिक तथा पश्चिमी क्षेत्र में वर्षा की कमी तथा धरातलीय बालु मिट्टी का होना है।
3. **निम्न भू–जल स्तर क्षेत्र–** यहाँ भू–जल स्तर 50 मीटर से अधिक पाया जाता है। यह क्षेत्र सम्पूर्ण क्षेत्र का 45 प्रतिशत क्षेत्र है जिसमें जिले की चौमूं, शाहपुरा, कोटपुतली, विराटनगर, आमेर, जयपुर आदि तहसीलें शामिल हैं। इसी क्षेत्र में सांभर झील भी स्थित है इसके अपवाह क्षेत्र में जल स्तर कम पाया जाता है।

भू–जल दोहन एवं पुर्नभरण

दोहन से तात्पर्य कुल भू–जल की मात्रा में कितने जल का उपयोग किया गया है। कुल भू–जल पुर्नभरण में से विभिन्न कार्यों के लिए कितना भू–जल पुनर्भरण उपयोग में लिया गया है।

जयपुर जिले में विगत वर्षो से पुर्नभरण की अपेक्षा दोहन अधिक हो रहा है। यही कारण है कि जयपुर जिले में जल स्तर प्रतिवर्ष तीव्र गति से गिर रहा है।

वर्षा द्वारा प्रति वर्ष जितना भू–जल प्राप्त हो रहा है उससे अधिक कृषि, उद्योग, घरेलू कार्यों के लिए निकाला जा रहा है, जिसके कारण लगातार जल स्तर में गिरावट आती जा रही है। जयपुर जिले के ब्लाकवार भू–जल के विविध कार्यों में उपयोग के आँकड़ो को निम्न सारणी में परिलक्षित किया गया है–

वर्ष 2015 के जयपुर जिले के ब्लॉकवार भू–जल उपयोग के आंकड़े

क्र. सं.	ब्लॉक	कुल वार्षिक भू–जल पुनर्भरण क्षमता (MCM में)	गैर मानसून समयावधि में भूजल का डिस्चार्ज (MCM में)	कुल वार्षिक भू–जल उपलब्धता (MCM में)	सिंचाई कार्य में (MCM में)	घरेलू तथा औद्योगिक कार्यों में (MCM में)	कुल भू–जल दोहन (MCM में)	श्रेणी
1.	आमेर	82.90	8.30	74.60	144.34	50.21	194.55	अतिदोहन
2.	फागी	49.70	3.20	46.50	39.90	3.83	43.74	क्रिटिकल
3.	सांभर	49.73	4.97	44.76	159.60	11.82	171.44	अतिदोहन
4.	सांगानेर	54.10	5.40	48.70	96.39	23.31	119.70	अतिदोहन
5.	झोटवाड़ा	55.40	5.50	49.90	66.58	138.12	204.70	अतिदोहन
6.	कोटपुतली	39.40	3.90	35.50	74.07	9.91	83.90	अतिदोहन
7.	जमवारामगढ़	56.30	5.60	50.70	97.58	5.70	103.28	अतिदोहन
8.	गोविन्दगढ़	55.90	5.70	50.20	121.48	14.04	135.00	अतिदोहन
9.	दूदू	91.30	9.10	82.20	75.40	20.62	96.02	अतिदोहन
10.	चाकसू	58.35	5.80	52.45	82.08	6.29	88.38	अतिदोहन
11.	बस्सी	45.40	4.40	41.00	88.73	11.56	100.29	अतिदोहन
12.	शाहपुरा	32.26	3.21	28.94	66.64	9.10	75.79	अतिदोहन
13.	विराटनगर	50.15	5.01	45.14	66.05	11.36	74.41	अतिदोहन

स्रोत– कार्यालय, अधीक्षण, भू–जल विभाग, जयपुर (2018)

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि जयपुर जिले के भू–जल स्तर में निरन्तर गिरावट दर्ज की जा रही है। केन्द्रीय भू–जल बोर्ड व राजस्थान भू–जल विभाग की रिपोर्ट के अनुसार जयपुर जिले में 650.78 मिलियन क्यूबिक मीटर भू–जल की वार्षिक उपलब्धता है, जबकी 1494.87 मिलियन क्यूबिक मीटर भू–जल का सिंचाई, घरेलु तथा औद्योगिक कार्यों में इसका उपयोग हो रहा है। इस प्रकार जयपुर जिला जल दोहन में अतिदोहन श्रेणी के अन्तर्गत है। जिले में कुल भू–जल दोहन का 82 प्रतिशत सिंचाई के रूप में हुआ है।

- ➢ जिले के भू–जल का सर्वाधिक दोहन झोटवाड़ा ब्लॉक में तथा सबसे कम दोहन फागी ब्लॉक में किया गया है।
- ➢ सिंचाई में भू–जल का दोहन सर्वाधिक सांभर ब्लॉक में तथा सबसे कम फागी ब्लॉक में किया गया है।
- ➢ घरेलू औद्योगिक उपयोग में भू–जल का दोहन सबसे ज्यादा झोटवाडा ब्लॉक में तथा सबसे कम फागी ब्लॉक में किया गया है।
- ➢ जिले में फागी ब्लॉक क्रिटिकल श्रेणी में तथा इसके अलावा अन्य सभी ब्लॉक अतिदोहन श्रेणी में शामिल है।

समस्याएँ

वर्षा की घटती मात्रा, तीव्र जनसंख्या व नगरीयकरण, तीव्र औद्योगिकरण, सतही जल का अभाव है। स्थानीय

ISSN 2277-5587

लोगों की अदूरदर्शिता, अनियन्त्रित सिंचाई व फसल प्रारूप में परिवर्तन आदि।

समाधान

- अध्ययन क्षेत्र के गिरते भू-जल स्तर को बचाने के लिए जनसाधारण को सचेत होना।
- सरकार द्वारा जल चेतना कार्यक्रमों जैसे जल ग्रहण विकास, जल स्वावलंबन योजना आदि को अनिवार्य रूप से लागू करना होगा।
- बदलते कृषि प्रतिरूप के अनुरूप सिंचाई की नई तकनीकों को अपनाना होगा।
- शस्य स्वरूप को बढ़ावा देने के लिए उन्नत नस्ल के व कम पानी की मात्रा वाले बीजों का प्रयोग करना।
- संविधानिक उपबन्धों के अनुसार जल के अपव्यय को औद्योगिक क्षेत्रो में दण्डात्मक रूप से लागू करना।
- वर्षा को बढ़ाने के लिए अध्ययन क्षेत्र के चारों और ग्रीन बेल्ट विकसति करने का प्रयास।

विकास की संभावनाएँ

- खेत के चारों और पालबन्दी करके वर्षा-ऋतु के दौरान खेत का पानी खेत में ठहरना चाहिए।
- क्षेत्र में जहाँ पर मिट्टी की मोटी परत हो उन भागों में खडीनों का निर्माण, भू-जल का पर्नुभरण एवं मिट्टी की नमी बढ़ाने के लिए किया जा सकता है।
- घरों की छतों एवं पक्के फर्श से व्यर्थ बहकर जाने वाले वर्षा जल को टांके में संचित कर घरेलु उपयोग में लाया जाय।
- पानी पंचायत का गठन किया जाना चाहिए जो की पानी के नियोजन उपयोग के मापदण्ड तय करे।

उपसंहार

निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि जल संरक्षण की जिम्मेदारी मात्र सरकार की नहीं है, बल्कि इसके लिए प्रत्येक आमजन का भी कर्त्तव्य बनता है कि पानी को मितव्ययिता से उपयोग में लाया जाए। पानी की फिजुलखर्ची रोकी जाए। जिन लोगों ने अपने घरों में नलकूप खुदवा रखे हैं उनका कर्तव्य बनता है कि वे जल का अत्याधिक दोहन ना करे तथा राज्य सरकार को भी इस पर कठोर नियंत्रण लगाना होगा। आमजन को भावी पीढ़ियों के जीवन को ध्यान में रखते हुए जल संरक्षण की मानसिकता विकसित करनी होगी। चूँकि प्रकृति प्रदत्त जल संसाधनों में वृद्धि करना हमारे लिए संभव नहीं है, परन्तु उपलब्ध जल संसाधनों को संरक्षित कर व्यर्थ नष्ट होने से रोककर उनका समुचित एवं सुनियोजित उपयोग करना हमारा कर्तव्य है।

"जल है तो कल है"

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *जन स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग, जयपुर 2015।*
2. *केन्द्रीय भू-जल बोर्ड, जयपुर*
3. *www.com.water* conservation
4. *सूचना जन सम्पर्क विभाग "सुजस वार्षिकांक" राजस्थान सरकार, 2018, पृ. 282।*
5. *जन स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग, प्रगति विवरणिका, जयपुर, 2016-17।*
6. *कुमार, रविन्द्र (2016) "जल संरक्षण और प्रबन्धन"।*

राष्ट्रभाषा के बिना कैसा राष्ट्र–''हिन्दी''

प्रियंका सिंह
शोद्यार्थी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उत्तर प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में भारत राष्ट्र की संकल्पना में राष्ट्रभाषा हिंदी की महत्ता को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दर्शाया गया है, जब हम एक राष्ट्र की बात करते हैं, उसके मत्वपूर्ण तत्वों की बात करते हैं, तब अति आवश्यक हो जाता है उसकी भाषा पर चर्चा करना, जो हमें भावनात्मकता और संस्कृति के स्तर पर एक साथ जोड़ती है। किस प्रकार स्वाधीनता आन्दोलन में हिंदी ने सबको एक साथ जोड़ने का काम किया, साहित्यकारों ने कैसे व्यापक स्तर पर हिंदी में साहित्य की रचना करके एक बड़ा जनांदोलन खड़ा कर दिया और जनमानस के अंदर क्रांति की ज्वाला को जाग्रत किया। वर्तमान परिदृश्य में जब चारों ओर परिवर्तन हो रहे हैं, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का युग है तब हमारी शिक्षा नीति में परिवर्तन एक बड़े बदलाव की ओर इशारा कर रहा हैं, जिसमें सबसे महत्वपूर्ण है की प्रारंभिक चरण की शिक्षा में भाषा की बाध्यता को समाप्त कर देना और क्षेत्रीय या मातृभाषा में भी शिक्षा प्रदान करना, परन्तु जब हम एक राष्ट्र में राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का अवलोकन करते हैं तो बड़ा पीछे छूटते नजर आते हैं, हमने अपने शोध पत्र में यही दर्शाने का प्रयास किया है कि वर्तमान प्रतिस्पर्धा की दौड़ में हम कैसे हिंदी की महत्ता को पुनःस्थापित कर सकते हैं क्योंकि कोई भी राष्ट्र अपनी सम्पूर्णता को तभी प्राप्त कर पायेगा जब वह अपने सभी महत्वपूर्ण तत्वों को सम्मिलित करेगा, जिसमें भाषा एक अनिवार्य तत्व है, अन्यथा बिना राष्ट्रभाषा के राष्ट्र कैसे अपने सपूर्ण स्वरुप में आ सकता है।

संकेताक्षर : *हिन्दी, राष्ट्रभाषा, शिक्षा, भाषा, राष्ट्र, भारत, संस्कृति।*

वैश्वीकृत होती दुनिया में जहाँ भौतिकता का शोर चारों तरफ सुनाई दे रहा हो, जहॉ दुनिया नये–नये अविष्कार करने पर लगी हो, सभी देश प्रतिस्पर्धा की दुनिया में स्वयं को सर्वोच्च सिद्ध करने पर लगे हों, तब ऐसे में हमें इस बात पर जोर देने की आवश्यकता है कहीं हम अपनी संस्कृति से दूर तो नही होते जा रहे हैं। खैर दुनिया जब नये–नये प्रयोग कर रही है तब हमारे देश में भी कई वर्ष पुरानी शिक्षा नीति में परिवर्तन किया गया जो आने वाले समय में शिक्षा क्षेत्र में एक बड़े सकारात्मक बदलाव के रूप में साबित होगी। अब बात करते हैं अपनी राज्यभाषा हिन्दी की।

नयी शिक्षा नीति में भी पहले चरण में अपनी मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा में शिक्षा प्राप्त करने का उल्लेख किया और किसी भाषा की बाध्यता को समाप्त कर दिया गया। लेकिन जब हम बड़े स्तर पर किसी भी क्षेत्र में नजर दौडाते हैं तब इस प्रौद्योगिकी काल में हिंदी भाषा पीछे छूटती नजर आती है। तब आखिर प्रश्न उठता है कि 'राष्ट्रभाषा के बिना कैसा राष्ट्र'? जब हम राष्ट्रवाद की बात करते हैं, राष्ट्र संस्कृति की, एकता और अखण्डता की बात करते हैं तब राष्ट्रभाषा को कैसे नजरअंदाज कर सकते हैं। मानते हैं भाषा का परिवर्तन जारी रहता है लेकिन राष्ट्रभाषा के अभाव में हम राष्ट्र कैसे कहला सकते हैं। भाषा ही विचारों और भावों का आदान–प्रदान करती है, इसे मानवीय संस्कृति की विशिष्ट एवं श्रेष्ठतम उपलब्धि माना जा सकता है। जैसे एक राष्ट्र के लिए उसकी सीमाएं, भूखण्ड, राष्ट्र की संस्कृति महत्वपूर्ण है, उसी प्रकार राष्ट्र के विचारों की संवाहिका भाषा भी आवश्यक है–

'एक राष्ट्र हो एक धर्म हो एक हमारी भाषा हो
राष्ट्रधर्म का पालन करना जीवन की परिभाषा हो।'

(राष्ट्रीय गीत माला–रामखेलावन)

राष्ट्रभाषा शब्द कोई संवैधानिक शब्द नहीं है अपितु यह व्यवहारिक और जनमान्यता प्राप्त है। राष्ट्र जब तात्कालिक हितों एवं पूर्वागृह से ऊपर उठकर अपने राष्ट्र की कई भाषाओं में से किसी एक भाषा को चुनकर उसे राष्ट्रीय अस्मिता का एक आवश्यक उपादान समझने लगता है, तब वह भाषा राष्ट्रभाषा के स्वरूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होती है। राष्ट्रभाषा सामाजिक–सांस्कृतिक स्तर पर देश को जोड़ने का काम करती है अर्थात राष्ट्रभाषा की प्राथमिक शर्त देश में विभिन्न समुदायों के मध्य एकता स्थापित करना है। लेकिन हिंदी को राष्ट्रभाषा कहलवाने के लिए काफी संवेदनाओं के साथ खेलना पड़ा है। कितने लोग या कितने प्रतिशत लोग जनगणना के दौरान बताते हैं हिन्दी उनकी मातृभाषा है? बस बीस प्रतिशत लोग। अब इस बीस प्रतिशत को पचास प्रतिशत बनाया जाता है, करीब पचास अन्य भाषाओं को हिन्दी मानकर। इसमें भोजपुरी, ब्रज, अवधी, बुन्देली, मैथिली जैसी जो भाषाएं है, उनकी अपनी संस्कृति है, अपना साहित्य है, इनको हिन्दी को अर्न्तगत लाया गया है, यह दर्शाने के लिए कि यह स्वायत्त भाषाएं नहीं हैं और भारत में पचास प्रतिशत लोग हिन्दी बोलते है। हम यह भी जानते है कि सरकारी हिन्दी का गठन राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान इन्हीं तबकों ने किया था। हिन्दुस्तानी से उर्दू, फारसी के शब्द निकालकर बोल–चाल की हिन्दुस्तानी को साफ किया गया। तो हम देखते है कि देश या राष्ट्र शुद्धता मांगता है हमसे''।

(राष्ट्रवाद बनाम जनवाद–निवेदिता मेनन)

हिन्दी भाषा को अपने प्रारम्भ से ही विदेशी भाषाओं से टकराहट झेलनी पड़ी क्योंकि हिन्दी व्यापक जन–जीवन से जुड़ी थी इसलिए इसका प्रचार–प्रसार बराबर बना रहा। राष्ट्रीय आन्दोलन और स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान राजनीतिक, सामाजिक आदि विभिन्न क्षेत्रों में एक सम्पर्क भाषा की आवश्यकता महसूस की गयी। सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी इसलिए प्रबल पक्ष के रूप में उभर आयी क्योंकि हिन्दी का अर्न्तप्रान्तीय प्रचार काफी पहले से ही हो गया था। हिन्दी के प्रति अनुराग पैदा करने में भक्ति–आन्दोलन की विशिष्ट भूमिका रही। निर्गुण संतों ने हिन्दी भाषा को अपनाते हुए अन्य प्रान्तों के शब्दों का यथासम्भव हिन्दी में समाविष्ट करके उसके राष्ट्रीय स्वरूप को विकसित करने का उपक्रम किया। सूफियों ने इस्लाम के लिए प्रति पूर्ण आस्थावान रहते हुऐ की हिन्दी भाषा के माध्यम से अपनी प्रेम कहानी को जनसाधारण तक पहुँचाया। कृष्ण भक्ति काव्य तो इतना प्रबल था कि बहुत संवेदनशील कवि अपने धार्मिक सम्प्रदायों को छोड़कर कृष्ण भक्ति को अपनाने के लिए ललक उठे। यह हिन्दी ही तो है जिसने हमें पहचाने दी, हमारी संस्कृति को सुरक्षित रखा और एकता और अखण्डता की भावना को बनाये रखा–

''राष्ट्र की एकता का आधार है हिन्दी
राष्ट्र की शान और स्वाभिमान है हिन्दी''

महात्मा गांधी जी का विचार था कि– राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है, हृदय की कोई भाषा नहीं है हृदय–हृदय से बातचीत करता है और हिन्दी हृदय की भाषा है। अखिल भारत के परस्पर व्यवहार के लिए आवश्यकता है, जिसे जनता का अधिकतम भाग पहले से ही समझता है और हिन्दी इस दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है''–

(भाषा विज्ञान, हिन्दी भाषा और लिपि–रामकिशोर शर्मा)

हिन्दी दीर्घकाल से ही सम्पूर्ण देश में जनता के पारस्परिक सम्पर्क की भाषा बन गई। यह केवल उत्तरी भारत ही नहीं, बल्कि दक्षिण भारत के आचार्यो की भी प्रचार–प्रसार की भाषा बनी। यही कारण था कि जनता और सरकार के माध्यम संवाद स्थापना के क्रम में फारसी या अंग्रेजी के माध्यम से दिक्कतें पेश आयीं तो कम्पनी ने सरकार के फोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दुस्तानी विभाग खोलकर अधिकारियों को हिन्दी सिखाने की व्यवस्था की। हमारे राष्ट्र में अनेक भाषाएं, अनेक धर्म और अनेक संस्कृतियाँ हैं लेकिन हम जब इस बहुलता पर जोर देते हैं तो एकता पर पहुँचा जाते हैं और एकता पर जोर देते हैं तो विभिन्नता पर पहुँच जाते हैं। अशोक वाजपेयी ने अपने लेख कला और स्वतंत्रता में उल्लेख किया है कि भारत में किसी को एकवचन नहीं रहने दिया गया। प्रत्येक को बहुवचन में बदल दिया गया। हम एक हैं क्योंकि अनेक हैं। खान–पान, वेश–भूषा, रहन–सहन बड़ा ही विभिन्न है फिर भी जब हम विभिन्नता की बात कर रहे होते हैं तब हम एकता के स्वरूप को समझ रहे होते हैं। ऐसी ही अनेक भाषाएं है लेकिन जब हम हिन्दी की बात करते हैं तो स्वतः हमारे सामने हिन्दी अपने राष्ट्रभाषा

के स्वरूप में उपस्थित हो जाती है। 'राजाराममोहन राय ने कहा,' इस समग्र देश की एकता के लिए हिन्दी अनिवार्य है। केशवचन्द्रसेन ने 1875ई. में एक लेख में लिखा–भारतीय एकता कैसे हो जिसमें उन्होंने उपाय लिखा कि ''सम्पूर्ण भारत में एक ही भाषा का व्यवहार हो।'' स्वामी दयानन्द ने कहा था, हिन्दी के द्वारा सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है। वे कहते थे, मेरी आखें उस दिन को देखना चाहती हैं, जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक भाषा समझने और बोलने लग जाएंगे।

(भाषा–विज्ञान–रामकिशोर शर्मा)

20वीं सदी के चौथे दशक तक हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में आम सहमति प्राप्त कर चुकी थी। वर्ष 1942 से 1945 का समय ऐसा था जब देश में स्वतंत्रता की लहर सबसे अधिक तीव्र थी, तब राष्ट्रभाषा से ओत–प्रोत जितनी रचनाएं हिन्दी में लिखी गयीं उतनी शायद किसी और भाषा में इतने व्यापक रूप से कभी नहीं लिखी गई। हिन्दी साहित्य बड़े लेखकों में गिने जाने वाले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने एक लेख में लिखा कि कविता क्या है और इसमें उन्होंने यही कहा कि कवि का काम शासक की प्रसंशा करना नहीं है, कवि का काम पैसे के सामने घुटने टेक देना नहीं है बल्कि कवि का काम है देश की जनता के जीवन में निहित सृजनात्मकता को पहचानना। इसलिए साहित्य बजाय सत्ता के लोगों के साथ खड़ा होता रहा है। साहित्य के किसी प्रबल पक्ष ने जनमानस में जागृति का प्रसार किया और राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना जाग्रत करता रहा और हिन्दी ने इसमें अपनी महत्ती भूमिका अदा की। राष्ट्रभाषा प्रचार के साथ राष्ट्रीयता के प्रबल हो जाने पर अंग्रेजों को भारत छोड़ना पड़ा। वर्तमान समय जब विज्ञान और प्रौद्योगिकी का समय है, चारों ओर भौतिकता का बोल–बाला है, चाहे वह शिक्षा का क्षेत्र हो या सांस्कृतिक तब ऐसे में अति महत्वपूर्ण हो जाता है कि हम अपनी संस्कृति और विरासत के वाहक बनकर अपनी राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को सुरक्षित रख सकें। तब हमारे सामने भाषायी आधार एक चुनौती बनकर खड़ा हो जाता है। अब प्रश्न उठता है इस चुनौती से निपटने का। हिन्दी का अस्तित्व और राष्ट्रभाषा का स्वरूप को बनाये रखने के लिए जितनी जिम्मेदारी नागरिक और व्यक्ति की उतनी ही सरकार और सरकारी संस्थाओं की। स्पर्धा के दौर में विदेशी भाषा की अपेक्षा यदि हिन्दी भाषा के माध्यम पर अधिक जोर दिया जायेगा, छात्रों को इस माध्यम से सरकारी संस्थाओं में चयन होने का अवसर मिलेगा तो शायद कहीं हम राष्ट्रभाषा के अस्तित्व को बचा पाने में सक्षम हो पायेंगे। हम हिन्दी और राष्ट्रभाषा के इतिहास से प्रेरणा लेकर यदि वर्तमान में हिन्दी को आधार बनाकर आगे बढ़ने की कोशिश करेंगे, तभी राष्ट्रभाषा के स्वरूप को बचाने में सफल हो पायेंगे। निजीकरण के दौर में यदि हिन्दी को आधार नहीं बनाया गया तो राष्ट्रभाषा के बिना हम कैसे राष्ट्र की कल्पना कर सकते हैं। तब तो जो राष्ट्रवाद है वह केवल छद्म रूप में ही रह जायेगा। इसलिए राष्ट्र के स्वरूप और अस्तित्व को बनाये रखने के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी को आधार बनाना और उसका व्यापक प्रचार–प्रसार करना अतिआवश्यक है। यदि हम ऐसा कर पाने में सफल होंगे तभी हम राष्ट्रवाद के स्वरूप और अस्तित्व को बनाये रखने में सफल हो पायेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *आज के आईने में राष्ट्रवाद– रविकान्त*
2. *भाषा–विज्ञान, हिन्दी भाषा और लिपि– रामकिशोर शर्मा*
3. *भाषा चिंतन के नये आयाम– रामकिशोर शर्मा*
4. *राष्ट्रीय गीत माल– रामखेलावन*
5. *सत्ता, साहित्य और आवाम– गोपाल प्रधान*
6. *राष्ट्रवाद बनाम जनवाद– निवेदिता मेनन*

अन्तर्राष्ट्रीय कला जगत तथा भारतीय कला व सांस्कृतिक विरासतों में सह सम्बन्ध

सतीश शर्मा
शोद्यार्थी, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारत के वैश्विक सम्बन्धों का मूल आधार ''वसुधैव कुटुम्बकम'' रहा है। 21 वीं सदी में इस अवधारणा को जीवन्त रूप देने में भारतीय कला एवं संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जिसके कारण भारत आज विश्व के अन्य देशों से मैत्री और सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध बनानें मे कामयाब हुआ है। कला समाज एवं राष्ट्र तथा वहाँ की संस्कृतियो के बीच एक सेतु का कार्य करती है। भारत मे प्रतिवर्ष आयोजित होने वाले India Art Fair जैसे कला मेलों, कुंभ मेला, राजस्थान में आयोजित होने वाले बून्दी महोत्सव, पुष्कर महोत्सव, मरू महोत्सव और थार महोत्सव आदि मे कला, संस्कृति व धर्म का अनूठा संगम देखने को मिलता है। अतः आज के परिपेक्ष्य में कला ही एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा भारत विश्व मंच मे समरसता का वातावरण बनाते हुए विभिन्न देशों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों द्वारा अपना कीर्तिमान स्वरुप प्रस्तुत कर सकता है। निष्कर्षतः हम यह कह सकते है कि भारत के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो को मधुर एवं प्रगाढ़ बनाने मे भारतीय कला एव संस्कृति का अमूल्य योगदान रहा है।

संकेताक्षर : *कला, सांस्कृतिक विरासत, वैश्विक सम्बन्ध, मेले, महोत्सव, मानवीय मूल्य।*

भारत की विदेश नीति एवं वैश्विक सम्बन्धों का मूल आधार ''वसुधैव कुटुम्बकम'' रहा है और इसी अवधारणा पर आधारित अन्य देशों से आत्मीय सम्बन्ध बनाने के लिए भारत सदैव से ही प्रयत्नशील रहा है। 21 वीं सदी मे इस अवधारणा को जीवन्त रूप देने में कला एवं संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वर्तमान समय में भारत एक विश्व शक्ति के रूप मे उदीयमान हो रहा है। प्रगति की इस सीढी मे कला और संस्कृति एक महत्वपूर्ण सोपान के रूप मे परिलक्षित हुये है, जिसके चलते भारत आज विश्व के अन्य देशों से मैत्री और सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध बनाने मे कामयाब हुआ है।

कला का सबसे महत्वपूर्ण कार्य होता है –लोगों को एक दूसरे से जोड़ना । कला समाज एवं राष्ट्र तथा वहाँ की संस्कृतियों के बीच एक सेतु का कार्य करती हैं। देश और समाज को अपनी विशिष्ट पहचान प्रदान करने के साथ ही कुछ मानवीय मूल्यों को प्रतिस्थापित करती है। कला की भाषा सार्वभौमिक होती है। इसे देश–काल की सीमाओं में नही बाधा जा सकता। यह जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा आदि संकीर्णताओ से ऊपर होती है। इसका स्वरूप व्यापक होता है और मानवीय मन पर सीधा प्रभाव डालती है। भारत मे प्रतिवर्ष आयोजित होने वाले India Art Fair जैसे कला मेलों के माध्यम से कला समन्वय के साथ –साथ विश्व के अनेक देशों के बीच समन्वय और मैत्री सम्बन्ध बढ रहे है। अतः आज के परिपेक्ष्य में कला ही एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा भारत विश्व मंच मे समरसता का वातावरण बनाते हुए विभिन्न देशों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों द्वारा अपना कीर्तिमान स्वरूप प्रस्तुत कर सकता है।

प्राचीन काल में भी भारत कला एवं संस्कृति के माध्यम से ही विश्व परिदृश्य मे अपनी विशिष्ट पहचान बनाने में सफल रहा है, जिसके उदाहरण हम नालन्दा एवं तक्षशिला विश्वविद्यालय के रूप मे देखते है। विद्यार्थी यहाँ पर भारत की कला संस्कृति व सभ्यता से परिचय प्राप्त करते थे और पूरे विश्व मे प्रचारित भी करते थे। इसी प्रकार सिन्धुघाटी सभ्यता मे हड़प्पा व मोहनजोदडो आदि नगरो की खुदाई से प्राप्त अवशेषो से भी हमें भारत के अन्य देशों यथा–

सुमेर, मिस्र, फिलीस्तीन, ईरान आदि के साथ मधुर सम्बन्धों के प्रमाण प्राप्त होते है।[1] फेयर सर्विस के अनुसार चौथी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व बलूचिस्तान में विकसित होने वाली बलूचिस्तानी संस्कृति पर भारतीयकरण देखा जा सका है।[2]

इसी प्रकार अजन्ता की शास्त्रीय कला का प्रभाव भी तिब्बत, नेपाल, मध्य एशिया, चीन तथा जापान तक पहुंचा। थाईलैण्ड, म्यॉमार, सिक्किम, भूटान, हिन्द चीन तथा इण्डोनेशिया तक इसका विस्तार हुआ। इन देशों की आकृतियों, संयोजनो तथा मुद्राओं पर अजन्ता का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है।[3] मौर्यकाल में सेल्यूकस की पुत्री के साथ चन्द्रगुप्त मौर्य के वैवाहिक सम्बन्धो के बाद, मौर्यो ने सेल्यूकस से सम्बन्धित ग्रीक परिवारों के साथ बहुत घनिष्ठ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लिये थे । विवाह सम्बन्ध कायम करने के साथ ही चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस के राजदूत के रूप मे मेगस्थनीज का अनेक बार स्वागत किया। बिन्दुसार एवं उसके पुत्र के दरबार मे मिस्र के राजा टोलेमी (द्वितीय) द्वारा भेजा डिओनीसिअस नामक ग्रीक राजदूत व सीरिया के राजा द्वारा भेजा ग्रीक राजदूत डाइमेकस आया था । यवनों तथा पश्चिमी एशिया और मिस्र के यूनानी राज्य के साथ अशोक के मैत्री सम्बन्ध काफी विख्यात थे।[4] मौर्यकाल मे स्तूप व स्तम्भों पर बने ऐसे अनेक अभिप्राय जैसे पंखदार सिंह, पंखदार वृषभ आदि का सम्बन्ध ईरानी कला व लघु एशिया के देशों से भी था।[5] भारत मे फारस की खाडी से दजला होकर सेल्युकिया तक और तट रेखा का अनुसरण करता हुआ एक तटीय समुद्री मार्ग भी था । इसी मार्ग से ग्रीक दूतों, व्यापारियों, कलाकारों तथा शिल्पियों समेत विदेशी मौर्यकालीन भारत मे बडी संख्या मे यात्रा करते थे। इस घनिष्ठ सम्पर्क से ही तक्षशिला मे प्राप्त शेर की खाल मे सिकन्दर का सिर प्रदर्शित करने वाले मिट्टी के कलश के टूटे हत्थे जैसे अवशेषों या सारनाथ, बसाढ़ और पटना क्षैत्रों से प्राप्त खास यूनानी रूप रंग या निश्चित यूनानी भावों तथा डिजाईनों वाले छिटपुट अवशेषों की व्याख्या हो पाती है।[6]इस प्रकार मौर्यकाल मे भी हमें भारत के अन्य देशों के साथ राजनैतिक घनिष्ठ सम्बन्धों मे कला एवं संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका का पता चलता है।

पूर्व मध्यकाल मे बौद्ध धर्म के साथ-साथ भारतीय चित्रकला का प्रभाव दूर- दूर तक पहुँच चुका था। चीन तथा जापान में इस समय के अनेक चित्र भारतीय प्रभाव लिए हुये थे । चीन के भित्ति -चित्रण पर भारत का बहुत प्रभाव रहा है। वहां के भिति-चित्र प्रायः बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है। अतः यह कहा जा सकता है कि इनकी भित्ति चित्र प्रणाली भारत की ही देन है। आगे चलकर चीन में बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ अनेक स्थानों पर विशाल पर्वतों को काटकर सैकडों भित्ति चित्र तैयार किये गये। वहाँ के सिनच्यॉंग प्रान्त की हेशीर सहस्र बुद्ध गुफा व तुगंह्वान गुफाओं की आकृतियाँ भारतीय कला से बहुत मेल खाती है।[7] कुषाण काल मे भारतीय कला की मुख्य धारा मे गान्धार के मार्ग से पश्चिम और मध्य एशिया तथा ग्रीको-रोमन यूरोप की कला का समावेश हुआ और इसके बाद की शताब्दियों में भी विदेशी प्रभाव छन कर आते रहे रहे। कभी कभी तो इन प्रभावों की धार बहुत तेज रही, जैसे मुगल काल में।[8] मुगल कला मे हम ईरानी व भारतीय कला को मिलन-स्थल के रूप में देखते है। राजपूत, ईरानी व यूरोपीय कला के मिश्रित प्रभावों के फलस्वरूप मुगल कला का जन्म हुआ । अकबर 1580 ईस्वी के पश्चात् ईसाई पादरियों (पुर्तगाली) से फतेहपुर सीकरी मे मिला था व उनके द्वारा लाये गये चित्रों से अकबर बहुत प्रभावित हुआ।[9] जहॉँगीर के समय अनेक यूरोप निवासी भारत मे आये थे। ये लोग अपने साथ वहाँ की चित्रकला के नमूने भी लाये थे। जहॉँगीर ने इन्हें केवल देखा ही नहीं था वरन् अपने शाही महल मे ईसाई विषयों के चित्र भी बनवाये थे। इसमे मैडोन्ना, इंग्लैण्ड के तत्कालीन राजा व रानी, लेडी एलिजाबेथ, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के तत्कालीन गवर्नर सर टॉमस स्मिथ आदि के चित्र प्रमुख थे । इनके अतिरिक्त अनेक ईसाई सन्तों की मूर्तियाँ और चित्र उसके महल की शोभा बढाते थे। कुछ ईसाई धर्म प्रचारको से जहॉगीर ने गणित एवं ज्योतिष के नियम भी सीखे थे।[10]इस प्रकार मध्यकालीन भारत मे यूरोप के साथ सम्बन्धों में कला एवं संस्कृति के अमूल्य योगदान का पता चलता है।

इसके पश्चात् कम्पनी (पटना) शैली के रूप मे अंग्रेजी प्रभुत्व की परछाई भारतीय कला व संस्कृति पर पड़ने लगी परन्तु भारतीय कला ने इसे भी आत्मसात् कर अपना वर्चस्व बनाये रखा । 19 वी शताब्दी मे देशभर में बिट्रिश शासन की प्रभुता स्थापित हो गई थी और उसके साथ साथ यूरोपीय आदर्शों के अनुकूल ढली हुई उदार शिक्षा के नवीन रूप सामने आये । इसमें से कुछ भारतीयों ने तो पश्चिम के मानदण्डों को सहर्ष स्वीकार कर लिया, किन्तु कुछ ने विदेशी शासन के प्रति विद्रोही

भाव के कारण यह स्वीकृति उन्मुक्त नहीं हो सकी। इस समय यहाँ के कलाकार विदेशी संस्कृति से चिर-परिचित हुये, किन्तु पुनरूत्थानकाल में भारतीय कलाकारों ने भारतीय कला व संस्कृति की महत्ता की पुनः प्रतिष्ठा की।

वर्तमान मे वैश्वीकरण और भूमण्डलीकरण की चकाचौध मे भारतीय कला एवं संस्कृति एक धरोहर के रूप में कायम है। इसकी लोकप्रियता का सबसे बडा आधार यह है कि सम्पूर्ण विश्व आत्मीय शांति और सुखी जीवन के लिये आशाभरी निगाहों से भारत की और देख रहा है । भारत मे आयोजित होने वाला विश्व का सबसे बडा कुंभ मेला, कला, धार्मिकता एवं सांस्कृतिक सद्भावना का परिचायक है। भारतीय धर्म के प्रति आस्था एवं विश्वास के फलस्वरूप विभिन्न देशों के धर्मावलम्बी कुंभ स्नान करने आते है। जिससे भारत में कई देशों की कला एवं संस्कृतियों का मिलन स्थल हो जाता है। इसी प्रकार राजस्थान मे आयोजित होने वाले बून्दी महोत्सव, पुष्कर महोत्सव, मरू महोत्सव और थार महोत्सव आदि मे कला, संस्कृति व धर्म का अनूठा संगम देखने को मिलता है। इन कला महोत्सवों को देखने के लिए देश विदेश से अनेक पर्यटक आते है। वे यहाँ की कला, संस्कृति, धर्म, रीति रिवाज, खान पान, वेशभूषा आदि को देखकर चमत्कृत होते है राजस्थान की चित्रशैलियाँ, किलें, महल, बावडियों आदि बेजोड कला स्थापत्य के नमूनों को अपने कैमरे मे कैद करते है। विदेशी पर्यटक फोटोग्राफी के द्वारा यहाँ की कला, संस्कृति व धर्म, भाषा, वेशभूषा आदि को अपने देश में प्रचारित-प्रसारित करते है। इस प्रकार भारत की कला व संस्कृति का प्रभाव उस देश की कला व संस्कृति पर पड़ता है।

भारत के प्रसिद्ध नृत्य जैसे राजस्थान का घूमर, आन्ध्रप्रदेश का कुचिपुडी, केरल का कथकली व मोहिनीअट्टम, तमिलनाडु का भरतनाट्यम आदि नृत्य भारत के साथ साथ विदेशों मे भी उतने ही लोकप्रिय है। राजस्थान की कालबेलियाई नृत्यांगनाओं के नृत्य भारत के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी लोकप्रिय है इस प्रकार भारतीय नृत्य कला के अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रदर्शन से भारत के वैश्विक स्तर पर मधुर सम्बन्ध स्थापित हो रहे है। भारत सरकार अन्य देशों के साथ मधुर व मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के लिए अनेक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कलाकारों को अपने यहाँ आमंत्रित करती है व यहाँ के कई कलाकारों को अन्य देशों में वहां की कला व संस्कृति को सीखने व प्रचारित -प्रसारित करने के लिए भेजती है। जिससे भारत के उन देशों के साथ कलात्मक के साथ साथ राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित होते है। फिल्मों के क्षेत्र मे दिये जाने वाले अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म फेयर अवार्ड समारोह में विदेशी फिल्मों के साथ साथ भारतीय फिल्मों को भी वही गौरवपूर्ण स्थान दिया जाता रहा है, जो भारत के वैश्विक सम्बन्धों मे कला एवं संस्कृति को रेखांकित करता है। भारत के कई कलाकार देश-विदेश मे अपनी कला प्रदर्शनियों के माध्यम से अपनी कला का प्रचार -प्रसार करते है एवं कई विदेशी कलाकार भी भारत में अपनी कलाओ का प्रदर्शन करते है । जिससे एक देश की कला व संस्कृति का प्रभाव दूसरे देश की कला व संस्कृति पर पड़ता है।

उपरोक्त उदाहरणों को दृष्टिगत रखते हुए निष्कर्षतः हम यह कह सकते है कि भारत के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को मधुर एवं प्रगाढ़ बनाने मे भारतीय कला एव संस्कृति का अमूल्य योगदान रहा है। निश्चय ही भारतीय कला और संस्कृति जो कि ''सर्वे भवन्तु सुखिनः'' जैसी भावना से ओत-प्रोत है। यही समग्र विश्व का मार्गदर्शन कर सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *मीनाक्षी कासलीवाल 'भारती': भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य कला., पृ.-11, द्वितीय संस्करण : 2011*
2. *वही , पृ.-12*
3. *डा. गिर्राज किशोर अग्रवाल : कला और कलम, पृ-79, 13 वॉ संस्करण 2009*
4. *नीहाररंजन राय : मौर्य तथा मौर्योत्तर कला, पृ. -8, प्रथम संस्करणः1979*
5. *मीनाक्षी कासलीवाल 'भारती' : भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य कला, पृ. 44-45 द्वितीय संस्करण : 2011*
6. *नीहाररंजन रायः मौर्य तथा मौर्योत्तर कला, पृ.8,-9 प्रथम संस्करणः1979*
7. *डा. गिर्राज किशोर अग्रवाल : कला और कलम, पृ.105-106, 13 वॉ संस्करण 2009*
8. *समकालीन कला (ललित कला अकादमी नई दिल्ली की पत्रिका) पृ-39, नव. 1988 /मई 1989, सख्या 11-12*
9. *डा. गिर्राज किशोर अग्रवाल : कला और कलम, पृ.105-106, 13 वॉ संस्करण 2009*
10. *वही, पृ. 187 -188*

महाराजा विजयसिंह (जोधपुर राज्य) और वल्लभ सम्प्रदाय

ट्विंकल शर्मा
सह आचार्य, राजकीय लोहिया महाविद्यालय, चूरू

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

जोधपुर राज्य में वल्लभ सम्प्रदाय के उत्कर्ष ने राज्य के राजनैतिक, सामाजिक जीवन और उस समय की कला और संस्कृति को भी प्रभावित किया था। जोधपुर के तत्कालीन शासक महाराजा विजयसिंह ने विधिवत् रूप से वल्लभ सम्प्रदाय की दीक्षा ग्रहण कर जोधपुर में वल्लभ सम्प्रदाय के उत्कर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। महाराजा की इस सम्प्रदाय को संरक्षण की नीति से प्रेरित होकर विभिन्न जातियों के लोग इससे दीक्षित होने लगे फलस्वरूप वल्लभ सम्प्रदाय की जनप्रियता में वृद्धि हुई। उस सम्प्रदाय के विकसित लोगों का नैतिक जीवन उच्च हुआ। इस सम्प्रदाय के प्रभाव से तत्कालीन कला और साहित्य भी पल्लवित हुआ।

संकेताक्षर : *सम्प्रदाय, जीर्णोद्धार, श्री नाथ जी, गुसांई, झांकी, कृष्णलीला, महाराजा विजयसिंह, वल्लभ सम्प्रदाय।*

जोधपुर राज्य में धर्म का प्रभाव प्रायः सदैव ही रहा है। 18वीं सदी में वल्लभ सम्प्रदाय के उत्कर्ष ने राज्य के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन तथा उस काल की सभ्यता और संस्कृति को पूर्णतः प्रभावित किया। जोधपुर का तत्कालीन शासक महाराजा विजयसिंह (1752-92) एक धर्म परायण शासक था। आरम्भ में वह निरंकारी सम्प्रदाय का अनुयायी था और उस पर निरंकरी साधु आत्माराम का प्रभाव था। वह राज्य का प्रशासन उसी के परामर्श से संचालित करता था। सन् 1760 में आत्माराम की मृत्यु हो गई। आत्माराम की मृत्यु के बाद महाराजा पर गुसांईयों का प्रभाव बढ़ने लगा। परिणामस्वरूप सन् 1762 में उसने विधिवत्रूप से वल्लभ सम्प्रदाय की दीक्षा ग्रहण कर ली। इस अवसर पर महाराजा ने चौपासनी के गुसांई आचार्य मुरलीधर को अपना धर्मगुरू बनाया तथा जोधपुर शहर में बालकृष्णजी, मदनमोहनजी, महाप्रभुजी, मुरलीमनोहरजी, नटवरजी और नवनीत बिहारीजी के मन्दिर बनवाये। उसने जूनीमण्डी स्थित गंगश्यामजी के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया। इसी समय महाराजा की पासवान गुलाबराय ने कटला बाजार स्थित कुंजबिहारीजी के मन्दिर को बनवाया। महाराजा विजयसिंह ने इन मन्दिरों में अपने इष्टदेव की स्थापना करवा कर, उनकी नियमित रूप से सेवाएं आरम्भ करवाई। वह स्वयं प्रतिदिन प्रातःकाल और सांयकाल इन मन्दिरों में दर्शन के लिए जाता था।

वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित हो जाने के बाद महाराजा ने राज्य में मांस और मदिरा के प्रयोग पर पूर्णतः प्रतिबन्ध लगा दिया। उन्होंने इस आज्ञा का कठोरता से पालन करने पर बल दिया। इस आज्ञा की अवहेलना करने वालों को कठोर दण्ड दिया। महाराजा ने आदेश का उल्लंघ करने पर आसोप के ठाकुर से पूछताछ की तथा आऊवा के ठाकुर जैतसिंह द्वारा पशुवध करने पर, उसे जोधपुर दुर्ग में बुलाकर उसकी हत्या कर दी। उपरान्त दुर्ग के निकट सिंगोड़ियों की भाखरी के पास उसका दाहसंस्कार करवा कर, उसकी समाधि पर एक चबूतरा बनवाया। यही नहीं, उन्होंने राजकीय सेना के एक मुस्लिम सैनिक द्वारा एक बैल को शस्त्र से जख्मी करने पर उसको कैद कर कठोर दण्ड दिया।

महाराजा ने अपने शासनकाल में गुसांईयों को विभिन्न प्रकार की भेटें, नकद अनुदान और अनेक गांव दान में दिये। उसने मूंदियाड़ गांव द्वारिका के रणछोड़राय मन्दिर को, पुनियावास गांव जगन्नाथराय मन्दिर को, मालावास और बोईल के गांव बालकृष्ण मन्दिर को, लालण खुर्द गांव चौपासनी मन्दिर को तथा खारड़ा मेवास का गांव गुसाईयों को

दान में दिये। यहीं नहीं उन्होंने शेखावासनी थाटी, जारोडो, इटावा, देवली ठीकरीया. अखेपुरी, जारोडा खुर्द आदि अनेक गांव श्रीनाथजी के मन्दिर को दान में दिये।

महाराजा विजयसिंह ने जोधपुर राज्य में श्रीनाथजी की गायों को स्वतन्त्रतापूर्वक घूमने की अनुमति प्रदान की। राज्य की ओर से गायों को घास, खल तथा अनाज मुफ्त में देने की व्यवस्था की तथा सन् 1765 में गायों की चराई पर लगने वाले घासमारी कर को बन्द कर दिया और राजकोष की क्षतिपूर्ति के लिए जागीरदारों पर रेखबाब नामक नया कर लगाया।

महाराजा ने नाथद्वारा स्थित श्रीनाथजी के मन्दिर को विभिन्न अवसरों पर भेंट आदि चढ़ाने के लिए नाथद्वारा में एक भण्डार स्थापित किया। इसके संचालन हेतु एक पोतेदार, एक तबीनदार और दो नवीस नियुक्त किये। महाराजा ने नाथद्वारा में श्रीनाथजी के पूजन के लिए प्रतिदिन गुलाब के फूल नाथद्वारा भेजने का प्रबन्ध किया। इस कार्य हेतु कई कर्मचारी नियुक्त किये गये तथा पुष्कर, मेड़ता. जोधपुर, सोजत, घाणेराव में फूलडाक की चौकियाँ स्थापित की। पश्चात् दसूरी में गुलाब का स्थाई बाग लगाने के आदेश दिये।

महाराजा ने जोधपुर स्थित सभी पुष्टिमार्गीय मन्दिरों के अतिरिक्त कोटा स्थित मथुरेश मन्दिर में भजन गाने के लिए कीर्तनियों, पदगायकों और पखावजवादकों की नियुक्ति की। सन् 1786 में कांकरोली स्थित द्वारकाधीश मन्दिर की रक्षार्थ सरदारमल तथा सन् 1790 में फतेहराम और दरोगा लिखमारम परिहार को नियुक्त किया गया। महाराजा स्वयं अनेक बार नाथद्वारा मे श्रीनाथजी के दर्शन को गये थे।

महाराजा के इस सम्प्रदाय के प्रति संरक्षण नीति से प्रेरित होकर विभिन्न जातियों और सम्प्रदायों के लोग इस सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। इस समय राजपूत, जैन, ब्राह्मण, गुर्जर, भाटी, पुरोहित, सोनी, सांचोरी और माहेश्वरी जाति के अनेक लोगों ने गोस्वामियों से दीक्षा ग्रहण की। फलस्वरूप वल्लभ सम्प्रदाय की व्यापकता और जनप्रियता में वृद्धि हुई तथा वल्लभ गुसांईयों के प्रभाव के कारण समाज में श्वेत रंग के वस्त्र लोकप्रिय हो गये।

वल्लभ मन्दिरों में दैनिक पूजापाठ पुष्टिमार्गी परिपाटी के अनुसार होती थी। यहाँ भगवान के दर्शन हर वक्त नहीं होते अपितु एक निश्चित समय पर होते थे, जिसे झाँकी कहते थे। प्रातःकाल से शयन तक मंगला, श्रृंगार, राजभोग, उत्थापनभोग, संध्याआरती और शयन आदि क्रियाएँ होती थी। इसके कारण वल्लभ अनुयायिओं का दैनिक जीवन सुव्यवस्थित तथा क्रमबद्ध हो गया। समाज में आन्तरिक शुद्धि, वाक्संयम, शारीरिक शौच, मानसिक शुद्धता और मांस मदिरा के निषेध पर बल दिया गया। इस समय समाज में त्याग, संयम, साधु संगति, हरिस्मरण के बल ने सगुण भक्ति की भावना को विकसित किया।

इस सम्प्रदाय के उत्कर्ष ने आर्थिक व्यवस्था को भी प्रभावित किया। पशुवध निषेध और पशु चराई पर लगाने वाले घासमारी कर को समाप्त कर देने से राज्य में पशुपालन व्यवसाय विकसित हुआ। इसी प्रकार महाराजा द्वारा पुष्पडाक चौकियाँ स्थापित करने, वल्लभ मन्दिरों में सेवक और कीर्तनियों की नियुक्ति करने से प्रजा को रोजगार प्राप्त हुआ। मन्दिरों और गुसाईयों को अनेक गांव दान में देने से सांसण भूमि का विकास हुआ। किन्तु बहुमूल्य उपहार, दान-दक्षिणा और गुसाईयों को अपार धन देने से राजकोष प्रभावित हुआ। अतः राजकोष की पूर्ति के लिए जागीरदारों पर नये कर लगाये गये। महाराजा ने रेखबाब नामक नया कर लगाया। इससे सामन्तों और प्रजा में असन्तोष बढ़ गया।

इस समय राज्य में कतिपय व्यावसायिक श्रेणियों का गठन भी हुआ। राज्य में मांस विक्रय पर रोक लग जाने के कारण इस व्यवसाय में लगे लोग बेरोजगार हो गए। महाराजा ने इन लोगों को मकान की छतों पर पट्टियां चढ़ाने का एकाधिकार दिया। इन व्यावसायियों का संगठन चवालियाँ कहलाया।

जोधपुर राज्य में वल्लभ सम्प्रदय का उत्कर्ष कला और साहित्य के विकास की दृष्टि से भी उपयोगी रहा। इस समय राज्य में अनेक वैष्णव देवालयों, राजप्रसादों, स्मारकों, बावड़ियों, कुओं, उद्यानों तथा समाधियों का निर्माण हुआ। अनेक मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया गया। जोधपुर नगर में बालकृष्णजी, मदनमोहनजी, महाप्रभुजी, मुरलीमनोहरजी, नटवरजी, नवनीत बिहारीजी के मन्दिरो का निर्माण हुआ। गंगश्यामजी के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया गया। श्री दाऊजी के विशाल नये मन्दिर का निर्माण भी कराया गया।

महाराजा विजयसिंह की पासवान, गुलाबराय ने कटला बाजार में कुंजबिहारीजी का भव्य एवं कलात्मक मन्दिर बनवाया। यह मन्दिर अपने नयनाभिराम, शिल्प

सौन्दर्य एवं भव्यता के लिए सुविख्यात है। यह देवालय दुर्ग के समान ऊंचा और भव्य है। इसका प्रवेश द्वार ऊंची उठान का आन्तरिक द्वार है। इसमें खुला विशाल चौक और ऊंचा एवं भव्य जगमोहन (मण्डप) है। मन्दिर में प्रवेश द्वार पर उत्तर पाषाण शैली के अनुरूप लाल पत्थर का तोरण द्वार है। तोरण पूर्णरूप से अलंकृत है। इसके दोनों ओर पत्थर के दो विशाल हाथी बने हैं। इन पर महावत भी प्रस्थित है। मन्दिर में पाषाण निर्मित जालियों का प्रयोग भी हुआ है। गर्भगृह का शिखर बैसर शैली का है।

इस मन्दिर के प्रवेश द्वार के ठीक उपर बारादरी एवं नक्कारखाना बना हुआ है। बारादरी की पत्थर की दीवारों पर अत्यन्त कलात्मक बेलबूटों के अलंकरण है। मन्दिर के अग्रभाग में दोनों कोनो पर दो विशाल बुर्जन्दा छतरियाँ बनी हुई हैं।

प्रवेशद्वार के अन्दर प्रवेश करते ही विस्तृत आंगन में दायें और बायें, दो सहमन्दिर हैं। बाईं और पतालेश्वर महादेवजी का मन्दिर है, जिसमें लगभग चालीस पचास फीट की गहराई में शिवलिंग स्थापित है। आंगन में ही धवल संगमरमर का एक तोरणद्वार भी बना हुआ है जिस पर सुन्दर बेलबूटे उत्त्कीर्ण हैं।

मन्दिर के जगमोहन या मण्डप के चारों ओर कृष्ण तथा राम की लीलाएं चिताकर्षक चित्रों के माध्यम से अलकृत हैं। मन्दिर का प्रदक्षिणा पथ साधारण है लेकिन सभी दीवारें भित्ति चित्रों से अलंकृत हैं। इसमें सभा मण्डप के स्तम्भ ओसियां शैली के हैं।

मण्डल में ही गरुड़, गणेश, हनुमान, मीरां और नामदेव की मूर्तियां विराजमान हैं। ये सभी मूर्तियां धवल संगमरमर की बनी हैं।

मन्दिर में निजमन्दिर अथवा गर्भगृह का प्रवेश द्वार चांदी के पत्तर का बना हुआ हैं। इसके चारों ओर संगमरमर के सुन्दर बेलबूटें उकेरे गये हैं। इसके चारों ओर सोने की कलम का काम है। गर्भगृह पूरा संगमरमर का बना हुआ है।

महाराजा द्वारा निर्मित श्री बालकृष्णजी, श्रीमहाप्रभुजी, श्रीमदनमोहनजी के मन्दिर चतुर्भुज आकार में है। इन नन्दालयों को देखने से ऐसा नहीं लगता कि ये कोई मन्दिर है। वस्तुतः ये उपासना स्थल हैं। इसीलिए परम्परागतरूप से इन्हें घर अथवा हवेली कहा जाता है। इन हवेलियों की दिनचर्या पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय के शुद्धाद्वैत दर्शन के आधार पर संचालित होती है अर्थात् यहां की दिनचर्या ब्रह्ममुहूर्त में मंगला की झांकी से आरम्भ होती है और शयन की झांकी के साथ समाप्त होती है। इन मन्दिरों में प्रत्येक झांकी के पूर्व आराध्यदेव के सम्मुख नाना व्यंजन और फलफूल भोग हेतु रखे जाते हैं। ये भोग प्रत्येक दिन एवं ऋतुओं के अनुरूप होते हैं। प्रत्येक झांकी के समय भी श्रीनाथजी का श्रृंगार और उपकरण आदि झांकी के नाम और ऋतु के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। प्रत्येक झांकी के समय कीर्तनियों द्वारा झांकी के अनुरूप वाद्ययन्त्रों का प्रयोग किया जाता है तथा वे विशिष्ट झांकी के लिए नियत विशिष्ट गीत गाते हैं।

इन देवालयों में सामान्य पूजन के अतिरिक्त अनेक उत्सवों और पर्वों का आयोजन भी होता है। इनमें जन्माष्टमी, गोवर्धन पूजा, शरदपूर्णिमा तथा फूलडोल मुख्य हैं। श्रीकृष्ण का जन्मदिन ''जन्माष्टमी'' को अत्यधिक श्रद्धा, सम्मान और हर्षोल्लास से मनाते है। इस दिन श्रीनाथजी का श्रृंगार भव्य और मूल्यावान होता है। गोवर्धन पूजा के दिन अन्नकूट का उत्सव अपनी विशिष्टता के लिए प्रसिद्ध है। इस दिन विविध प्रकार के व्यंजन भगवान के भोग लगाये जाते हैं। नाथद्वारा स्थित श्रीनाथजी के मन्दिर में उस दिन चावलों का ढेर भीलों की लूट के लिए रखा जाता है। भील लोग इनकों अत्यधिक श्रद्धा से लूटकर घर ले जाते हैं और इस महाप्रसाद को अपने रिश्तेदारों के घरों तक पहुंचाते हैं।

इस सम्प्रदाय के उत्कर्ष का प्रभाव केवल स्थापत्य कला तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि इसने मूर्ति निर्माण शिल्पकला की परम्परा एवं चित्रकला को भी प्रभावित किया। इस समय चित्रकला की विभिन्न शैलियों में श्रीनाथजी और गुसांईयों के चित्र चित्रित हुए। स्थानीय और ब्रज से आये चित्रकारों ने श्रीनाथजी के प्रागट्य तथा कष्ण लीलाओं के अनेक चित्र बनायें। इन चित्रों की पृष्ठभूमि में आम, केले, कदम्ब आदि के पेड़ और गायों का मनोरम अंकन आकर्षक है। इन सभी चित्रों पर नाथद्वारा शैली का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

इसके अतिरिक्त वल्लभ मन्दिरों और हवेलियों की दीवारों पर श्रीनाथजी, यमुनास्नान, आंख मिचौली, शरदपूर्णिमा, दानलीला, रासलीला, अन्नकूट, गोपाष्टमी, जलविहार तथा मंगला श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, अस्थापन्न, भोग, सन्ध्या शयन की भाव-भंगिमाएँ चित्रित की गई है।

वल्लभ सम्प्रदाय के कारण जोधपुर राज्य में पिछवई

चित्रशैली का भी जन्म हुआ। पिछ्वई का अर्थ ऐसे चित्रों से है जो कपड़े पर बनाकर श्रीनाथजी की प्रतिमा के पीछे दीवार पर लगाते है। इन चित्रों को लगाने से उत्सवों और मौसम के अनुकूल मनाये जाने वाले विविध कार्यक्रमों का वातावरण बन जाता। श्रावण में सर्वोतम पिछ्वई चित्रों को लगाया जाता है। इसका उद्देश्य उत्सवों की शोभा बढ़ाना और भक्तों का मनमोह लेना था।

वल्लभ सम्प्रदाय के उत्कर्ष ने तत्कालीन समाज के साहित्य को भी पल्लवित किया। इस समय समाज में निवास करने वाले सन्तों के द्वारा आराध्य देव की स्तुति में गाये जाने वाले भजन, गीत, पवाड़ों आदि से एक विशाल एवं समृद्ध साहित्य का निर्माण हुआ वहीं दूसरी ओर तत्कालीन महाराजा ने विद्धानों को प्रश्रय दिया। इन विद्धानों ने गद्य और पद्य में विशाल साहित्य का सृजन किया। इस समय अनेक फुटकर छन्द, दोहे, सवैये, कविता और गीत भी लिखे गये जिनमें पुष्टिमार्गीय शुद्धाद्वैतवाद का सम्यक प्रतिपादन और दिग्दर्शन हुआ है।

महाराजा विजयसिंह की मृत्यु के साथ ही जोधपुर राज्य में वल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव धीरे–धीरे शिथिल हो गया। महाराजा के उत्तराधिकारी भीमसिंह के समय राज्य में धर्मसमभाव बना रहा लेकिन उनके है उत्तराधिकारी महाराजा मानसिंह के समय राज्य में नाथों का प्रभाव पराकाष्ठा पर पहुंच गया। फलस्वरूप राज्य और राज्य में वल्लभ सम्प्रदाय की स्थिति गौण हो गई।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोधपत्र में यह बताना चाह रही हूं कि किस प्रकार राजनीति को धर्म प्रभावित करता है। इस शोधपत्र में मैंने तत्कालीन शिल्पसौन्दर्य मूर्तिकला और चित्रकला की शैलियों के विकास को बताने का प्रयास किया है।

निष्कर्ष

महाराजा विजयसिंह के समय जोधपुर राज्य की राजनीति, सामाजिक जीवन पर वल्लभ सम्प्रदाय का अत्यधिक प्रभाव था। इस समय महाराजा ने रेखबाब नाम नया कर लगाया जिससे सामन्त व प्रजा में असन्तोष बढ़ गया। वल्लभ सम्प्रदाय के उत्कर्ष ने कला और साहित्य के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

संदर्भ गन्थ सूची

1. *जोधपुर राज्य की ख्यात*
2. *मारवाड़ सेन्सस रिपोर्ट – भाग 2 (1891)*
3. *श्यामलदास – वीर विनोद, भाग द्वितीय*
4. *देरेऊ – मारवाड़ का इतिहास, खण्ड 2*
5. *ओझा – जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग 2*
6. *महाराजा विजयसिंह की ख्यात (प्राच्य प्रतिष्ठान केन्द्र द्वारा प्रकाशित)*
7. *बारहठ शिवदतदान – जोधपुर राज्य का इतिहास*
8. *पेमाराम – मध्यकालीन राजस्थान में धार्मिक आन्दोलन*
9. *नैणसी – मारवाड़ रे परगनों री विगत, भाग प्रथम*
10. *टाड (हिन्दी अनुवाद) ठाकुर – राजस्थान का इतिहास*
11. *आसोपा – मारवाड़ का मूल इतिहास*

भारत चम्पू में नारी की सामाजिक स्थिति : एक अध्ययन

shodhshree@gmail.com

भुवन चन्द्र जोशी

शोद्यार्थी, एस. एस. जीना कैम्पस, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

शोध सारांश

इस शोध पत्र के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन काल से ही स्त्री का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। स्त्री को देवों से भी उच्च स्थान प्राप्त है। हमारे समाज में स्त्री को सर्वप्रथम गुरू के रूप में देखा जाता है (माता–पिता–गुरू–देवता)। भारत चम्पू में भी भारतीय परम्परानुसार नारी को पूजनीय, वन्दनीय एवं सर्वोकृष्ट बताया गया है। महाभारत कालीन नारी स्थिति का विशद वर्णन इस काव्य से पता चलता है। उस समय नारी के अनेक रूप देखे गये हैं उस समय की स्त्रियां बाल्यकाल से ही विदुषी एवं राजनीतिज्ञ के रूप में देखी गयी हैं। अतः वैदिक काल से ही नारी के अनेक चरित्रों के विविध रूपों की चर्चा हैं। आधुनिक समाज की दृष्टि से इस ग्रन्थ में स्त्रियों का जीवन चरितार्थ चित्रण किया गया है।

संकेताक्षर : *भारत चम्पू, नारी, अस्तित्व, शक्तिमान, मनमोहनी, प्रतिबन्ध, अभिव्यक्ति, धार्मिक, विदूषी, द्रौपदी।*

प्रस्तुत शोध पत्र में भारत चम्पू में नारी की स्थिति का अध्ययन किया गया है भारतीय संस्कृति तथा दर्शन में स्त्री का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। हिन्दू धर्म की कथाओं में देवी पराशक्ति जगदम्बा, जननी, अर्द्धनारीश्वर मनमोहनी, रती आदि के रूप में दर्जा दिया गया है वहीं दूसरी तरफ उसे आजीवन भर अपने कर्तव्यों का पालन कभी माँ के रूप में, कभी पत्नी के रूप में, बहन के रूप में, बेटी के रूप में अपने रिश्तों का निरवहन हमेशा करते आयी है। जहाँ एक तरफ नारी को सृष्टि की अमूल्य कृति माना है दूसरी तरफ उसी माँ पर घोर अपराध, अत्याचार दुराचार और प्रतिबंध भी लगाए गए हैं। इसके अलावा उसे अपना जीवन अपने तरीके से जीने की भी स्वतन्त्रता नहीं दी गयी है उसे नैतिकता, पवित्रता, आदर्शो, सभ्यता एवं शीलता पर हमेशा से आघात किया गया है।

किसी भी समाज का अध्ययन उस समाज में विध्यमान नारी की दशा तथा स्थिति का अवलोकन करके कर सकते हैं।

नारी की शिक्षा–दीक्षा, उसका रहन–सहन, उसका आचार विचार आदि उस समाज के विकास, राष्ट्रों का उत्थान–पतन धर्मो का अभ्युदय–परायण मानव का हास्य रूदन उसके आँचल से बँधा हुआ है। उसकी एक मुस्कान ने यदि चराचर को विमुग्ध किया तो उसकी बंकिम दृष्टि ने प्रलय की भूमिका भी निभायी है। इस प्रकार से वह एक ओर सृष्टि है तो दूसरी ओर प्रलय उसकी सफलता पुरूष को बाँधने में है और सार्थकता पुरूष को मुक्त करने में है सारा विश्व नारी में समाया हुआ है इसलिए नारी शब्द से नारी के स्वरूप की पूर्ण अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है। ऋग्वेद में ''ना'' शब्द नारी अर्थ का द्यौतक है। आदिकाल से आज तक मानव जिससे अक्षय स्नेह पाता रहा है वह केवल जन्मदात्री ही नहीं है उसका तो स्थान स्वर्ग से भी ऊँचा और गुरू से भी अधिक पूज्य है यदि वह अनेक प्रकार के बंधन युक्त है, अशिक्षित है, मानसिक और शारीरिक रूप से अस्वस्थ है तो वह कभी भी न तो अच्छी माँ बन सकती है ना हीं अच्छी पत्नी ही।

महाभारत में जितनी प्रसिद्ध स्त्रियों की चर्चा है वे सभी कन्यावस्था से ही विदुषी थी द्रौपदी को राजनीति का बहुत ज्ञान था उसने एक गृह शिक्षक से यह शिक्षा पाई थी पंडिता धर्मज्ञा धर्मदर्शिनी आदि विशेषणों से उसके पांडित्य का पता चलता है।[1]

भारत चम्पू में इन तथ्यों को बहुत अच्छी प्रकार से समझाया गया था। भारतीय जीवन में शक्ति एवं शिव के ही मूर्तात्मक रूप को स्वीकार किया गया है इसलिए शिव से पहले शक्ति का नाम आता है सीताराम, राधाकृष्ण, 'मातृ देवो भव पितृ देवो भव' शक्ति के बिना शक्तिमान के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है।

संस्कृत साहित्य में भारतीय नारियों के उदात्त चरित्र का चित्रण किया गया है परन्तु महाभारत में जितना वैविध्यपूर्ण वर्णन मिलता है उतना अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

शिव शक्ति दोनों को मिलकर एक रूप माना गया है भागवत पुराण में भगवान मनु की सृष्टि में शरीर का दक्षिण भाग स्वयंभू मनु रूप पुरुष का बना तथा वाम भाग भातरूपा नामक स्त्री बनी अतः स्त्री अर्धांगिनी है। स्त्री पुरुष दोनों मिलकर एक शरीर हैं।[2]

परुषे मुनिमुष्टिताडने पतिते लुब्धकवामवक्षसि।
शिथिला जगलुः किरातिकायाः
सितगुञ्ज्रामणिहारयष्टयः।।[3]

वैदिक काल को नारी स्थिति का स्वर्ण काल भी कहा जाता है। उस समय समाज में नारी की स्थिति काफी उन्नत दशा में थी समाज में नारी को समान अधिकार व सम्मान प्राप्त था परिवार में पुत्र-पुत्री के लालन-पालन में कोई भेद नहीं था अनेक विदूषी महिलाओं के व्याख्यान से उनकी विद्वता का दर्शन तो हुआ साथ ही समाज में एक संदेश फैला कि महिलाऐं ज्ञान में पुरुषों से पीछे नहीं हैं इसके पश्चात जैसे-जैसे समय बढ़ता गया नारी के अधिकारों का ह्रास होता गया। नारी स्वतन्त्रता समानता शिक्षा-दीक्षा धार्मिक क्रियाकलापों से वंचित होने लगी इस प्रकार नारी पूर्ण रूप से पुरुष पर निर्भर हो गई।

जिस समाज में नारी को ईश्वर के तुल्य माना जाता था मर्यादा में जिसे पुरुष से भी श्रेष्ठ माना जाता था उसी समाज में स्त्रियों पर अनेक अत्याचार और भेद-भाव होने लगे हैं इस प्रकार उत्तर वैदिक काल से नारी की दिशा एवं दशा दोनों अवनति की ओर अग्रसर होने लगी।[4]

मध्य युग 11वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी का मध्य का समय था इस युग में नारियों की दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी। नारी के दृष्टिकोण से इस काल को काल युग कहा जा सकता है नारी के पैरो पर गुलामी की जंजीरें पहनायी तथा पुरुष उस पर अत्याचार करने लगे। 11वीं शताब्दी के प्रारम्भ में विदेशी आक्रमणकारियों ने भारत पर अपने पैर जमाने शुरू किए इसका प्रभाव भी देश पर पड़ने लगा इन विदेशियों के आगमन से नारी की स्थिति निम्न से निम्न होती गयी इस काल में बाल विवाह, सती प्रथा, परदा प्रथा, जौहर प्रथा साथ ही विधवा को हेय दृष्टि से देखना आदि सामाजिक कुप्रथाएं आग की लपटों के समान बढ़ने लगी।[5]

महाभारत में स्त्रीवध के उदाहरण कहीं कहीं मिलते हैं। शिशुपाल की नजरों में श्रीकृष्ण इसलिए बुरे थे कि उसने पूतना का वध किया था। वह भीष्म की निन्दा करते हुए कहने लगा-

पूतनाघातपूर्वाणि कर्माण्यविशेशतः।
त्वया कीर्तयतास्माकं भूयः प्रत्यार्थतं मनः।।[6]

इसी प्रकार पिता की आज्ञा से परशुराम जी ने अपनी माता का सिर काट दिया था। उनकी माता रेणुका मार्तिकावतदेश के राजा पर आसक्त हो गयी थी इस बात को जमदग्नि जान गये और अपने पुत्र को माता के वध की आज्ञा देते कहा

जहीमां मातरं पापां मा च पुत्र व्यथां कृथाः।
ततआदाय परशुं रामो मातुः शिरोऽहरत्।।[7]

''बेटा! अपनी माता को अभी मार डालो और इसके लिए अपने मन में किसी भी प्रकार का खेद न करो। तब परशुराम ने फरसा लेकर उसी क्षण माता का मस्तक काट डाला''।

भारत चम्पू महाभारत के अन्दर कुछ ऐसी स्त्रियों की चर्चा है जिन्हें मारने की चेष्टा की गई थी।

कुन्ती यद्यपि नहीं मार डाली गई तथापि उसके वध के लिए दुर्योधन आदि कौरवों ने षड्यन्त्र किया था क्योंकि लाक्षागृह में कुन्ती भी अपने पुत्रों के साथ रहती थी। खनक ने विदूर को भेजकर दुर्योधन के षड्यन्त्र की सूचना दी दुर्बुद्धि दुर्योधन की यह चेष्टा है कि नरश्रेष्ठ पाण्डव अपनी माता के साथ जला दिये जाऐ, लाक्षागृह में योजनानुसार आग लगा दी गई, जिसमें पुरोचन का परिवार स्वाहा हुआ, पाण्डव गण तो भीम द्वारा निर्मित सुरंग मार्ग से बाहर वन में निकल गये।[8]

हिडिम्बा को भीमसेन पर अनुरक्त देखकर हिडिम्ब अपनी बहन को मार डालना चाहता था।

यानिमानाश्रिताकार्शीर्विर्तप्रियं सुमहन्मम।
एश तानद्य वै सर्वान् हनिश्यामि त्वा सह।।[9]

जिन लोगों का आश्रय लेकर तूने मेरा महान अप्रिय कार्य किया है, यह देख मैं उन सबको आज तेरे साथ ही मार डालता हूँ।

उपरोक्त उद्धरणों से यही निष्कर्ष निकलता है कि व्यभिचारी स्त्री का वध किया जा सकता था।

महाभारत के अनुसार स्त्रियाँ पूजनीय तथा पुण्यवती मानी गयी हैं किन्तु उनके प्रति अनादर की भावना विद्यमान रही थी। स्त्रियों की समता जलती हुई आग, माया, उस्तरे की धार, विषैले सर्प से की गयी है।

इसके विपरीत स्मृतिकारों के विचार बेहद उदार नजर आते हैं उन्होंने नारी को साक्षात् देवी और लक्ष्मी माना है उनके विचार से स्त्रियाँ भगवती दुर्गा की प्रतिमूर्ति हैं। मनुस्मृति और वशिष्ठस्मृति में माता को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। पुराणों में सतीत्व का गुणगान किया गया है। वहाँ बताया गया है कि पृथ्वी के तीर्थ सती के चरणों में हैं।[10]

भारत चम्पू में वर्णित है कि धूत क्रीड़ा के लिए शकुनि द्वारा महाराज युधिष्ठिर को भरी सभा में धूत खेलने के लिए तैयार कर लिया और अपने नाना देशों को युधिष्ठिर ने दाँव पर रख दिया, धूतपटु शकुनि ने उन्हें हरा दिया। हर दॉव पर जब राजा युधिष्ठिर आभूषण नाना प्रकार के रत्न, सोने की राशि एवं स्त्री के साथ भाईयों को भाइयों को भी हार गये तब गान्धार देशाधीश शकुनि हर्ष के कारण बहुत जोर से गरजने लगे। इसी समय दुर्योधन ने आज्ञा दी कि यह बहुत पतियों कि स्त्री द्रौपदी हमारी कुम्भ दासी पनभरनी हो गयी। उसे सभा में हाजिर करो उसकी आज्ञापाकर दुःशासन बलपूर्वक घसीटकर सभा में ले जाने के लिए द्रौपदी के पास आया, वह दुष्ट दुःशासन से डरती थी। दुष्ट दुःशासन द्रौपदी के बालों को अपनी अंगुलियों से पकडकर सभा में ले जाने लगा यह देखकर राज ललनाओं ने छाती पर हाथ रखकर दुःख प्रकट किया और भीष्म आदि ने अपनी नाक में अंगुलियाँ रखकर आश्चर्य प्रकट किया कि न जाने क्या दैव योग है कि ऐसी अनुचित बात घट रही है। यही बात को महाभारत में भी बतायी गयी है इस प्रकार के अत्याचार उस समय की महिलाओं को सहने पढ़ते थे यह इससे पता चलता है।

भारत चम्पू में नारी का सर्वाधिक पूज्य एवं प्रशंसनीय रूप माता का ही है सन्तान जन्म से होने वाले जातकर्म संस्कार में पिता आचार्य माता सावित्री कहलाते हैं।

निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति एवं दर्शन के अन्तर्गत नारी को सदा ही विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

महाभारत कालीन नारी का सामाजिक अध्ययन करने के पश्चात भारत चम्पू में वर्णित स्त्री की वास्तविकता का पता चलता है। जिससे नारी का अक्षम रुप सामने आता है। जहाँ एक तरफ स्त्री को जन्मदात्री सृष्टि की अमूल्य कृति माना है, तथा दुसरी तरफ उसी माँ देवी पर घोर निन्दा, अत्याचार, दुराचार के आरोप व प्रतिबन्ध भी लगाए गए हैं।

जहाँ वह स्त्री आजीवन अपने कर्तव्यों का पालन अलग-अलग अवस्था में हमेशा करती है कभी पुत्री के रूप में, कभी बहन के रूप में, कभी पत्नी के रूप में तो कभी माँ के रूप में हमेंशा करती आयी है। तब भी उसको समस्त अधिकारों से वंचित कर उसकी पवित्रता नैतिकता शीलता एवं आदर्शो पर पर हमेशा कठोराघात किया गया।

सत्य ही कहा है कि ''यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमंते तत्र देवता'' जिस कुल में स्त्रियों की पूजा होती है उस कुल पर देवता प्रसन्न होते हैं।

ब्रिटिश भ्रासन की अवधि से हमारे समाज की आर्थिक सामाजिक संरचनाओं में अनेक परिवर्तन हुए इससे स्त्रियों के जीवन में अनेक अनेक सुधार आये कुप्रथाओं से मुक्ति दिलाने के लिए कुछ समाज सुधारकों ने भी नवीन मुक्ति का मार्ग का प्रदर्शन किया बेमेल विवाह स्त्री सती प्रथा आदि कुप्रथाओं को दूर करने के प्रयास किये गये। नारी को अपने अधिकारों के प्रति सजग करने के लिए अनेक अवसर जुटाने का प्रयास किया गया।

वर्तमान दौर में नारी का चेहरा बदला है आज की नारी पूज्य नहीं बल्कि समानता के स्तर पर व्यवहार चाहती है, वर्तमान सरकार ने महिलाओं के अधिकारों के प्रति जो संकेत दियें हैं वे देश के लिए शुभ संकेत हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीमती स्कॉलस्टिका कुजूर (आचार्य एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग रांची विश्वविद्यालय रांची) महाभारत कालीन नारी, वेद और स्मृतिका के प्रकाश में, ईस्टर्न बुक लिंकर्स दिल्ली भारत पृष्ठ सं.- 255

2. गंगासहाय शर्मा (शास्त्री) प्राचार्य संस्कृत वाड्मय में नारी चित्रण, (महाभारत में नारी चित्रण डॉ. घनश्याम शर्मा) राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र किशनपोल बाजार, जयपुर पृष्ठ सं.–254

3. आचार्य राम चन्द्र मिश्र (प्राध्यापक राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, रांची) चम्पू भारतम् चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 221001

4. प्रकाश, ओम, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, विश्व प्रकाशन पृष्ठ सं.–221

5. अग्रवाल, चन्द्रमोहन, भारतीय नारी के विविध आयाम अल्मोड़ा बुक डिप्पो अल्मोड़ा।

6. साहित्याचार्य पण्डित राम नारायण दत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम' महाभारत सभा पर्वणि शिशुपाल वध पर्व पृष्ठ सं–829

7. साहित्याचार्य पण्डित राम नारायण दत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम' महाभारत वन पर्वणि गीताप्रेस गोरखपुर पृष्ठ सं.–1279

8. आचार्य राम चन्द्र मिश्र (प्राध्यापक राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, रांची) चम्पू भारतम् चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 221001

9. साहित्याचार्य पण्डित राम नारायण दत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम' महाभारत वन पर्वणि गीताप्रेस गोरखपुर पृष्ठ सं. –457

10. डॉ. स्कन्ध जी पाठक साहित्य में नारी दर्शन मनीष प्रकाशन बी. 33/33 ए–1, न्यू साकेत कालोनी, बी. एच.यू. वाराणसी–5 पृष्ठ सं.–11 एवं 12

राजस्थानी कहावते व लोकोक्तियां–पारंपरिक अनुभव की अभिव्यक्ति (वर्षा ऋतु के विशेष संदर्भ में)

shodhshree@gmail.com

बलदेव राम
सहायक आचार्य, राजकीय महाविद्यालय, मेड़तासिटी

डॉ. लीलाधर सोनी
सह आचार्य, एस. आर. आर. एम. राजकीय महाविद्यालय, नवलगढ़

शोध सारांश

प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था में मानव समाज प्रकृति के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा रहा है। पेड़–पौधे, जीव–जन्तु, वायु की गति व दिशा, बादलों की स्थिति इत्यादि अनेक प्राकृतिक घटनाओं को मनुष्य द्वारा पीढ़ी–दर–पीढ़ी देखकर व अनुभव करके इस आधार पर भविष्य के संदर्भ में पूर्वानुमान लगाने का कार्य प्राचीन काल से चला आ रहा है। इस संचित अनुभव को प्रत्येक समाज अपने अपने तरीके से संजोकर रखता है। कहावत व लोकोक्ति इसी प्रकार के अनुभव पर आधारित होती है। परंपरागत रूप से राजस्थान में भी अनेक कहावतें व लोकोक्तियां प्रचलित है जिसमें से एक बड़ी संख्या में वर्षा ऋतु के पूर्वानुमान के संदर्भ में भी कहावतें व लोकोक्तियां है जो यह संकेत देती है कि आने वाली वर्षा ऋतु कैसी होगी।

संकेताक्षरः *पारंपरिक अनुभव, हस्तांतरण, वर्षा ऋतु, पूर्वानुमान, राजस्थान, लोकोक्ति, कहावते।*

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी के नाते अपने मनोभावों एवं विचारों को बताने के लिए वे एक सार्थक एवं मौखिक साधन का प्रयोग करता है उसे भाषा की संज्ञा दी जाती है। भाषा अपने अन्दर कई रूपों को लिए रहती है यथा– मातृभाषा, सम्पर्क भाषा, राजभाषा, राष्ट्रीय भाषा आदि। प्रत्येक व्यक्ति की यह इच्छा होती है कि मेरी भाषा, वाणी ज्यादा वजनदार व असरदार हो इसके लिये वे अपनी भाषा में अंलकार, शब्द–शक्ति, मुहावरे व लोकोक्तियों का प्रयोग करता है। मुहावरे व लोकोक्ति से लबरेज भाषा ज्यादा प्रभावशाली व चिर स्थायी होती है। साथ ही वह लम्बे समय तक श्रोताओं को याद रहती है। यदि हम किसी बात को सीधे–सीधे कहें तो वह ज्यादा प्रभावशाली नहीं होती है और हम उसको लोकोक्ति व मुहावरें से कहें तो ज्यादा असरदार हो जाती है।

अपनी बात को वक्र अभिव्यक्ति में कहने की वक्ता की ललक लोकोक्ति व मुहावरों के द्वारा पूरी होती है। ये ढली–ढलाई वक्रताएं हैं जो अपने स्थिर अर्थ के बावजूद भी वक्ता के मनोभाव को चमक के साथ प्रस्तुत करती है। वक्ता अपने व्यापक अर्थ को एक लोकोक्ति में समेट कर संतुष्ट हो जाता है। विश्व की लगभग सभी भाषाओं में लोकोक्तियों का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक समाज में लोकोक्तियां अपने–अपने रूपों में विद्यमान है तथा एक प्रकार से वे अलिखित सामाजिक– सांस्कृतिक दस्तावेज होती है। कहावत का अर्थ होता है 'कही हुई बात' ऐसी बात जिसमें जीवन के अनुभव का सार हो, जो काल की कसौटी पर खरी उतरे। इसी प्रकार लोकोक्ति शब्द लोक+उक्ति से बना है। लोक में पीढ़ियों से प्रचलित इन उक्तियों में अनुभव का सार एवं व्यावहारिक नीति का निष्कर्ष होता है। लोकोक्तियां एक भाषा–भाषी की सांस्कृतिक विरासत को अपने में संजोए रखती है। वे इतिहास में किन्हीं विशिष्ट घटनाओं एवं स्थितियों से उपजती है और फिर भाषा के माध्यम से देश एवं काल में छा जाती है। उसी प्रकार की घटना के स्पष्टीकरण के लिए उस लोकोक्ति का प्रयोग किया जाता है जो उस समाज को सहर्ष स्वीकार्य हो जाती है। कहावते व लोकोक्तियां एक वाक्य होता है जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी समाज में अग्रसित होता है। थोड़े में बहुत कुछ कह देना तथा पारंपरिक मानवीय ज्ञान को संजोकर रखना इनकी मुख्य विशेषता है। इन कहावतों और लोकोक्तियों का आधार कोई दृष्टांत, घटना अथवा परिस्थितियां हो सकती है। किसी काल विशेष की परिस्थितियों, विशेषताओं को जानने व समझने में लोकोक्ति व मुहावरे अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। एक समाज विशेष के सांस्कृतिक, आर्थिक व राजनीतिक अध्ययन में लोकोक्ति व मुहावरे के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। लोकोक्ति समाज के

अनुभव का सार होती है। लोकोक्ति का प्रयोग प्रयोक्ता की सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक सजगता का द्योतक होता है। वर्तमान दौर में मुख–सुख (प्रयत्न लाघव) एक आम बात हो गई है। प्रत्येक व्यक्ति कम से कम में अधिक से अधिक को चाहता है। 'चंदन की चुटकी भली–गाड़ी भरा न काठ' यानि कीमती चीज तो कम ही ठीक है तथा सामान्य चीज अधिक हो तो किस काम की। उक्त स्थितियों के सन्दर्भ में वक्ता, कवि, लेखक आदि लोकोक्तियों से अपनी वाणी, भाषा व लेखनी को लबरेज करते है। भाषा को प्राणवान बनाने एवं उसकी अभिव्यक्ति क्षमता में वृद्धि के लिये कहावतों का प्रयोग करता है। डिसरेली ने लिखा है कि लोकोक्तियां प्राचीनतम पुस्तकों से भी प्राचीन हैं। जब लेखन कला का श्रीगणेश नहीं हुआ था, तब भी स्त्री–पुरूष अपने तथा अपने पूर्वजों के अनुभवों के आधार पर कहावतों का प्रयोग करते थे। अनेक लोकोक्तियां किसानों, कारीगरों तथा ग्रामीण जनता और अन्य अनपढ़ समुदायों के अनुभवों पर आधारित हैं यथा –'आधे माधे कम्बल कांधे', यां 'मारे भादो का घाम' या मारे साझे का काम या 'धोबी का कुत्ता घर का न घाट का' आदि।

कुछ कहावते कवियों, लेखकों तथा मनीषियों की अपनी उक्तियां होती हैं जो अपनी शब्द योजना के सौष्ठव, अभिव्यंजनपटुता या अर्थ–गुरूता आदि के कारण जनता में प्रचलित हो जाती हैं और लोग अपनी वार्ताओं अथवा लेखन में प्रायः उनकी आवृत्ति किया करते हैं। इस प्रकार अनेक हिन्दी लोकोक्तियां तुलसी, सूर, वृन्द, रहीम और नरोत्तम दास की उक्तियां है जो बहुत जनप्रिय हो गई है। 'हमहुं कहब अब ठाकुर सोहाती, नाहित मौन रहब दिन राती', 'हानि –लाभ' जीवन–मरन, जस–अपजस, विधि हाथ', 'सूरदास खल कारी कामरि चढ़े न दूजो रंग', सबै सहायक सबल के, कोउ ने निबल सहाय, 'चंदन विष व्यापै नहीं, लपटे रहत भुजंग' आदि। राजस्थान में वर्षा ऋतु के संबन्ध में अन्य कहावते प्रचलित है। उनमें से कुछ उल्लेखनीय निम्न है।

चैत चिड़पड़ो सावण खरखड़ा[1]– अर्थात चैत्र मास में बारिस की छोटी–छोटी बूंदे गिरती है तो श्रावण मास में बारिस होने की संभावना बिल्कुल नहीं होती है।

चैत पीछलै पाख, नो दिन तो बरसन्तो राख[2] इस कहावत में इन्द्र देवता से प्रार्थना की गई है कि चैत्र शुक्ल पक्ष के नवरात्र में वर्षा नहीं करें, नहीं तो अकाल पड़ जायेगा।

चैत महिने बीज लुकोवे धुर बैंसाखा के सू धोवै[3]– इसके अनुसार यदि चैत्र माह में आसमान में बिजली नहीं चमके तो वैशाख माह के आरम्भ में वर्षा होती है।

चैत मास उजाले पख, नव दिन बीज लुकोई रख। आठम नम नीरत कर जोय, जां बरसे जां दुरभख होय।[4]

अर्थात चैत्र माह के शुक्ल पक्ष में एकम से नवमी तक आसमान में बिजली नहीं चमकनी चाहिए। विशेष तौर पर अष्टमी और नवमी को जिन स्थानों पर वर्षा होती है तो वहां अकाल पड़ता है।

चैत मास नै पख अंधियारा,
आठम चवदस हो दिन सारा।
जिण दिस बादल जिण दिस मेह,
जिण दिस निरमल जिण दिस खेह।[5]

इसके अनुसार चैत्र माह के कृष्ण पक्ष की अष्टमी और चर्तुदसी को दिन भर जिस दिशा से बादल आते है, उस दिशा में वर्षा अच्छी हाती और जिस दिशा में बादल नहीं होते हैं उस दिशा में धूल की वर्षा होती है अर्थात वर्षा नहीं होगी ऐसी मान्यता है।

चित्रा दीपक चेतवे, स्वाते गोबरधन,
डंक कहे हे भड्डली अथग नीपजै अन्न।[6]

अर्थात जिस वर्ष चित्रा नक्षत्र में दिवाली आये और गोवर्धन पूजने के समय स्वाति नक्षत्र भी हो तो अन्न की अत्यधिक पैदावार होती है।

क्रितिका करे किरकिरो, रोहिणी काल सुकाल।
थे मत आबो मृगशिरी हड़–हड़ करती काल।[7]

इस कहावत के अनुसार श्रावण कृष्ण पक्ष की एकादशी के दिन अगर क्रितिकानक्षत्र हो तो साधारण अकाल पड़ने की संभावना होती है, किन्तु यदि रोहिणी नक्षत्र हो तो भरपूर फसल होती है। इसी प्रकार यदि मृगशिरा नक्षत्र एकादशी के दिन आये तो महान दुर्भिक्ष पड़ेगा ऐसी मान्यता है।

उमस कर घृत माढ गमावे,
अंडा कीड़ी बाहर लावे।
नीर बिनां चिड़ियां रज–न्हावै,
तो मेह बरसे धर मांह न मावै।[8]

इस कहावत के अनुसार यदि गर्मी से घी पिघल जाये, चीटियां अपने अण्डे बाहर लेकर आये और बिना जल के ही चिड़ियां केवल रेत में नहाये तो भारी वर्षा होती है।

उंचो नाग चढ़ै तर ओड़े,
दिस पिछ्मांण बादला दौड़े।
सारस चढ़ आसमान सजोड़े,
तो नदिया दाहाजल तोड़े।[9]

अर्थात यदि सर्प वृक्ष की चोटी पर चढ़ जाये, बादल पश्चिमी दिशा को दौड़े, सारसों के जोड़े आसमान में उड़ने लगे तो इतनी वर्षा होगी कि नदी का पानी किनारे तोड़ कर बहेगा।

आसाड़ा धुर अष्टमी, चन्द सेवरा छाय।
च्यार मास चूतो रहै, जिंद भांडै रै राय।[10]

इस कहावत के अनुसार आषाढ़ माह के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को चन्द्रोदय के समय यदि बादल छाए हुये हो तो फूटी हांडी की तरह चारों महीने पानी टपकता रहेगा यानि लगातार रिम–झिम वर्षा होती रहेगी।

आसाढे धुर अष्टमी, चन्द उगन्तो जोय।
कालो वै तो करवरो, धोलो वै तो सुगाल।
जे चंदो निरमल हुवै तो पड़ै अचिन्तो काल।[11]

इस कहावत के अनुसार आषाढ़ माह के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को चन्द्रोदय को देखना चाहिए यदि चन्द्रमा काले बादलों में है तो जमाना अच्छा नहीं होगा। यदि चन्द्रमा सफेद बादलों में है तो जमाना अच्छा होगा। और यदि बादल नहीं है तो अकाल अवश्य पड़ेगा।

अषाढे सुद नवमी, नै बादल ना बीज,
हल फाड़ो ईधन करो, बैठा चाबो बींज[12]

इस कहावत के अनुसार आषाढ शुक्ल पक्ष की नवमी को यदि बादल और बिजली नहीं हो तो वर्षा होने की संभावना नहीं होती है।

आषाढै सुद नौमी, घण बादल घण बीज,
कोठा खेर खंखेर दो, राखो बलद ने बीज[13]

अर्थात आषाढ़ शुक्ल पक्ष की नवमी को बादल घने हो और खूब बिजली चमकती हो तो यह अच्छी वर्षा होने और अच्छा जमाना होने का संकेत होता है। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि लोकोक्तियां किसी भी भाषा को सजीव बनाने में अपनी महत्ती भूमिका निभाती है। हम अपने भावों और विचारों को भाषा में व्यक्त करते है। जब हम उन्हें साधारण भाषा में प्रकट करते है तो उनकी अभिव्यक्ति बहुत आकर्षक नहीं होती परंतु जब हम लोकोक्तियों के सहारे प्रकट करते है तब हमारी भाषा चमकृत, रोचक, हृदयग्राहिणी, प्रभावोत्पादक, आकर्षक चित्रमय, प्रवाहमयी हो जाती है। गागर में सागर भरने व अपने विचारों की छाप अमिट रहे इसके लिये वक्ता लोकोक्ति का प्रयोग करता है। लोकोक्यिां एक प्रकार से अपने पूर्वजो के संस्कृति, ज्ञान, ध्यान, संस्कार का कोष होता है जो हमारा मार्गदर्शन करती रहती है। जहां न पहुंचे रवि वहां पहुंचे कवि यानि विज्ञान से भी सटीक बातें अपने पूर्वजों ने कही है जो सार्वदेशिक व सार्वकालिक व सत्य है और लोकोक्यों के रूप में प्राणवान है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कन्हैयालाल सहल– राजस्थानी कहावतें, राजस्थानी ग्रथांगार, जोधपुर, वर्ष 2010 पृष्ठ 123

2. कन्हैयालाल सहल– राजस्थानी कहावतें, राजस्थानी ग्रथांगार, जोधपुर, वर्ष 2010 पृष्ठ 123

3. कन्हैयालाल सहल– राजस्थानी कहावतें, राजस्थानी ग्रथांगार, जोधपुर, वर्ष 2010 पृष्ठ 123

4. कन्हैयालाल सहल– राजस्थानी कहावतें, राजस्थानी ग्रथांगार, जोधपुर, वर्ष 2010 पृष्ठ 123

5. कन्हैयालाल सहल– राजस्थानी कहावतें, राजस्थानी ग्रथांगार, जोधपुर, वर्ष 2010 पृष्ठ 123

6. कन्हैयालाल सहल– राजस्थानी कहावतें, राजस्थानी ग्रथांगार, जोधपुर, वर्ष 2010 पृष्ठ 123

7. कन्हैयालाल सहल– राजस्थानी कहावतें, राजस्थानी ग्रथांगार, जोधपुर, वर्ष 2010 पृष्ठ 96

8. कन्हैयालाल सहल– राजस्थानी कहावतें, राजस्थानी ग्रथांगार, जोधपुर, वर्ष 2010 पृष्ठ 74

9. कन्हैयालाल सहल– राजस्थानी कहावतें, राजस्थानी ग्रथांगार, जोधपुर, वर्ष 2010 पृष्ठ 72

10. कन्हैयालाल सहल– राजस्थानी कहावतें, राजस्थानी ग्रथांगार, जोधपुर, वर्ष 2010 पृष्ठ 68

11. कन्हैयालाल सहल– राजस्थानी कहावतें, राजस्थानी ग्रथांगार, जोधपुर, वर्ष 2010 पृष्ठ 68

12. कन्हैयालाल सहल– राजस्थानी कहावतें, राजस्थानी ग्रथांगार, जोधपुर, वर्ष 2010 पृष्ठ 68

13. कन्हैयालाल सहल– राजस्थानी कहावतें, राजस्थानी ग्रथांगार, जोधपुर, वर्ष 2010 पृष्ठ 68

14. राजपाल लोकोक्ति कोश – हरिवंष राय शर्मा

15. नवीन हिन्दी व्याकरण एवं रचना – संयोजक डॉ. सोहनदान

16. बुजुर्गो से संवाद

ISSN 2277-5587

बाड़मेर जिले की जनांकिकीय परिवेश में साक्षरता का भौगोलिक अध्ययन

कन्हैयालाल सारण
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

साक्षर वह व्यक्ति (स्त्री/पुरूष) है जो किसी भाषा के पढ़ लिखकर समझ सके। इसमें 7 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्ति को शामिल किया जाता है। साक्षरता जनांकिकीय परिवेश में बहुत महत्त्वपूर्ण पहलू है। कुल साक्षरता में स्त्री/पुरूष शामिल होते हैं, बाड़मेर जिले की कुल साक्षरता के अन्तर्गत 2.46 प्रतिशत की कमी हुई। पुरूष साक्षरता में दशकीय परिवर्तन में 2.46 प्रतिशत बायतु तहसील में वृद्धि हुई, यह बहुत कम रही है जबकि सर्वाधिक कमी 5.33 प्रतिशत की गुढ़ा मालानी तहसील में रही है। कुल स्त्री साक्षरता में सर्वाधिक वृद्धि 22.57 प्रतिशत की चौहटन तहसील में रही है। यहां पर साक्षरता के स्तर में घटोतरी अधिक रही है जो जनांकिकीय परिवेश में उचित नहीं है।

संकेताक्षर : *साक्षरता, जनांकिकीय, स्त्री–पुरूष, प्रतिशत, भौगोलिक क्षेत्रफल, औपचारिक शिक्षा ।*

प्रस्तुत शोध पत्र में बाड़मेर जिले की जनांकिकीय परिवेश में साक्षरता का विशेष महत्व है। इस शोध पत्र में साक्षरता के भौगोलिक अध्ययन का विशेष प्रयास है। वर्ष 2001 की जनगणना के तहत उस व्यक्ति (स्त्री/पुरूष) को साक्षर माना गया है, जो किसी भाषा को पढ़ लिखकर समझ सके। इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि उस व्यक्ति ने कोई औपचारिक शिक्षा प्राप्त की हो या उस स्तर की कोई परीक्षा उत्तीर्ण की हो। जिले की जनगणना में 7 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्ति को साक्षरता दर के मापन में शामिल किया गया है।अतः जिले में साक्षरता के अध्ययन गुणात्मक स्वरूप देने के का प्रयास है।

अध्ययन क्षेत्र – बाड़मेर जिला राजस्थान के पश्चिम में स्थित है जिसका अक्षांशीय विस्तार 24°58'उत्तरी से 26°32' उत्तरी अक्षांश एवं देशान्तरीय विस्तार 70°05' पूर्व से 72°52' पूर्वी देशान्तरों के मध्य स्थित है। (मानचित्र– 1) बाड़मेर जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 28387 वर्ग किमी. है, इस जिले के उत्तर दिशा में जैसलमेर जिला, दक्षिण दिशा में जालोर, पूर्व में पाली जिला स्थित एवं जोधपूर जिला तथा पश्चिम सीमा पाकिस्तान देश से लगी हुई है। यहाँ लूनी नदी अपवाह तंत्र है जिसमें लूनी नदी की लम्बाई 480 किमी. है। यह जिला देश की सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

मानचित्र 1

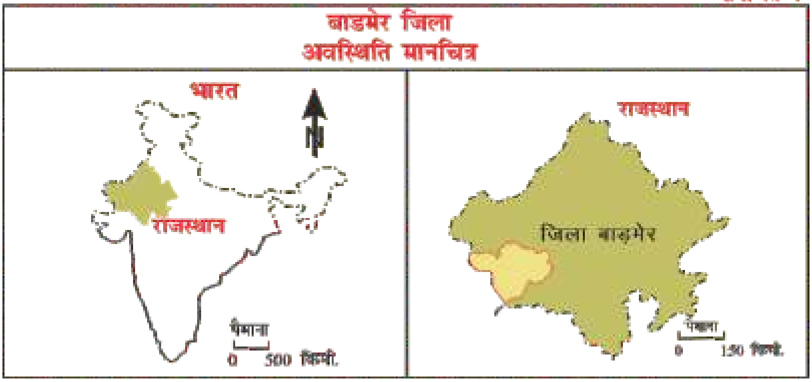

यहाँ से राष्ट्रीय राजमार्गो में मुख्यतः 925,68 व 325 गुजरते है। जिले में वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या 26,03,751 है जिसमें 1369022 पुरुष तथा 1234729 स्त्रियाँ है यहां का लिंगानुपात 902 स्त्रियाँ प्रति एक हजार पुरुष है। जनसंख्या घनत्व 92 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी तथा दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर 32.50 प्रतिशत रही है। यह शुष्क जलवायु वाला जिला है, जहाँ वर्षा की मात्रा प्रायः कम रहती है। यहां थार मरूस्थल का विस्तार भी पाया जाता है।

उद्देश्य – प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार रहे हैः–

- जनांकिकीय संरचना में साक्षरता की दर प्राप्त करना।
- साक्षरता की स्त्री/पुरुष, नगरी/ ग्रामीण का अध्ययन प्रस्तुत करना।
- साक्षरता की विषमता / अन्तराल को कम करने के सुझाव प्रस्तुत करना।

परिकल्पनायें – प्रस्तुत शोध–पत्र में निम्न परिकल्पनाऐं रही है–

- बाड़मेर जिला साक्षरता दर हेतु पर्याप्त भौगोलिक दशाएं रखता है।
- लगभग सभी निवास योग्य क्षेत्रों में साक्षरता दर में तहसीलवार एवं लिंगानुसार असमानता पायी जाती है।
- साक्षरता के असमान वितरण से जनांकिकीय परिदृश्य अपनी विशेष पहचान प्राप्त करते हे।

आँकड़ों के स्रोत – प्रस्तुत शोध पत्र में द्वितीय आँकड़ों का उपयोग हुआ है। यह आँकड़ों सरकारी संस्थाओं से एकत्रित किये गये हैं। जो निम्न प्रकार है–

- भारत की जनगणना वर्ष 2001 व 2011 जनगणना कार्य निदेशालय राजस्थान सरकार, जयपुर।
- आर्थिक एवं सांख्यिकीय निदेशालय, राजस्थान, जयपुर।
- जिला कार्यालय, बाड़मेर, राजस्थान।

शोधविधि – प्रस्तुत शोध अध्ययन में साक्षरता के भौगोलिक अध्ययन हेतु वर्ष 2001 तथा वर्ष 2011

 ISSN 2277-5587

के तहसीलवार साक्षरता का प्रतिशत प्राप्त किया है। जिसके अन्तर्गत कुल साक्षरता, पुरूष साक्षरता, स्त्री साक्षरता का कालिक एवं क्षेत्रीय विषमता/ अन्तर का अध्ययन किया गया है तथा श्रेणी क्रम अनुसार वर्ण मात्री विधि एवं आरेखों का शुद्धता के लिए प्रदर्शन प्रस्तुत किया है। बाड़मेर जिले में साक्षरता का अध्ययन – इस अध्ययन में बाड़मेर जिले की साक्षरता दर का तहसीलवार/लिंगानुसार अध्ययन की क्रमबद्धता इस प्रकार रही हैं –

कुलसाक्षरता – साक्षरता की इस श्रेणी में कुल साक्षरता (स्त्री/पुरूष) को शामिल किया गया है। इसके अन्तर्गत वर्ष 2001 में जिले की कुल साक्षरता 58.99 प्रतिशत रही थी जो वर्ष 2011 में घटकर 56.53 प्रतिशत रह गयी है। विगत दस वर्षो में इसके अन्तर्गत 2.46 प्रतिशत की कमी हुई है। तहसीलवार अध्ययन के तहत वर्ष 2001 में सर्वाधिक साक्षरता बाड़मेर तहसील में 66.07 प्रतिशत थी जबकि सबसे कम साक्षरता रामसर तहसील में 51.72 प्रतिशत थी।

मानचित्र 2

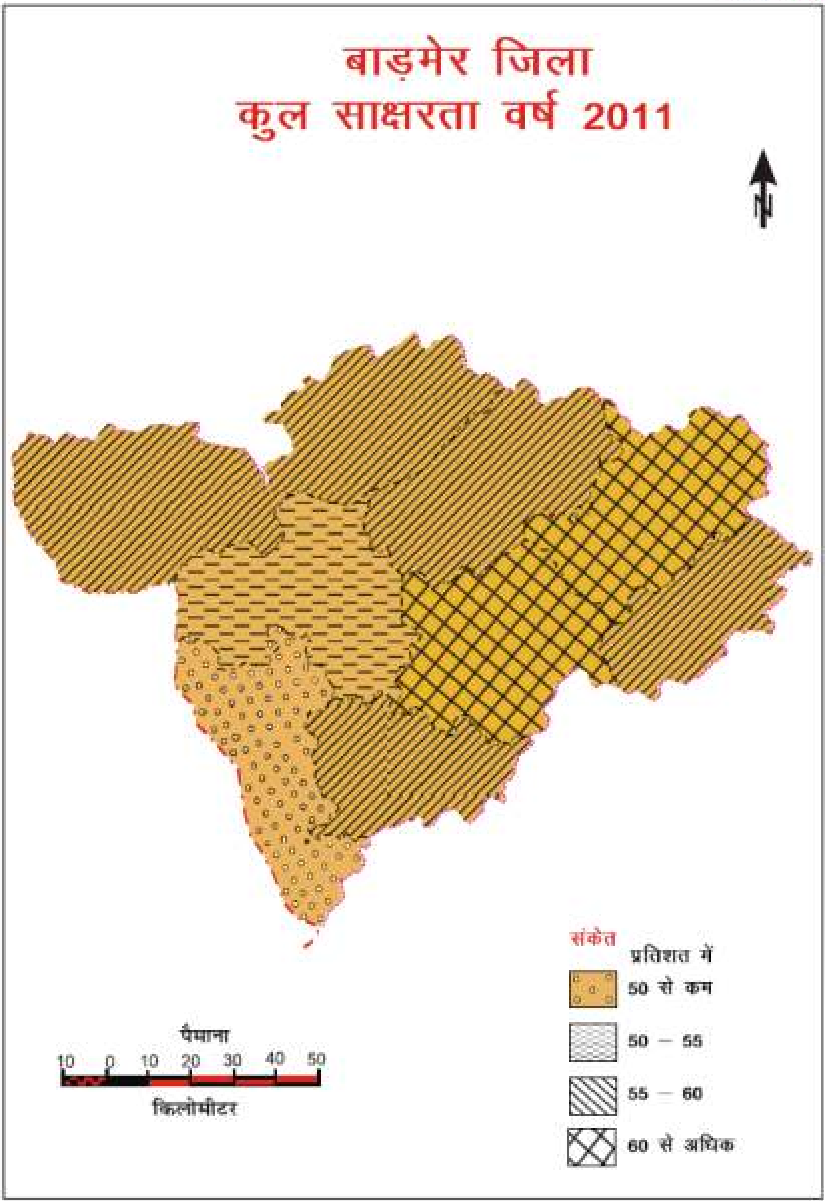

तालिका–1
कुल साक्षरता वर्ष 2001–2011

क्र.सं.	तहसील	वर्ष 2001	वर्ष 2011	दशकीय परिवर्तन +/–
1.	शिव	57.01	58.87	- 1.14
2.	बायतु	56.17	58.37	2.20
3.	पचपदरा	58.24	60.69	2.45
4.	सिवाना	58.76	57.45	- 1.31
5.	गुढामालानी	64.80	56.76	- 8.04
6.	बाड़मेर	66.07	64.53	- 1.54
7.	रामसर	51.72	50.74	- 0.98
8.	चौहटन	52.32	46.32	- 6.00
9.	कुल जिला	**58.99**	**56.53**	**- 2.46**

स्रोतः–जिला जनगणना प्रतिवेदन वर्ष 2001 व 2011

इसी प्रकार वर्ष में 2011 में सर्वाधिक साक्षरता भी बाड़मेर तहसील में 64.53 प्रतिशत रही है। यह तालिका संख्या 1 द्वारा स्पष्ट है। वर्ष 2011 में सबसे कम साक्षरता चौहटन तहसील में 46.32 प्रतिशत रही है। अतः अध्ययन से स्पष्ट है कि यहां साक्षरता दर में अन्तर की अधिकता रही है।

परिवर्तन – कुल साक्षरता के अन्तर्गत सर्वाधिक दशकीय वृद्धि दर 2.45 प्रतिशत पचपदरा तहसील हुई। जबकि सबसे अधिक कमी गुढ़ामालानी तहसील में 8.04 प्रतिशत की रही है। यह तालिका 1 व मानचित्र–2 द्वारा स्पष्ट है।

कुल पुरुष साक्षरता– कुल पुरुष साक्षरता के अन्तर्गत ग्रामीण पुरुष साक्षरता व नगरीय पुरुष साक्षरता शामिल रहती है। इस श्रेणी के अन्तर्गत वर्ष 2001 के अनुसार बाड़मेर जिले में सर्वाधिक कुल पुरुष साक्षरता दर 79.79 प्रतिशत बाड़मेर तहसील में थी जबकि सबसे कम कुल पुरुष साक्षरता चौहटन तहसील में 65.23 प्रतिशत थी। इसी प्रकार वर्ष 2011 के अनुसार सर्वाधिक कुल पुरुष साक्षरता बाड़मेर तहसील में 78.23 प्रतिशत जबकि सबसे कम कुल पुरुष साक्षरता चौहटन तहसील में 59.96 प्रतिशत रही है। यह तालिका संख्या 2, आरेख – 1 द्वारा स्पष्ट है।

तालिका– 2
कुल पुरुष साक्षरता वर्ष 2001–2011

क्र.सं.	तहसील	वर्ष 2001	वर्ष 2011	दशकीय परिवर्तन +/–
1.	शिव	71.78	71.17	- 0.61
2.	बायतु	70.06	72.52	2.46
3.	पचपदरा	74.04	75.03	0.99
4.	सिवाना	73.33	73.14	0.19
5.	गुढामालानी	76.24	70.91	- 5.33
6.	बाड़मेर	79.79	78.23	- 1.56
7.	रामसर	66.17	65.96	- 0.21
8.	चौहटन	65.23	59.96	- 5.27
9.	कुल जिला	**72.76**	**70.86**	**- 1.90**

स्रोतः–जिला जनगणना प्रतिवेदन वर्ष 2001 व 2011

आरेख – 1

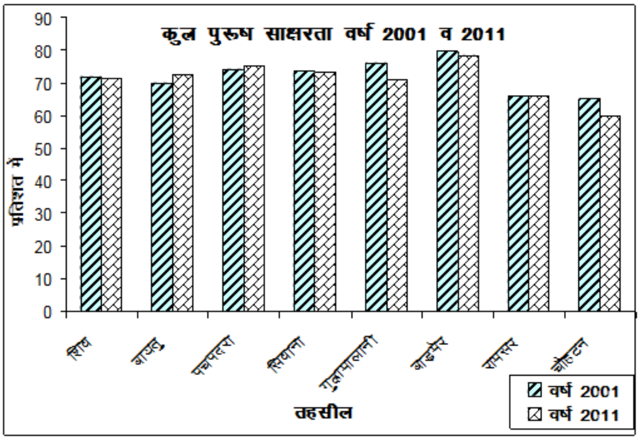

तालिका– 3
कुल स्त्री साक्षरतावर्ष 2001–2011

क्र.सं.	तहसील	वर्ष 2001	वर्ष 2011	दशकीय परिवर्तन +/–
1.	शिव	39.41	38.12	- 1.29
2.	बायतु	40.94	42.82	1.88
3.	पचपदरा	40.80	45.19	4.39
4.	सिवाना	42.96	40.32	- 2.64
5.	गुढामालानी	52.32	41.25	- 11.07
6.	बाड़मेर	49.84	48.89	- 0.95
7.	रामसर	34.74	65.96	31.22
8.	चौहटन	37.39	59.96	22.57
9.	कुल जिला	**43.45**	**40.63**	**- 2.82**

स्रोतः–जिला जनगणना प्रतिवेदन वर्ष 2001 व 2011

आरेख – 2

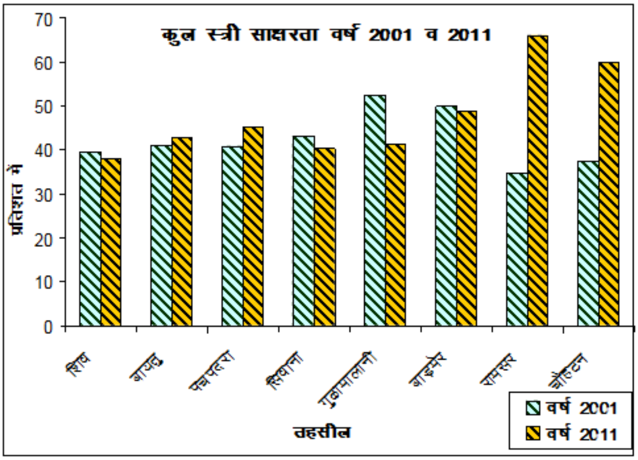

कुल स्त्री साक्षरता– कुल स्त्री साक्षरता के अन्तर्गत ग्रामीण व नगरीय स्त्री साक्षरता को शामिल किया गया है वर्ष 2001 के तहत सर्वाधिक कुल स्त्री साक्षरता 52.32 प्रतिशत गुढामालानी तहसील में थी जबकि इसी वर्ष सबसे कम कुल स्त्री साक्षरता 34.74 प्रतिशत रामसर तहसील में थी इस श्रेणी के अन्तर्गत वर्ष 2011 में सर्वाधिक स्त्री साक्षरता रामसर तहसील में 65.96 प्रतिशत रही है जबकि सबसे कम कुल स्त्री साक्षरता 38.12 प्रतिशत शिव तहसील में रही है। (तालिका – 3 व आरेख–2) यहां कम रहने का कारण सामाजिक संरचना एवं शिक्षा का स्तर कमजोर होना है।

अतः अध्ययन से स्पष्ट है कि जिले में साक्षरता का स्तर बहुत न्यून है तथा विषमताएं रखता है जिसे सुधार हेतु शिक्षा के सुधारात्मक कार्यक्रमों की बहुत आवश्यकता है। ताकि यहां जनांकिकीय विकास उच्च हो सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *श्रीवास्तव गीता एवं नीरज (जून 1999) : उत्तर प्रदेश हिमालय की साक्षरता में ग्रामीण नगरीय अन्तराल, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका अंग 34*
2. *Gosal G.S. (1969) "Literacy in India and Interpretative Study" Rural Sociology Vol. 29*
3. *प्रसाद, रामा एवं महावर गोपीलाल (2001) राजस्थान में साक्षरता का भौगोलिक विश्लेषण उत्तर भारत भूगोल पत्रिका अंक 37, जून–दिसम्बर 2001 (प्रो. रामालोचन सिंह स्मृति अंक) पृष्ठ 9–18*
4. *शर्मा, एच.एस. व शर्मा एम.एल. (2006) राजस्थान का भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर*
5. *वर्मा, एल.एन., (2013) ''भारत में शिक्षा के सामाजिक आधार'' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।*
6. *सिंह, तारकेश्वर (1998)ः के रात तहसील (जनपद. जौनपुर) में साक्षरता का क्षेत्रीय विश्लेषण उत्तर भारत भूगोल पत्रिका अंक 34*

गंगापुर तहसील में जल के कुप्रबन्धन से उत्पन्न समस्या एवं उसके निवारण का भौगोलिक अध्ययन

डॉ. सीमा चौहान

एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

जिस प्रकार मिश्र नील नदी की देन हैं उसी प्रकार उत्तरी एवं मध्य भारत को गंगा–ब्रह्मपुत्र की देन कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। परन्तु आज मानव इन संसाधनों के महत्व को भूलकर अपनी लालसापूर्ति में कर रहा हैं। जलाभाव के उपरान्त भी वर्षा जल के कुप्रबन्धन से अमूल्य वर्षा जल का समुचित उपयोग नहीं हो रहा हैं, जिससे जल संकट गत वर्षो में विकराल रूप लेने लगा हैं। उक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इस शोध पत्र में राजस्थान राज्य के सवाई माधोपुर जिले की गंगापुर तहसील में जल की उपलब्धता, जलाभाव एवं उसके प्रबन्धन का विश्लेषण किया गया हैं।

संकेताक्षर : *जल संसाधन, जल प्रबन्धन, जलग्रहण क्षेत्र विकास कार्यक्रम, भू–जल दोहन।*

वर्तमान समय में जल संसाधनों का प्रबन्धन व उसका क्षेत्र के विकास में योगदान एक नवीन व ज्वलन्त विषय के रूप में उभर कर सामने आ रहा है, क्योंकि जल जीवन का आधार है और इसके बिना जीवन सम्भव नहीं है। यह मानव की ही नहीं अपितु प्राणीमात्र के जीवन की आवश्यकता है। जल पृथ्वी पर पाया जाने वाला एक अमूल्य संसाधन है, जो प्रकृति निर्माण में सहभागी होकर सम्पूर्ण जीवमण्डल को आधार प्रदान करता है। सभ्यताओं के विकास और विनाश में जल का विशेष योगदान रहा है।

इस सम्बन्ध में कई विषयों के विद्वानों ने अपने विचार प्रकट कर इसकी विस्तृत व्याख्या की है। जैसे रहीमदास कहते हैं कि–

''रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सून''

इन पंक्तियों को रचकर उन्होंने हमें पहले ही सचेत कर दिया था कि जल के बिना सृष्टि का अस्तित्व नहीं है, अतः इसका उपयोग मितव्ययता से किया जायें, क्योंकि मानव के लिए आवश्यक जीवनदायी संसाधनों में वायु के बाद दूसरा स्थान जल का ही आता है।

तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या हेतु जल की अधिक आवश्यकता है, अतः यदि अभी भी जल संरक्षण के प्रयास नही किये गये तो निकट भविश्य में मानव को इसके गंभीर परिणाम भुगतने होगें।

शोध परिकल्पना

- बढ़ती जनसंख्या हेतु जल की अधिक आवश्यकता होगी।
- जल के अविवेकपूर्ण दोहन से जल संकट उत्पन्न होगा।
- उद्योगों एवं नगरों के विस्तार से जल की माँग में वृद्धि होगी।
- सिंचित क्षेत्र में वृद्धि के साथ–साथ जल की आवश्यकता में वृद्धि होगी।
- प्रदूषण बढने से जल दूषित होगा।
- वनक्षेत्रों में ह्रास से वर्षा की मात्रा प्रभावित होगी।

उद्देश्य

- गंगापुर तहसील क्षेत्र में स्थित जल संसाधनों का विश्लेषण करना।
- गंगापुर तहसील में संचालित जलग्रहण क्षेत्र विकास कार्यक्रम में मेक्रो व माइक्रो जलग्रहण क्षेत्रों का मानचित्रिय विश्लेषण करना।
- विभिन्न योजनाओं के साथ संचालित जलग्रहण क्षेत्र विकास कार्यक्रम की स्थिति को स्पष्ट करना।
- टिकाऊ विकास की संकल्पना को जलग्रहण विकास कार्यक्रम के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट करना।
- गंगापुर तहसील क्षेत्र के सतत् विकास के पक्ष को जलग्रहण क्षेत्र विकास कार्यक्रम के आलोक में स्पष्ट करना।
- जलग्रहण क्षेत्र विकास कार्यक्रम के द्वारा क्षेत्र में हुए विकास का सांख्यकीय विश्लेषण करना।
- जलग्रहण क्षेत्र विकास कार्यक्रम के द्वारा होने प्रभावों का विभिन्न आधारों पर मूल्याकंन करना।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध पत्र में जल संसाधन प्रबंधन की समस्या का अध्ययन करने के लिए दो प्रकार के आंकडों को चुना गया हैं।

- **प्राथमिक आंकडे –** प्रश्नावली द्वारा सर्वे एवं साक्षात्कार के माध्यम से एकत्रित किये गये हैं।
- **द्वितीयक आंकडे –** सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थानों से प्राप्त किये गयें हैं।

अध्ययन क्षेत्र

18वीं शताब्दी में महाराजा सवाई माधोसिंह के द्वारा सवाई माधोपुर शहर स्थापित किया गया। सवाई माधोपुर जिले का क्षेत्र पुरानी करौली तथा पुराने जयपुर राज्य की सवाई माधोपुर तथा गंगापुर, हिण्डोन निजामतों में आता था। पुरानी करौली राज्य 17 मार्च 1948 को मत्स्य संघ में सम्मिलित हुआ जिसे पुरानी जयपुर राज्य के साथ मिलाकर संयुक्त राज्य राजस्थान बना। दिनांक 15 मई 1949 में भारत सरकार ने शंकर राव देव समिति की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए मत्स्य संघ का संयुक्त वृहद राजस्थान में विलय कर दिया। तभी जयपुर के महाराजा सवाई माधोसिंह प्रथम (1751–1761 ई.डी.) के नाम पर सवाई माधोपुर जिले का नामकरण किया गया। जिले का अब तक दो बार विभाजन किया जा चुका है। प्रथम बार 1992 में दौसा जिले के सृजन के समय जिले की महुआ तहसील को दौसा जिले में सम्मिलित किया गया। द्वितीय बार 1997 में जिले की पाँचों तहसीलों करौली, हिण्डोन, टोडाभीम, सपोटरा, नादौती को प्रथक कर करौली जिले का सृजन हुआ। सवाई माधोपुर जिला राजस्थान के दक्षिण–पूर्व में स्थित है जिसका कुल क्षेत्रफल 5042.99 वर्ग किलोमीटर है। इसमें से 4967.70 वर्ग किलोमीटर ग्रामीण क्षेत्र व 75.29 वर्ग किलोमीटर शहरी क्षेत्र में आता है। अरावली पर्वतमालाओं से आच्छादित एवं प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर यह जिला 25°45' से 26°41' उत्तरी अक्षांश तथा 75°59' से 77°00' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। सवाई माधोपुर के उत्तर पूर्व में करौली जिला व दक्षिण में कोटा व बून्दी जिले हैं। जबकि दक्षिण पूर्व में चम्बल नदी द्वारा मुरैना जिला (म.प्र.) से सीमांकित है। उत्तर में दौसा व जयपुर जिले व पश्चिम में टोंक जिले से घिरा हुआ है। इस जिले का दक्षिण–पूर्वी भाग विंध्यन पठार से घिरा हुआ है। इस जिले की समुद्र तट से ऊँचाई 400 मीटर से 600 मीटर के मध्य है। जिले की सबसे ऊँची चोटी बामनवास तहसील में है। जिसकी ऊँचाई 827 मीटर है। जिले में बहने वाली मुख्य नदियाँ चम्बल, बनास, मोरेल, जीवद, गम्भीर व ढील नदियाँ है। चम्बल नदी जिले को मध्य प्रदेश के श्योपुर जिले से अलग करती है। जिले में पश्चिम रेल्वे का दिल्ली–मुम्बई मार्ग गंगापुर व सवाई माधोपुर तहसीलों से एवं जयपुर–मुम्बई मार्ग सवाई माधोपुर तथा चौथ का बरवाड़ा तहसील से गुजरता है।

सवाई माधोपुर जिले में गंगापुर तहसील के अधिकांश भाग पठारी व मैदानी क्रम लिये हुए है जिनमें अनेक प्रकार की फसलें उगाई जाती हैं। इस क्षेत्र में बनास तथा मोरेल, जीवद तथा इनकी सभी सहायक नदियाँ एवं छोटे नदी–नालें सम्पूर्ण क्षेत्र में पूर्व की ओर प्रवाहतंत्र निर्मित करते हैं। गंगापुर सिटी तहसील का उत्तरी भाग पठारी होने से यहाँ पर किसी भी प्रकार की फसल नहीं उगाई जाती और ना ही किसी प्रकार की वनस्पति पनपती हैं।

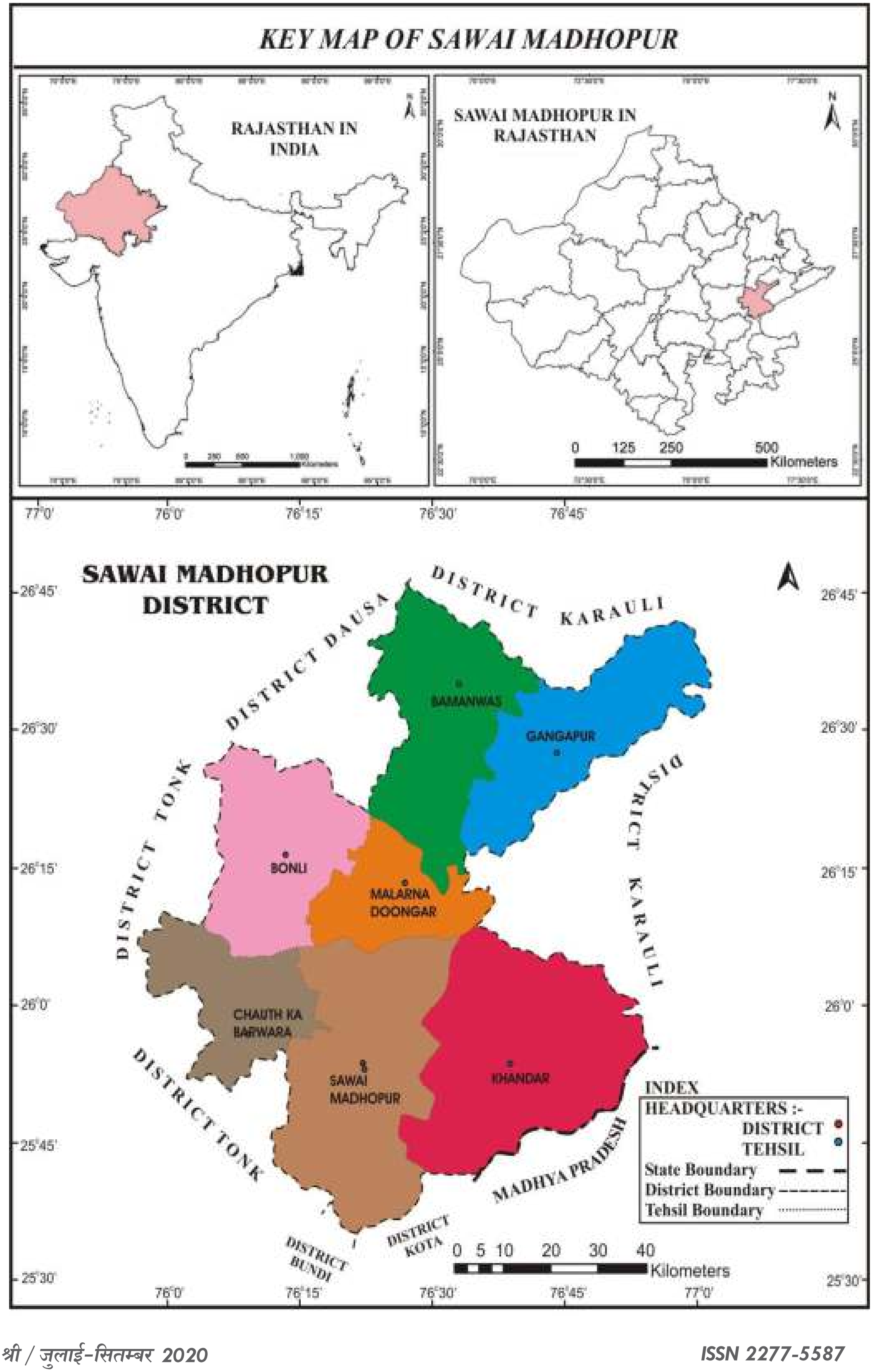
KEY MAP OF SAWAI MADHOPUR
RAJASTHAN IN INDIA
SAWAI MADHOPUR IN RAJASTHAN
0 125 250 500 Kilometers
SAWAI MADHOPUR DISTRICT
DISTRICT KARAULI
DISTRICT DAUSA
DISTRICT TONK
DISTRICT KARAULI
DISTRICT TONK
DISTRICT BUNDI
DISTRICT KOTA
MADHYA PRADESH
BAMANWAS
GANGAPUR
BONLI
MALARNA DOONGAR
CHAUTH KA BARWARA
SAWAI MADHOPUR
KHANDAR
INDEX
HEADQUARTERS :-
DISTRICT
TEHSIL
State Boundary
District Boundary
Tehsil Boundary
0 5 10 20 30 40 Kilometers
77°0' 76°0' 76°15' 76°30' 76°45'
26°45' 26°30' 26°15' 26°0' 25°45' 25°30'

गंगापुर तहसील में जलाभाव की समस्या

गंगापुर तहसील में भी सम्पूर्ण भारत की तरह मानसूनी वर्षा होती हैं और प्राप्त वर्षा जल भी प्रबन्धन के अभाव में व्यर्थ बह जाता हैं। अतः वर्षा कम होने और भूमिगत जल के अधिक दोहन से क्षेत्र में जल की विकट समस्या हैं।

जल स्त्रोत

1. **नदी–** सवाईमाधोपुर जिले में चार नदियां प्रवाहित होती हैं जिनमें चम्बल, बनास, मोरेल व जीवद प्रमुख है। जो गंगापुर तहसील के अधिकतर क्षेत्रों को सिंचाई व जलापूर्ति प्रदान करती है।
2. **बांध–** गंगापुर तहसील में प्रमुख रूप से निम्नलिखित बांध हैं–

   चन्दापुरा, मोती सागर और बनियावाला।
3. **कुएं–** वर्षा की मात्रा में कमी की वजह से भूमिगत जल स्तर गिर गया जिससे कुओं के जल स्तर में गिरावट आई और अधिकांश कुऐं सूख गये। सन् 2015–16 में कुओं की संख्या 4343 थी लेकिन पिछले 5 वर्षों में कुऐं की मात्रा में गिरावट दर्ज की गयी।

तालिका 1

क्र.सं.	तहसील	2008-09	2009-10	2010-11	2011-12	2012-13	2013-14	2014-15	2015-16
1	गंगापुर	4027	4117	7234	7237	4252	4287	4303	4343

4. **ट्यूबवेल व पम्पिंग सेट –** जल संसाधनों व भूमिगत स्त्रोतों में ट्यूबवेल व पम्पिंग सेट भी अपनी एक विशिष्ट पहचान रखते है। इनके द्वारा बहुत अधिक दूरी के क्षेत्र में भी सिंचाई की जा सकती है। इनके द्वारा पानी का उपयोग उचित प्रकार से किया जा सकता है। सवाई माधोपुर में पेयजल की सप्लाई ट्यूबवेलों के द्वारा की जाती है। सवाई माधोपुर में ट्यूबवेल व पम्पिंग सेटों की स्थिति को तालिका के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

गंगापुर तहसील में ट्यूबवेल व पम्पिंग सेटों की संख्या (2010–16)

तलिका 2

क्र.सं.	तहसील	2010-11	2011-12	2012-13	2013-14	2014-15	2015-16
2	गंगापुर	7193	7209	7216	7218	7234	7313

तालिका से स्पष्ट होता है कि कुओं की संख्या में 2015–16 तक तो वृद्धि हुई लेकिन जल स्तर में गिरावट की वजह से उनका स्थान ट्यूबवेल व पम्प सेटों ने ले लिया जिससे कुओं के द्वारा की जाने वाली सिंचाई में कमी आयी है।

5. गंगापुर तहसील में जल संसाधनों का वितरण (2016)

तालिका 3

क्र.सं.	तहसील	कुऐं	नलकूप	तालाब	नहरें	पम्पिंग सेट	ट्यूबवेल
1	गंगापुर	7234	52	110	0	7234	2575

जलाभाव से उत्पन्न समस्याएँ

जल प्रकृति की अमूल्य देन है और जीवन मात्र का अस्तित्व इसी पर टिका है। समय के बदलाव के साथ इस प्राकृतिक संसाधन का अत्यधिक दोहन होना तथा वर्षा की कमी से प्रदेश में जल संकट के हालात सामने आ रहे हैं। राजस्थान देश का सबसे बड़ा राज्य है। राज्य में सतही जल की कम उपलब्धता एवं कमी के कारण पीने के पानी की लगभग 90 प्रतिशत योजनाऐं एवं 60 प्रतिशत सिंचाई कार्य भूजल पर आधारित है। प्रदेश में हमारे पूर्वज जल का महत्व समझते थे।

प्रारम्भ से ही जल प्रबन्धन कर रहे थें। विगत 40 या 50 वर्षों से जब भी राज्य सरकार ने जल प्रबन्ध की जिम्मेदारी ली यह जल बहुत कम मूल्य पर बिना श्रम किये मिलने लगा और इसका महत्व भूल गये। वर्षा जल संचयन जो कि हमारे पूर्वज वर्षों से कर रहे थे वह भी बंद कर दिया। इसके साथ ही भूजल की अंधाधुंध निकासी वर्षा जल से भूजल पुनर्भरण में गिरावट के परिणामस्वरुप प्रदेश का भूजल स्तर तेजी से गिरने लगा। राज्य के पिछले वर्षों की भूजल स्थिति इंगित करती है कि हम किस प्रकार भूजल संकट की तरफ बढ़ रहे है।

सामान्य तौर पर ऐसा मानते है कि भूमि के नीचे पाताल में अथाह भूजल है यह भ्रम है कि भूजल का एकमात्र स्त्रोत वर्षा जल है। जितनी वर्षा होती है उसका 12 से 15 प्रतिशत जल ही धरती में जाता है जो हमें भूजल के रुप में उपलब्ध होता है। चट्टानी क्षेत्रों में तो भूमि के नीचे जाने वाले वर्षा जल की मात्रा 12 प्रतिशत से भी कम होती है। सवाई माधोपुर जिले का कुल क्षेत्रफल 5,021 वर्ग किलोमीटर है एवं सामान्य वार्षिक वर्षा 697 मिमि. है। रेतीले क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा का लगभग 12 प्रतिशत व चट्टानी क्षेत्रों में 7 प्रतिशत जल ही भूमि में जाता है। जिससे 346 मिलियन घन मीटर भूजल जमा हो जाता है। लेकिन इसके विरुद्ध 446 मिलियन घन मीटर भूजल का दोहन कर रहे है। सवाई माधोपुर जिले में मुख्य रुप से दो तरह के एक्वीफायर है। रेतीले क्षेत्र–2,256 वर्ग किलोमीटर एवं चट्टानी क्षेत्र 2096 वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र है।

जब क्षेत्र में उपलब्ध होने वाले भूजल का 100 प्रतिशत से अधिक दोहन किया जाये तो वर्षा जल से पुनर्भरित भूजल के अलावा पूर्वजों द्वारा अनंत वर्षों से संचित किये भूजल धन में से भी भूजल का दोहन किया जाये तो क्षेत्र अतिदोहित श्रेणी में वर्गीकृत किया जाता है।

सवाई माधोपुर जिले में वर्ष 1995 में औसत भूजल स्तर 12.17 मीटर था जो वर्ष 2010 में गिरकर 20 मीटर और 2016 में 26 मीटर हो गया है। इससे विद्युत व्यय बढ़ गया है। इससे नलकूप सूख गये है। इससे गांव में सिंचाई के साथ–साथ पेयजल का संकट पैदा हो गया है। जनसंख्या वृद्धि व अन्य प्रकार की आवश्यकताओं में वृद्धि से सवाई माधोपुर जिला अत्यधिक संकट की ओर अग्रसर हो रहा है। राज्य में प्रति व्यक्ति वार्षिक जल उपलब्धता 780 घन मीटर है। जबकि न्यूनतम आवश्यकता 1,000 घन मीटर आंकी गयी है।

गंगापुर सिटी में भी जलाभाव देखने को मिला। यहाँ पीने के लिए पानी की आपूर्ति भी टेंकरों के माध्यम से की जाती हैं,क्योंकि सवाई माधोपुर जिले का उत्तर–पश्चिम भाग जलाभाव ग्रस्त है। यहाँ पेयजल एवं सिंचाई हेतु जल का अभाव मिलता हैं। साथ ही लोगो की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होने से वे वृक्ष काटकर जीवन यापन करते हैं जिससे वन क्षेत्र का निरन्तर ह्मस होने से वर्षाचक्र भी असन्तुलित होता हैं।

समाधान के उपाय

जल संसाधन संरक्षण के उपायों को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।

1. **जल की प्रदूषण से रक्षा –** पृथ्वी पर उपलब्ध जल संसाधन प्रदूषण मुक्त रहे तो दुनिया की वर्तमान जनसंख्या की जलापूर्ती के लिए पर्याप्त मात्रा में जल उपलब्ध है। लेकिन जल के प्रदूषित होने के कारण जल का एक बड़ा भाग मानव जगत के उपयोग में नहीं आ पा रहा है।
2. **भूमि व जल का विवेकपूर्ण उपयोग –** विश्व स्तर पर कुल जल आपूर्ति का 25 प्रतिशत आपूर्तिकर्ता है। शेष जल की आपूर्ति सतही जल स्त्रोतों से होती हैं। भूजल की उपलब्ध मात्रा के अनुपात में इसकी मांग निरंतर बढ़ती जा रही है। भूजल का एक बार दोहन होने के बाद उन्हें आपूर्ति लम्बे समय में हो पाती है। इस कारण जल का विवेकपूर्ण उपयोग करके ही जल की मात्रा को अनुपातिक रुप में बचाये रखा जा सकता है। जिसके लिए वर्तमान फसल प्रतिरुप में परिवर्तन करके कम जलीय मांग वाली फसलों को प्राथमिकता दी जाये।
3. **जल का पुनर्वितरण –** भू–सतह पर पाये जाने वाले जल का वितरण सर्वत्र समान न होकर विषम रुप में है। किसी क्षेत्र में अधिक वर्षा होती है तो कई क्षेत्र शुष्क बने रहते हैं। अतः कम आवश्यकता वाले क्षेत्रों से अधिक आवश्यकता वाले क्षेत्रों को जलापूर्ति करके जल संकट को काफी मात्रा में कम किया जा

सकता है। इसके लिए जल संग्रह स्थलों का निर्माण कर अतिरिक्त जल के अभावग्रस्त क्षेत्रों में आपूर्ति की जा सकती है। नदियों को जोड़ने की योजना इस दिशा में सराहनीय प्रयास है।

4. **जनसंख्या नियंत्रण –** जनसंख्या में तीव्र वृद्धि तथा जल संसाधन में प्रादेशिक रुप में मात्रात्मक व गुणात्मक कमी आने से जल संकट ने उग्र रुप ले लिया है। निरंतर जल की मांग बढ़ती जा रही है। जनसंख्या वृद्धि के साथ ही कृषि व उद्योगों का विस्तार तथा नगरीकरण भी बढ़ा है। जिससे स्वच्छ जल की मांग भी बढ़ती जा रही है।

5. **पारम्परिक जल स्त्रोतों को पुनर्जीवित करना–** भारत में पारम्परिक जल संग्रह स्थल जनसंख्या के एक बड़े भाग को जलापूर्ति करने में सक्षम रहे है। लेकिन समय के साथ इनका अवनमन हुआ है। पारम्परिक जल स्त्रोतों में संग्रहित जल का उपयोग कृषि व पेयजल दोनों रुपों में किया जाता रहा है। इसके लिए राजस्थान में नाड़ी, टांका, कुंड, खडीन, कुई, बेरी, बावड़ी, झालरा, टोबा आदि बनाकर जल को संग्रहित किया जाता है।

6. **सिंचाई की आधुनिक विधियों का उपयोग –** विश्व स्तर पर वार्षिक जल के उपयोग में से 69 प्रतिशत कृषि कार्यों में जल का उपयोग होता है। कृषि के क्षेत्र में यह जलापूर्ति सतही जल स्त्रोतों व भूमिगत जल से होती है। सिंचाई की उन्नत विधियों को अपनाकर जल के एक बड़े भाग को संरक्षित किया जा सकता है।

7. **वनस्पतिक आवरण में वृद्धि –** जलीय परिसंचरण के अन्तर्गत प्रतिवर्ष भू सतह पर वर्षा के रुप में विभिन्न मात्रा में जल प्राप्त होता है। यह सतही जल स्त्रोतों द्वारा बहता हुआ सागरों तक पंहुचता है। इसका कुछ भाग तालाबों व झील आदि में संग्रहित होता है, परन्तु वनस्पतिक आवरण की कम मात्रा के कारण भूमिगत नहीं हो पाता। अतः धरातल पर वनों को अधिक मात्रा में लगाया जाना चाहिए। जिससे भूजल के स्तर में वृद्धि हो सके।

8. **फसल प्रतिरुप में परिवर्तन –** कृषि जलवायु दशाओं के अनुसार फसल बोने पर अतिरिक्त जल की आवश्यकता नहीं होती है। लेकिन वर्तमान समय में अधिक लाभ प्राप्ति के प्रयास में फसल प्रतिरुप में परिवर्तन देखा गया है और जल की कम उपलब्धता होने पर भूजल का दोहन किया गया है। फलस्वरुप जल संकट की स्थिति सामने आ गयी है। अतः जल की कम उपलब्धता वाले क्षेत्रों में कृषि वानिकी तथा बागानी कृषि को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

9. **बाढ़ प्रबन्धन –** भारत में बाढ़ के रुप में स्वच्छ जल का अधिकांश भाग उपयोग में न आकर विनाशक बन जाता है। अतः तटबंधों का निर्माण करके बाढ़ के नुकसान से बचाव के साथ–साथ जल के एक बड़े भाग को संरक्षित किया जा सकता है।

सारांश

सवाई माधोपुर पंचायत समिति में जल संसाधन प्रबन्धन के अभाव से व्याप्त समस्या के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वास्तव में इस पंचायत समिति के लोग जल समस्या के कारण ही अन्य समस्याओं जैसे – बेरोजगारी, गरीबी व प्रदुषण आदि से ग्रस्त है। क्योंकि जल ही जीवन का आधार है और आधार के बिना जीवन असम्भव है। अतः इस समस्या के आगे आकर लोगों में जागरूकता लाने का प्रयास करना चाहिए। जल समस्या के कारणों, प्रभावों व उपायों से जनता को अवगत कराना चाहिए। सरकारों को भी इस दिशा में नयी एवं उचित योजनाएँ बनाकर उनका शीघ्रातिशीघ्र क्रियान्वयन करना चाहिए। नदी से नदी जोडने जैसी योजनाओं को केन्द्र सरकार द्वारा शीघ्र क्रियान्वित कर लोगों तक इसका लाभ पहुँचाना चाहिए।

जलाभाव की समस्याा मुख्य रूप से वर्षा की कमी के कारण ही उत्पन्न होती है, अतः हमें पर्यावरण सन्तुलन पर ध्यान देना होगा, इसके लिए वृक्षों की कटाई को नियंत्रित कर वन संरक्षण व वन वृद्धि पर जोर देना होगा। यह हमारी गलत धारणा है कि असाक्षरता के कारण लोग वृक्ष कटाई के नुकसान से अनभिज्ञ है और अशिक्षित लोग ही वृक्ष काटते है। जबकि, वास्तविकता तो यह है कि अशिक्षित लोग परम्परावादी एवं रूढ़िवादी तो होते है, लेकिन वे अपनी संस्कृति के परम पुजारी

भी है। वे वृक्षों को काटना पाप समझते है, इसलिए वे तो वृक्षों को काटने की बजाय उनकी पूजा करते हे। खेजडली काण्ड में अपने देवता स्वरूप खेजड़ी के वृक्षों की कटाई के विरोध में बलिदान देने वाले कोई और नहीं हमारे अशिक्षित ग्रामीण लोग ही थे।

सरकार को उचित योजनाएँ बनाने पर भी ध्यान देना चाहिए। जनता की मुख्य आवश्यकता को ध्यान में रखकर प्राथमिकता के अनुसार योजनाएँ बनाकर उनको क्रियान्वित करना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *गुर्जर आर.के. (1997) – ''पर्यावरण प्रबंधन व विकास'' पोइन्टर पब्लिशर्स, एस.एम.एस. हाइवे, जयपुर*
2. *जाट, बी.सी. (2000) – ''जल संसाधन प्रबंधन'', पोइन्टर पब्लिशर्स, एस.एम.एस. हाइवे, जयपुर*
3. *गुर्जर आर.के. (2001) – ''जल प्रबंधन विज्ञान'', पोइन्टर पब्लिशर्स, एस.एम.एस. हाइवे, जयपुर*
4. *मिश्र, अनुपम (1995) – राजस्थान की रजत बूंदे, पर्यावरण कक्ष, गांधी शान्ति प्रतिश्ठान, नई दिल्ली*
5. *Gautam Mahajan (1993) : Groundwater recharge, Ashish Publishing House,NewDelhi*
6. *Gurjar, R.K. And Jat,B.C. (2001) :Water Management Science, Pointer Publishers, Jaipur*
7. *JatB.C. (2000) :WaterResource Management, Pointer Publishers, Jaipur*
8. *Mathur P.C and Gurjar, R.K. (1991) :Water and Land Management in arid ecology, Rawat publication, Jaipur*

पंचायतीराज संस्थाओं की समस्याएँ एवं चुनौतियाँ

महेन्द्र प्रसाद कडेला
शोद्यार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारत में पंचायतीराज संस्थाएं आधार स्तर पर राजनीतिक प्रशिक्षण का कार्य करता है। इन संस्थाओं के माध्यम से शासन का विकेन्द्रीकरण अवश्य हुआ है और साथ ही गाँवों का सुदृढ़ीकरण हुआ है। इसके बाबजूद ये संस्थाएं अनेक समस्याओं एवं चुनौतियों से जूझ रही हैं, इनके निराकरण हेतु राजनीतिक इच्छाशक्ति की आवश्यकता होती है। पंचायतीराज संस्थाओं में नकारात्मक हस्तक्षेप बड़ी चुनौती बनी हुई है। इनको आज भी प्रत्येक स्तर एवं दृष्टि से उपेक्षित किया जाता है। इनकी क्षमता संवर्द्धन के लिए बेहतर प्रयास करने होंगे।

संकेताक्षर : *विकेन्द्रीकरण, लोकतांत्रिक, इच्छाशक्ति, पंचायतीराज, ग्राम पंचायत।*

भारत में पंचायतीराज व्यवस्था ने विकेन्द्रीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। पंचायती राज व्यवस्था हमारे राष्ट्रकी अद्भुत विलक्षण विशेषता है तथा इसमें स्वशासन को मूर्त रूप देने की क्षमता निहित है। असंख्य गाँवों से निर्मित भारत में लोकतंत्र का उज्ज्वल भविष्य पंचायती राज व्यवस्था के कुशल व सफल कार्य संचालन पर आधारित है। पंचायती राज संस्थाओं को ऊर्जावान व गत्यात्मक बनाकर ही विकास की ओर गतिमान, सुदृढ़, सशक्त राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है। निःसंदेह 21वीं शताब्दी में पंचायती राज व्यवस्था की सफलता ही लोकतान्त्रिक राष्ट्र के रूप में भारत के भविष्य को निर्धारित करेगी। गाँधी के अन्तिम व्यक्ति का उत्थान एवं कल्याण पंचायती राज व्यवस्था की इच्छा शक्ति को मूर्तरूप देने का अहम मार्ग है। "पंच सो परमेश्वर'' की भावना चाहे वह अतीतकाल में वैदिककालीन स्थानीय शासन संस्थायें हों, ब्रिटिशकालिक परतंत्र भारत की स्थानीय शासन संस्थायें हो या 73वें संविधान संशोधन के पश्चात् स्थापित पंचायती राज व्यवस्थाओं का नव स्वरूप, भारतीय जनमानस में सदैव विद्यमान रही हैं।

2 अक्टूबर, 1959 को पंचायती राज के विधिवत् आरंभ करने से लेकर 1993 में प्रवर्तित 73वें संविधान संशोधन के तहत पंचायती राज संस्थाओं को वैधानिक स्वरूप देने एवं पश्चात्वर्ती काल में पंचायती राज संस्थाओं की गतिविधियों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि पंचायती राज एक राजनीतिक नारा न होकर भारतीय राष्ट्रीय जीवन का अत्यंत महत्वपूर्ण हिस्सा है। साथ ही पंचायती राज व्यवस्था को कुशल बनाने की आवश्यकता ने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के उन्नत भारत की प्रथम शर्त आत्मनिर्भर एवं स्वशासित, स्वावलम्बी भारतीय ग्राम की धारणा को सत्य सिद्ध किया है। यह गांधीजी के 'ग्राम स्वराज्य' के स्वप्न की स्वीकारोक्ति है। निश्चित रूप से 73वाँ संविधान संशोधन पंचायती राज व्यवस्था की विकास यात्रा में एक महत्त्वपूर्ण प्रस्तर चिह्न है। साथ ही 73वें संविधान संशोधन उपरान्त भारत के विविध राज्यों में पंचायती राज व्यवस्था का निष्पादन अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों को प्रकट करता है। वे परिस्थितियाँ जिनमें आज पंचायती राज व्यवस्थायें कार्य कर रही है, अधिनियम के लागू किये गये विविध प्रावधान एक और अनेक संतोषप्रद आयाम प्रकट करते हैं तो दूसरी ओर अनेक प्रश्नों को जन्म देते हैं जिनका उत्तर ढूंढा जाना आवश्यक है।

73वें संविधान संशोधन के पश्चात् 24 अप्रैल, 1993 से देश में पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता प्राप्त होने के साथ ही विविध राज्यों द्वारा पंचायती राज अधिनियमों में 73वें संविधान संशोधन को लागू करने के लिए तदनुरूप प्रावधान किये हैं। उसी के अनुरूप संस्थागत एवं प्रक्रियागत स्वरूप नियत किया गया। 73वें संविधान

 ISSN 2277-5587

संशोधन के आलोक में ही आज यदि भारत में पंचायती राज संस्थाओं के संरचनात्मक एवं व्यावहारिक पक्षों का अध्ययन करें तो यह सिद्ध हो जाता है कि विगत वर्षों में पंचायती राज व्यवस्था को उक्त संविधान संशोधन के अनुरूप निष्पादित किये जाने की आवश्यकता है। 73वें सविधान संशोधन के पश्चात् पंचायती राज व्यवस्था के निष्पादन के सम्बन्ध में कतिपय मूल प्रवृत्तियाँ प्रकट हुई हैं।

राजस्थान, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों में तो 73वें संविधान संशोधनोत्तर स्थितियों को देखते हुए पंचायती राज संस्थाओं को अधिक अधिकार प्रदान करने व उनकी भूमिका की प्रभावशाली बनाने के लिए अपनी योजना को कार्यरूप देना आरम्भ कर दिया है। 30 अप्रैल, 2002 तक कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल ने तो सभी 29 विषय पंचायतों को हस्तांतरित कर दिए थे। कर्नाटक और सिक्किम में तो बजट और कर्मचारियों का प्रशासनिक नियंत्रण भी दे दिया था। 10 से 12 विभागों का हस्तांतरण मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल कर चुके थे।

जिला परिषद एवं पंचायत समिति पर सृजित पदों के संदर्भ में उल्लेखनीय है कि राज्य सरकार की स्वीकृति बिना कोई अतिरिक्त नियुक्ति नहीं की जा सकती है। मन्त्रायलयिक एवं चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी, ग्राम सेवक व अध्यापक को छोड़कर सभी कर्मचारी/अधिकारी राज्य सरकार के विभिन्न विभागों से प्रतिनियुक्ति पर होते हैं। ग्राम पंचायत स्तर पर पंच व सरपंच कम पढ़े-लिखे होने के कारण ग्राम सेवक पर पूर्णतः निर्भर होते हैं, जो एक सरकारी कर्मचारी है। पंचायत की बैठक की कार्यवाही लिखने से लेकर ऋण पत्र भरवाने तक के कार्य ग्राम सेवक ही करवाता है। फलस्वरूप उसकी अप्रत्यक्ष निरंकुशता व दबदबा पंचायत पर हावी रहता है। सादिक अली समिति व बाद में राजस्थान राज्य वित्त आयोग ने भी प्रत्येक पंचायत के कार्य हेतु एक स्थायी ग्राम सेवक की अनुशंसा की थी। पंचायत समिति स्तर पर तकनीकी कर्मचारियों की कमी है। जिला परिषद् को सुदृढ़ किया जाना आवश्यक है जिससे वे वास्तविक अर्थों में जिला विकास एजेन्सी बन सकें। राजस्थान व मध्य प्रदेश की भाँति केवल जिला प्रमुख को जिला ग्रामीण विकास अभिकरण का अध्यक्ष बनाने व अतिरिक्त जिलाधीश को मुख्य कार्यकारी जिला परिषद् घोषित कर देना ही पर्याप्त नहीं है।

पंचायती राज के प्रशासनिक तंत्र एवं जन-प्रतिनिधि के संदर्भ में यह मुद्दा स्पष्ट हुआ है कि ग्रामीण स्तर पर विकास कार्यक्रमों के निष्पादन व कार्यकुशल संचालन हेतु लोक सेवक व जन-प्रतिनिधि दो महत्त्वपूर्ण कड़ियाँ हैं। पंचायती राज संस्थाओं में जन प्रतिनिधि जैसे जिला परिषद्, पंचायत समिति व ग्राम पंचायत के स्तर पर क्रमशः प्रमुख-उपप्रमुख, व उप प्रधान, सरपंच व उपसरपंच, तो दूसरी ओर प्रशासनिक अधिकारी जैसे- जिला स्तर पर- मुख्य कार्यपालक व अन्य अधिकारी, पंचायत समिति स्तर पर खण्ड विकास अधिकारी एवं प्रसार अधिकारी एवं ग्राम पंचायत स्तर पर ग्राम सेवक पदेन पंचायत सचिव कर्मचारी आदि हैं। दोनों प्रकार के पदाधिकारियों के बीच परस्पर मधुर व सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध प्रजातंत्र के सफल संचालन के लिए आवश्यक है। यह कटु तथ्य है कि पंचायती राज व्यवस्था में भी राष्ट्रीय व राज्य स्तर पर मंत्री लोकसेवक सम्बन्धों की भाँति दोनों के सम्बन्ध तनावपूर्ण रहे हैं। विविध अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि जनप्रतिनिधि व प्रशासकों के मध्य सम्बन्धों के तनाव का मुख्य कारण दोनों प्रकार के अधिकारियों का एक-दूसरे के दायित्वों से अनभिज्ञता, पारस्परिक गलतफहमी, दोनों की अपने-अपने स्तर पर सर्वोच्च संस्था के रूप में कार्य करने की आकांक्षा, सत्ता के विभाजन की अनिच्छा, आदेश की एकता की अस्पष्टता, क्षेत्राधिकार के अतिव्यापन से आपसी सम्बन्ध तनावपूर्ण हो जाते हैं। इन दुर्गुणों को दूर करना आवश्यक है।

पंचायती राज व्यवस्था में महिला आरक्षण व महिलाओं की पंचायती राज व्यवस्था में सहभागिता एक ऐसा क्रान्तिकारी मुद्दा है जिसने ग्रामीण विकास तथा सहभागिता को नयी परिभाषा दी हैं। 73वें संविधान संशोधन में किये गये प्रावधान से देश के इतिहास में प्रथम बार पंचायत व्यवस्था के प्रत्येक स्तर पर महिलाओं के 33 प्रतिशत स्थान सुरक्षित किये गए हैं। महिलाओं के लिए यह आरक्षण पंचायत के पदाधिकारियों के पदों पर भी लागू हुआ है जिसके सदस्यों की संख्या लगभग 95 लाख है। महिला प्रधानों की संख्या लगभग 76,000 है। निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के कार्यों को देखें तो उन्होंने महिलाओं को लेकर इस शंका को निर्मूल सिद्ध किया है कि वे कोई निर्णय नहीं ले सकती तथा गाँव के लिए होने वाले अच्छे व बुरे का उन्हें बोध नहीं है। महिलाओं के सशक्तीकरण के संगठित प्रयास के साथ ही महिला आरक्षण में राजनीतिक व सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन

की नयी उम्मीदें भी सामने आयी है। यद्यपि महिला प्रतिनिधियों के सशक्तीकरण में अनेक बाधायें आज भी विद्यमान हैं जैसे– दोहरे सामाजिक मूल्य, पारम्परिक सामाजिक पृष्ठभूमि, जानकारी का अभाव, आर्थिक पिछड़ापन, निरक्षरता, परिवार के सदस्यों का विरोध आदि हैं।

पंचायतीराज संस्थाओं की स्थिति

पंचायत राज मंत्री सम्मेलन नई दिल्ली दिनांक 11 जुलाई, 2001 को इसी उद्देश्य से आयोजित किया गया था। इसमें निम्न बिन्दु विशेष रूप से चिह्नित किए गए थे :

- संवैधानिक प्रावधान के बावजूद राज्य सरकारों ने निर्धारित 5 वर्ष की अवधि गुजर जाने के बावजूद चुनाव नहीं करवाने के लिए अध्यादेशों का सहारा लिया और चुनाव आयोग को अदालतों के दरवाजे खटखटाने पड़े।
- पंचायतों को दायित्वों के साथ निधि एवं कर्मचारियों का प्रशासनिक नियन्त्रण अभी तक हस्तान्तरण नहीं हुआ।
- जिला आयोजना समिति का गठन और उसे योजना राशि देकर सक्षम नहीं बनाया गया।
- ग्राम सभा के सशक्तिकरण हेतु नियमों में स्पष्ट प्रावधान नहीं किए।
- पारदर्शिता एवं जिम्मेवारी के बारे में अभी तक अनिश्चितता कायम है।
- पंचायतों को एक एजेन्सी मानते हुए राज्य सरकार का नियंत्रण किसी सरकारी विभाग की तरह ही चला आ रहा है और उसे स्वराज्य की स्वतंत्र इकाई के रूप में पनपाने हेतु कोई प्रयास नहीं किए गए।
- ग्राम स्तर पर जलग्रहण, वन विकास और ग्रामीण विकास हेतु समानान्तर निकायों का गठन कर पंचायतों की शक्ति को कमजोर किया गया।
- अनुसूचित जाति क्षेत्रों हेतु 1996 में भारत सरकार द्वारा कानून पारित हो जाने के बावजूद मध्य प्रदेश के अलावा अन्य राज्यों ने सम्बन्धित नियमों में संशोधन कर ग्राम सभाओं को सशक्त करने की दिशा में उपयुक्त प्रयास नहीं किए।

  उक्त कारणों के अतिरिक्त पंचायत राज को कमजोर बनाने हेतु निम्न कारण भी जिम्मेवार रहे हैं।

- अनुसूचित जाति, जनजाति और महिलाओं जैसे कमजोर वर्गों का प्रतिनिधित्व असंतोषजनक रहा है क्योंकि गाँवों के सामन्ती एवं प्रभावशाली तत्त्व ग्रामीण राजनीति में बराबर हावी रहे हैं।
- राज्य स्तर के राजनीतिज्ञ तथा राजनीतिक दल घड़ियाली आँसू बहाते रहे हैं। यहां तक कि केरल और कर्नाटक जैसे राज्य भी अब पीछे हट रहे हैं।
- अधिकार और प्रशासनिक नियंत्रण पंचायत राज संस्थाओं को देने में अफसरशाही बराबर आड़े आती रही है।
- सक्रिय सामन्ती तत्त्व–जमींदार, सवर्ण और निहित स्वार्थ पंचायत राज की नीवें कमजोर करते रहे हैं।

पंचायती राज संस्थाओं को विकास की 'एजेन्सी' मात्र नहीं मानकर स्थानीय स्वशासन की इकाई के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए। पंचायती राज व्यवस्था को सफल बनाने के लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति, सुदृढ़ सरकारी प्रयास, वैधानिक ठोस उपायों के साथ–साथ जन–समुदाय के सामूहिक प्रयास भी आवश्यक है। इस सम्बन्ध में इसके दोषों को दूर करने के लिए सैद्धांतिक मान्यता के साथ शासन व जनता के बीच जीवन्त सार्थक सम्बन्ध आवश्यक है।

किसी व्यवस्था की सफलता या विफलता इस तथ्य पर निर्भर करती है कि उस व्यवस्था के उपयोगकर्त्ताओं द्वारा उसका किस प्रकार एवं किस स्तर पर प्रयोग किया गया है। 73वाँ संविधान संशोधन भारत में पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना में अन्तिम पड़ाव नहीं है, वरन् यह आरंभ है इस प्रक्रिया का, कि सक्रिय, सक्षम, ऊर्जावान गतिमान पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से किस प्रकार उन्नत और विकसित भारत के स्वप्न को साकार किया जा सकें? आज हमें 73वें संविधान संशोधनोत्तर पंचायती राज संस्थाओं के कार्य संचालन पर विचार करना होगा तथा इनके कार्य संचालन में बाधक विकृतियों का निराकरण करना होगा।

पंचायती राज संस्थाओं के विकास हेतु व उन्हें सुदृढ़ बनाने के लिए सहायक व सलाहकार स्तर पर उड़ीसा व गुजरात में क्रमशः मुख्यमंत्री व मंत्री की अध्यक्षता में एक समिति भी गठित है, ऐसी समिति प्रत्येक राज्य में होनी आवश्यक है, जिसमें पंचायती राज को सशक्त बनाया जा सके।

ISSN 2277-5587

निर्वाचित जन प्रतिनिधि द्वारा दुराचरण या कार्य में लापरवाही हेतु हटाने की शक्ति गुजरात, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा में जिलाधीश को देना न्याय के सिद्धांतों के अनुकूल नहीं है। हरियाणा व मध्य प्रदेश में ग्राम पंचायत के सरपंच को हटाने की शक्ति ग्राम सभा के 50 प्रतिशत मतदाताओं को तथा अन्य राज्यों में ग्राम पंचायतों के 2/3 पंचों के बहुमत से सीधे मतदाताओं को द्वारा हटाने की शक्ति दी गयी है। हरियाणा पंचायती राज अधिनियम में इसी क्रम में संशोधन कर सरपंच के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव का प्रावधान ही फरवरी, 1999 में समाप्त कर दिया। वस्तुतः जनप्रतिनिधि को हटाने की शक्ति युक्तिसंगत व न्याय आधारित हो।

73वें संविधान संशोधन से अन्य पिछड़ी जातियों के आरक्षण के प्रावधानों को राज्यों के विवक पर छोड़ा गया है। इसके बारे में युक्तिसंगत आधार व मानदण्ड निश्चित किये जाने आवश्यक हैं। ग्यारहवीं अनुसूची में वर्णित 29 विषय राज्य सरकारों द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को सौंपी जाने वाली अधिकतम शक्तियाँ नहीं मानी जायें। राज्य सूची के अन्य अधिकार भी पंचायती राज संस्थाओं को सौंपे जा सकते हैं।

जिला स्तर पर समन्वित योजना तैयार करने के साथ-साथ निष्पादन व मूल्यांकन की जिम्मेदारी भी सौंपी जाये। मध्य प्रदेश सरकार द्वारा मार्च, 1999 के जिला सरकार की स्थापना हेतु जिला आयोजना समिति को जिले के ग्रामीण क्षेत्रों से सम्बन्धित राज्य सरकार की सभी योजनाओं के पुनरीक्षण, निरीक्षण व मोनिटर करने की शक्ति देना सार्थक कदम होगा।

पंचायती राज संस्थाओं को केन्द्र व राज्य के पश्चात् तीसरे स्तर के रूप में सुदृढ़ीकरण किया जाना आवश्यक है। इस मानसिकता में बदलाव अत्यधिक आवश्यक है कि शासन कार्यों का संचालन केवल मात्र केन्द्र व राज्य स्तर पर ही हो सकता है। पंचायती राज संस्थाएँ केवल मात्र स्थानीय विकास कार्यों हेतु ही नहीं वरन् स्वायत्त शासन की सशक्त इकाई हेतु भी गठित की गयी है। पंचायती राज संस्थाओं को वास्तविक अर्थों में सशक्त बनाने के लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति व सरकारी तंत्र की सक्रिय भागीदारी अत्यावश्यक है।

ग्राम सभा को सक्रिय एवं प्रभावी बनाने के लिए ग्राम सभा की सिफारिशों को पंचायतों द्वारा मानने की अनिवार्यता होनी चाहिए। 73 वें संविधान संशोधन के पश्चात् लागू पंचायत राज व्यवस्था में सभी राज्यों में ग्राम सभाओं को अधिकार सौंपे गए है। ग्राम सभा गाँव की संसद है, आडिट समिति है और निरीक्षणकर्त्ता भी। ग्राम सभा को सशक्त बनाने की आवश्यकता है परन्तु कमजोर पंचायत और मजबूत ग्राम सभा की परिकल्पना नहीं की जा सकती। पंचायतें केवल योजना लागू करने वाला अभिकरण न बने परन्तु योजना निर्माण में भी सहभागी हो।

जिला परिषद् को 'जिला सरकार' का व पंचायत को 'ग्राम सरकार' का रूप दिया जाये। प्रत्येक पंचायत पर अनिवार्य रूप से ग्राम सेवक हो जो अन्य सरकारी कार्यालयों की भाँति प्रतिदिन नियमित कार्यालय का संचालन करे। पर्याप्त कर्मचारी व उनकी उपस्थिति सुनिश्चित हो। स्थानीय पेयजल अभियन्ता, शिक्षा अधिकारी, चिकित्सा अधिकारी पंचायती राज संस्थानों के सम्पर्क में रहें व बैठकों में उपस्थित होकर समस्याओं का समाधान करें। उक्त उपायों से न केवल ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की गुणवत्ता में सुधार होगा वरन् कार्यक्रमों के निष्पादन से समन्वित विकास संभव हो पायेगा।

पंचायतों के समक्ष चुनौतियाँ

- पंचायतें आज भी अपने गाँव के विकास की योजना खुद तैयार नहीं कर सकती हैं। योजनाएं ऊपर से आती है, पैसा और खर्च करने के निर्देश भी और ही देते है। अतः अपने गाँव का विकास कैसे हो, इसका निर्णय अब तक पंचायतों को नहीं मिल पाया है। पंचायतें अभी तक योजना निष्पादन का अभिकरण मात्र ही हैं।
- पंचायतों के संसाधन सीमित है और कोष भी शर्तों से बँधा होता है। कर लगाने से जनप्रतिनिधि डरते हैं कि कहीं लोकप्रियता खो देंगे।
- ग्राम सभा, जिसकी परिकल्पना पंचायत राज संस्था में सबसे सशक्त इकाई के रूप में की गई थी, अब तक सबसे निर्बल है जिसमें कोरम तक पूरा नहीं पाता। लोग ग्राम सभा में रूचि नहीं लेते क्योंकि संसाधनों की कमी के कारण उनकी मांग पूरी नहीं हो पाती, जिसका हित होगा वही ग्राम सभा में आयेगा।
- अधिकांश राज्यों में पंचों और सरपंचों की दूसरी पीढ़ी है जिन्हें मिट्टी के माधो की भूमिका स्वीकार्य नहीं है। उन्हें अधिकार चाहिये जो

संविधान संशोधन में दिये गए थे और अधिकारों को पूरा करने के लिए स्टाफ व बजट भी चाहिये।

- 73वें संविधान संशोधन के पश्चात् पंचायती राज संस्थाओं में महिला प्रतिनिधियों के बड़ी संख्या में निर्वाचित होने के बावजूद महिलाओं की प्रभावी भागीदारी एवं सक्रिय भूमिका में अनेक अवरोध विद्यमान हैं। महिलाओं के प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व के स्थान पर उन्हें विकास कार्यों में सहभागी बनाने के लिए साक्षरता, प्रशिक्षण, सहयोगी ढांचा, मानसिकता में बदलाव तथा कानून की सुरक्षा की आवश्यकता है। घूंघट की ओट में अंगूठा लगाने वाली महिलाओं के स्थान पर उन्हें ग्रामीण विकास में प्रगति एवं परिवर्तन का अभियंत्र बनाने के लिए उपाय करने होंगे।

निष्कर्ष

आवश्यकता है इस बात की कि 73वें संविधान संशोधन के उपरान्त भारत में पंचायती राज व्यवस्था के मार्ग में जो बाधायें आयी हैं, उनका समाधान किया जाये। पंचायती राज संस्थाओं को ऊर्जावान व गत्यात्मक बनाने के लिए पंचायती राज संस्थाओं के पुनर्जीवन व पुनरावलोकन की आवश्यकता है। पहले तो हमें वही से करनी होगी जहाँ हम वर्तमान में है। आज पंचायती राज संस्थाओं का जैसा स्वरूप है, जैसे कार्य हैं, उनमें कैसे सुधार किया जाये – उन्हें कैसे सुदृढ़, सक्षम, गत्यात्मक बनाया जाये– इस दिशा में प्रयास करने होंगे। पंचायती राज से सम्बन्धित समस्त जन–प्रतिनिधियों, अधिकारियों, नीति निर्धारकों, शोधकों, विद्वानों व भारत के जन–जन का यह दायित्व है कि पंचायती राज व्यवस्था को उसके साकार रूप में लागू करने का प्रयास किया जाये। पंचायती राज संस्थाओं के सुधार के सम्बन्ध में यह नहीं भूलना चाहिये कि इस दिशा में किया गया आज का पुरुषार्थ ही कल का भाग्य बनेगा। सही अर्थों में ग्राम स्वराज की अवधारणा और विकसित राष्ट्र की परिकल्पना तभी सार्थक होगी जब विकास कार्यक्रम निचले स्तर पर तैयार होंगे एवं उसमें जन–समुदाय का सक्रिय सहयोग लिया जायेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *'पंचायत अपडेट, इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसिज, नई दिल्ली। जनवरी 2002*
2. *बी.एम. शर्मा, ब्रजभूषण शर्मा एवं आशीष भट्ट, जिला सरकार अवधारणा, स्वरूप एवं संभावनाएँ, जयपुर, रावत पब्लिकेशन्स, 1999*
3. *जनक सिंह मीणा, राजस्थान में ग्रामीण विकास के विविध आयामः ग्रामीण विकास विभाग का संगठनात्मक एवं कार्यात्मक अध्ययन, अप्रकाशित लघु शोध ग्रन्थ, 2002*
4. *गिरवर सिंह राठौड़, भारत में पंचायती राज, जयपुर, पंचशील प्रकाशन, 2004*
5. *सुखवीर सिंह गहलोत, राजस्थान पंचायतीराज कानून, यूनिक ट्रेडर्स, जयपुर, 2003,*
6. *राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994*

ISSN 2277-5587

भारतीय हिंदी सिनेमा और दलित अस्मिता विमर्श

अमरेश कुमार
शोद्यार्थी, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारतीय हिंदी सिनेमा में दलित अस्मिता विमर्श कभी मुख्यधारा की विषय–वस्तु नहीं रही है। लेकिन हाल के कुछ वर्षो में दलित शोषण की दास्तां सिनेमा के रूपहले पर्दे पर लिखी जा रही है; जो समाज की कड़वी सच्चाई प्रस्तुत कर रही है। सिनेमा ने अपने शुरूआती दौर में दलित चरित्रों की जो भी सकारात्मक छवि प्रस्तुत की उसमें उन्होंने उसे ज्यादातर सहानुभूति का पात्र बनाया। लेकिन सत्तर–अस्सी के दशक से ऐसे सिनेमा की शुरूआत हुई जिसमें दलितों के शोषण व उसकी वास्तविक समस्याओं का उद्घाटन हुआ। प्रकाश झा, अरूण कौल, सत्यजीत राय जैसे फिल्मकारों की सूक्ष्म व गंभीर दृष्टि ने इस तरफ लोगों का ध्यान दिलाया। ऐसे फिल्मकारों के गंभीर प्रयासों से सिनेमा में दलितों के चरित्रों को दया व सहानुभूति से अलग उनके संघर्ष के यथार्थ चित्रण को बल मिलने लगा। इस दिशा में दामुल, सद्गति, पार, आरोहण, दीक्षा, समर, मोहनदास आदि महत्वपूर्ण फिल्में हैं।

संकेताक्षर : *सिनेमा, दलित, विमर्श, शोषण, प्रतिरोध।*

भारतीय हिंदी सिनेमा का इतिहास एक शताब्दी से ज्यादा पुराना नहीं है। हिंदी सिनेमा अपने शुरुआती दौर से ही फिल्मों में भारतीय संस्कृति का महिमा मंडन करता आया है। सिनेमा के शुरुआती दौर के इतिहास को देखें तो सिनेमा ने अपनी पटकथा के लिए भारतीय संस्कृति के मिथकों, पुराणों और लोक संस्कृति में रचे–बसे लोक कथाओं को आधार बनाया। भारतीय सिनेमा की पहली फीचर फिल्म बनाने वाले घुंडीराज गोविन्द फाल्के (दादा साहब फाल्के) ने भी भारत की मिथक को ही अपनी पहली फिल्म की कहानी के लिए चुना और 'राजा हरिश्चन्द्र' नामक फिल्म बनाई। इसके बाद उन्होंने कई और फिल्में भी बनाई और लगभग सभी फिल्मों की पृष्ठभूमि के लिए उन्होंने भारतीय कथा व मिथकों को ही आधार बनाया। इन फिल्मों में प्रमुख रूप से राजा हरिश्चन्द्र (1913) के अलावा मोहिनी भस्मासुर (1913), सत्यवान सावित्री (1914), लंका दहन (1917), श्री कृष्ण जन्म (1918), कलिया मर्दन (1919), भक्त प्रहलाद(1926), भक्त सुदामा (1927), हनुमान जन्म (1926) जैसी दर्जनों फिल्में शामिल हैं। भारतीय हिंदी फिल्मों पर धार्मिक कथा–मिथकों का प्रभाव इसलिए भी पड़ा की इसकी सर्वस्वीकार्यता से इंकार नहीं किया जा सकता था। फिल्म आलोचक विजय कुमार लिखते हैं–''हमारे उस प्रारंभिक सिनेमा ने कालीदास के नाटकों तथा रामायण और महाभारत में अपनी अन्तर्वस्तु खोजना शुरु किया था। पौराणिक साहित्य और मिथकों में फिल्मकारों को नाट्यीकरण की अपार संभावनाएं दिखाई पड़ीं। जिसकी वजह थी कि अमीर के महल से निर्धन की कुटिया तक समाज के सभी वर्गों में पौराणिक कथाओं की स्मृतियाँ रही हैं।''[1] इस स्वीकार्यता ने फिल्मों को आर्थिक नुकसान के डर से भी मुक्त रखा, जिस कारण शुरुआती सिनेमा की नींव मजबूत हो सकी।

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में भारत स्वतंत्रता संघर्ष के आन्दोलनों से गुजर रहा था। इन आन्दोलनों का असर हिंदी सिनेमा पर भी पड़ना स्वाभाविक था और पड़ा भी। बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में महात्मा गाँधी सक्रिय रूप से शामिल हुए। इन आन्दोलनों पर महात्मा गाँधी का विशेष प्रभाव था। गाँधी जी के आन्दोलनों में रचनात्मक कार्यों का एक अलग स्थान था। इन्हीं रचनात्मक कार्यों में एक काम अछूतोद्धार का भी था। इससे पूर्व दलितों के लिए सक्रिय राजनीति में अम्बेडकर ने अपना एक अलग स्थान बनाया था। परंतु भारतीय हिंदी

सिनेमा अपने शुरुआती दौर में गाँधी की विचारधारा से जितने प्रभावित हुए उतने अम्बेडकर से नहीं। इसका कारण यह है कि गाँधी जहाँ जाति का समर्थन करते थे वहीं अम्बेडकर दलितों की दयनीय सामाजिक स्थिति हेतु जाति को दोषी मानते हुए उसे पूर्ण रूप से समाप्त करने की बात करते थे। बीसवीं सदी के समाज में अम्बेडकर जाति की निरर्थकता को साबित करते हुए वह इसे तोड़ने की बात करते हैं। अम्बेडकर जातीय भेद को मिटाने के उपाय सुझाते हुए कहते हैं कि ''अंतरजातीय भोजन और अंतरजातीय विवाह को वे आस्थाएँ और सिद्धांत, घृणा की निगाह से देखते हैं, जिन्हें हिंदू पवित्र मानते हैं। जाति ईट की दीवार या कांटेदार तार की बाड़ जैसी कोई भौतिक चीज नहीं है, जो हिंदुओं को एक-दूसरे के निकट आने से रोक रही है और उसे इसलिए ढाह गिराना है। जाति एक धारणा है एक मनःस्थिति है। अतः जाति के विनाश का मतलब किसी भौतिक बाधा का विनाश नहीं है। इसका मतलब है, धारणा में परिवर्तन।''[2] तीस के दशक में जिस धारणा को बदलने की बात अम्बेडकर कर रहे थे उसे अधिकांश हिंदू समाज आज भी मानने को तैयार नहीं है तो उस समय इन क्रांतिकारी सिद्धांतों के प्रभावों की कल्पना कर सकते हैं।

यही कारण है कि उस समय अम्बेडकर की विचारधारा पर ज्यादातर फिल्मकारों ने ध्यान नहीं दिया। इसके विपरीत उन्होंने गाँधी के अछूतोद्धार को ही दलित विमर्श का चरम मान लिया और सामाजिक कुरीतियों को मिटाने के बजाय व्यक्तिगत तौर पर दलितों का उद्धार किया जाने लगा। किसी व्यक्ति विशेष का उद्धार उसके संपूर्ण समाज का उद्धार नहीं कहलाता है। फिर उस समय के सिनेमा ने भी यही तरकीब अपनाई और समय सापेक्ष खूब प्रसिद्धि भी बटोरी। लेकिन आज के समकालीन दलित विमर्श की कसौटी पर उस समय के तीन-चार दशकों की फिल्में मात्र दयाभाव व सहानुभूति पर आधारित जान पड़ती है। इस तरह की फिल्मों में फ्रेंज ऑस्टिन की अछूत कन्या, चंदूलाल शाह की अछूत, वी. शांताराम धर्मात्मा, बिमल राय की सुजाता आदि दर्जनों फिल्में गिनी जा सकती हैं। उस समय के फिल्मकार कोई भी ऐसी फिल्में बनाने से बच रहे थे जो पुरातन सामाजिक ताने-बाने पर कुठाराघात करता हो।

भारतीय हिंदी सिनेमा में साठ के दशक में समांतर सिनेमा का उद्भव होना शुरू हुआ। भारतीय सिनेमा में समांतर फिल्मों की शुरूआत पश्चिम के न्यू वेब सिनेमा के प्रभाव से हुआ।समांतर सिनेमा के आने से दलित समस्या पर बनने वाली फिल्मों में काफी कुछ सुधार देखने को मिलने लगा परंतु मुख्यधारा का सिनेमा अब भी दलित समस्या, दलित समाज व दलित चरित्रों के प्रति वही पुरातनपंथी रवैया अपनाए हुए था। अब भी मुख्यधारा की सिनेमा में दलित समस्या या दलित पात्र को सहानुभूति व दयाभाव के नजरिए से देखा जाता था। सिनेमा एक दृश्य-श्रव्य माध्यम है ऐसे में सिनेमा के पर्दे पर क्या कुछ और कैसे दिखाया जा रहा है यह पक्षधरता और दृष्टिकोण का मसला है। दलित दृष्टिकोण से बनने वाली फिल्मों के साथ भी पक्षधरता व विचारधारा का मुद्दा अहम है। यदि फिल्मकार दलित विषयक फिल्में बनाना चाहता है परंतु उनकी विचाारधारा दलित विर्मश की विचारधारा, अम्बेडकर व फुले की विचारधारा से इतर होगी तो उसके सिनेमा में दलित समस्या का यर्थाथ पक्ष कभी प्रस्तुत नहीं हो पाएगा। फिल्म निर्माण की पक्षधरता पर बात करते हुए अकबर महफूज आलम रिजवी कहते हैं कि ''ऐसी फिल्में बेहद कम हैं, जिसमें दलित समाज या उसके दृष्टिकोण या कि उसकी वास्तविक जीवन-स्थितियों का अंकन किया गया है। हम ये नहीं कहते कि सिने-जगत का अधिकांश, समाज के एक बड़े तबके की जान-बूझकर अनदेखी करता है। वह अपने कद और सामाजिक सोच के अनुरूप ही दलित चरित्रों का अंकन करता है। लेकिन हाँ, हकीकत तो यही है कि ऐसा ही होता रहा है। इसके तीन बड़े कारण हैं- एक तो यह की हिंदी सिने-जगत स्टिरियोटाइप का शिकार रहा है। दूसरे, दलित-वर्ग का प्रतिनिधित्व नगण्य होने के कारण दलितों पर बनने वाली अधिकांश फिल्में सहानुभूति के ढर्रे पर चली जाती हैं और तीसरी बड़ी खामी ये है कि बहुत कम निर्देशकों को यह समझ है कि फिल्म अभिव्यक्ति का नहीं अन्वेषण का माध्यम है।''[3] हांलाकि ज्यादातर निर्देशक फिल्म निर्माण के इस सिद्धांत से वास्ता नहीं रखते हैं। उनका मुख्य उद्देश्य फिल्म के माध्यम से पैसे कमाना होता है। अगर फिल्म अपनी व्यवसायिकता के साथ कोई संदेश देने में कारगर होती है तो निर्देशक इसे अपनी सफलता मान लेते हैं।

लेकिन समांतर सिनेमा ने कई ऐसे सफल निर्देशक तैयार किए जिन्होंने इन विषयों पर मौलिक दृष्टिकोण से काम किया और दलितों से संघर्ष को रजतपट पर

ISSN 2277-5587

नए संदर्भ व सवालों के साथ प्रस्तुत किया। ऐसे फिल्मकारों में गोविन्द निहलानी, प्रकाश झा, श्याम बेनेगल, अरूण कौल, केतन मेहता, मृणाल सेन, सत्यजीत राय, ऋत्विक घटक, बासु चटर्जीआदि नाम महत्वपूर्ण हैं।

इस दौर में बनी फिल्मों में निशांत (1975), मृगया (1976), मंथन (1976), आक्रोश (1980), अंधेर नगरी (1980), सद्गति (1981), आरोहण (1982), दामुल (1984), पार (1984), देवशिशु (1985), आघात (1985), महायात्रा (1987), दीक्षा (1991) आदि दलित समस्याओं और उनके जीवन के कई पहलू को उजागर करने वाली फिल्मों में महत्वपूर्ण फिल्में है। इन फिल्मों में छूआछूत, जातिवाद और अस्पृश्यता की समस्या के साथ-साथ सामंतवादी शोषण, स्त्री शोषण आदि को उसके यथार्थवादी स्वरूप में फिल्माया गया है।

सत्यजीत राय ने प्रेमचंद की एक महत्वपूर्ण कहानी 'सद्गति' पर इसी नाम से फिल्म बनाई। यह फिल्म अपने आकार में टेलीफिल्म कही जा सकती है क्योंकि इसकी लंबाई एक फीचर फिल्म जितनी नहीं है। सत्यजीत राय इससे पहले प्रेमचंद की एक और कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' पर फिल्म बना चुके थे। इस फिल्म के लिए सत्यजीत राय ने कहानी में ढेर सारे बदलाव किए थे। इस बदलाव के कारण उन्हें काफी आलोचना का शिकार होना पड़ा था। इसलिए जब उन्होंने प्रेमचंद की कहानी पर दुबारा फिल्म बनाई तो इस बार उन्होंने कहानी में ज्यादा उलट-फेर नहीं की। वह शायद अपनी निर्देशकीय क्षमता को दिखाना चाहते थे और उन्होंने बिना कहानी में फेर-बदल किए 'सद्गति' को बेहतरीन प्रभाव के साथ फिल्माया भी।

फिल्म 'सद्गति' प्रेमचंद के दलित विरोधी अत्याचार को पूरी प्रभावी तरीके से दिखाने में सफल रही। यह फिल्म दलितों के प्रति होने वाले अत्याचार पर पूरी संवेदना के साथ चोट करती है। इस फिल्म के संबंध में ओम थानवी कहते हैं- ''एक फिल्म की दृष्टि से 'सद्गति' बहुत सशक्त फिल्म है। कहानी तो प्रेमचंद की ही थी, लेकिन जब आप उस फिल्म को देखते हैं तो उसका एक-एक दृश्य आपकी संवेदना को छूता है जो फिल्म का काम है। ...प्रेमचंद की कहानी की आत्मा दलित अत्याचार विरोधी है और वह त्रासदी फिल्म में कहीं बेहतर ढंग से उभर पाती है।''[4] राय की यह फिल्म उस समय की अन्य फिल्मों से बिलकुल अलग है जिसमें किसी न किसी रूप में दलित समस्या को ध्यान में रखा जा रहा था। ओमपुरी, स्मिता पाटिल, मोहन अगाशे, गीता सिद्धार्थ और ऋचा मिश्रा जैसे कलाकरों के जीवंत अभिनय ने कहानी की संवेदना को फिल्मी परदे पर बेहतर ढंग से उकेरा है।

दलित विमर्श को ध्यान में रखते हुए, दया और सहानुभूति से परे दलित संघर्ष को उसके यथार्थ स्वरूप में फिल्मा कर प्रकाश झा ने इस विषय पर 1984 में एक महत्वपूर्ण फिल्म बनाई 'दामुल'। यह फिल्म कहानीकार शैवाल की कहानी 'कालचक्र' पर आधारित है जो बाद में 'दामुल' नाम से भी प्रकाशित हुई थी।दलित दृष्टिकोण से देखे जाने पर सवर्णों द्वारा दलितों के शोषण व इसके प्रतिरोध में दलितों का संघर्ष दिखा पाने में फिल्म प्रभावी रूप से सक्षम है।इसके अलावा 'दामुल' ग्रामीण राजनीति के भ्रष्टाचार व इसके इर्द-गिर्द उपजे जातिवाद के दंश को दिखाने में भी सक्षम हुआ है। एक तरफ जहाँ बंधुआ मजदूरी की जकड़न में जकड़ा दलित समाज है वहीं दूसरी तरफ एक ऐसा सवर्ण समाज है जो इन्हें किसी भी कीमत पर गाँव छोड़कर जाने का मौका नहीं देता है। जाति संघर्ष और दलितों के प्रति होने वाले अत्याचार के ताने-बाने में फिल्म को पिरोया गया है। विषय के प्रति 'दामुल' में प्रकाश झा की जो ईमानदारी दिखती है वह उनकी बाद की फिल्मों में उसी रूप में नहीं है। बाद की फिल्मों में व्यवसायिकता का दबाव ज्यादा दिखता है। आरक्षण के मुद्दे पर प्रकाश झा ने 'आरक्षण' नाम से फिल्म बनाई लेकिन इस फिल्म पर व्यवसायिकता पूरे तरीके से हावी है। इसके अलावा फिल्म अपने मुद्दे से भटकती हुई भी नजर आती है।

जिस वर्ष फिल्म 'दामुल' आई उसी वर्ष गौतम घोष ने 'पार' नाम की फिल्म बनाई। यह फिल्म गाँव के सवर्ण जमींदारों द्वारा दलितों के शोषण, अत्याचार व उनके विस्थापन की कथा कहती है। फिल्म अपने बेहतरीन दृश्य संयोजन, शानदार पटकथा व प्रभावी अभिनय से जीवंत हो उठा है।''दलित जीवन की भयानक त्रासदियों में से एक फिल्म 'पार' सिद्ध करती है कि सिनेमा भी जीवन से जुड़ी सच्चाइयों को बयान करने का सशक्त माध्यम है।''[5] फिल्म में भूत का डर, वर्तमान का संघर्ष व भविष्य की चिंता साफ झलकती है। 'पार' कई मायनों में दलित विमर्श के संदर्भ में आने वाली फिल्मों के लिए एक पैमाना स्थापित करती है।

इन फिल्मों के बीच 'देवशिशु' एक ऐसी महत्वपूर्ण

फिल्म है जो धार्मिक पाखंड के दृष्टिकोण से दलित जीवन की त्रासदी को रेखांकित करता है। धार्मिक पाखंड का सहारा लेकर कैसे एक पाखंडी पंडित एक दलित समाज के एक परिवार के तीन सिर वाले असामान्य नवजात शिशु के लिए परिवार को भयंकर दैवीय प्रकोप से डराता है और वह शिशु उससे छिन लेता है। बाद में पाखंडी उस शिशु को दैवीय चमत्कार बताकर लोगों से धन वसूलता है। ऐसे में जब उस शिशु के पिता को इस बात का पता चलता है तो वह अपनी पत्नी से वैसा ही एक और शिशु पैदा करने की माँग करता है। दलित उत्पीड़न व धार्मिक पाखंड पर यह फिल्म अपने तरीके से चोट करती है।

अरुण कौल की फिल्म 'दीक्षा', मजहर कामरान की 'मोहनदास' और हाल ही में आई अनुभव सिन्हा की 'आर्टिकल 15' दलित समाज के जीवन व उनकी समस्याओं को केन्द्र में रखकर बनाई गई महत्वपूर्ण फिल्म है। 'दीक्षा' यू.आर. अनन्तमूर्ति के उपन्यास पर आधारित है और दक्षिण भारत में ब्राह्मणवादी संस्कृति पर करारा प्रहार करती है। मजहर कामरान की फिल्म 'मोहनदास' उदय प्रकाश के इसी नाम के उपन्यास पर बनी है। यह फिल्म दलित अस्मिता की समस्या को लेकर बनाई एक सशक्त फिल्म है। एक दलित के लिए पहचान का संकट क्या है और यह किस तरह उसके पूरे जीवन को तबाह कर देता है इसे बयान करने में फिल्म पूरी तरह से कामयाब हुई है। 'आर्टिकल 15' हाल के कुछ वर्षों में देश में हुई कुछ घटनाओं के आधार पर बनी काल्पनिक फिल्म है लेकिन फिल्म जिस संदेश को देना चाहती थी उसे देने में कामयाब रही। फिल्म भारत के संविधान में प्रदत्त अनुच्छेद 15 के तहत मिले मौलिक अधिकारों के उल्लंघन को दर्शाता है। फिल्म बताती है कि किस तरह संविधान धर्म, जाति, लिंग आदि के आधार पर भेदभाव न करने को कहता है लेकिन समाज में इसके उलट क्या हो रहा है और वो भी उस प्रशासनिक पदाधिकारियों की सोहबत में जिसे संविधान का रक्षक माना जाता है।

इस प्रकार देखें तो हम पाते हैं कि भारतीय सिनेमा के इतिहास में शुरुआत में तो दलित समस्याओं को लेकर बनने वाली ज्यादातर फिल्में सहानुभूति व दयाभाव से बने लेकिन समांतर सिनेमा आने के बाद इसमें काफी कुछ सुधार हुआ। आज भी यह सुधार जारी है। परंतु सिनेमा एक ऐसा माध्यम है जिसके निर्माण में ढेर सारी पूँजी की आवश्यकता होती है। फिल्म अगर दर्शकों के बीच जाकर पिट जाए तो फिल्मकार अगली फिल्म बनाने के लिए न बचे। ऐसे में कोई भी फिल्मकार किसी भी विषय को छूने से पहले उसके व्यवसायिक रूप से सफल होने का आकलन कर लेता है। लेकिन हाल के कुछ वर्षों में सिनेमा के देखने के स्वरूप में बदलाव आए हैं। सिनेमा के निर्माण में भी अब लागत घटी है। ऐसे में नए तरीके के सिनेमा की संभवना बढ़ गई है जो कुछ ज्वलंत मुद्दों को लेकर बनाई व दिखाई जा सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *मंडलोई, लीलाधर, (जनवरी, 2017), नया ज्ञानोदय, साहित्य और सिनेमा का अन्तर्सम्बन्ध, पृ. सं.– 234, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली*
2. *अम्बेडकर, भीमराव, (1936), अनुवाद– राजकिशोर, जाति का विनाश, संस्करण– 2018, फारवर्ड प्रेस नई दिल्ली–92*
3. *मीणा, प्रमोद, (संपा.), (2016), हिंदी सिनेमा दलित–आदिवासी विमर्श, पृ. सं.–47, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली*
4. *मीणा, प्रमोद, (संपा.), (2016), हिंदी सिनेमा दलित–आदिवासी विमर्श, पृ. सं.– 23, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली*
5. *प्रजापति, महेन्द्र, (संपा.), (2014), हिंदी सिनेमा बिम्ब–प्रतिबिम्ब, पृ. सं.– 66, शिल्पायन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली*

स्त्री अस्मिता : मीडिया और समाज

डॉ. कांबले आशा दत्तात्रय
सहायक आचार्य, एस.एस.व्ही.पी.एस. महाविद्यालय, शिदंखेडा (महाराष्ट्र)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

स्त्रियों में अस्मिता का भाव आधुनिकता की देन है। व्यक्ति के प्रति सम्मान तथा व्यक्तिवाद की इस स्वीकृति ने स्त्री स्थिति पर भी विचार किया है। शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार के बावजूद स्त्रियों के मुक्त विकास में हम अनेक बाधाएं पाते है। यदि स्त्रियों को मानव के प्राकृतिक एवं सहज अधिकार से वंचित रखना हो तो शासकों को पहले अन्याय और अंसगति के आरोप से बचने के लिए यह सिद्ध करना पड़ेगा कि स्त्रियों में बुद्धि का अभाव है। अन्यथा नया संविधान पुरुष के निरकुंश शासन का जीता जागता प्रतीक बन जायेगा। आज जागरुक स्त्रियां दुनिया में सामाजिक वर्गभेद का बहिष्कार करने बाहर निकल पड़ी है। आधुनिक स्त्रियों की नई सोच ने एक नये नारीवाद को जन्म दिया है। आज की स्त्री ने सामाजिक - निजी संबंधो दोनों स्तरों पर अपनी अस्मिता पहचानने की कोशिश की है। मीडिया में महिलाओं की उपस्थिति नहीं के बराबर है । दुनिया भर की आवाज उठाने वाले मीडिया में स्त्रियों की आवाज घुट रही है। जो महिलायें किसी तरह से मीडिया में सक्रिय है, उन्हें सुनियोजित ढंग से निर्णायक पदों से परे रखा जाता है। स्त्री जब अधिकारों की बात करती है जो समाज को यह बात अच्छी नहीं लगती। मीडिया के मायने बाकी समाज के लिए चाहे जो भी हो, पर स्त्रियों के लिए यह एकदम अलग है। इसने स्त्रियों के लिए आजादी का आसमान और व्यापक कर दिया है। इस आजादी ने उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरुक करते हुए एक ऐसा मंच दिया है। सोशल मीडिया ने स्त्रियों की स्थिति में काफी बदलाव किया है। यदि किसी समाज की स्थिति को देखना है तो वहाँ की नारी की अवस्था को देखना होगा। स्त्री यह मार्गदर्शक है हर महान व्यक्तित्व के पीछे स्त्री है लेकिन आज की नारी के जीवन पर फैशन और पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। समाज भी अश्लीलता का उल्लंघन करने में लगा हुआ है।

संकेताक्षर : *मानवीय रुप, अमूर्त, आदर्श छवि, गुलामी का रुप, मुक्त मातृत्व का रुप, स्त्री, मीडिया, समाज।*

भारतीय समाज पुरुष प्रधान समाज रहा है। जहाँ आदिकाल में स्त्री पुरुषों की इच्छानुसार जीवनयापन करती है। उसे किसी ने भी सार्थक व्यक्तित्व नहीं माना। लेकिन राख के भीतर दबी आग की चिनगारी के समान स्त्री अस्मिता समय-समय पर अपना रुप दिखाती रही है। आज स्त्री को स्वंतत्रचेता नागरिक के रुप में स्वीकार किया गया है। भारतीय जीवन में स्त्री अस्मिता का सत्य अपने स्वरुप, आधार और सामाजिक परिप्रेक्ष्य की असलयितों से किस प्रकार आगे बढ़ता है यह चितंनीय प्रश्न के रुप में सामने आता है। आधुनिक युग के प्रांरभ होने के साथ जहाँ युग बदला वहीं मूल्य भी बदले। स्त्री अस्मिता में भी नए विमर्श का समायोजन हुआ। 'अस्मिता' का सामान्य अर्थ हैं अपने आप की पहचान। अपने 'स्व' की पहचान अपने अस्तित्व को जानना मनुष्य के लिए ऐसा महत्त्वपूर्ण कार्य है जो जीवन को सत्य, शिव, सुदंर बना देता है। स्त्री भी एक ऐसी संपूर्ण मानवीय इयत्ता है जो पुरुष से शारीरिक भिन्नता लिये असीम संभावनाओं का वैसा ही पूंजीभूत रुप है, जो अपनी आन्तरिकता, वैयक्तितकता और स्वंतत्रता द्वारा जीवन के उच्चतम सोपानों को स्पर्श कर सकती है। लेकिन दिनोंदिन विकसित होती सभ्यता और आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों की विसंगतियों और जटिलताओं के साथ केवल लिंग के आधार पर किये गये सामाजिक वर्गीकरण में स्त्री का अस्तित्व क्रमशः पेचीदगियों के घेरे में उलझता

गया। समाज का स्वरुप पुरुष सत्ता प्रधान होता गया और स्त्री अस्मिताहीन दुर्बल शोषित। ''पुरुष के समान स्त्री भी कुटुंब, समाज, नगर तथा राज्य की विशिष्ट सदस्या है तथा उसकी प्रत्येक क्रिया का प्रतिफल सबके विकास में बाधा भी डाल सकता है और उनके मार्ग को प्रशस्त भी कर सकता है। प्रायः पुरुष का जीवन अधिक स्वंच्छद वातावरण में विशिष्ट व्यक्त्यिों के संसर्ग द्वारा बनता है और स्त्री का संकीर्ण सीमा में पंरपरागत रुढियों से– जिससे न उसे अपने कुटंब से बाहर किसी वस्तु का अनुभव है और न अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान।''[1]

इस प्रकार से स्त्री अस्मिता का स्वरुप धीरे–धीरे अमूर्त, अपूर्व और एकांगी प्रतीत होने वाली परिभाषाओं में कैद होता गया और दूसरों के बनाए मिथक के सांचे में बंद स्वंय स्त्री भी किस प्रकार धीरे–धीरे अपना मानवीय स्वरुप भूल 'आदर्श छवि' बनने की होड़ में 'अन्या' बनती गई। मानव सभ्यता की शुरुआत से ही अर्थात आदिम युग से ही स्त्री की गुलामी दिखने लगी थी। मनुष्य जब पहाडों की गुंफाओं में रहता था तो शिकार कर जीवनयापन करता था। स्त्री–पुरुष दोनों साथ–साथ स्वंतत्र जीवन जीते। किंतु जैसे–जैसे जैविक स्थितियों की भिन्नता ने पुरुष के शारीरिक बल की अधिकता और नारी के मातृत्व भाव को प्रमाणित किया, वैसे–वैसे नारी का परावलंबन भी बढ़ने लगा। कार्य क्षमता का बंटवारा हुआ। स्त्री गर्भस्थ शिशु की देखभाल के लिए घर में रहने लगी और पुरुष अपनी संतति की रक्षा के लिए अधिक सावधान और कर्मठ हुआ। ज्ञान और गतिविधियों के विस्तार के साथ संचय की प्रवृत्ति पनपी और शारीरिक बल में श्रेष्ठ होने के साथ–साथ जैविक सीमाओं से भी मुक्त पुरुष स्त्री का स्वामी और घर का मालिक बना।

स्त्री अस्मिता का सर्वाधिक सशक्त रुप हमें वैदिक युग में देखने को मिलता है। उसके बाद दिनों–दिन स्त्रियों की स्थिति नीचे ही गिरती गई। यह युग मातृसत्ता प्रधान युग था। वे न केवल पठन–पाठन के लिए स्वंतत्र थी, वरन् वेद ऋचाओं की रचना भी करती थी। लोपामुद्रा, विश्वाश्वा, मैत्रेयी, घोषा, गार्गी तथा अत्रेयी आदि विश्वविख्यात विदुषियाँ है। उस समय विवाह के लिए स्वंयवर की प्रथा थी और स्त्री गृहस्थ धर्म में उचित गरिमा की पात्रा थी। यदि, ''विधवा स्त्री पति के साथ सती होना स्वीकार न करे, तो उसके लिए अन्य तीन मार्ग खुले हुए थे, पहला यह की वैधव्य जीवन व्यतीत करे, दूसरा अपने देवर या निकट के संबंधी से यौन संबंध स्वीकार करे या पुनर्विवाह करे। नियोग प्रथा के अंतर्गत स्त्री अपने पति के भाई या निकट के संबंधी के साथ विवाह कर लेती या यौन–संबध में बंध जाती। यह प्रथा वेदकाल में प्रचलित थी''[2]

मनुस्मृति में स्त्री–अस्मिता का स्वरुप– इस युग में मनुसंहिता के साथ–साथ धर्मसूत्र, कौटिल्य, अर्थशास्त्र और अनेक महाकाव्यों की रचनाये हुयी। स्त्रियों और शूद्रों की मुक्ति का एकमात्र मार्ग भक्ति ही है– ऐसे संकेत परोक्ष या प्रत्यक्ष रुप में इन ग्रंथो में देखने को मिलने लगे और इससे स्त्री की गरिमा को भारी ठेस लगी। मनुस्मृति ने तो और आगे बढ़कर स्त्री जाति पर इतने अंकुश लगा दिये कि वह एक जीवित प्राणी के बदले पराधीन भोग या वस्तु बनकर रह गयी। इनके अनुसार स्त्री कभी भी स्वंतत्रता के योग्य नहीं। कुमारी अवस्था में स्त्री की रक्षा पिता करे, यौवन में पति, और बुढ़ापे में पुत्र। स्त्री का कर्तव्य पुरुष की अनुगामिनी बनना भर है। पतिसेवा ही संस्कार है, और यदि कोई स्त्री विवाह न करें तो वह 'संस्कार' विहीन हो 'पाप' सदृश्य हो जाती है। मनुस्मृति के अनुसार, स्त्री पुरुषों से कभी तृप्त नहीं होती। वह न तो रुप देखती है, न वयस। उसे तो केवल नर चाहिए इसलिये उसके आचरण पर कठोर नियंत्रण होना आवश्यक है।

दिन प्रतिदिन बढ़ती रुढिवादिता और कर्मकांडों की लौह–श्रंखला को सर्वप्रथम बौद्ध धर्म ने एकबारगी झकझोर दिया। उन्होंने स्त्री को वैदिक युग की स्वंतत्रता की निकट ले जाने का पुर्नप्रयास किया। स्त्री–शिक्षा और पुनर्विवाह को बढावा देते हुए इन लोगों ने अपने संघ में स्त्रियों को भी 'भिक्खुनियों' के रुप में प्रवेश योग्य माना। समाज के हर वर्ग के स्त्री–पुरुषों को भिक्खुनी तथा भिक्खु बना लिया करते थे। इसलिए शिक्षा केवल कुछ उच्चस्थ लोगों तक ही सीमित नहीं रहीं। इस बात को दृष्टि में रखते हुये कि ब्राहमण–रुढ़िवादिता धीरे–धीरे स्त्रियों की गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाने का प्रयत्न कर रही थी, स्त्रियों को भिक्खुनियों के रुप में स्वीकार करना उनकी अवस्थिति के विचार से एक क्रांतिकारी कदम था।

ब्राहमण–धर्म की महत्ता का निरस्त्रीकरण और बौद्धों की धार्मिक स्वंतत्रता के साथ–साथ अब विदेशी आक्रमणों के भय ने एक बार पुनः सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन की मांग को बल दिया। शांति और सुरक्षा की दृष्टि से स्त्री स्वतंत्रता पर रोक लगने लगे। पर्दाप्रथा

और सतीप्रथा अनिवार्य हो गयी। सती न होने की स्थिति में विधवा स्त्री के साथ ऐसे दुर्व्यवहार होते थे कि वह सती होकर मर जाना ही बेहतर समझती थी।

मध्यकाल में महिला संतो की रचनात्मकता सामने आयी और आत्माभिव्यक्ति का साधन बनी। इनमें आन्डाल भक्तिनों के अतिरिक्त मीराबाई, सहजोबाई, जनाबाई, लल्ला, कान्होपात्रा, पद्मावती, सुरसरी, दयाबाई, सहनोबाई, कुवंरीबाई आदि प्रमुख है। एक लंबे समय तक मूकपीड़ा की यातना सहने और विरोधी शक्तियों के खूख्रांर स्वभाव की पहचान कर उन्होंने भक्तिरुपी प्रेम का प्रबल बल प्राप्त किया और अपने संघर्ष के लिए संकल्प जुटा विरोधियों को चुनौती देती प्रतीत होती है।

''लोकलाज कुल कानी जगत की दइ बहाय जस पानी,
अपने घर का पर्दा करले मै अबला बौरानी।''[1]
(मीरा)

इस पद की अंतिम पंक्ति को स्त्री-अस्मिता की महत्वपूर्ण उद्घोषणा ठहराते हुये डॉ. मैनेजर पांडेय कहते है- ''अपने घर का पर्दा करले, मैं अबला बौरानी में आरंभ का व्यंग्य बाद की विडंम्बना से मिलकर जो प्रभाव पैदा करता है, चुनौती के स्तर को वह अधिक अर्थपूर्ण और धारदार बना देता है यहाँ एक सजग स्त्री-स्वर सुनाई देता है आक्रोश की अनुगूंज है किसी पीड़ित की चीख या पुकार नहीं।''[4]

इसके साथ ही वे यह कहते है कि,- ''इससे यह भी स्पष्ट है कि संकल्प और आस्था के साथ अपनी अस्मिता और स्वंतत्रता के लिए संघर्षशील अबला भी पुरुष प्रभुत्व के लिए चुनौती बन सकती है।''[5] इस प्रकार भक्ति की आड़ में स्त्रियों की विद्रोही चेतना अपनी स्वंतत्रता की मांग का प्रबल समर्थन करती नजर आती है।

आधुनिक काल के आते-आते अनादि काल से पुरुषी वर्चस्व को सहते हुए महिलाओं ने अपने आप को पराधीन मान लिया था। उस पर होने वाले बेशुमार अन्याय-अत्याचार का लेखन करने वाली लेखिकाओं ने अपने लेखन के माध्यम से नारी में चेतना जगाने का काम किया और आधुनिक काल की नारी ने अपनी अस्मिता में परिवर्तन किया। आज की स्त्री जीवन की लंबी लड़ाई लड़ती हुई दिखाई देती है। स्त्री का स्वाभाविक व्यक्तित्व पुरुष सत्तात्मक समाज ने उभरने ही नहीं दिया था। इसलिए प्रख्यात लेखिका सिमोन द बोआ कहती है कि, ''स्त्री पैदा नहीं होती, पैदा होने के बाद उसे स्त्री बना दिया जाता है।''[6]

अब दुनिया बदल चुकी है आज भूमंडलीकरण ने निसंदेह औरत को और अधिक निश्चयी एवं आक्रमक बना दिया है। स्त्री हर समय के समाज का संवेदनशील मुद्दा रही है। भारतीय नारी घरेलू दुनिया के दायरे से निकलकर दुनिया के बीच में जाकर अपनी समझ को बड़ा कर रही है। अब विचारणीय यह है कि आज जिस स्त्री को मीडिया प्रस्तुत कर रहा है, वह वास्तव में उपभोक्ता है या उपभोग्य। अपने स्त्रीत्व और अस्मिता से जुडे सवालों से हर दिन जूझती स्त्री को लंबे संघर्ष के बाद जो थोड़ी सी आजादी मिली है उसके प्रति और भी सतर्क होने की जरुरत है। उसे इस पूरी बाजारवादी संस्कृति को संचलित करने वाली षडयंत्रकारी पुरुष सत्ता के इरादे को समझना होगा। यह ध्यान देने की बात है कि जिसने सदियों तक उसे पर्दे में रखा और अपनी सुविधा के अनुसार उसे पर्दे पर ले आये। पहले स्त्री पात्रों की भूमिका पुरुषों द्वारा निभाई जाती थी क्योंकि उस समय स्त्रियों के लिए अभिनय, संगीत, नृत्य, कला से जुड़ना लज्जा का विषय था। आज का सारा खेल धन और बाजार की ताकत का है।

नयी आधुनिक स्त्री की जो परिभाषा मीडिया गढ़ रहा है वह वास्तव में भ्रमित करती है। उसी का परिणाम है कि आज स्त्री विषयक समस्याएं बढ़ती जा रही है किंतु उसका सुनिश्चित समाधान नहीं मिल पा रहा है। मीडिया वर्तमान में एक ऐसे सशक्त माध्यम के रुप में उभरकर सामने आया है जो युवा पीढ़ी में जीवनमूल्यों, आदर्शों एवं नैतिक गुणों को गहराई से प्रभावित कर रहा है। उसके पास ऐसी ताकत है जो समाज में व्याप्त बुराईयों और कुरुतियों को नकारात्मक परिणाम के साथ प्रस्तुत कर सजगता बनाए रख सकता है। मीडिया और स्त्री दोनों को अपनी-अपनी जिम्मेदारियाँ समझनी होगी। सतर्क होना होगा कि यदि स्त्री इस तरह से चमक-दमक उपभोक्तावादी संस्कृति में खो गई तो नारी मुक्ति का स्वप्न अधूरा रह जायेगा। उसे तय करना है कि उसे वस्तु उत्पाद बनना है या सृजनशील मनुष्य यही निर्णय उसका भविष्य तय करेगा।

बाजार और मीडिया ने स्त्री को अक्सर कुत्सित भाषा से निशाना बनाया है। वे तमाम निष्ठुरता और बर्बरता स्त्री पर उंडेल देते है। मीडिया यह महिलाओं के लिए बेहद असुरक्षित, खतरनाक और कटु अनुभवों से भरा

हुआ है। हम यहाँ यह कह सकते है कि मीडिया के सामने आने वाली हर स्त्री गंदी मानसिकता का शिकार होती है। यह आज की सच्चाई है इसे हम नकार नहीं सकते। नारी सौदर्य आज बिकाऊ माल बन चुका है। आज भले ही स्त्री अपने अधिकारों के प्रति जागरुक है पर बाजार उसे एक वस्तु से अधिक कुछ नहीं समझता। समकालीन दौर में बाजार उसे आर्थिक समृध्दि का सुदंर सपना दिखाकर देह के रुप में ही प्रस्तुत कर रहा है। बाजार ने स्त्री को सुदंरता के प्रलोभन देकर उसे वस्तु में तब्दील कर दिया है। बाजार के प्रसार के साथ स्त्री की स्थिति में गिरावट आई है। वह दिन–प्रतिदिन अपने देह में सिमटती जा रही है। यही मानसिकता, उदारतावाद, निजीकरण, वैश्विकीकरण के साथ धीरे–धीरे बदलती चली गयी कि स्त्रियाँ बाजार में अपनी भूमिका को स्थापित कर सके। हांलाकि बाजार में जगह बनाने के लिए स्त्री के लिए यह जानना बहुत जरुरी है कि देह पर नियत्रंण के बिना वह बाजार के नियमों को अपने अनुकूल नहीं ढाल सकती।

बाजारवाद का अर्थ पूरे विश्व को बाजार में तब्दील करना है। वर्तमान दौर में बाजार की चकाचौधं ने स्त्री को इतना लुभाया है कि उपभोक्ता की स्थिति में स्वंय को स्त्री स्वंतत्र समझ रही है जबकि वास्तविकता बिल्कुल इसके विपरित है। स्त्री उपभोक्ता बाजार को निर्देश नहीं दे रही है बल्कि बाजार तो बाजार है। जो स्त्री को मनचाहा सामान के रुप में परोस रहा है, और उसे भोगने को स्त्री बाध्य है। इस बाध्यकारी प्रवृत्ति को वह समझ नहीं पा रही है। आज की स्त्री कह रही है कि हम सबल है, आर्थिक रुप से समर्थ है, मनचाहा खाती–पीती है। उस पुराने जमाने का जब सासू–अम्मा को डेढ हाथ का घुघंट निकाले ? आज बाजार से हमारी सीधी बात–चीत है। आज की स्त्री घर की तमाम जरुरतों को बाजार में फेंक रही है। वह सब कुछ तैयारशुदा बाजार से खरीदना चाह रही है। कहीं से कबाब, कहीं से रोटी, कहीं से मिठाई, बस हो गई पार्टी।

नारी ने मीडिया में कदम रखा और मीडिया का स्वरुप ही बदल गया। पहले सिनेमा में पुरुष पात्र स्त्री का रोल निभाते थे। पर आज हालात बदल गये है मीडिया में नारी के आते ही सुदंरता बिखर गई। इसी सुदंरता के दीवाने लोग नारी की एक झलक पाने के लिए रुपये लुटाने को तैयार है। आज के परिदृश्य में मीडिया में नारी का विकृत स्वरुप सामने आया है। नारी खुलकर कहती है, ‘‘देह हमारी है, हम चाहे जो इसके साथ करे।’’ ऐसा कहकर वह उन लोगों का विरोध करती है जो अश्लीलता से खिलाफत करते है। आज तो हालत यह है कि फिल्मों में नारी पात्र को देह प्रदर्शन पर मजबूर किया जाता है और नाम दिया जाता है–‘‘जनता की मांग पर।’’ स्त्री भी अपनी बुद्धि से काम कम और देह से अधिक करना चाहती है। कम से कम वस्त्रों में दिखकर नारी अपने शरीर का अपमान करती है और नारीत्व की गरिमा खो रही है।

इसके विपरित एक नारी ऐसी भी है जो मीडिया में देह प्रदर्शन मात्र आजीविका चलाने के लिए करती है। यह उसकी मजबूरी है। इसके बारें में एक बात का जिक्र करना जरुरी है कुछ वर्ष पूर्व एक फिल्म आयी थी, ‘‘दस्यु सुदंरी फूलनदेवी’’ इस फिल्म में मुख्य पात्र को नग्न देह दिखानी थी, क्योंकि कहानी की यह मांग थी मुख्य पात्र यह सीन देना नहीं चाहती थी। तो यह सीन एक डुप्लीकेट ने किया था क्योंकि वह बहुत गरीब थी उसने मजबूरीवश ऐसा किया। अर्थात अपने हालात के लिए भी स्त्री अपनी अस्मिता को बेचती है। आज समाज गलत दिशा में जा रहा है यह चिंता करने वाली बात है। लेकिन आज इस पर कोई चितंन नहीं कर रहा है। आज का समाज तब भी नहीं चौकता जब सरे आम रेप होते है। मीडिया में नारी के उन्मुख प्रदर्शन के परिणामस्वरुप शरीफ नारी पर हमले होते है। युवा वर्ग में मीडिया में नारी देह का प्रदर्शन बुरा नहीं लगता। अपने बडों को पुराने विचारों का मानते है उन्हें बूढ़ा करार देते है।

मीडिया ने नारी की छवि को कंलकित किया है। पुरुष नारी की बुद्धि का कायल होता है और देह का इच्छुक वह स्त्री की बुद्धि से डरता है और देह को हासिल करके उसे जीतना चाहता है। नारी पुरुष को मन से पाना चाहती है वह पुरुष की भांति आत्मनिर्भर बनना चाहती है। मीडिया में पहले वहीं लोग आते थे जो वास्तव में कलाकार होते थे। आज कला मशीनी बन चुकी है। रुपयों के हाथों बिक चुकी है। नारी को समझना चाहिए कि मीडिया मे नारी देह को भुनाना उसे सदा ही महंगा पड़ेगा। आज सेसंर बोर्ड की महिला सदस्या भी नारी देह प्रदर्शन को रोक नहीं पा रही है। सायबर युग में दुनिया सिमटकर कम्प्यूटर में समा गई है दूरियाँ कम हुयी है, ज्ञान –विज्ञान का प्रसार हुआ है मगर इसका दूसरा पहलू भी है, इससे उपभोक्तावाद बढ़ा है।

अतः बाजार और मीडिया ने महिलाओं को आत्मनिर्भर

बनाया है यह सच्चाई है। इससे नारी को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मिली है। बाजार और मीडिया में नारी के साथ अच्छा व्यवहार नहीं हो रहा है इससे चुप रहकर सहना नहीं है। बल्कि उन्हे अपने साथ होने वाले दुर्व्यवहार का मुहंतोड जवाब देना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *स्त्री अस्मिता और कृष्णा सोबती– डॉ. रुपा सिंह, पूर्वोदय प्रकाशन नई दिल्ली 2008 पृष्ठ क्र.14*
2. *स्त्री अस्मिता और कृष्णा सोबती– डॉ. रुपा सिंह, पूर्वोदय प्रकाशन नई दिल्ली 2008 पृष्ठ क्र.15*
3. *स्त्री अस्मिता और कृष्णा सोबती– डॉ. रुपा सिंह, पूर्वोदय प्रकाशन नई दिल्ली 2008 पृष्ठ क्र.18*
4. *स्त्री अस्मिता और कृष्णा सोबती– डॉ. रुपा सिंह, पूर्वोदय प्रकाशन नई दिल्ली 2008 पृष्ठ क्र.19*
5. *स्त्री अस्मिता और कृष्णा सोबती– डॉ. रुपा सिंह, पूर्वोदय प्रकाशन नई दिल्ली 2008 पृष्ठ क्र.19*
6. *बाजार के बीच और बाजार के खिलाफ– प्रभा खेतान, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली*
7. *महिला विकास : रमा शर्मा, एस.के.मिश्रा, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली*

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता एवं शैक्षिक रुचियों का सामाजिक आर्थिक स्तर तथा लिंग–भेद के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन।

shodhshree@gmail.com

डा. भूपेन्द्र सिंह
प्राचार्य, जी.एस. कॉलेज ऑफ एज्युकेशन, लुहारी (हरियाणा)

शोध सारांश

प्रत्येक बालक कुछ विशिष्ट शक्तियों को लेकर जन्म लेता है और इन्हीं अन्तर्निहित शक्तियों में सृजनात्मकता भी एक शक्ति है जो एक विशेष ढंग से चिन्तन करने का तरीका होती है। जिसे सृजनात्मक चिन्तन कहा जाता है। यह शक्ति बालक की चिन्तन शैली में, अध्ययन में, खेलकूद में, घटनाओं के स्मरण करने में, किसी समस्या के समाधान में, सामाजिक अन्तःक्रियाओं में तथा अन्य किसी भी कार्य में देखी जा सकती है। सृजनशीलता को यदि स्वस्थ वातावरण मिलता है तो यह पनप जाती है अन्यथा समाप्त हो जाती है। सृजनात्मकता का शिक्षा से गहरा सम्बंध होता है और शिक्षा का रुचि के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होता है क्योंकि रुचि के अनुसार शिक्षा प्राप्त की जाती है। फलतः सृजनात्मकता और शैक्षिक रुचि में गहरा सम्बन्ध होता है। क्योंकि जब कोई सृजनशील बालक अपनी रुचि के विषय विज्ञान व वाणिज्य को पढता है तो वह आगे चलकर महान वैज्ञानिक या महान अर्थशास्त्री बन सकता है। जब हम बालक के सामने अनेक खिलौने रखते हैं तब वह उनमें से किसी एक खिलौने को उठा लेता है यहाँ रुचि ही वह कारक है जो बालक को वह विशिष्ट खिलौना उठाने के लिए प्रेरित करती है। रुचि ही वह अभिप्रेरक शक्ति है जो किसी क्रिया की ओर ध्यान देने को बाध्य करती है। माध्यमिक स्तर पर बालक को अनेक वैकल्पिक विषयों में से उपयुक्त विषय का चयन करना होता है क्योकि किशोरावस्था में बालक की सृजनात्मकता और शैक्षिक रुचि पर परिवार, विद्यालय, शिक्षक, लिंग, मित्र–मण्डली आदि सभी का प्रभाव देखने को मिलता है। अतः प्रस्तुत अध्ययन एवं प्रयास है यह जानने का, कि क्या विद्यार्थियों की सृजनात्मकता एवं शैक्षिक रुचियों पर उनके सामाजिक–आर्थिक स्तर, लिंग एवं विद्यालय का कोई प्रभाव पडता है अथवा नहीं।

संकेताक्षर : *सृजनात्मकता, शैक्षिक रुचि, विद्यार्थी, लिंग–भेद, आर्थिक स्तर, माध्यमिक स्तर।*

शिक्षा एक ऐसा आधार है जिस पर किसी देश की प्रगति निर्भर करती है। भारत वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास या प्रगति में महान जनशक्ति होने के बावजूद भी विकसित देशों की तुलना में आर्थिक विकास में पिछड़ रहा है। इन सभी समस्याओं के पीछे एक की कारण है और वह है व्यक्ति के विकास की ओर ध्यान न देना। प्रत्येक व्यक्ति कुछ विशिष्ट शक्तियों को लेकर जन्म लेता है जब तक इन शक्तियों का विकास नहीं होगा तब तक व्यक्ति का विकास असंभव है। अतः सबसे अनिवार्य है इन शक्तियों को पहचानने की। इन्हीं अन्तर्निहित शक्तियों में सृजनात्मकता भी एक शक्ति है। सृजनात्मकता एक विशेष ढंग से चिन्तन करने का तरीका होता है जिसे सृजनात्मक चिन्तन कहा जाता है। शर्मा (2003) के अनुसार ''सृजनात्मक चिन्तक अतीत की सही व्याख्या कर सकता है वर्तमान को समझ सकता है और भविष्य का पूर्वानुमान लगा सकता है।'' सृजनात्मकता का सामान्य अर्थ प्रायः मौलिकता से लगाया जाता है परन्तु मनोवैज्ञानिकों के दृष्टिकोण से इसका अर्थ इतना सीमित नहीं है। ड्रेवर सन्दर्भ पाण्डेय (2006) के शब्दों में ''सृजनात्मकता अनिवार्य रूप से किसी नूतन वस्तु का सर्जन करना, रचना करना जिसमें नवीन विचार संग्रहीत हो, जिसमें विचारों का संश्लेषण हो और जहाँ मानसिक उत्पाद केवल विचारों का योग मात्र न हो।'' सृजनात्मकता व्यक्ति की उस क्षमता को कहा जाता है जिससे वह कुछ नई चीजों, रचनाओं या विचारों को पैदा करता है जो नया होता है और जो उसे पहले ज्ञात नहीं होता। यह

 ISSN 2277-5587

एक काल्पनिक क्रिया या चिन्तन संश्लेषण हो सकता है इसमें गत अनुभूतियों से उत्पन्न सूचनाओं का नया पैटर्न एवं सम्मिश्रण हो सकता है, इससे निश्चित रूप से उद्देश्यपूर्ण या लक्ष्य निर्देशित होता है न कि निराधार स्वप्न चित्र होता है यह वैज्ञानिक, कलात्मक या साहित्यिक रचनाओं के रूप में भी हो सकता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है–

- सृजनात्मकता एक ऐसी प्रक्रिया है जो लक्ष्य निर्देशित करती है।
- सृजनात्मकता में व्यक्ति कुछ नवीन एवं भिन्न चीजों की रचना करता है।
- सृजनात्मकता पहले से ज्ञान पर निर्भर करती है।
- सृजनात्मकता चिन्तन में एक अपसारी चिन्तन होता है।

सृजनात्मकता शब्द अंग्रेजी के 'क्रियेटिविटि' का हिन्दी रूपान्तरण है। भटनागर (2006) के अनुसार ''सृजनात्मक'' शब्द मे 'सृज्' धातु होती है जिसका अर्थ है रचना करना या निर्माण करना। कामिल बुल्के के क्रियेटिव शब्द के समानान्तर अर्थ सर्जनात्मक, रचनात्मक, सर्जक बताये हैं। भारत सरकार के तकनीकी कोष ने क्रियेटिविटी को सर्जनशीलता कहा है। रघुवीर ने क्रियेट के अर्थ सर्जन, उत्पन्न करना, सर्जित करना, बनाना कहा है।

सृजनात्मकता मानव के क्रियाकलापों एवं निष्पत्ति के लिए आवश्यक है। सृजनात्मकता का अर्थ वैज्ञानिक या कलात्मक सृजन से ही नहीं है अपितु सृजनात्मकता किसी भी व्यक्ति की क्रिया में पाई जाती है। समाज में कार्य करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के कार्य या व्यवसाय में सृजनात्मकता के दर्शन होते है। बढ़ई लकड़ी से मनचाही कलात्मक मेज बना सकता है, चित्रकार मन चाहे रंगो से नवीन कलाकृति की रचना कर सकता है। कवि, कविता रचता है और गीतकार गीत रच सकता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति में सृजन की संभावनायें होती है और उनका विकास शिक्षा के द्वारा किया जाना चाहिये।

सृजनात्मकता एक ऐसा प्रत्यय है जिसमें हमारे शिक्षाशास्त्रियों ने 1950 से रुचि लेना प्रारम्भ किया है। आधुनिक समय में इस ओर अध्ययन के लिए अग्रसित होते देखकर ही बैरन सन्दर्भ भार्गव (2006, पृ. 333) ने कहा है कि ''इतिहास में सम्भवतया कभी भी सृजनात्मकता को इतने अच्छे स्तर पर नहीं पहचाना गया जितना कि आज।'' इसका भी एक महत्वपूर्ण कारण है। अत्यन्त तीव्र गति से बढ़ते हुए वैज्ञानिक, तकनीकी तथा औद्योगिक विकास ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को इतना जटिल तथा समस्याओं से युक्त बना दिया है कि आज औद्योगिक विकास और देश की रक्षा के लिए हर व्यक्ति को सृजनात्मकता के मूल्य को समझने के लिए बाध्य कर दिया है।

आज विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में औद्योगिकीकरण एवं नगरीकरण विकास के फलस्वरूप मानव जीवन और समाज में नित्य परिवर्तन हो रहे है। मानव विकास की सभी प्रकार की उन्नति एवं प्रगति का आधार सृजन अथवा रचना सम्बन्धी योग्यता है। टॉरेन्स सन्दर्भ बालिया (2004) के अनुसार सृजनात्मकता समस्याओं, कमियों, ज्ञान में अन्तर, खोये तत्वों, अव्यवस्थाओं इत्यादि के प्रति संवेदनशील बनने की प्रक्रिया है। इसमें कठिनाईयों की पहचान करना, समाधानों की खोज, कमियों के विषय में अनुमान लगाना अथवा कमियों के विषय में परिकल्पनाओं की सूत्र बद्धता, परिकल्पनाओं का पुनः परीक्षण तथा सम्भवतयः उनका रूपान्तरण तथा पुनः परीक्षण और अन्ततः परिणामों की घोषणा निहित है।'' सृजनात्मकता विभिन्न स्थितियों के साथ नवीन सम्बन्ध स्थापित करना अथवा स्थिति विशेष के प्रति नवीन दृष्टिकोणों की अभिव्यक्ति है। इस प्रकार सृजनात्मकता चिन्तन शैली में, अध्ययन में, किसी कार्य में, खेलकूद में और सामाजिक अन्तः क्रियाओं में सम्भव है। लगभग सभी कार्य जो हम करते हैं, उनसे स्थिति विशेष में पुराने सम्बन्धों को नवीन व्यवस्था और रूप प्रदान कर सकते हैं। हमारे घटनाओं के स्मरण करने में सृजनात्मकता निहित है। जब हम किसी समस्या का समाधान ढूंढ़ते हैं, तब हम सृजनशील रहते हैं। वास्तव में बिना सृजनात्मकता दृष्टिकोण रखे समस्या का समाधान नहीं हो सकता। इस तरह सृजनात्मकता को परिभाषित करते हुए थर्स्टन सन्दर्भ अस्थाना एवं अग्रवाल (1997) ने लिखा है कि ''वह क्रिया सृजनात्मक है, जिसका हल यकायक प्राप्त हो जाए, क्योंकि इस प्रकार का हल विचारक के लिए सदैव नवीनता लिए हुए होता है।''

सृजनात्मकता व्यक्ति का व्यक्तिगत गुण है। यह व्यक्ति को सृजनात्मक चिन्तन के लिए तैयार करता है। इस प्रकार सृजनात्मकता किसी न किसी रूप में उत्पादन या नवीन रचना से सम्बन्धित है यह उत्पादन

मूर्त या अमूर्त किसी भी रूप में हो सकता है। विज्ञान, कला, तकनीकी आदि के क्षेत्र में सृजनात्मक उत्पादन का मूर्त होता है जबकि साहित्यिक रचनाओं आदि के क्षेत्र में इसका रूप अमूर्त होता है और अधिक स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक गिलफर्ड सन्दर्भ शर्मा एवं भार्गव (2005) ने लिखा है कि ''सृजनात्मकता का संकेत कभी सृजनात्मक संभावना, कभी सृजनात्मक उत्पादन तथा कभी सृजनात्मक उत्पादकता से होता है।

सृजनात्मकता प्रायः समस्त प्राणियों में पाई जाती है। मानव के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के समस्त कार्य सृजनात्मकता की क्रिया के ही परिणाम हैं। इस तरह सृजनात्मकता के क्षेत्र के अन्तर्गत मानव का सम्पूर्ण जीवन आ जाता है। में (Mai) सन्दर्भ शर्मा एवं शर्मा (2004, पृ. 621) के शब्दों में सृजनात्मकता को स्पष्ट करते हुए लिखा गया है कि ''एक सृजनात्मक कार्य एक क्रिया है, जिसमें विशिष्ट रूप से कार्य किया जाता है, एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति को उसके जगत से परस्पर सम्बन्धित करती है।''

एक सृजनात्मकता व्यक्ति में आत्मानुभूति, आत्मनिर्देशित दिशा, आत्माभिव्यक्ति और आगे बढ़कर काम करने की विशेषताएँ सन्निहित रहती हैं। उसकी निराली क्रियाएँ और अभिव्यक्ति दोनों विशिष्टताओं से भरी होती है। सृजनात्मकता, सृजनशील व्यक्ति तथा उसके उत्पादन की पहचान कराती है जिनका कुछ सामाजिक महत्व होता है कबीर सन्दर्भ पचौरी (2002, पृ. 152) के अनुसार ''यदि व्यक्ति को समाज का सृजनात्मक सदस्य बनाना है तो उसे केवल अपना ही विकास नहीं करना चाहिए वरन् समाज के विकास में भी योगदान देना चाहिए।''

सृजनात्मकता का शिक्षा से गहरा सम्बन्ध होता है और शिक्षा का रुचि से घनिष्ट सम्बन्ध होता है क्योंकि रुचि के अनुसार शिक्षा प्राप्त की जाती है। इस प्रकार सृजनात्मकता और शैक्षिक रुचि में गहरा सम्बन्ध होता है। जब कोई सृजनशील व्यक्ति अपनी रुचि के विषय विज्ञान व वाणिज्य को पढ़ता है तो वह आगे चलकर महान वैज्ञानिक या महान अर्थशास्त्री बन सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में रुचियों का महत्वपूर्ण कार्य है क्योंकि एक व्यक्ति क्या करेगा, यह बहुत कुछ उसकी रुचियों द्वारा ही निर्धारित होता है। बिना रुचि के कोई भी कार्य बोझिल प्रतीत होता है। रुचि एक प्रकार की सीखी हुई अभिप्रेरणा है। जब एक व्यक्ति अपनी पसन्द के आधार पर कोई कार्य करने को स्वतंत्र होता है तो वह व्यक्ति इन क्रियाओं को अपनी रुचि के आधार पर चुनता है और करता है। शर्मा (2006) के अनुसार ''रुचि को अंग्रेजी में Interest कहते है। Interest मूलतः लैटिन भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है It matters or it concerns अर्थात् जिस वस्तु से व्यक्ति का कोई सम्बन्ध होता है अथवा जो उसके लिए महत्व रखती है उसमें व्यक्ति की रुचि होती है।''

रुचि से हमारा सम्बन्ध किसी विशेष चाह से होता है तथा जिसके प्रति हम सुख की अनुभूति करते हैं उसके प्रति हमारी रुचि जागृत होती है। रुचि की उत्पत्ति में वंशानुक्रम और वातावरण का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि रुचि जन्मजात एवं अर्जित दोनों ही प्रकार से उत्पन्न हो सकती है रुचि के सम्बन्ध में सुपर सन्दर्भ भार्गव (2006, पृ. 358) का कथन है कि ''रुचि की उत्पत्ति में जहाँ एक ओर जन्मजात अभिक्षमता एवं अन्तःस्रावी तत्व सहायक होते हैं, वहाँ दूसरी ओर सुविधाओं एवं सामाजिक मूल्यांकन का भी विशेष हाथ रहता है। कुछ वस्तुएँ जिन्हें व्यक्ति भली-भाँति चाहता है तथा जो उसको मान्यता एवं सन्तुष्टि प्रदान करती है रुचि कहलाती हैं। यही नहीं, कुछ व्यक्तियों के किसी कार्य को करने की रुचि अपने साथियों के तादातम्य से होती है। कभी-कभी व्यक्ति स्वयं भी रुचि के प्रति अपना प्रत्यय बना लेता है।'' किन्तु दूसरी ओर यह विचारधारा है कि रुचि जन्मजात न होकर अर्जित होती है। आदत एवं क्षमताओं की भाँति इन्हें भी सीखा जाता है। समय, आयु एवं समस्याओं के अनुकूल होने पर यह भी परिवर्द्धित होती जाती हैं। समाज की सभ्यता एवं संस्कृति इसे विशेष रूप से प्रभावित करती है। उदाहणार्थ एक व्यक्ति जिसमें विज्ञान एवं कला सीखने की योग्यता है किन्तु रुचि के अभाव में वह उन्हें सीखने में असमर्थ होता है। यदि वह उनको वास्तव में ही सीखना चाहता है तो सर्वप्रथम उसको उन विषयों में रुचि विकसित करनी होगी तभी वह सीख पायेगा। रुचि के विकास में विभिन्न तथ्य सहायक होते हैं। अभाव, इच्छाएँ, आदर्श संस्कृति, सुविधायें, अनुभव आदि कुछ ऐसे स्थिर तत्व हैं जो रुचि को निर्धारित करते हैं। इन तथ्यों के साथ-साथ ही नवीन रुचियों का विकास होने लगता है क्योंकि रुचियों का स्वरूप गत्यात्मक होता है। ये व्यक्ति एवं समाज की परिस्थितियों तथा सुविधाओं के साथ-साथ परिवर्तित हो

ISSN 2277-5587

जाती हैं। आयु एवं लिंग के आधार पर इसमें विभिन्नताएँ पाई जाती हैं। अतः रुचि एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है जिसे सुगमता पूर्वक नहीं मापा जा सकता।

विद्यालय में विभिन्न कक्षाओं में अनेक प्रकार के छात्र शिक्षा ग्रहण करते हैं। उनकी मानसिक योग्यताओं में विभिन्नता पाई जाती है। इनके कारण ही वे भिन्न–भिन्न विषयों और कुशलताओं में भिन्न–भिन्न सीमाओं तक प्रगति करते हैं। शैक्षिक रुचि के कारण ही छात्र अलग–अलग विषयों का चयन करते हैं। शैक्षिक रुचि से अभिप्राय विद्यालय में पढ़ाए जाने वाले विषयों में रुचि से है। बच्चा किन–किन विषयों में अधिक रुचि रखता है ? और किन किन विषयों में कम रुचि रखता है ? यह शैक्षिक रुचि ही बच्चों के भावी जीवन में विषयों को चुनने में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। बच्चा उसी विषय को अधिक पसन्द करता है जिसमें उसकी रुचि होती है। बिंघम (1937) के अनुसार

"An interest is tendency to become absorbed is a experience and to continue it, while an aversion is a tendency to turn away from it."

अधिगम की प्रक्रिया में बच्चे की रुचियों और अभिरुचियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। अभिरुचि स्थायी ने होकर अस्थायी होती है क्योंकि हमारी रुचि जिस कार्य में होती है उस कार्य के पूर्ण होने पर वह समाप्त हो जाती हैं। इस प्रकार यह स्वयं में एक गत्यात्मक वृति है। स्ट्रांग सन्दर्भ अस्थाना एवं अस्थाना (2005) के अनुसार ''रुचि में हम किसी वस्तु के प्रति जाग्रत होते हैं, उसके प्रति प्रक्रिया करने का तैयार रहते हैं, उसको पसन्द करते हैं, किन्तु जब हमारी उस व्यक्ति के प्रति रुचि नही होती है तो हम उससे दूर भागते हैं एवं पसन्द नही करते हैं।''

छात्र जीवन को सफल बनाने में रुचि के साथ शैक्षिक उपलब्धि का भी महत्वपूर्ण स्थान है। और यह कदापि नहीं समझा जाना चाहिए कि शैक्षिक उपलब्धि के लिए रुचि एकमात्र कारक है क्योंकि शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करने वाले अन्य कारक भी हैं जो शिक्षा में अधिक महत्वपूर्ण हैं जैसे सामान्य तथा विशेष योग्यता, छात्र की अध्ययन सम्बन्धी आदतें, घरेलू वातावरण तथा सामाजिक आर्थिक परिस्थितियाँ आदि। सभी का बालक की शिक्षा पर गहरा प्रभाव पडता है परन्तु इनमें से एक प्रभावी कारक रुचि भी है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक गिल्फर्ड सन्दर्भ शर्मा (2004, पृ. 373) के अनुसार ''किसी वस्तु, व्यक्ति या प्रक्रिया से आकर्षित होने, उसे पसन्द करने या उसमें सन्तुष्टि पाने की ओर ध्यान केन्द्रित करने वाली प्रवृति को रुचि कहते हैं।''

व्यक्ति की सफलता में रुचि का महत्वपूर्ण स्थान होता है परन्तु शैक्षिक उपलब्धि भी मनुष्य के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती है। यदि व्यक्ति को असफलताएँ मिलती जाएँ तो उसे निराशा और दुश्चिन्ताएँ घेर लेती हैं, कुण्ठा पैदा हो जाती है, उदासीनता या उपेक्षा और अन्त में अरुचि उत्पन्न हो जाती है। असफलता मिलने पर कुतूहल मन्द पड़ जाता है, सीखने में उत्साह की कमी आ जाती है और उदार या सांस्कृतिक प्रगति की अपेक्षा बौद्धिक गतिरोध उत्पन्न हो जाता है। जिससे व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य विकृत हो जाता है। कोई व्यक्ति कितना ही योग्य क्यों न हो, निरन्तर मिलने वाली असफलताएँ उसे विचलित कर देती है। असफलता हेतु उत्तरदायी कारकों में एक मुख्य कारक अधिगम क्षेत्र का रुचि के अनुकूल न होना भी है। यदि बच्चे द्वारा पढ़े जाने वाले विषय उसकी रुचि के अनुकूल होंगे, तो वह निश्चित रूप से सफलता प्राप्त करेगा और इस सफलता से प्राप्त उत्साह से उसकी सृजनात्मक क्षमता को प्रस्फुटित होने का अवसर मिलेगा। अतः विद्यार्थियों की रुचि एवं सृजनात्मकता के विषय में जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा की संतुष्टि हेतु इस अध्ययन की आवश्यकता महसूस हुई।

वर्तमान शिक्षा, वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक आधार पर आधारित है। इसके परिणामस्वरूप ही प्राचीन काल से चली आ रही अध्यापक केन्द्रित शिक्षा के स्थान पर बाल केन्द्रित शिक्षा का जन्म हुआ। जिसके कारण शिक्षा की प्रक्रिया में बाल सुलभ आवश्यकताओं और मनोभावों का महत्व मिलने लगा है। प्रारम्भ से आज तक, शिक्षा–शास्त्रियों की यह कोशिश रही है कि शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार की जाये, जिससे विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास श्रेष्ठ रूप से हो। माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की आयु किशोरावस्था की चरम सीमा पर होती है। मानव विकास की अवस्था में किशोरावस्था एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अवस्था है और माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों को अध्ययन हेतु अनेक व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का अवसर उपलब्ध होता है। अतः इस स्तर पर ही विद्यार्थियों में सृजनात्मकता और शैक्षिक रुचि का अध्ययन अधिक प्रासंगिक है।

उद्देश्य

- माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की सृजनात्मकता की जानकारी प्राप्त करना।
- सामाजिक–आर्थिक स्तर के आधार पर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का अध्ययन करना।
- लिंग–भेद के आधार पर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का अध्ययन करना।
- माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक रुचियों की जानकारी प्राप्त करना।
- सामाजिक–आर्थिक स्तर के आधार पर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक रुचियों का अध्ययन करना।
- लिंग–भेद के आधार पर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक रुचियों की जानकारी प्राप्त करना।

परिकल्पना

अध्ययन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निम्न शून्य परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है।

- माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की सृजनात्मकता उनके सामाजिक–आर्थिक स्तर से प्रभावित नहीं है।
- लिंग–भेद के आधार पर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में अन्तर नहीं है।
- माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक रुचि उनके सामाजिक–आर्थिक स्तर से प्रभावित नहीं है।
- लिंग भेद के आधार पर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक रुचि में अन्तर नहीं है।

शोध–विधि

अध्ययन की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, इस अध्ययन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वर्णनात्मक अनुसंधान विधि का प्रयोग किया गया। न्यादर्श के रूप में दक्षिणी दिल्ली के सरकारी तथा निजी विद्यालयों का यादृच्छिकी न्यादर्श विधि द्वारा चयन किया गया। इन विद्यालयों में अध्ययनरत नौंवी तथा दसवीं कक्षा में अध्ययनरत 515 विद्यार्थियों को न्यादर्शन के रूप में स्वीकार किया गया।

उपकरण एवं सांख्यिकी

प्रस्तुत अध्ययन हेतु निम्न उपकरणों का प्रयोग किया गया–

- अपसारी उत्पादन योग्यताएँ परीक्षण (के. एन. शर्मा)
- शैक्षिक रुचि प्रपत्र (एस. पी. कुलश्रेष्ठ)
- सामाजिक–आर्थिक स्तर मापनी (आर. एल. भारद्वाज)

परीक्षण से प्राप्त प्रदत्तों से निष्कर्ष निकालने हेतु मध्यमान, मानक विचलन तथा टी–मान का प्रयोग किया गया।

विश्लेषण एवं व्याख्या

तालिका 1 माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का विवरण

क्र.स.	सृजनात्मकता के आयाम	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन
1.	प्रवाहता	515	2.26	1.60
2.	नम्यता	515	2.71	1.75
3.	मौलिकता	515	10.95	2.99
4.	विस्तारण	515	7.99	3.07
कुल सृजनात्मकता		515	25.48	6.65

तालिका 1 में प्रदर्शित सृजनात्मकता के विवरण को देखने से विदित होता है कि माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सम्पूर्ण सृजनात्मकता का मध्यमान 25.48 एवं मानक विचलन 6.65 पाया गया। सृजनात्मकता के आयाम प्रवाहता, नम्यता, मौलिकता और विस्तारण का मध्यमान क्रमशः 2.26, 2.71, 10.95 और 7.99 पाया गया तथा मानव विचलन क्रमशः 1.60, 1.75, 2.99 और 3.07

ISSN 2277-5587

पाया गया। इन मध्यमानों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों में प्रवाहता सबसे कम, जबकि मौलिकता सर्वाधिक पायी गयी। विस्तावरण, मौलिकता से कम तथा नम्यता से अधिक पाया गया।

मानक विचलन पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि सृजनात्मकता के प्रवाहता सम्बन्धी आयाम पर विद्यार्थियों में सबसे कम असमानता पायी गयी, जबकि विस्तारण में सर्वाधिक असमानता पायी गयी। मौलिकता सम्बन्धी आयाम पर नम्यता एवं प्रवाहता की अपेक्षा असमानता अधिक किन्तु विस्तारण से कम थी।

तालिका 2 सामाजिक आर्थिक स्तर के आधार पर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का विवरण

क्र.स.	सृजनात्मकता के आयाम	उच्च निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर			निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर			टी–मान
		संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	
1.	प्रवाहता	227	2.88	1.80	288	1.77	1.18	8.53**
2.	नम्यता	227	3.37	1.84	288	2.14	1.67	11.33**
3.	मौलिकता	227	11.67	2.77	288	10.40	1.87	6.35**
4.	विस्तारण	227	8.99	2.68	288	7.25	3.14	4.76**
	कुल सृजनात्मकता	227	28.55	6.20	288	23.00	5.93	10.47**

तालिका 2 का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि उच्च–निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर और निम्न सामाजिक– आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की प्रवाहता के मध्य टी–मान 8.53, नम्यता के मध्य टी–मान 11. 33, मौलिकता के मध्य टी–मान 6.35, विस्तारण के मध्य टी–मान 4.76 पाया गया तथा कुल सृजनात्मकता के मध्य टी–मान 10.47 पाया गया। ये सभी टी–मान 0.01 स्तर पर सार्थक हैं अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकार की गयी। इसका तात्पर्य यह है कि सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता प्रभावित पायी गयी। इससे यह निष्कर्ष निकला कि माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत उच्च–निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थी निम्न सामाजिक– आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की तुलना में सार्थक रूप से अधिक सृजनशील थे।

तालिका 3 लिंग–भेद के आधार पर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का विवरण

क्र.स.	सृजनात्मकता के आयाम	महिला विद्यार्थी			पुरूष विद्यार्थी			टी–मान
		संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	
1.	प्रवाहता	211	2.33	1.70	304	2.21	1.49	0.85
2.	नम्यता	211	2.90	1.76	304	2.57	1.83	2.06*
3.	मौलिकता	211	11.25	2.56	304	10.75	3.07	2.00*
4.	विस्तारण	211	8 52	3 55	304	7.61	4.54	2.45*
	कुल सृजनात्मकता	211	26.62	6.06	304	24.74	6.89	3.24**

** 0.01 स्तर पर सार्थक   * 0.05 स्तर पर सार्थक

तालिका 3 को देखने से विदित होता है कि माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत महिला और पुरूष विद्यार्थियों का प्रवाहता के मध्य टी–मान 0.85 पाया गया। यह टी–मान 0.05 के स्तर पर सार्थक नहीं है। महिला और पुरूष विद्यार्थियों की नम्यता के मध्य टी–मान 2.06, मौलिकता के मध्य टी–मान 2.00 और विस्तारण के मध्य टी–मान 2.45 पाया गया। ये टी–मान 0.05 के स्तर पर सार्थक है। महिला और पुरूष विद्यार्थियों की कुल सृजनात्मकता के मध्य टी–मान 3.24 पाया गया। यह टी–मान 0.01 के स्तर पर सार्थक है। अतः प्रवाहता के अतिरिक्त कुल सृजनात्मकता तथा सृजनात्मकता के नम्यता, मौलिकता एवं विस्तारण सम्बन्धी आयाम के सम्बन्ध में शून्य परिकल्पना अस्वीकार की गयी। इसका तात्पर्य यह है कि लिंग–भेद के आधार पर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की कुल सृजनात्मकता और सृजनात्मकता के नम्यता, मौलिकता एवं विस्तारण सम्बन्धी आयाम में सार्थक अन्तर था किन्तु प्रवाहता में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। तालिका 3 से यह भी स्पष्ट होता है कि माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत महिला विद्यार्थी पुरूष विद्यार्थियों की तुलना में सार्थक रूप से अधिक सृजनशील थी।

तालिका 4 माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक रुचियों का विवरण

क्रम संख्या	रुचि क्षेत्र	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन
1.	कृषि	515	5.31	2.89
2.	वाणिज्य	515	7.44	2.14
3.	फाईन आर्ट	515	6.90	2.32
4.	गृह विज्ञान	515	6.02	2.64
5.	मानविकी	515	7.97	2.34
6.	विज्ञान	515	7.93	2.36
7.	तकनीकी शिक्षा	515	8.30	2.07

तलिका 4 का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की कृषि में रुचि का मध्यमान 5.31 तथा मानक विचलन 2.89 पाया गया। यह मध्यमान कृषि में विद्यार्थियों की औसत रुचि का द्योतक है। माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की वाणिज्य, फाईन आर्ट, गृह विज्ञान, मानविकी, विज्ञान और तकनीकी शिक्षा में रुचियों का मध्यमान क्रमशः 7.44, 6.90, 6.02, 7.97, 7.93 और 8.30 तथा मानक विचलन क्रमशः 2.14, 2.32, 2.64, 2.34, 2.36 और 2.07 पाया गया। ये सभी मध्यमान विद्यार्थियों की औसत से ऊपर रुचि को व्यक्त करते है। माध्यमिक विद्यालयों मे अध्ययनरत विद्यार्थियों की सबसे अधिक रुचि तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में पायी गयी। माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों ने द्वितीय स्थान पर मानविकी के क्षेत्र में एवं विज्ञान के क्षेत्र में तृतीय स्थान पर अपनी रुचि प्रकट की। विद्यार्थियों की रुचि की दृष्टि से वाणिज्य का क्षेत्र चतुर्थ, फाईन आर्ट का क्षेत्र पंचम एवं गृह विज्ञान का क्षेत्र छठे स्थान पर रहा। विद्यार्थियों की सबसे कम रुचि कृषि क्षेत्र में पायी गयी।

मानक विचलन से स्पष्ट होता है कि माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की कृषि क्षेत्र की रुचि में अन्य रुचि क्षेत्रों (वाणिज्य, फाईन आर्ट, गृह विज्ञान, मानविकी, विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा) की अपेक्षा सबसे अधिक असमानता थी, जबकि तकनीकी शिक्षा सम्बन्धी रुचि में अन्य क्षेत्रों की रुचियों की अपेक्षा सबसे कम असमानता पायी गयी। इससे स्पष्ट होता है कि जहाँ तकनीकी शिक्षा के सम्बन्ध में विभिन्न विद्यार्थियों की रुचि में सर्वाधिक समानता पायी गयी, वहीं कृषि क्षेत्र में सबसे अधिक असमानता थी।

ISSN 2277-5587

तालिका 5 सामाजिक–आर्थिक स्तर के आधार पर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक रुचियों का विवरण

क्र.स.	रुचि क्षेत्र	उच्च–निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर			निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर			टी–मान
		संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	
1.	कृषि	227	5.05	2.92	288	5.52	2.86	1.88
2.	वाणिज्य	227	7.76	2.10	288	7.21	2.12	3.05**
3.	फाईन आर्ट	227	7.40	2.47	288	6.50	2.16	4.5**
4.	गृह विज्ञान	227	6.08	2.73	288	5.97	2.63	0.47
5.	मानविकी	227	8.18	2.34	288	7.76	2.38	2.1*
6.	विज्ञान	227	8.22	5.54	288	7.69	2.40	2.52*
7.	तकनीकी शिक्षा	227	8.96	2.88	288	7.78	2.38	5.61**

** 0.01 स्तर पर सार्थक　　　* 0.05 स्तर पर सार्थक

तालिका 5 को देखने से विदित होता है कि उच्च–निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर और निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की कृषि क्षेत्र की रुचि के मध्य टी–मान 1.88 तथा गृह विज्ञान क्षेत्र की रुचि के मध्य टी–मान 0.47 पाया गया है। ये दोनों टी–मान 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं हैं। उच्च–निम्न सामाजिक–आर्थिक और निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की मानविकी क्षेत्र की रुचि के मध्य टी–मान 2.10 तथा विज्ञान क्षेत्र की रुचि के मध्य टी–मान 2.52 पाया गया। यह टी–मान 0.05 के स्तर पर सार्थक है। उच्च–निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थिंयो की वाणिज्य क्षेत्र की रुचि के मध्य टी–मान 3.05, फाईन आर्ट क्षेत्र की रुचि के मध्य टी–मान 4.50 तथा तकनीकी शिक्षा की रुचि के मध्य टी–मान 5.61 पाया गया। ये टी–मान 0.01 स्तर पर सार्थक है। अतः माध्यमिक विद्यालयों की मानविकी, विज्ञान, वाणिज्य, फाईन आर्ट एवं तकनीकी शिक्षा क्षेत्र की रुचि के सम्बन्ध में शून्य परिकल्पना अस्वीकार की गयी। इससे यह निष्कर्ष निकला कि मानविकी, विज्ञान, वाणिज्य, फाईन आर्ट एवं तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में विद्यार्थिंयो की रुचि उनके सामाजिक–आर्थिक स्तर से प्रभावित थी। माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययरनत उच्च–निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थिंयों की मानविकी, विज्ञान, वाणिज्य, फाईन आर्ट एवं तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में रुचि निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की तुलना में सार्थक रूप से अधिक पायी गयी। कृषि के क्षेत्र में निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थिंयों की रुचि उच्च निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थिंयों की अपेक्षा अधिक पाई गयी किन्तु दोनों समूहों की रुचि में सार्थक अन्तर नहीं था। कृषि और गृह विज्ञान के क्षेत्र में विद्यार्थियों की रुचि उनके सामाजिक–आर्थिक स्तर से प्रभावित नहीं पायी गयी।

तालिका 6 लिंग–भेद के आधार पर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक रुचियों का विवरण

क्र.स.	रुचि क्षेत्र	उच्च–निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर			निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर			टी–मान
		संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	
1.	कृषि	211	5.15	3.06	304	5.44	2.76	1.16
2.	वाणिज्य	211	7.32	2.05	304	7.53	2.18	1.10
3.	फाईन आर्ट	211	6.94	2.36	304	6.67	2.28	1.35
4.	गृह विज्ञान	211	7.25	2.49	304	5.14	2.38	10.04**

5.	मानविकी	211	5.54	2.49	304	8.05	2.13	12.55**
6.	विज्ञान	211	7.86	2.40	304	7.97	2.32	0.52
7.	तकनीकी शिक्षा	211	8.02	2.50	304	8.47	2.45	2.04*

** 0.01 स्तर पर सार्थक * 0.05 स्तर पर सार्थक

तालिका 6 का अध्ययन करने से पता चलता है कि माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत महिला और पुरूष विद्यार्थियों की कृषि क्षेत्र की रुचि के मध्य टी–मान 1.16, वाणिज्य क्षेत्र की रुचि के मध्य टी–मान 1.10, फाईन आर्ट क्षेत्र की रुचि के मध्य टी–मान 1.35 तथा विज्ञान क्षेत्र की रुचि के मध्य टी–मान 0.52 पाया गया। ये सभी टी–मान 0.05 के स्तर पर सार्थक नहीं है। महिला और पुरुष विद्यार्थियों की गृह विज्ञान क्षेत्र की रुचि के मध्य टी–मान 10.04 तथा मानविकी क्षेत्र की रुचि के मध्य टी–मान 12.55 पाया गया। ये टी–मान 0.01 के स्तर पर सार्थक है। महिला और पुरुष विद्यार्थियों की तकनीकी शिक्षा क्षेत्र की रुचि के मध्य टी–मान 2.04 पाया गया। यह टी–मान 0.05 के स्तर पर सार्थक है। अतः माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत महिला और पुरूष विद्यार्थियों की गृह विज्ञान, मानविकी एवं तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र की रुचि के सम्बंध में शून्य परिकल्पना अस्वीकार की गई इससे यह निष्कर्ष निकला कि गृहविज्ञान, मानविकी एवं तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में विद्यार्थियों की रुचि उनके लिंग से प्रभावित थी। माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत पुरूष विद्यार्थियों की मानविकी और तकनीकी शिक्षा में रुचि महिला विद्यार्थियों की तुलना में सार्थक रूप से अधिक पायी गयी जबकि महिला विद्यार्थियों की गृह विज्ञान में रुचि पुरूष विद्यार्थियों की तुलना में सार्थक रूप से अधिक थी। कृषि, वाणिज्य और विज्ञान के क्षेत्र में पुरूष विद्यार्थियों की रुचि महिला विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक पायी गयी किन्तु दोनों समूहों की रुचि में सार्थक अन्तर नहीं था। फाईन आर्ट के क्षेत्र में महिला विद्यार्थियों की रुचि पुरूष विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक पायी गयी किन्तु दोनों समूहों की रुचि में सार्थक अन्तर नहीं था। कृषि, वाणिज्य, फाईन आर्ट और विज्ञान के क्षेत्र में विद्यार्थियों की रुचि उनके लिंग से प्रभावित नहीं थी।

निष्कर्ष

इस अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष निम्नवत् हैं–

1. माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के सृजनात्मकता के विभिन्न आयामों में इन विद्यार्थियों में मौलिकता सबसे अधिक एवं प्रवाहता सबसे कम पायी गयी, जबकि विस्तारण, मौलिकता के पश्चात् दूसरे स्थान पर तथा नम्यता तीसरे स्थान पर पायी गयी।

2. उच्च–निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर और निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की कुल सृजनात्मकता एवं सृजनात्मकता के सभी आयामों के सम्बन्ध में शून्य परिकल्पना अस्वीकार की गयी। इससे यह निष्कर्ष निकला कि माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की कुल सृजनात्मकता और सृजनात्मकता के सभी आयामों पर सामाजिक–आर्थिक स्तर का सार्थक प्रभाव पड़ता है। उच्च–निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थी निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों से अधिक सृजनशील पाये गये।

3. माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत महिला और पुरूष विद्यार्थियों की प्रवाहता के अतिरिक्त कुल सृजनात्मकता और सृजनात्मकता से सम्बन्धित आयाम नम्यता, मौलिकता एवं विस्तारण के सम्बन्ध में शून्य परिकल्पना अस्वीकार की गयी। इससे यह निष्कर्ष निकला कि माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की कुल सृजनात्मकता और सृजनात्मकता से सम्बन्धित आयाम नम्यता, मौलिकता और विस्तारण लिंग–भेद से प्रभावित थे। महिला विद्यार्थी पुरूष विद्यार्थियों से सार्थक रूप से अधिक सृजनशील पायी गयी।

4. माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सबसे अधिक रुचि तकनीकी एवं सबसे कम रुचि कृषि के क्षेत्र में पायी गयी। द्वितीय स्थान पर विद्यार्थियों ने अपनी रुचि मानविकी, तृतीय स्थान पर विज्ञान, चतुर्थ स्थान पर वाणिज्य, पंचम स्थान पर फाईन आर्ट तथा छठे स्थान पर गृह विज्ञान के क्षेत्र में प्रकट की। कृषि के क्षेत्र में विद्यार्थियों की रुचि औसत थी, जबकि अन्य शैक्षिक क्षेत्रों यथा तकनीकी शिक्षा, विज्ञान, मानविकी, वाणिज्य, फाईन आर्ट एवं गृह विज्ञान में विद्यार्थियों की रुचि औसत से अधिक पायी गयी।

5. माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत उच्च–निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर और निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की मानविकी, विज्ञान, वाणिज्य, फाईन आर्ट एवं तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र की रुचि के सम्बन्ध में शून्य परिकल्पना अस्वीकार की गयी। इससे यह निष्कर्ष निकला कि मानविकी, विज्ञान, वाणिज्य, फाईन आर्ट एवं तकनीकी शिक्षा के सम्बंध में विद्यार्थिंयों की रुचि उनके सामाजिक–आर्थिक स्तर से प्रभावित थी जबकि कृषि और गृह विज्ञान के क्षेत्र में विद्यार्थिंयों की रुचि उनके सामाजिक–आर्थिक स्तर से प्रभावित नहीं थी। उच्च निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थिंयों की रुचि निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थिंयों की अपेक्षा वाणिज्य, फाईन आर्ट, मानविकी, विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में सार्थक रूप से अधिक पायी गयी।

6. माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत महिला और पुरुष विद्यार्थियों की गृह विज्ञान, मानविकी एवं तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र की रुचि के सम्बंध में शून्य परिकल्पना अस्वीकार की गयी। इससे यह निष्कर्ष निकला कि गृह विज्ञान, मानविकी एवं तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में महिला और पुरुष विद्यार्थियों की रुचि उनके लिंग से प्रभावित थी। गृह विज्ञान में महिला विद्यार्थियों की रुचि पुरुष विद्यार्थियों की अपेक्षा सार्थक रूप से अधिक थी, जबकि तकनीकी शिक्षा एवं मानविकी में पुरुष विद्यार्थियों की रुचि सार्थक रूप से अधिक पायी गयी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *अग्रवाल, जे.सी. (2007), भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, दिल्लीः शिप्रा पब्लिकेशन।*
2. *अस्थाना एवं अग्रवाल, (1977), मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन, आगराः विनोद पुस्तक मन्दिर, पृष्ठ 438–439*
3. *Best, J.W. and Kahn, J.V.(2007), Research in Eduation (IXth E.d.), New Delhi: Prentice Hall of India Pvt. Ltd.*
4. *Bhardwaj, R.L. (2001), Manual Socio Economic Status Scale, Agra: National Psychological Corporation.*
5. *भार्गव, जी. आर. (2005), शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा : एच. पी. भार्गव बुक हाऊस, पृष्ठ 413–414*
6. *भार्गव, एस. (1989–90), आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन, आगराः हरप्रसाद भार्गव, पृष्ठ 181*
7. *Bingham, W.Y. (1937), Aptitute & Aptitude Testing, New York: Harper & Brothers, P- 62.*
8. *जौहरी, बी. पी. एवं पाठक, पी. डी. (1997) भारतीय शिक्षा का इतिहास, आगराः विनोद पुस्तक मन्दिर।*
9. *Kulsherestha, S.P. (2005), Education Interest Record, Manual EIR Agra, National Psychological Corporation.*
10. *मेहता, एम. (1958), जातककालीन भारतीय संस्कृति, पटनाः बिहार राष्ट्रभाषा परिषद।*
11. *मंगल, एस. के. (1996), शिक्षण एवं अधिगम का मनोविज्ञान, लुधियानाः टण्डन पब्लिकेशन, पृष्ठ 316.*
12. *पांडेय, आर. एस. (2006), शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठः सूर्या पब्लिकेशन, पृष्ठ 277.*
13. *शर्मा, आर. के. (2004), शिक्षण व अधिगम का मनोविज्ञान, भिवानीः श्री राम पब्लिकेशन, पृष्ठ 318–319.*
14. *शर्मा, आर. के. (2006), शिक्षण व अधिगम का मनोविज्ञान, भिवानीः लक्ष्मी बुक डिपो, पृष्ठ 177.*
15. *Sharma, K. N. (1987), Manual Divergent Production Abilities, Lucknow: Ankur Psychological Agency.*
16. *शर्मा, आर. एन. एव शर्मा आर. (2004), उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, नई दिल्लीः एटलाण्टिक एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स।*
17. *सिंह, के. (2006) भारतीय शिक्षा का ऐतिहासिक विकास, आगराः एच. पी. भार्गव बुक हाऊस।*
18. *श्री वास्तव, जी. पी. (1996), सामाजिक अनुसंधान सर्वेक्षण एवं सांख्यिकी, नई दिल्लीः यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन।*
19. *वालिया, जे. एस. (2007), माध्यमिक शिक्षा एवं स्कूल प्रबन्ध, जालन्धरः पॉल पब्लिशर्ज।*
20. *व्यास, एच. और व्यास, के. (2004), शैक्षिक प्रबंध और शिक्षा की समस्याएँ, नई दिल्लीः आर्य बुक डिपो।*

कोवीड–19 एवं वर्तमान विश्व व्यवस्था

डॉ. नरेन्द्र कुमार
सहायक आचार्य, राजकीय डूँगर महाविद्यालय, बीकानेर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

वर्तमान पूंजीवादी आधारित अर्थव्यवस्था ने विश्व के राजनीतिक नक्शें को परिवर्तित कर केवल अपना वर्चस्व स्थापित किया यह एक ऐसी व्यवस्था थी जिसने मानवीय पक्षों की अवहेलना की और केवल पूंजीपति राष्ट्रों के हितों का ध्यान रखा। सयुंक्त राष्ट्र संघ एवं अन्य अन्तराष्ट्रीय आर्थिक संगठन केवल पूंजीपति राष्ट्रों के हितों को ध्यान में रखकर अपना काम करते है तथा विकासशील एवं तीसरी दुनिया के देशों के हितों की अनदेखी तो करते है साथ ही अनका उपनिवेशवादी शोषण भी करते है वर्तमान वैश्विक अर्थव्यवस्था जब कोविड–19 के प्रभाव से नकारात्मक प्रभावित हो रही है ऐसे में इन विकासशील एवं तीसरी दुनिया के देशों का समूचा विनाश तय है, जिसके प्रारम्भिक लक्षण दिखाई दे रहे है।

संकेताक्षर : *वैश्वीकरण, उपनिवेशवाद, बहुराष्ट्रीय कम्पनियां, सकल घरेलू उत्पाद, तीसरी दुनिया।*

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को हम सामान्यतया द्वितीय–विश्व युद्ध के पश्चात से ही समझनें का प्रयास करते हैं:, उस समय कुछ ऐतिहासिक और महत्पूर्ण घटनाऐं घटित हुई जिसके कारण वैश्विक मान, प्रतिमान या मूल्य और मानक आधार भूत रूप से बदल गये। उदाहरण के लिए 1. विश्व पटल पर पहली बार सयुंक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के रूप में दो महाशक्तियों का उदय हुआ, 2 विचारधारा के आधार पर विश्व व्यवस्था अभूतपूर्व रूप से द्विघ्रुविकृत हो जाना ओर समूचे विश्व का दो ध्रुवों में विभक्त हो जाना जिसमें एक ध्रुव सोवियत रूस, जो समाजवादी विचारधारा का नेतृत्व कर रहा था तो दूसरा सयुंक्त राज्य अमेरिका जो पूँजीवादी विचारधारा का नेतृत्व कर रहा था। 3. साम्राज्यवादी एवं उपनिवेशवादी युग की समाप्ति के परिणामस्वरूप एशिया और अफ्रीका से बड़ी संख्या में सम्प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र –राज्यों का विश्व व्यवस्था में प्रादुर्भाव हुआ 4. उपनिवेशवाद से नव–विमुक्त हुए राष्ट्र राज्य अपनी–अपनी स्वतन्त्र पहचान एवं विश्व राजनीति में अपनी स्वतन्त्र भूमिका तलाश रहे थे फलतःगुटनिरपेक्ष आंदोलन भी एक शक्ति के रूप में विश्व मंच पर अपनी उपस्थिति दर्ज करता है।

दोनों महाशक्तियों की अलग–अलग विचारधारा एवं सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था तथा आपसी संदेह, भय एवं वर्चस्व की लालसा के कारण अन्तराष्ट्रीय राजनीति में भयंकर अन्तर्विरोध पनपने लगा। जिसे बर्नार्ड बारूच तथा वाल्टर लिपमैन शीत युद्ध के नाम से सम्बोधित करते है। इसी शीत युद्ध के सहउत्पाद के रूप में विश्व व्यवस्था में 1949 में नाटो तथा 1955 में वारसा पैक्ट तथा सीटों, सेन्टो इत्यादि सैन्य संगठनों का जन्म होता है और 24 अक्टूबर, 1945 में बना संयुक्त राष्ट्र संघ दोनों महाशक्तियों के अन्तर्विरोधों के बीच मात्र एक विरोधाभास बन कर रह जाता है।

1969 से 1979 तक हालांकि तनाव शैथिल्य का दौर कहा जाता है लेकिन पश्चिम जर्मनी के राष्ट्रपति बी.लीली. ब्रान्ट ने यूरोपियन राज्यों के आर्थिक एवं व्यापारिक सम्मेलन में यह बात कही कि आर्थिक एवं व्यापारिक लाभ के लिए शीत युद्ध के तनावों को शान्त किया जाना चाहिए और पारस्परिक सम्बन्धों में डीटेन्ट का उपयोग करना चाहिए। अमेरिकी विदेश मन्त्री डॉ. हेनरी किंसीजर ने इसे सैद्धान्तिक रूप से परिभाषित किया और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में क्रियान्वित भी किया लेकिन 1945 से स्थापित विश्व व्यवस्था में कोई बदलाव नहीं आया और 1979 में पुनः दोनों महाशक्तियों में मध्य तनाव पैदा हो गया ऐसा तनाव जो शीत युद्ध से भी प्रचण्ड तनाव था; जिसे समझने के लिए

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिज्ञों के पास कोई सर्वमान्य सिद्धान्त नहीं था इसलिए अलग–अलग विद्वानों ने इसे समझने– समझाने के लिए अलग–अलग टर्म उपयोग में ली हैं। कुछ विद्वान इसे द्वितीय शीत युद्ध तो कुछ इसे शीतयुद्ध की पुनरावर्ति कहते है वहीं कुछ विद्वान इसे नव शीत युद्ध के नाम से सम्बोधित करने लगे।

1980–90 के दशक में बहुत से राष्ट्र–राज्य राजनीतिक एवं आर्थिक संकट से जूझ रहे थे। सोवियत संघ भी में भी राजनीतिक एवं आर्थिक संकट आ गया था। 1985 में सोवियत संघ के राष्ट्रपति गोर्बाचोव ने ग्लासनोस्त तथा प्रेस्टराइका की नीति अपनाई जिससे सोवियत संघ अब उदारीकरण के सिद्धान्तों को अपनाने लगा और साथ ही लोकतान्त्रिक परिवर्तन भी लागू करने लगा परन्तु इसका कोई लाभ नहीं हुआ और सोवियत संघ विघटित हो गया।

1945 से जो द्विघ्रुविकृत विश्व व्यवस्था चली आ रही थी वह समाप्त हो गई। जो कि एकाएक नहीं हुआ । द्विघुवीकरण की व्यवस्था के क्षीण होने की प्रक्रिया पहले से ही चली आ रही थी उदाहरण के लिए फ्रान्स का स्वतन्त्र शक्ति बनने का प्रयास, जहां सयुंक्त राज्य अमेरिका के पूंजीवादी ध्रुव को कमजोर कर रहा था तो वहीं भारत, मिस्त्र एवं युगोस्वालिया का गुटनिरपेक्ष रहना और सोवियत संघ तथा चीन के बीच मतभेदों के कारण समाजवाद का कमजोर होना साथ ही फ्रान्स, जर्मनी, जापान तथा चीन इत्यादि राष्ट्र शक्ति के नये केन्द्रों के रूप में भी उभरने लगे थे और ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैसे विश्व बहुकेन्द्रवाद की तरफ बढ़ने की प्रक्रिया में है। लेकिन सोवियत संघ के विघटन के साथ ही एक बार पुनः वैश्विक सम्बन्धों के प्रतिमान बदल गये और विश्व राजनीति की महत्वपूर्ण इकाईयों की भूमिकाओं में भी परिवर्तन होने लगा अर्थात् सत्ता के वितरण की प्रणाली में भी बदलाव परिलक्षित होने लगे। राष्ट्र–राज्यों की सापेक्षिक भूमिका का स्वरूप पूर्णतया परिवर्तित हो गया। इसीलिए 1991 को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को समझने के लिए एक विभाजक रेखा माना जाने लगा है।

हालांकि पूँजीवाद के पक्षकार विचारक इसे विजय के रूप में देखते हैं। उदाहरण के लिए फ्रांसिस फुकुयामा इसी के आधार पर 'द एण्ड ऑफ हिस्ट्री' पुस्तक की रचना करते है फुकुयामा के अनुसार समूची दुनिया में अब केवल एक ही विचारधारा है; पश्चिमी पूँजीवाद या लिबरल डेमोक्रेसी। अर्थात् पश्चिमी पूंजीवाद को बड़े उत्साह से विजेता की तरह प्रस्तुत करते है। तत्कालीन अमेरीकी राष्ट्रपति भी इसी भाव से कहते हैं कि हम अमेकिरन युद्ध जीत गये और अमेरीकी कोंग्रेस के दोनों सदनों को सम्बोधित करते हुए 'नई विश्व व्यवस्था' का नारा देते है। (इससे पहले भी प्रथम विश्वयुद्ध के बाद विल्सन ने तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने नई विश्व व्यवस्था का नारा दिया था।) उन्होने कहा कि ''विगत वर्षों में हमने शीत युद्ध और संघर्ष के एक लम्बे युग को समाप्त करने में बड़ी प्रगति की है। हमारे सामने, हमारी भावी पीढ़ियों के सामने एक नये विश्व की रचना करने का अवसर है, एक ऐसा विश्व जिसमें कानून का शासन हो जिसमें जंगल राज नहीं चलता हो''

बुश की नई विश्व व्यवस्था के पाँच लक्षण माने जाते है– 1. विश्व को आतंक के खतरे से मुक्त करना 2. राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं का वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ समन्वय 3. न्याय, सुरक्षा एवं शान्ति की स्थापना 4. यू. एन. ओ. को प्रभावशाली संगठन बनाना और 5. रूस और अमेरिका के मध्य सहयोग एवं समन्वय।

कुल मिलाकर समाजवादी विकल्प की समाप्ति के बाद अमेरिका का यह दुराग्रह है कि शीत युद्ध समाप्त नहीं हुआ बल्कि हमने इसे जीता है। अमेरिका अपने आप को विजेता राष्ट्र मान कर अभिमानित है और विजेता होने के नाते सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को अपनी मर्जी से निर्धारित करने में प्रयासरत है। अमेरिका एवं पूंजीवाद समर्थकों का मानना है कि विश्व व्यवस्था अब एक धुव्रीय शक्ति संरचना बन गई है जो कि व्यावहारिक तौर पे 1991 के बाद की अमेरिकन विदेश नीति की आक्रामकता में आसानी से देखी जा सकती है। हो गई उदाहरण के लिए 1991 में प्रथम खाड़ी युद्ध जो कि सयुंक्त राष्ट्र संघ की आसान सहमती से अमेरीकी नेतृत्त्व में 34 देशों की संयुक्त सेना ने लड़ा, जिसका कवरेज टी.वी. चैनलों पर कर यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया कि सैन्य क्षमता एवं तकनीक एवम् प्रोद्यौगिकी के क्षेत्र में अमेरिका विश्व में अद्वितीय हैसियत रखता है।

1999 में यूगोस्लाविया के एक प्रान्त कोसोवा में अल्बानियाई मूल के लोगों का आन्दोलन चल रहा था जिसे यूगोस्लावियन सरकार दबाने में प्रयासरत थी प्रत्युत्तर में अमेरिका ने यूगोस्लविया पर आक्रमण कर वहां की सरकार को गिरा दिया और कोसोवो पर नाटो

सेना द्वारा कब्जा किया गया। इसी प्रकार का आक्रामक तेवर 1998 मे देखा जा सकता है जब अमेरिका ने बगैर संयुक्त राष्ट्र संघ की अनुमति के ही सुडान एवं अफगानिस्तान में 'अल कायदा' के के ठीकानों को खत्म करने के लिए क्रूज मिसाइलों से हमला किया। 9/11 के जबाब में भी अमेरिका ने अफगानिस्तान में तालिबान शासन को उखाड़ फेका। इसी प्रकार 19 मार्च 2003 'ऑपरेशन इराकी फ्रीडम' के तहत अमेरिका द्वारा इराक पर आक्रमण किया गया जबकि संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा इसकी अनुमति नहीं मिली थी। जिन सामूहिक संहार के रासायनिक हथियारों के निर्माण को रोकने के बहाने से ये आक्रमण किया गया उसका कोई प्रमाण नहीं मिला अर्थात् सहज अन्दाजा लगाया जा सकता है कि ये तेल भण्डारों पर नियन्त्रण की रणनीति के तहत किया गया आक्रमण था।

अमेरिकी विदेश नीति का यह आक्रामक अन्दाज और क्रियान्वयन यह स्पष्ट प्रदर्शित करता है कि सोवियत संघ के विघटन से शीत युद्ध की समाप्ति ने अमेरिकन डिफेक्टो वर्चस्व को बहुत बढ़ा दिया है। वर्चस्व जैसा कि नाम से ही विदित है कि यह प्रभुत्व शक्ति का बोध कराता है और यह प्रभुत्व सैन्य शक्ति, आर्थिक शक्ति, राज शक्ति या सांस्कृतिक इत्यादि सभी रूपों या आयामों में उपस्थित रहता है। आज प्रत्येक क्षेत्र में अमेरिकी प्रभुत्व को आसानी से देखा जा सकता है। आज एक मात्र अमेरिका ही ऐसा राज्य है जिसकी सैन्य उपस्थिति समूची दुनिया में है। अकेले अमेरिका का रक्षा खर्च समूची दुनिया के रक्षा खर्च का एक तिहाई हैं अमेरीकी अर्थ व्यवस्था विश्व में सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। विश्व व्यापार का 15 प्रतिशत से अधिक व्यापार अकेले अमेरिका का है। नीली नोन्स की समूचे विश्व में लोकप्रियता एवं चलन अमेरिकन सांस्कृतिक प्रभुत्व को प्रदशित करता है।

रजनी कोठारी के अनुसार शीत युद्ध की समाप्ति की घटना केवल समाजवादी ध्रुव की समाप्ति ही नहीं है बल्कि थर्ड वर्ल्ड जैसी अवधारणा की भी समाप्ति है। तीसरी दुनियां वास्तव में उन राष्ट्र– राज्यों के लिए प्रयुक्त की जाने वाली अवधारणा है जो द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात उपनिवेशवाद के चुंगल से निकले थे। ये नये स्वतन्त्र राज्य दोनों ध्रुवों से अलग अपनी पहचान कायम करनें को तत्पर थे जो गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के रूप में राजनीतिक रूप से संगठित थे। इन राष्ट्र– राज्यों की उपस्थिति एवं भूमिका के कारण शीत युद्ध में तनाव शैथिल्य जैसी अवधारणाओं ने जगह पाई तथा उस समय की बहुत सी जटिल अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को महा शक्तियों की प्रत्यक्ष प्रतिस्पर्धा से अलग रख कर समाधान तलाश करने में अपनी भूमिका सिद्ध की। साथ ही संयुक्त राष्ट्र संघ, जो कि दोनो महाशक्तियों के बीच एक मजाक बना हुआ था भी प्रभावी भूमिका निभाने में सक्ष्म होनें लगा था। लेकिन अब एक ध्रुवीय विश्व में तीसरी दुनिया के नाम की शक्ति की भी भूमिका बदल जानी ही थी।

रजनी कोठारी के अनुसार इस घटना का ही परिणाम है कि बाजार द्वारा राज्य को विस्थापित किया जा रहा है। और काउन्टर कल्चर को भी समाप्त कर दिया है अर्थात विश्व की सांस्कृतिक बहुलता को मानो कल्चर ने विस्थापित कर दिया हैं।

रजनी कोठारी की ही तरह सामिर अमीन भी इस घटना को एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था की स्थापना या शीत युद्ध की समाप्ति तक ही सीमित नहीं करते बल्कि इसे तीन सामाजिक मोडल्स की धवस्तता के रूप में परिभाषित करते हैं। प्रथम :– पश्चिम द्वारा विकसित पूंजीवादी लोक कल्याणकारी राज्य की समाप्ति। द्वितीय :– सोवियतवाद या समाजवादी विकल्प की समाप्ति। और तृतीय मॉडल के अन्तर्गत तीसरी दुनिया के देशों के राष्ट्रीय आन्दोलन तथा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की समाप्ति।

वास्तव में अब शीत युद्ध के समय की विश्व व्यवस्था को नई विश्व व्यवस्था विस्थापित कर रही थी और इस नई एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था में अमेरिकन वर्चस्व स्थापित होने लगा।

वर्चस्वशील अमेरिका के हित ही सभी राष्ट्र– राज्यों के हित स्वीकार किये जाने लगे। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में अमेरिकी प्रतिमानों की स्थापना स्वीकार की जाने लगी। अमेरिकन पूंजीवाद विश्व की धुरी होने के कारण आर्थिक क्षेत्र में विभेदपूर्ण व्यवस्थाऐं स्थापित की जा सकती है, जिसमें अन्त मुद्रा कोष, विश्व बैंक तथा विश्व व्यापार संगठन अमेरिका के पक्ष में झुके हुए नजर आते हैं।

अब अमेरिका अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के द्वारा तीसरी दुनिया के राष्ट्र – राज्यों को उदारीकरण निजीकरण तथा मुक्त व्यापार के हक में संरचनात्मक सुधारों के लिए विवश करने में सक्षम

नजर आता है। उदाहरण के लिए 1998 में दक्षिणी पूर्वी एशिया में आर्थिक संकट के समय अर्न्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने इन्ही नीतियों को अपनाने की शर्त पर सहायता प्रदान की थी। अर्थात् अब अमेरिका इन संस्थाओं के माध्यम से विश्व को इस प्रकार संचालित कर रहा है ताकि उसका वर्चस्व बना रहे, उसके हितों का संरक्षण हो तथा पूंजीवादी, उदारवादी राजनीतिक एवम् आर्थिक मूल्यों की स्थापना की जा सकें।

आर्थिक क्षेत्र में तीसरी दुनिया के राष्ट्र–राज्यों की अमेरिका पर निर्भरता बढ़ती ही जा रही है अब इन राष्ट्र–राज्यों के पास आर्थिक सहायता प्राप्ति का कोई दूसरा विकल्प नहीं है। सिवाय अमेरिका के। मुक्त व्यापार की नीतियों के चलते अविकसित एवं विकासशील राज्यों को असमान व्यापारिक प्रतिस्पर्धा विकसित राज्यों के साथ करनी पड़ती है जिसमें अविकसित एवं विकासशील राज्यों का पिछड़ जाना अवश्यम्भावी है; परिणामतः इन्हें बेरोजगारी, आर्थिक मंदी जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन राज्यों की अमेरिकन अर्थव्यवस्था पर निर्भरता इतनी अधिक बढ़ चुकी है कि पश्चिमी अर्थव्यवस्था में जरा सी कमजोरी आते ही उसका प्रत्यक्ष प्रभाव इनकी अर्थव्यवस्था पर देखा जा सकता है। यहा ंतक कि अमेरिकन बाजार की बुरी न्यूज मात्र से इन राज्यों के बाजार गिरने लगते है।

स्वयं अर्न्तराष्ट्रीय आर्थिक समझोते एवं अन्तर्राष्ट्रीय वितीय संस्थाऐं भी अमेरिकी प्रभुत्व से वंचित नहीं है। स्वयं अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक तथा विश्व व्यापार संगठन भी अमेरिकी हितों को ही सभी का हित मान बैठे हैं। इसी वजह से विश्व भर में एक जैसी आर्थिक नीतियां थोपी जा रही हैं उदाहरण के लिए लचीला श्रम बाजार, असीमित निजीकरण, खुली बाजार व्यवस्था, पूंजी का मुक्त प्रवाह, सामाजिक उत्तरदायित्व के खर्चों मे कटौती यानि सब्सीडी व्यवस्था की समाप्ति अर्थात् पूंजीवाद अब अहस्तक्षेपवादी पूंजीवादी की तरफ बढ़ रहा है।

हालांकि पूंजीवाद की उपस्थिति विश्व व्यवस्था में पुराने समय से ही है। 19 वीं शताब्दी में यह अहस्तक्षेपवादी पूंजीवाद के रूप में विद्यमान था लेकिन बाद में इसे सामाजिक आर्थिक प्रणाली द्वारा चुनौती मिलने लगी तो पूंजीवाद को अपना अस्तित्व बचाने के लिये कल्याणकारी पूंजीवाद में परिवर्तित होना पड़ा और अब वर्ष 1991 के बाद चूंकि समाजवादी विकल्प की समाप्ति हो चुकी है इसलिए पुनः इसमें वही धार, वही पैनापन आ गया है। अब पूंजीवाद ग्लोब्लाईजेशन एवं नव उदारवाद का साथ पाकर विकास की एक प्रभुत्वकारी प्रणाली के रूप में स्थापित हो चुका है।

उदारीकरण का आशय है अर्थव्यवस्था को राज्य के नियंत्रण से मुक्त किया जाना। इसका मूल प्रतिमान बाजार है। नव उदारवाद राज्य की कमियों को दूर कर देने की चाह में विश्व व्यवस्था में इसके प्रवेश का समर्थक है। नव उदारवाद का जन्म राज्य और बाजार के मध्य सम्बन्धों मे देखा जाना चाहिए।

नव उदारवाद अर्थव्यवस्था पर न्यूनतम राजनीतिक नियंत्रण भी नहीं चाहता है बल्कि यह अर्थव्यवस्था को बाजार के हक में, बाजार के भरोसे छोड़ देने का ही नाम है। संक्षेप मे नव उदारवाद का लक्ष्य वैश्विक उदारवाद है जिसमें नये नये बाजार जैसे विदेशी विनियम और पूंजी बाजार जो आपस मे वैश्विक रूप से अर्न्तसम्बन्धित भी है, नये –नये उपकरण या साधन जैसे – विश्व व्यापार संगठन. तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ जिनकी आर्थिक शक्ति बहुत से राष्ट्र–राज्यों के सकल घरेलू उत्पाद से अधिक होती है इत्यादि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

वैश्वीकरण को हम पूंजी, श्रम, उत्पादन, वितरण एवं उपभोक्ता का अन्तर्राष्ट्रीयकरण कर देने वाला एक उपकरण मान सकते हैं और तकनीक एवं प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास की वजह से यह सम्भव भी हो गया है। विश्व ग्राम की संकल्पना संचार एवं तकनीकी क्रान्ति के बाद ही ठीक से विकसित होने लगी है।

वैश्वीकरण राष्ट्र–राज्य को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति कीं एक इकाई मात्र मानता है न कि केन्द्र। गैर–सरकारी संगठन, क्षेत्रीय संगठन तथा वैश्विक संगठन भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उतना ही महत्व रखते हैं जितना कि एक इकाई के रूप मे राष्ट्र–राज्य।

अब अर्थव्यवस्था वास्तव मे वैश्विक होने लगी है और परा राष्ट्रीय फर्म तकनीकी एवं सूचना क्रान्ति की वजह से अपनी गतिविधियों को एक साथ कई राष्ट्र–राज्यों में समन्वित करने मे सक्षम हो चुकी है। चूंकि तकनीकी एवं प्रौद्योगिकीय उन्नयन में पश्चिम का ही प्रभुत्व है और इसी को बनाए रखने के लिए बौद्धिक सम्पदा अधिकार जैसे मुद्दे विश्व मंच मौजूद रहते है।

पूंजीवादी वैश्विक अर्थव्यवस्था में गैर राज्यीय कर्त्ताओं की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। इस दौर में

बहुराष्ट्रीय निगम प्रत्यक्ष विदेशी निवेश मे महत्वपूर्ण भूमिका में है। एम.एन.सी.एस. वास्तव मे लाभ कमाने वाली संस्थाएं है, जिन्हें अन्य सामाजिक दायित्व निभाने के लिए विवश नही किया जा सकता है। बडी–बडी प्रतिष्ठित बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ मुख्यतया पश्चिमी या अमेरिकी ही है। ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ जहां भी अपने व्यापार केन्द्र चलाते हैं वहां की राजनीति एवं अर्थव्यवस्था को अपने हितों के अनुकूल प्रभावित करने का प्रयत्न जरूर करते है।

वैश्वीकरण के इस दौर मे बड़े–बड़े कॉर्पोरेट्स केन्द्रीय स्थिति में होते है। इनकी व्यापारिक गतिविधियां राष्ट्र–राज्यों की सीमाओं के आर–पार होती हैं और अपनी सरकार से सहयोग की इन्हें जरूरत होती है इस सहयोग के क्रम मे ये सरकार से अपने हितों मे नीति निर्माण करवाते है अर्थात् राज्य की भूमिका न्यून होने लगती है। कुल मिलाकर नव उदारवाद कॉर्पोरेट्स के निजी विशिष्ट हितों की वैधता स्थापित करता है। ये सभी लक्षण उस विचारधारा की तरफ संकेत करते है जिसे ए रोड़ टू सरफेन्डम एवं द कोन्स्टीट्यूशन ऑफ लीफरटी नामक पुस्तकों में हेयक ने स्थापित किया तथा एन्टाइलमेंन्ट थ्योरी द्वारा रॉबर्ट नॉजिक ने विकसित किया।

नव उदारवाद एवं वैश्वीकरण के इस दौर मे राज्य पर दो तरफा आक्रमण किया जा रहा है। एक तरफ बहुराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं तथा पूंजीवादी विकसित राज्यों के द्वारा तो दूसरी तरफ NGO's जो प्रभुत्वकारी पश्चिमी राज्यों के इशारों पे काम करते है के द्वारा। ये NGO's अनेकों ऐसे आन्दोलन एवं गतिविधियां प्रारम्भ करते हैं जिससे लोग राज्य से विमुख हो और मजे की बात तो यह है कि ये सभी गतिविधियां विकास एवं कमजोर वर्ग के सशक्तिकरण के नाम पर ही की जाती है।

नागरिक समाज को मजबूत करने के नाम पर नये–नये सामाजिक आन्दोलन शुरू किये जाते है। वास्तव में इन सामाजिक आन्दोलनों के द्वारा नागरिक समाज को मैनेज किया जाता है क्योंकि यदि नागरिक समाज मजबूत एवं जागरूक होगा तो साथ ही साथ लोगों का राजनीतिकरण भी होगा और वर्गीय संगठन भी पैदा होंगे अर्थात् लोकतन्त्र सशक्त होगा जिसके परिणामतः राज्य भी सशक्त होगा जो कि कॉर्पोरेट्स के हित में नहीं है इसलिए नागरिक समाज एवं राज्य दोनों को कमजोर किया जाता है, तरह तरह के एथनो नेशनल ग्रुप्स और संकीर्ण राष्ट्रीयताओं को बढ़ावा दिया जाता है। उदाहरण स्वरूप हम चेचन्या, जार्जिया और यहां तक की कम्युनिस्ट चाइना में भी इस तरह की घटनाएं देख सकते है।

नव उदारवादी नई विश्व व्यवस्था राजनीतिक एवं आर्थिक प्रभुत्व के साथ–साथ सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्रभुत्व भी कायम करने में विकसित पश्चिमी राष्ट्रों की मदद करती है। आज अमेरिका का वर्चस्व केवल सैन्य शक्ति और आर्थिक शक्ति के बल पर ही नहीं बल्कि इसमें समूचे विश्व मे अमेरिका की सांस्कृतिक उपस्थिति की भी बहुत बड़ी भूमिका है।

नव उदारवादी वैश्वीकृत पूंजीवादी विश्व व्यवस्था में बाजार की केन्द्रीय स्थिति के चलते नागरिक समाज भी इसमें अछूता नहीं रह गया है। कार्य की प्रक्रियाएं पूरी तरह बदल गई है और ये सामाजिक वर्गों की संरचनाओं को भी प्रभावित करती है, मजदूरों के सामने आने वाली चुनौतियों एवं समस्याओं के प्रत्यय भी बदल देती है और श्रम बाजार का विभाजन इस प्रकार की समस्याओं को और अधिक मुखर बना रहा है।

पर्यावरणीय प्रश्न पे भी नव उदारवादी विकास एवं पर्यावरण संरक्षण को अर्न्तसम्बन्धित करते हैं। विश्व समुदाय को जलवायु परिवर्तन की स्थिति से उत्पन्न होने वाले दबावों का सामना करने के लिए सी.एफ.सी. गैसों को वायुमण्डल में छोड़ने से रोकने के लिए कार्य करना चाहिए यह उचित तर्क भेदभाव पूर्ण तरीके से उत्तर के विकसित एवं दक्षिण के विकासशील या गरीब राज्यों पर समान रूप से थोपने का प्रयत्न किया जा रहा है। वास्तव में विकसित राज्य उत्तर के लाभप्रद वैश्विक बाजारों मे, दक्षिण के प्रवेश को रोकने के लिए इसका उपयोग करते है।

यह विश्व व्यवस्था उत्तर–दक्षिण की विषमताओं को न्यून करने की बजाय बढ़ा रही है। असमान व्यापारिक विनियम द्वारा विकसित राज्य दक्षिण के निर्धन एवं अविकसित राज्यों के बाजार में अपनी प्रभुत्वशाली स्थिति के सहारे से जड़े जमाकर उनका शोषण करते हैं जिससे आर्थिक एवं गैर आर्थिक प्रत्येक स्वरूप में असमानता बढ़ती जाती है जो अपरिहार्य रूप से सामाजिक विद्यटन एवं हिंसा को ही जन्म देती है, जिसके लिए नव उदारवादी वैश्विकृत पूंजीवादी वर्तमान व्यवस्था ही जिम्मेदार है।

रॉबर्ट कॉक्स के अनुसार ''वर्तमान भूमण्डलीकरण उदारीकरण का युग पूंजीवादी साम्राज्यवादी व्यवस्था को नये सिरे से थोपने का प्रयत्न है। भूमण्डलीकरण से अन्तर्निर्भरता का नहीं बल्कि निर्भरता का निर्माण हो रहा है।''

स्पष्टतया नयी वैश्विक पूंजीवादी व्यवस्था मानव के संकटों को कम करने की बजाय बढ़ा रही है। इस व्यवस्था में विकासशील राज्य हाशिये पर है, अमीर एवं गरीब के बीच का अन्तराल और अधिक बढ़ गया है। बेरोजगारी की समस्या से समूचा विश्व जूझ ही रहा है फिर भी तीसरी दुनियां के राज्य मुक्त बाजार की नीतियों को उत्साह के साथ गले लगा रहे है।

एक सामान्य धारणा यह बनी हुई है कि बल्कि प्रभुत्वकारी विकसित राज्यों द्वारा बना दी गई है कि अब पश्चिमी पूंजीवादी व्यवस्था का कोई विकल्प नहीं है इसलिए विश्व को अब मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था की तथाकथित तार्किकता एवं क्षमता के अनुरूप स्वयं को समायोजित कर लेना चाहिए ना कि लोगों की सामाजिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था को सामायोजित करना चाहिए।

यह सच है कि अब विकल्पों की गुंजाइश बहुत कम है लेकिन जैसा कि सामिर अमीर कहते है कि बड़े क्षेत्रीय संगठन निर्मित किये जाने चाहिए जो अनियंत्रित मुक्त बाजार व्यवस्था को नियंत्रित कर सके तथा उत्तर–दक्षिण संवाद पुनः शुरू करने के लिए दबाव बना सकें।

लेखक, बुद्धिजीवी वर्ग, स्वयं सेवी संगठन एवं सामाजिक आन्दोलनों के मेल भी नागरिक समाज को बहुत मजबूत बना सकता है जो राज्य की शक्ति को बढ़ा सकता है और बाजार अर्थव्यवस्था आधारित व्यवस्था पर लगाम लगा सकता हैं और एक बेहतर विकल्प प्रस्तुत किया जा सकता है।

वैश्वीकृत पूंजीवादी विश्व व्यवस्था आधारभूत रूप से शोषण एवं असमानता पर आधारित व्यवस्था है यदि इसे मानवीय रूप नहीं दिया गया तो एक दिन यही दो स्तम्भ (नकारात्मक)शोषण एक असमानता उसके पतन का मार्ग प्रशस्त करेंगे जिसका प्रभाव वर्तमान में उत्पन्न वैश्विक महामारी कोविड–19 के बाद दिखाई देना शुरू हो चुका है वर्तमान में सभी विकासशील एवं तीसरी दुनियां के देशों की आर्थिक व्यवस्था मन्दी के संकट में है जिसके लिए पूंजीवादी अर्थव्यवस्था जिम्मेदार है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *फ्रेंक ए.जी., ''द डेवलपेन्ट ऑफ अंडर डेवलपमेन्ट''1973*
2. *घईन.यू.आर., ''अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति सिद्वान्त एवं व्यवहार'' न्यू ऐकेडमीक पब्लिशिंग कम्पनी, 2019*
3. *झा.प्रेमा शंकर, ''बर्थ ऑफ न्यू वर्ल्ड ऑर्डर'' हिन्दू, 9 जनवरी 1991*
4. *अमीर, सामिर, ''एक्युमुलेशन ऑन वर्ल्ड स्केल ए क्रिटक्यू ऑफ द थ्योरी ऑफ अंडरडवलपमेन्ट'' न्यूयोर्क : मन्थली रिव्यू प्रेस,1974.*
5. *पाल.बारन, ''द पोलिटिकल इकॉनोमी ऑफ ग्रोथ'' न्यूयॉर्क मन्थली रिव्यू प्रैस,1974.*
6. *चोमस्की. एन, ''वर्ल्ड ऑर्डर ओल्ड एण्ड न्यू'' लंदन :प्लेटो प्रेस, 1994.*
7. *फुकुयामा एफ.''द एण्ड ऑफ हिस्ट्री एण्ड द लास्ट मैन'', लंदन : हमिस हेमिलटन,1992.*
8. *इमैनुएल वालर्स्टीन, ''द मॉर्डन वर्ल्ड सिस्टम'', एकेडमिक प्रेस न्यूयॉर्क. 1990.*

स्वातंत्र्योत्तर कथाशिल्पी अमरहुतात्मा अमरकांत : एक नजर (1 जुलाई, 1925 – 17 फरवरी, 2014)

shodhshree@gmail.com

डॉ. सुलोचना कुमारी
परमानंदपुर (बिहार)

शोध सारांश

नई कहानी आन्दोलन के प्रमुख स्तम्भ, उत्कृष्ट जीवटता के सृजनशिल्पी अमरकान्त प्रगतिशील चिन्तन को भारतीय संदर्भ में अभिव्यक्त करने वाले सफल कथाकार हैं। सामाजिक दायित्व बोध के कारण वे प्रेमचन्द के अत्यंत करीब हैं। अमरकान्त अपने समकालीन कहानीकारों से अलग, एक कुशल रचनाकार की प्रतिभा से सुसंपन्न हैं। उनके चिंतन के दायरे में समाज की सारी जटिलताएँ, विषमताएँ, विडंबनाएँ तथा अंतर्विरोध हैं। अभिव्यक्ति में उनका अद्‌भुत संयम है। उनका शिल्प सहज अभिव्यक्ति का हिस्सा है। बड़े-बड़े विषयों को सरल शब्दों में, साधारण पात्रों के जरिए व्यंग्य और मार्मिकता से स्थितियों के अचूक चित्रण में अमरकांत की कोई सानी नहीं है। 'डिप्टी कलक्टरी', 'दोपहर का भोजन', 'असमर्थ हिलता हाथ' आदि उनकी बड़ी ही स्वाभाविक और जीवनोन्मुख कहानियाँ हैं। सहज कलेवर में लिपटी ये कहानियाँ जीवन की घनघोर जटिलताएँ व्यक्त कर डालती हैं। अपने समग्र प्रभाव व प्रेषण में ये हमें देर तक सोचने के लिए विवश कर देती हैं। अमरकांत कहते हैं कि कोई लेखक जीवन को बदलने के लिए ही लिखता है, मनुष्य को मनुष्य की तरह जीने का अधिकार देने के लिए वह प्रतिबद्ध रहता है। संवेदना, यथार्थबोध एवं प्रगतिशील जीवन दृष्टि किसी रचना की सफलता के आधार हैं। साहित्य के उद्द्येश्य को अक्षुण्ण रखने के लिए इस कालजयी रचनाकार की समर्पित रचनाधर्मिता परम अनुकरणीय है।

संकेताक्षर : *कथाकार, मनोविज्ञान, अमरकांत, सामाजिक दायित्व, भाव, मनोविज्ञान, सम्पादक।*

साहित्यजगत के चिर यशस्वी, साधारण जन के असाधारण कथाकार अमरकांत नई कहानी आन्दोलन के प्रमुख और प्रखर स्तम्भ हैं। इस जीवट और जूझारू रचनाकार का उदय ही तब होता है जब देश में दूसरा विश्वयुद्ध, भारत छोड़ो आन्दोलन, बंगाल का अकाल, मजदूरों की देशव्यापी हड़तालें, देश विभाजन, सांप्रदायिक दंगे आदि घटनाएँ घट रही थीं। अमरकांत एक ऐसा व्यक्तित्व है, जिसने स्नातक की शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत सरकारी नौकरी नहीं की और साहित्य-सेवा का संघर्ष भरा मार्ग चुना। उनका यह चुनाव उनके संघर्षशील एवं राष्ट्र प्रेमिल व्यक्तित्व का प्रमाण है। वे एक स्वतंत्रता सेनानी भी थे। 01 जुलाई, 1925 को उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिला बलिया, तहसील रसड़ा, नगरा से सटा एक छोटा गाँव (टोला) भगमलपुर में इस शब्द-शिल्पी ने जन्म लिया। पिता सीताराम वर्मा और माता अनंती देवी की वे ज्येष्ठ संतान थे।

प्रसिद्ध कथाकार अमरकांत के पास आजादी के संघर्ष का भोगा इतिहास, सामाजिक जीवन का कटु अनुभव, मनोविज्ञान की पक्की जानकारी, अपनी धरती एवं मिट्टी की पहचान, भाव-जगत के साथ वस्तु-जगत की सूक्ष्म पकड़ आदि अनुभवों का एक अकूत भंडार था, जो अन्यत्र दुर्लभ है। अमरकांत इकलौता कथा शिल्पी हैं, जिन्होंने एक साथ क्लर्क, भिखारी, नौकर, बेकार, बेरोजगार, बाढ़, अकाल, भूख, बेकारी, लाचारी, भ्रष्टाचार, शोषण, छल-छद्‌म, सांप्रदायिकता, जातिवाद, हत्या, बलात्कार, छेड़छाड़, अशिक्षा, दोमुंहेपन, दिखावेपन, आर्थिक बेचारगी, बीमारी, अन्धविश्वास, भाग्यवाद, उदारता, प्रेम, घृणा आदि सभी विषयों पर अपनी लेखनी चलाई है। समाज के तत्कालीन व्यवस्था का संपूर्ण दृश्य उनके छोटे-छोटे कथा के द्वारा चित्रित होते जाते हैं। उनकी अधिकांश कहानियों में तर्कहीन व्यवस्था से उत्पन्न विडम्बना और विसंगति का सामाजिक सन्दर्भो में बड़ी कुशलता से चित्रण मिलता है। सामाजिक

विसंगतियों के प्रति उनका व्यंग्य बहुत ही तीखा होता है। उनके गहरे व्यंग्यों का आधार उनके संश्लिष्ट–सामाजिक अनुभव हैं। 133 कहानियाँ, 17 से अधिक कहानी संग्रह, 12 उपन्यास, 9 बाल साहित्य, प्रौढ़ साहित्य, 2 संस्मरण आदि विभिन्न रचनाओं से उनका रचना संसार जगर–मगर है। वे नाटक भी लिखना चाहते थे। सैनिक (दैनिक), अमृत (दैनिक), भारत (दैनिक), कहानी (मासिक), मनोरमा (पाक्षिक) आदि पत्र–पत्रिकाओं का संपादन भी उन्होंने किया। बहाव नामक स्वतन्त्र पत्रिका के वे संपादक थे।

महान कहानीकार अमरकांत की कहानियाँ उनकी घनीभूत संवेदना, सूक्ष्म अनुभव, तीक्ष्ण अनुभूति, समर्पित रचनाधर्मिता, उत्कृष्ट सर्जनात्मक क्षमता, अद्भुत जीवटता, कुशल अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण एवं प्रामाणिक दस्तावेज हैं। उनकी कहानियों में चित्रित घटनाएँ यथार्थ की भावभूमि से जुड़ी होती हैं, इसलिए पाठकों का विश्वास सहज ही उन पर जमता चला जाता है। जन साधारण की छोटी–छोटी जरूरतों, परेशानियों, मनोभावों आदि को गहरी सहानुभूति के साथ वे पाठक के सामने रखते हैं। उनसे शायद ही कोई समस्या छूट पाई है।

''अमरकांत का रचना संसार महान रचनाकारों के रचना संसार जैसा विश्वसनीय है। उस विश्वसनीयता का कारण है, स्थितियों का अचूक चित्रण,जिसमें व्यंग्य और मार्मिकता का जन्म होता है।[1]" ''अमरकांत के बिना आज की नई कहानी की कोई भी चर्चा अधूरी है।[2]''

अमरकांत अपने विषय के प्रति बिना किसी मोह और आसक्ति के प्रामाणिकतापूर्वक रचनात्मक न्याय करते हैं। अपनी आलोचनात्मक प्रखरता तथा रचनात्मक संवेदना और सहानुभूति के बीच वे एक अद्भुत संतुलन के साथ स्थितियों, समस्याओं, परिवेश और पात्रों का चित्रण करते हैं। अमरकांत की कहानियों में आए पात्रों–चरित्रों के वैविध्य पर ही सिर्फ दृष्टि रखी जाय तो लेखक के अनुभव, पर्यवेक्षण और चित्रण–सामर्थ्य पर विस्मित रह जाना पड़ता है। उनकी शैली जितनी सीधी, सरल और निर्व्याज है, जितनी शिल्पहीन सादगी है, उतनी ही गहरी अंतर्दृष्टि और तरल मानवीय संवेदना भी।''[3] अपनी बात व्यक्ति से शुरू कर व्यवस्था तक पहुँचने के क्रम में उन तमाम सामाजिक विसंगतियों और परिवेश के अंतर्विरोधों से गुजरते हुए वे एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और कहानी जीवंत हो उठ्ती है। कथ्य को लाने के पूर्व वातावरण का समायोजन इस तरह करते हैं कि पाठक में आगे की बात जानने की उत्सुकता बढ़ जाती है।

कुशल मनोविज्ञानी अमरकांत को टुच्चे, दुष्ट और कमीने लोगों की तर्क पद्धति, उनकी मानसिकता और व्यवहार की गहरी समझ थी। छोटे और मझोले शहरों में जीवन–यापन के लिए सदा संघर्षरत निम्नमध्यवर्ग के वे अत्यंत प्रमुख चितेरे और पारखी कथाकार हैं। इस वर्ग के निजी, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन को वे उसके अन्तरंग और बहिरंग ताने–बाने के साथ अपनी कहानियों में अंकित करते हैं। उनके पात्र जीने के लिए नए–नए तरीके ढूंढते रहते हैं। उनकी जिजीविषा और संघर्ष अद्भुत हैं। उनकी कहानियों में ऊँचे–नीचे हैं। बड़े–छोटे कहलाने वाले मनुष्य मात्र का मनोविज्ञान स्पष्ट रूप सं चित्रित है। ''अमरकांत की कहानियों में नवीन आर्थिक परिस्थितियों का सामना करने वाले निम्न मध्यवर्गीय व्यक्तियों की लाचारी, पीड़ा, आत्मप्रवंचना और जिजीविषा आदि मनःस्थितियों का कलापूर्ण मार्मिक चित्रण मिलता है।[4]''

अमरकांत की भाषा उनके श्रम, साधना और स्वभाव के अनुसार अति विशिष्ट, सहज, सरल और जीवंत है। वह प्रवाहशील, सम्प्रेषणशील एवं बोधगम्य है। उनकी रचनाओं का व्यंग्य तिलमिलाहट लाने में समर्थ है। व्यंग्य को वे हथियार की तरह प्रयोग करते हैं और उसकी मार को दवा की तरह। उनकी मार रूपी दवा रोगों से मुक्त कराने में अचूक ठहरती है। ''जीवन की भूख का जैसा मर्मस्पर्शी चित्रण अमरकांत ने किया है, वह हिन्दी–कहानी की विकासशील मूल जातीय परंपरा की अगली कड़ी है।[5]''

छटपटाते पात्रों के कथाकार अमरकांत नई कहानी आन्दोलन से पहले भी लिख रहे थे, आन्दोलन के साथ भी लिख रहे थे और जीवन पर्यंत लिखते रहे। वे कहते हैं कि ''मैं 50 के दशक का लेखक हूँ। नई कहानी आन्दोलन से कोई प्रभावित होता है, यह तो बाद में नाम दिया गया। बहुत कम लोग आन्दोलन से प्रभावित होकर लिखते हैं। सभी अपने अनुभव से, अपनी बाध्यताओं से, जीवन से लिखते हैं। समाज में कितनी यंत्रणा और दुःख है, कितना शोषण है, कितना उत्पीड़न है। सब मुझे प्रेरित करता है – लिखने के लिए, कुछ ऐसा रूप देने के लिए कि जिससे लोगों पर प्रभाव पड़े।''[6]

अमरकांत की पहली कहानी 'बाबू' 1949 ई. में 'सैनिक' पत्रिका में छपी थी। लेकिन उनके लेखक–रूप

को सबके सामने लाने में 'इंटरव्यू'(1952 ई. में प्रकाशित) कहानी का नाम लिया जाता है, जो आज भी प्रासंगिक है। इसे उन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ की सभा में सुनाई थी। यह कहानी वरिष्ठ आलोचक रामविलास शर्मा के द्वारा आलोचित एवं प्रशंसित हुई थी। अमरकांत के बारे में शेखर जोशी कहते हैं कि ''आगरा प्रवास के दिनों में वह जब काली अचकन पहन कर पत्रकार विश्वनाथ भटेले के साथ प्रगतिशील लेखक मंच की बैठक में जाते थे, तो एकाध बार गजल सुना देने पर लोग उन्हें कोई साहित्य प्रेमी टेलर मास्टर किस्म का आदमी समझते थे और हर बार मीटिंग की समाप्ति पर उनसे गाना सुनाने का आग्रह किया जाता। एक दिन जब उन्होंने स्वरचित कहानी पाठ का प्रस्ताव रखा और 'इंटरव्यू' कहानी सुनाई तो उनका कहानीकार व्यक्तित्व उद्घाटित हुआ।''[7]

उनकी रचनात्मक क्षमता में क्रमशः प्रवीणता और प्रौढ़ता आती गयी एवं साहित्य-जगत में उनकी एक विशिष्ट पहचान बन गयी। एक बार जो उनकी लेखनी चल पड़ी तो फिर जीवन पर्यंत चलती ही रही। जीवन की बाधाएँ उन्हें रोक नहीं सकीं। उन्होंने एक-से बढ़कर-एक कई बेहतरीन कहानियाँ लिख डाली। 'इन्टरव्यू', 'दोपहर का भोजन', 'डिप्टी कलक्टरी', 'हत्यारे', 'जिंदगी और जोंक', 'बहादुर', 'फर्क', 'कबड्डी', 'मूस', 'छिपकली', 'मौत का नगर', 'पलास के फूल', 'बउरैया कोदो' आदि उनकी बेहतरीन और कालजयी कहानियाँ हैं। उनकी कहानियों में भारतीयता कूट-कूट कर भरी है, जिससे वे पाठकों को अपनापन का एहसास दिलाती हैं।

मध्यवर्ग के शिक्षित और जागरूक पीढ़ी के प्रमुख एवं महत्वपूर्ण रचनाकार अमरकांत की रचनाएँ भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी के अतिरिक्त फ्रेंच, जर्मन, रसियन, हंगेरियन, जैपेनीज आदि विश्व भाषाओं में अनुवादित हो चुकी हैं। विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में उनकी रचना शामिल हैं। 'पेंग्विन इण्डिया' के माध्यम से अंग्रेजी में प्रकाशित दो कहानी संग्रहों में उनकी कहानियाँ शामिल की गयी हैं। उनकी कुछ कहानियों का प्रदर्शन दूरदर्शन के द्वारा भी किया जा चुका है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय दिल्ली, गढ़वाल, कुमांयू, गोरखपुर, इलाहबाद और आगरा के कई संस्थाओं द्वारा अमरकांत की कहानियों का सफल मंचन हुआ है। देशभर की हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में उनका साहित्य छपता रहा है। इस कथाकार को 'महात्मा गाँधी' सम्मान, सोवियतलैंड नेहरू' पुरस्कार, 'मैथिलीशरण गुप्त' पुरस्कार, 'यशपाल' पुरस्कार, 'जन-संस्कृति' सम्मान, 'अमर कीर्ति' सम्मान, 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार, 'ज्ञानपीठ' पुरस्कार, 'व्यास' सम्मान आदि से सम्मानित किया गया है।

महान व्यक्तित्व अमरकांत मानवीय मूल्यों के कथाकार हैं। मानवीय मूल्यों में भी जिजीविषा उनकी वाणी है, जो मानवीय और वैयक्तिक दोनों ही स्तरों पर है। मानवतावादी मूल्यों की प्रतिष्ठा उनकी कहानियों में स्पष्ट है। वे प्रगतिशील जीवन दर्शन के समर्थक हैं। उनका कहना है कि मनुष्य के बाहरी और भीतरी संघर्ष को समझकर ही प्रगतिशील दृष्टिकोण विकसित होता है। ''मनुष्य की अटूट जीजिविषा उसके खूबसूरत विचार, उसकी उदात्त भावनाओं, बुराई, घृणा,हिंसा के विरुद्ध उसके संघर्ष तथा प्रेम, शक्ति एवं एकता के लिए किए जाने वाले उसके प्रयासों से ही यह जीवन इतना सुन्दर है और ऐसे ही यह जीवन को उनके नाना रंग में अभिव्यक्त करना साहित्य का उद्देश्य है।[8]'' एक कालजयी कहानीकार हैं।

इस युगदृष्टा की वे प्रारंभिक कहानियाँ जो छठे दशक में 'नई कहानी' की शैशवावस्था में लिखी गयी थीं, आज भी अपने संदर्भ विशेष में सार्थक और जीवंत हैं। उन्होंने युग के भविष्य को पूर्व में ही पहचान लिया था। अपनी रचनाओं में उन्होंने अपने साहित्यिक दृष्टिकोणों का अक्षरशः पालन किया है। उनकी रचना ही बोल उठती है कि वे किस तरह ईमानदार, कर्मनिष्ठ, लगनशील, सरल, सहज, और अनुशासनप्रिय थे। शिल्प उनकी सहज अभिव्यक्ति का हिस्सा है। अभिव्यक्ति में उनका अद्भुत संयम है। अन्य कहानीकारों ने जहाँ व्यक्ति को उसके अकेलेपन में देखा, अमरकांत ने व्यक्ति को समाज से जोड़कर देखा।

अत्यंत संवेदनशील, चिंतनशील और क्रांतिकारी व्यक्तित्व वाले महामानव अमरकांत के चिंतन के दायरे में समाज की सारी जटिलताएँ, विषमताएँ, विडंबनाएँ तथा अंतर्विरोध हैं, जिनका प्रभाव उनकी कहानियों में स्पष्ट है। उन्होंने आर्थिक विषमता, अंधविश्वास, रूढ़ियों आदि को जनता की पीड़ा का कारण माना है। क्रान्तिकारी लेखक अमरकांत कहते हैं कि 'समाज में जो व्यवस्था है, उसे मिटा देने की आकांक्षा और प्रेरणा हर आदमी में है। कोई यदि जीवन का चित्रण करता है तो इसका मतलब है कि वह जीवन को वह बदलना

ISSN 2277-5587

चाहता है। वह ऐसा समाज रचना चाहता है, जिसमें समता हो, सबको मनुष्य की तरह जीने का अधिकार हो। देश में प्रगतिशील जनतंत्र नहीं होने से वह कमजोर पड़ता जाता है। देश की मौजूदा व्यवस्था जनता को संतुष्ट नहीं कर पा रही है। ऐसे में सशक्त लोकपाल की नियुक्ति अनिवार्य है।'

एक सामान्य मध्यमवर्ग का जीवन जीते हुए अमरकांत का स्वतंत्र लेखन जीवनपर्यंत जारी रहा। निंदा और प्रसिद्धि से दूर ''उनकी कलम न रुकी, न झुकी। उनके साथ के कई रचनाकार थक-चुक कर बैठ गए, कुछ निजी पत्रकारिता में चले गए तो कुछ मौन हो गए, किन्तु अमरकांत ने अपनी निजी परेशानियों को कभी लेखन पर हावी नहीं होने दिया।[9]''

अमर शिल्पी अमरकांत का रचनाकाल 1952 ई. से फरवरी 2014 तक का है। आधी शताब्दी से अधिक का उनका रचनात्मक सफर अत्यंत श्रेष्ठ एवं उन्नत है। उन्होंने 62 वर्ष तक साहित्य के बहाने देश की भरपूर सेवा की है। वे एक युगप्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित होने के सामर्थ्य से युक्त हैं। स्वातंत्र्योत्तर कहानी की समीक्षा के लिए उनकी कहानियाँ एक मजबूत मानदंड स्थापित करती हैं। लेखक की सफलता इस बात में होती है कि वह अपने तरफ से कोई आदर्श न थोपकर स्थितियों का समायोजन इस तरह करे कि रचना स्वयं अपने आदर्श को प्रकट करें, इस दृष्टि से अमरकांत अद्वितीय रचनाकार ठहरते हैं।

'नई कहानी आन्दोलन' के मूर्धन्य कहानीकार अमरकांत का व्यक्तित्व अनुभवसिद्ध व्यक्ति का व्यावहारिक संगठन है। उनमें आत्मविश्वास, आत्माभिमान, आत्मनिर्णय और राष्ट्रप्रेम का उत्कट उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। मानवतावादी मूल्यों के रक्षक इस महामानव की दृष्टि में सामाजिक न्याय और समानता के मूल्य का स्थान सर्वोपरि है। यही उनके साहित्य की आत्मा भी है। वे वास्तव में एक रचनाकार थे, रचनाधर्मिता ही उनके प्राण थे। उन्होंने समय और समाज को एक नई दिशा दी, उन्हें संहारक नहीं विचारक बनाया। इस युग प्रवर्तक साहित्यकार की अपनी विश्व दृष्टि थी, जो उनकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। साहित्य के उद्देश्य से तनिक भी हटना, उन्हें बिल्कुल ही पसंद नहीं था। भारत के 'मैक्सिमगोर्की', आम जीवन के महान रचनाकार 17 फरवरी, 2014 को सदा के लिए हमसे विदा हो गये। उनका जाना साहित्य, कला, संस्कृति के लिए अपूरणीय क्षति है। उनके पद चिन्हों पर चलते हुए रचना, रचना-धर्म और मानवीय संवेदनाओं को जीवित रखना ही उनकी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *वर्षः 1, सं. : रवीन्द्र कालिया, ममता कालिया एवं नरेश सक्सेना, इलाहबाद, पेज न. : 127 संस्करण : 1977*
2. *नई कहानीः सन्दर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. : देवीशंकर अवस्थी, पेज न. : 195, संस्करण : 2013*
3. *नई कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. : देवीशंकर अवस्थी, पेज न. : 196, संस्करण : 2013*
4. *कहानी : नई कहानी, नामवर सिंह, पेज न. : 48, लोक भारती प्रकाशन, इलाहबाद, संस्करण : 2014*
5. *नई कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. : देवीशंकर अवस्थी, पेज न. : 196, संस्करण : 2013*
6. *वागर्थ पत्रिका, अगस्त, 2012*
7. *अनहद, इंटरनेट पत्रिका, फरवरी, 2017*
8. *कुछ यादें कुछ बातें, अमरकांत, पेज न. : 117, संस्मरण : 2005, राजकमल प्रकाशन*
9. *अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग : 1, पेज न. : 5 सं. : रवीन्द्र कालिया, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन : 2013*

राही मासूम रज़ा का उपन्यास : टोपी शुक्ला : हिन्दुस्तानी संस्कृति के संदर्भ में

shodhshree@gmail.com

प्रेरणा

शोधार्थी, तिलक मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

शोध सारांश

भारत-विभाजन का क्षण भारतीय इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना थी, जो केवल राजनीतिक नहीं थी बल्कि व्यावहारिक रूप में भी सांप्रदायिक थी। ऐसा नहीं है कि इससे पहले किसी और देश का विभाजन नहीं हुआ था परन्तु यह विभाजन अन्य देशों से इस मामले में अलग था कि इसने ऐसी वीभत्स स्मृतियों को जन्म दिया जो आज भी दोनों देशों (हिन्दुस्तान-पाकिस्तान) या यूँ कहें कि दोनों धर्मों (हिन्दु और इस्लाम) को एक बिंदु से आगे बढ़ने नहीं देता। डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यास 'टोपी शुक्ला' का पात्र बलभद्र नारायण शुक्ला उर्फ़ टोपी शुक्ला ऐसे हिन्दुस्तानी नागरिक का प्रतीक है जो मुस्लिम लीग की दो राष्ट्र वाली थ्योरी को नहीं मानता है और भारत-विभाजन के बाद भी खुद को विशुद्ध हिन्दुस्तानी समझता है। 'टोपी शुक्ला' उपन्यास का दूसरा पात्र 'इफ़्फ़न' जो कि एक मुसलमान है परन्तु वह भी हिन्दुस्तानी-संस्कृति का पक्षधर है और विभाजन के बाद भी वह हिन्दुस्तान को ही चुनता है। इस आलेख के माध्यम से हमारा ध्येय भारत-विभाजन से होनेवाले दुष्प्रभावों और समाज के बनते-बिगड़ते रिश्तों पर प्रकाश डालना है। हमारा ध्येय उन कारणों का भी विश्लेषण करना है जो 'टोपी शुक्ला' जैसे हिंदुस्तानी युवक को आत्महत्या करने पर मजबूर करता है। साथ ही उन मुसलमानों की पीड़ा का भी चित्रण करना है जिन्होंने भारत विभाजन के बाद हिन्दुस्तान को चुना था।

संकेताक्षर : *उपन्यास, हिन्दुस्तानी संस्कृति, मासूम रजा, टोपी शुक्ला, मानवीय संवेदना।*

डॉ. राही मासूम रज़ा ने अपने जिस उपन्यास के माध्यम से हिन्दू और मुसलमानों की आत्मा के तह तक जाकर मानवीय संवेदनाओं की गहन पड़ताल की है, वो है 'टोपी शुक्ला'। एक ऐसा युवक जो भारत विभाजन के उपरांत न तो हिन्दू रहा और न ही मुसलमान बल्कि खुद को विशुद्ध हिन्दुस्तानी समझता रहा वो है 'टोपी शुक्ला' उर्फ बलभद्रनारायण शुक्ला। राही मासूम रज़ा का यह उपन्यास 'टोपी शुक्ला' एक ऐसे युवक के जीवन-संघर्ष को दर्शाता है जो ईमानदार और हिन्दुस्तानी बनने की कोशिश में धीरे-धीरे बिल्कुल अकेला हो जाता है और अंततोगत्वा जिसकी परिणति आत्महत्या होती है। 'टोपी शुक्ला' की भूमिका में लेखक साफ और स्पष्ट रूप में कहते हैं कि ''आत्महत्या सभ्यता की हार है। परन्तु टोपी के सामने कोई और रास्ता नहीं था। यह टोपी मैं भी हूँ और मेरे ही जैसे और बहुत से लोग भी हैं। हम लोगों में और टोपी में केवल एक अन्तर है। हम लोग कहीं-न-कहीं किसी-न-किसी अवसर पर 'कम्प्रोमाइज' कर लेते हैं। और इसलिए हम लोग जी भी रहे हैं। टोपी कोई देवता या पैग़म्बर नहीं था। किन्तु उसने 'कम्प्रोमाइज' नहीं किया। और इसलिए उसने आत्महत्या कर ली।''[1]

किसी भी औपन्यासिक कृति की सफलता उसके मार्मिक प्रसंगों की सर्जना पर बहुत हद तक निर्भर होती है, और 'टोपी शुक्ला' में सांप्रदायिक, राजनीतिक और धार्मिक घटनाओं का मार्मिक चित्रण तथा सामाजिक भेद-भाव को भी उजागर किया गया है। व्यंग्य प्रधान शैली में लिखा गया यह उपन्यास 'टोपी शुक्ला' एक ऐसे हिन्दुस्तानी नागरिक का प्रतीक है, जो हिन्दू-मुस्लिम संबंधों को पूरी सच्चाई से प्रस्तुत करते हुए, बुद्धिजीवियों के सम्मुख एक प्रश्न दागता है। लेखक कहते हैं – ''संसार के तमाम छोटे-बड़े लोगों की तरह टोपी भी बेनाम पैदा हुआ था। नाम की

ज़रूरत तो मरनेवालों को होती है। जन्म लेने के लिए आज तक किसी को नाम की ज़रूरत नहीं पड़ी है। पैदा तो केवल बच्चे होते हैं। मरते-मरते वह हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, नास्तिक, हिन्दुस्तानी, पाकिस्तानी, गोरे, काले और न जाने क्या-क्या हो जाते हैं।''[2] 'टोपी शुक्ला' उपन्यास के तीन प्रमुख पात्रों इफ़्फ़न, बलभद्र नारायण शुक्ला उर्फ़ टोपी शुक्ला और इफ़्फ़न की पत्नी सकीना के इर्द-गिर्द कथाचक्र चलता रहता है। बलभद्र नारायण शुक्ला, जो एक नियम-पसन्द युवक है, को उसके दोस्त 'टोपी शुक्ला' कहकर संबोधित करते हैं। बाद में वो सिर्फ़ टोपी के नाम से ही पुकारा जाने लगता है। कथाकार के शब्दों में ''जब यह यूनिवर्सिटी में आए थे तो जनसंघी थे। धीरे-धीरे मुस्लिम लीगी हो गए। इसका नतीजा यह हुआ कि हिन्दू लड़के इन्हें मौलाना टोपी कहने लगे।''[3] इसका परिणाम यह हुआ कि टोपी शुक्ला न हिन्दू रह सके और न ही मुसलमान। प्रगतिशील टोपी शुक्ला पुरातन हिन्दू रूढ़िवादी विचारधारा का सदैव विरोध करता रहा और इसका परिणाम यह हुआ कि उसे अलीगढ़ के एक हिन्दू कॉलेज में जगह नहीं मिली। टोपी शुक्ला की इस स्थिति पर इफ़्फ़न व्यंग्य करते हुए कहता है – ''तो किसी इस्लामिया कॉलेज में अपलाई करो।'' इस पर टोपी कहता है कि ''मेरा नाम बलभद्र नारायण शुक्ला है।''[4] इन बातों से यह साफ झलकता है कि देश के प्रशासनिक ढ़ाँचें में सांप्रदायिक भेद-भाव की जड़ें घर कर चुकी हैं।

कथावाचक के शब्दों में ''यह प्रश्न वास्तव में महत्वपूर्ण है कि बलभद्र नारायण शुक्ला और उन्हीं के जोड़ीदार किसी अनवर हुसैन जैसे लोगों के लिए इस देश में कोई जगह है या नहीं। . . . . ग़रज़ कि सभी के लिए कम या अधिक गुंजाइश है। परन्तु हिन्दुस्तानी कहाँ जाएँ? लगता ऐसा है कि ईमानदार लोगों को हिन्दू-मुसलमान बनाने में बेरोजगारी का हाथ भी है।''[5] टोपी को कोई भी नौकरी सिर्फ़ इसलिए नहीं मिल पाती है क्योंकि वह न तो कट्टर हिन्दू है और न ही कट्टर मुसलमान। इफ़्फ़न और टोपी बचपन के यार हैं। एक बार बचपन में बिछड़कर वो फिर जवानी में मिलते हैं, तब तक देश की स्थिति काफी बदल चुकी होती है। बचपन में एक दूसरे से मिलकर उन्हें अकेलेपन से निजात मिलता है पर बिछड़ने के पश्चात् उन्हें बड़े होने के लिए अनेकानेक संघर्षो का सामना करना पड़ता है। टोपी उन दिनों को याद कर ये समझने की कोशिश करता कि आजादी से पहले भाषा की व्यावहारिकता उसको प्रयोग करने वालों से मालूम होती थी न कि किसी धर्म विशेष से। इफ़्फ़न की दादी और टोपी की दादी भाषा प्रयोग के मामले में एकदम उलट थी। जहाँ एक ओर इफ़्फ़न की दादी ठेठ अवधी का प्रयोग करती रही वहीं दूसरी ओर टोपी शुक्ला की दादी फारसी की रसिया थी और फारसी के नजाकत को संभाल रही थी। आजादी से पहले हिन्दुस्तान था, आजादी के बाद भारत और पाकिस्तान। इफ़्फ़न और टोपी हिन्दुस्तान की विरासत को ढ़ो रहे थे लेकिन समय के थपेड़ों ने उन्हें नए भारत में अपना सामंजस्य बैठाने का मौका ही नहीं दिया। इफ़्फ़न संभलते-संभलते कुछ संभल गया लेकिन टोपी एक बार जो गिरा तो फिर संभल नहीं पाया। अचानक दोनों की मुलाक़ात होती है। दोनों हिन्दुस्तान की आज़ादी से पहले बिछड़ते हैं और भारत-पाक विभाजन के बाद अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में मिलते हैं। ''दोनों उदास हो गए। इफ़्फ़न हिन्दुओं से डरता था और इसलिए उनसे नफ़रत करता था। टोपी को भारत की प्राचीन संस्कृति से प्यार हो गया था, इसलिए वह मुसलमानों से नफ़रत करता था – परन्तु दोनों उदास हो गए। नफ़रत की दीवार पर चढ़कर पुरानी दोस्ती ने जो झाँकना शुरू किया तो दोनों उदास हो गए। पल-भर में बीते हुए दिन दोबारा गुज़रे। सारी बातें, सारी यादें, सारे नारे . . . दोनों ने अपनी बरसों की यात्रा फिर की और यह देखकर दोनों उदास हो गए कि घाटे में वे दोनों ही रहे।''[6]

इफ़्फ़न और टोपी की अन्तरंगता में इफ़्फ़न की पत्नी सकीना भी बराबर की हिस्सेदार है। तीनों पात्र अपनी-अपनी समस्याओं से हर वक़्त जूझते रहते हैं। टोपी को बेरोजगारी चैन नहीं लेने देती तो इफ़्फ़न को विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग की भ्रष्ट एवं दलगत राजनीति का शिकार होना पड़ता है और सकीना बलवों में मारे गए अपने अब्बा और भाइयों को याद करके हिन्दुओं से नफ़रत करती रहती है। हिन्दुओं से नफ़रत करने के बावजूद भी सकीना और टोपी में दोस्ती का एक गहरा रिश्ता है। सकीना व टोपी के बीच तकल्लुफ़ की कोई दीवार नहीं। सकीना कहती, ''ए टोपी, खाना खाकर जाना।'' टोपी खड़ा हो जाता, कहता – ''राम-राम राम भाभी, तुम एक दिन अवश्य मेरा धर्म भ्रष्ट करवा कर दम लोगी। कितनी बार कहूँ कि मुसलमानों के घर खाना नहीं खाता।'' इस पर सकीना गुस्से से चिढ़कर कहती –''यहाँ बैठकर प्रगतिशील बनते हो मगर खाल के नीचे हो हिन्दू ही।''[7]

राही मासूम रज़ा टोपी शुक्ला की मानसिकता के परिप्रेक्ष्य में उसके पैतृक वातावरण का सहजता से चित्रण करते हैं। बलभद्र नारायण शुक्ला उर्फ टोपी शुक्ला के पिता भृगु नारायण शुक्ला नीले तेल वाले व्यवसायी प्रवृत्ति के आदमी हैं। टोपी की माँ रामदुलारी सीधी–सादी धार्मिक टाइप की घरेलू महिला हैं जिनकी भाषा निथरी हुई उर्दू है, जबकि उसके पिता की जब़ान उर्दू है लेकिन उन्हें मुसलमानों से अंतरात्मा तक नफ़रत है। टोपी शुक्ला, भाषा के पैमाने पर अधर में झूल रहे हैं। न तो हिन्दी पर ही महारत हासिल है और न ही उर्दू पर अधिकार। टोपी की यह जब़ान शायद एक विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया या यूँ कहें कि अवहेलना के बाद पनपी थी। अपने घर में सदा उपेक्षित रहा टोपी बालपन से ही ईर्ष्या का शिकार होकर कुंठित–सा हो गया था। इसका एक और कारण था उसका काला एवं बदसूरत होना। कथाकार राही मासूम रज़ा टोपी का चित्रण करते हुए कहते हैं – ‘‘टोपी शुक्ला की सूरत खराब थी। परन्तु थे बड़े शर्मीले। नंगे पैदा नहीं हुए। सिर के बाल सारे बदन पर उगाकर पैदा हुए। नतीजा यह हुआ कि सुबह को जब चमाइन आई और रामदुलारी को मल–मलाकर अपने घर गई तो उसने अपने पति से कहा : ‘दागदर साहब के बनमानुस भईल बाय।’’[8] यही बनमानुष बालक टोपी शुक्ला बना, जिसे बालपन से ही मुसलमानों के प्रति नफ़रत का पाठ पढ़ाया गया। लेकिन सौभाग्य कहें या दुर्भाग्य, उसका पहला साथी इफ़्फ़न मुसलमान ही था।

रचनाकार उपन्यास की कथा के बारे में कहते हैं – ‘‘यह कहानी या वह जीवनी केवल टोपी की नहीं है। यह कहानी इस देश, बल्कि इस संसार की कहानी का एक स्लाइस है। स्लाइस रोटी से कटकर भी रोटी का ही अंग रहता है।’’[9] टोपी शुक्ला और इफ़्फ़न दोनों के व्यक्तित्व का विकास अलग–अलग परिवेश या माहौल में होता है लेकिन विभाजन की त्रासदी एवं भीषण दंगों की भयावह पीड़ा से दोनों गुजरते हैं दोनों अपने–अपने समाज से त्रस्त होकर जवानी की दहलीज पर पहुँचते हैं। दोनों के बालमन पर इन भीषण दंगों की अमिट छाप है। एक ओर टोपी का बचपन आर.एस.एस. की शाखा में भाग लेते–लेते बीता तो वहीं दूसरी ओर इफ़्फ़न का बचपन अपने कलक्टर पिता से हिन्दू व सिक्खों के अच्छा या बुरा होने के प्रश्नों में उलझकर रह जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि देश विभाजन से समाज का हर वर्ग हर तबका आहत हुआ। चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, दोनों के घर जले, दोनों के ख़्वाब धूल–धूसरित हुए। आजादी पूर्व की भयावह एवं खौफ़नाक मंजर को राही मासूम रज़ा कुछ इस प्रकार बयाँ करते हैं – ‘‘परछाइयाँ हिन्दू–मुसलमान बन गई थीं और आदमी अपनी ही परछाइयों के डर से भाग रहा था। टूटे हुए ख़्वाबों के रेज़े शीशे की किर्चियों की तरह तलवों में चुभ रहे थे। परन्तु वह दर्द से चीख नहीं सकता था। वह डरता था कि कहीं कोई चीख की आवाज न सुन ले–कहीं किसी को पता न चल जाए कि वह किस गली में छिपा हुआ है।’’[10]

डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यास ‘टोपी शुक्ला में सांप्रदायिकता की लहर साँय–साँय करती, बड़ी ही डरावनी तस्वीर उपस्थित करती है। नफ़रत, शक और डर से घिरा हर हिन्दू–मुसलमान इस घुटन भरे माहौल में जीने को विवश है। सकीना के पिता आबिद रज़ा कांग्रेसी एवं तीनों बड़े भाई कम्युनिस्ट थे। सांप्रदायिक व्यक्तियों ने न केवल आबिद रज़ा बल्कि उसके दो भाइयों की भी हत्या कर दी। यहाँ तक कि राखी की लाज बचाते–बचाते सकीना का हिन्दू भाई महेश भी इस आग की लपट से न बच सका। ‘‘इन मानसिक प्रहारों ने सकीना के अन्दर न केवल पाकिस्तान बल्कि हिन्दुस्तान के प्रति भी गहरी नफ़रत भर दी। एक भाई पाकिस्तान चला गया। वह टोपी से कहती थी है, ‘‘मैं हर हिन्दू से नफ़रत करती हूँ।’’ टोपी कहता– ‘‘बहुत अच्छा करती हो . . . वैसे मैं भी मुसलमानों से कोई ख़ास प्यार नहीं करता।

‘‘तो फिर यहाँ क्यों आते हो ?’’

‘‘यह तो मेरे एक दोस्त का घर है।’’

‘‘दोस्त!’’

‘‘तो यह शब्द अभी भी जी रहा है’’[11] (टोपी शुक्ला, पृष्ठ–77) इफ़्फ़न के घर टोपी का आवागमन निर्विरोध चलता रहा। चाहे इफ़्फ़न घर पर हो या न हो, टोपी टपक ही पड़ता था। टोपी इफ़्फ़न की बेटी शबनम को हिन्दी पढ़ाता, सकीना की डाँट सुनता। इफ़्फ़न और उसके छोटे से परिवार ने टोपी के सूने जीवन में घर–परिवार और रिश्तों की गर्माहट बिखेर दी थी। पर इस हिन्दू–मुसलमान के आत्मीय संबंध को शहर के लोग नाजायज बनाकर चटखारे ले–लेकर कहने लगे। शबनम, सकीना की बेटी, घर आकर कहती है, ‘‘आज स्कूल में मेरी फ्रेंड कह रही थी कि अम्मी टोपी से फँस गई हैं और टोपी अंकल हिन्दू हैं।’’[12] टोपी एवं सकीना

ISSN 2277-5587

के इस काल्पनिक संबंध से हुई आर्थिक एवं सामाजिक हानि ने तीनों के अंतःकरण को झकझोर कर रख दिया। तीनों अंदर से टूट गए। टोपी की पिटाई, इफ़्फ़न की 'रीडरी' का किसी अन्य को हस्तान्तरण, टोपी के लेक्चरर होने की आशा समाप्त, टोपी का स्कालरशिप बन्द आदि घटनाएँ समाज-विरूद्ध प्रवृतियों के कारण तीनों के गले में एक फाँस सी चुभी है। ''टोपी और इफ़्फ़न दोनों इस घुटन भरे वातावरण में जीने की विवशता से बचने का मन-ही-मन रास्ता ढूँढ़ने में मशगूल हैं। दोनों के पास हजारों प्रश्न थे, लेकिन उत्तर गायब थे।''[13] इफ़्फ़न सोचता है कि अगर टोपी की जगह कोई मुसलमान रहा होता तो शायद लोग सकीना और टोपी के संबंध पर कालिख न पोतते। शायद टोपी शुक्ला का हिन्दू होना या इफ़्फ़न का मुसलमान होना या फिर सच कहें तो इन दोनों का हिन्दुस्तानी होना ही इनके जीवन का दुर्भाग्य बना। कथावाचक दोनों की मनः स्थिति का मार्मिक चित्रण करते हुए लिखते हैं - ''दोस्ती की पतवार से इन डोंगियों (नफ़रत, शक, डर) को खे भी रहे थे। दोनों के भीतर कहीं गहराई तक वर्तमान व्यवस्था की फाँसे स्वतः ही सुलगने लगी थी। इफ़्फ़न का मन करने लगता है कि वह अध्यापकी छोड़कर कहीं चला जाए, क्योंकि पढ़ाने के लिए अब ईमानदारी की जरूरत शेष नहीं रही है।''

''इफ़्फ़न को जम्मू में नौकरी मिलने के बाद वह सकीना एवं शबनम के साथ प्रस्थान कर जाता है, पीछे रह जाता है - अकेला, निराश - सा टोपी। अतीत के जुमले एक बार पुनः सिर उठाने लगते हैं लेकिन जख़्मी टोपी को उनकी मानसिक चोट से कोई कष्ट नहीं होता। टोपी को बचपन से लेकर जवानी तक तिरस्कार, उपेक्षाओं एवं जख़्मों के सिवा दिया ही क्या है इस मज़हबी संसार ने?''[14] वक्त को काटने के इरादे से टोपी दोस्तों के साथ सिनेमा देखने जाता है। लेकिन उसे लौटकर तो घर को ही आना है, घर में फैले उदासी, अंधकार और अकेलेपन ने पूरी रात टोपी को सोने नहीं दिया। उसे रह-रह कर इफ़्फ़न की दादी, इफ़्फ़न, सकीना व शबनम याद आते हैं। सुबह एक एक्सप्रेस ख़त बाँटने वाले डााकिए से टोपी ने ख़त लिया। इस ख़त में इफ़्फ़न द्वारा टोपी की नौकरी का निमंत्रण पत्र था। लेकिन टोपी के सिरहाने मिले दूसरे पत्र से पता चलता है कि टोपी की सदा के लिए किसी दूसरे कॉलेज में नियुक्ति हो गई थी। अर्थात् एक भारतीय या हिन्दुस्तानी युवक टोपी उर्फ बलभद्र नारायण शुक्ला सामयिक परिस्थितियों से 'कंप्रोमाइज' न कर पाने की वजह से आत्महत्या कर लेता है। लेखक कहते हैं कि - ''. . . . क्योंकि आत्महत्या सभ्यता की घर है। परन्तु टोपी के सामने कोई और रास्ता नहीं था। . . . 'आधा गाँव' में बेशुमार गालियाँ थीं। मौलाना 'टोपी शुक्ला' में एक भी गाली नहीं है। परन्तु शायद यह पूरा उपन्यास एक गन्दी गाली है।''[15]

इस उपन्यास के माध्यम से कथाकार ने तत्कालीन समय की डरावनी तस्वीर पेश की है। आजादी के बाद के हिन्दुस्तान में साँप्रदायिकता, मुस्लिम अस्मिता, सिद्धान्तहीनता के बीच फँसे आदमी की बेबसी को यह उपन्यास निर्ममता से चित्रित करता है। टोपी शुक्ला सामाजिक जीवन में प्रच्छन्न और प्रत्यक्ष किसी साँप्रदायिक वर्गीकरण में शामिल नहीं किया जा सकता क्योंकि यही वह विसंगतिपूर्ण वर्गीकरण है जो टोपी को हिन्दू या मुस्लिम से परे 'टोपी' बनाए रखता है। भारत विभाजन भी टोपी की त्रासदी का एक प्रमुख कारण है क्योंकि इसी द्वैत सांचे के चलते वह कहीं का नहीं रहता है। ''उसके समायोजन की यह समस्या वास्तव में कबीर की उलटबासी की तरह सांप्रदायिक रूप से विरूपित समाज की ओर संकेत करती है।''

डॉ. राही मासूम रज़ा ने जीवन भर जिन मर्यादाओं का पालन अपनी लेखनी और जीवन में किया, 'टोपी शुक्ला' में हम उसकी शुरुआती झलक महसूस करते हैं। 'टोपी शुक्ला का हिन्दुस्तानी होना आजाद भारत में, विभाजित भारत में प्रासंगिक नहीं रहा। फिर चाहे बात शिक्षा की हो या फिर सामाजिक रिश्तों की। हर जगह सांप्रदायिकता का रंग चढ़ने लगा था। लेकिन 'टोपी शुक्ला' की कहानी इतनी भर ही नहीं है बल्कि उससे कहीं आगे की है। उसका बार-बार अपने अतीत की ओर लौटना उसे एक नई राह दिखाता है जो आशा की किरणों से जगमगा रहा है। उसका अतीत उसे ये विश्वास दिलाता रहता है कि हिन्दुस्तानी होना इस बात से ज्यादा असरदार है कि कोई अल्पसंख्यक है या बहुसंख्यक। टोपी शुक्ला की आत्महत्या इस बात की भी चेतावनी है कि ऐसे लोग जो हिन्दुस्तानी संस्कृति के पक्षधर हैं, उनके लिए हिन्दुस्तान की महत्ता सर्वोपरी है। हमारा हिन्दुस्तानी होना हमारी कई समस्याओं का समाधान है। महात्मा गाँधी ने राष्ट्रभाषा के लिए हिन्दुस्तान को ही चुना था और अपनी दूरदर्शिता से ये समझा था कि भाषा बोलने वालों को इतनी छूट तो

मिलनी ही चाहिए कि उनके सामने अपनी ज़ुबान में हिन्दुस्तानी बोली जाए। गुजराती, गुजराती लहजे में तो तमिल, तमिल लहजे में हिन्दुस्तानी बोलें। ठीक इसी प्रकार हमारा हिन्दुस्तानी होना ही हमारा ध्येय हो, यही हमारी मंजिल है। राही मासूम रज़ा 'टोपी शुक्ला' में इन्हीं विचारों का समावेश करते नजर आए हैं। अंततः हम कह सकते हैं कि 'टोपी शुक्ला' उपन्यास वर्तमान समय में उतना ही महत्व रखता है जितना उस समय था। आज सांप्रदायिक उन्माद के इस दौर में 'टोपी शुक्ला' का हिन्दुस्तानी होना हमें हिन्दुस्तानी संस्कृति पर गर्व करना सिखाता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *रज़ा, राही मासूम : टोपी शुक्ला, (भूमिका से), 1968 ई., राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–14, पृष्ठ–26*
2. *वही : पृष्ठ–13*
3. *वही : पृष्ठ–09*
4. *वही : पृष्ठ–09*
5. *वही : पृष्ठ–09*
6. *वही : पृष्ठ–49*
7. *वही : पृष्ठ–11*
8. *वही : पृष्ठ–17*
9. *वही : पृष्ठ–24*
10. *वही : पृष्ठ–53*
11. *सिंह, कुँवर पाल : 'राही और उनका रचना संसार', टोपी शुक्ला : धर्मनिरपेक्षता की त्रासदी (आलेख), शिल्पायन, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ–174*
12. *रज़ा, राही मासूम : टोपी शुक्ला, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1968, संस्करण–14, पृष्ठ–57*
13. *सिंह, कुँवर पाल : 'राही और उनका रचना संसार', टोपी शुक्ला : धर्मनिरपेक्षता की त्रासदी (आलेख), शिल्पायन, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ–174*
14. *वही : पृष्ठ–175*
15. *रज़ा, राही मासूम : टोपी शुक्ला (भूमिका से), 1968 ई., राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–05*
16. *मणि, रघुवंश : 'राही और उनका रचना संसार', (संपादक कुँवर पाल सिंह), टोपी का आसपास हमारा भी आसपास है (आलेख), शिल्पायन, दिल्ली, 2004, पृष्ठ–181*

Enviornmenal Concerns in Kautilya's Arthasastra

SHODH SHREE
ISSN 2277-5587
RNI RAJHIN/2011/40531
shodhshree@gmail.com

Dr. Richa Sikri
Assistant Professor, M.L.N.College, Radaur (Haryana)

Abstract

The 'Arthasastra' of Kautilya is a famous book on state-polity. He discussed seven angas to govern a state. These were Raja, Amatya, Kosa, Durg, Sena, Janapada and Mitra. While giving insights about these angas, Kautilya also showed his concern for sustaining, maintaining and preserving bio-diversity, nature and natural objects. He knew that welfare of everyone depends on the welfare of nature and environment. Kautilya in the Arthasastra advised to State or King to built Deer park, Hasti vana, Abhay vana, reservoir, waterways, forests etc. He showed his concern for nature and natural objects. The Arthasastra gives a list of protected birds and animals which should not be killed. There were rules and regulations for treating animals and if someone did otherwise had to face consequences.Kautilya was very vocal about protecting forests, trees and water sources. Both are essential for welfare of everyone. There were officers to protect trees and forests. Similarly water is required for every human, economic and other activity. It was crime to harm trees or contaminate water. This shows that Kautilya knew very well the importance to neat, clean and hygienic environment which should be free from the poisonous gases, pollution free and clean water. There are necessary for the welfare of everyone. The present crisis which the world is facing Covid-19 Pandemic might be the cause of negligent behaviour towards nature. The pandemic must have taught a lesson 'don't misuse nature'.

Key Words : *Pandemic, Covid-19, Bio-diversity, Ecology, Welfare.*

The Arthasastra is a famous book written on Statecraft by Kautilya better known as Chanakya. Chanakya was a famous Mentor and Prime Minister of Mauryan Empire which was established by Chandragupta Maurya in the fourth century BCE. Kautilya in his 15 Adhikaranas, 150 Adhyayas (Chapters), 180 Prakaranas and 6000 verses[1] gives in detail insight to run a state. He touched almost all the constituents of the state from king to ministers to officials to common people to birds and animal. The most important duty of the state is to think about the welfare of everyone living within it's boundaries. Kautilya says in the Arthasastra that, "In the happiness of his' subjects lays the King's happiness and in their welfare is his welfare. He shall not consider good only that which pleases him but which pleases to his subjects"[2]. (प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां चहिते हितम् । नात्मप्रियं हितं राज्ञःप्रजानां तु प्रियं हितम् ।) This shows that Kautilya considered the welfare of people utmost. The welfare of people was dependent on good governance, society, economy, justice, law and order, environment etc. Kautilya discusses all these components of welfare and also shows concerns for environment. He knew very well that everything can only sustain if balance with nature remains maintained otherwise it would bring

disaster. The present crisis of Covid-19 Pandemic and before that many environmental problems are proof of it.

The world has progressed substantially in the last ten or fifteen years in the field of science and technology. Every Nation wants to emerge strong and powerful. This led to overuse of resourses, cutting of jungles, killing of birds and animals, emission of green house gases, ozone depilation etc. The progress and desire to overpower nature knowingly or unknowing brought doom or destruction. The pandemic which has erupted suddenly might be result of science and technological development, destroying bio-diversity and ignoring the laws of nature.

Kautilya knew this fact very well that, 'In the welfare of all wellness of environment or nature is very important. The welfare of all depends on the behaviour and attitude of people. People with good qualities and habits would be sensitive towards the needs, wellbeing and welfare of others. He says in the Arthasastra that, "kindness is the root of dharma"[3]. He further says that, "one who works for others is a good person"[4]. The qualities like kindness, empathy, concern for others make people concerned towards nature, environment, society and nation. The selfishness makes one insensitive and mean which is harmful for society and environment.

Indian tradition always had reverence for nature. The proof of it is Harappa and Post Harappa civilizations where stress was given on maintaining, sustaining and preserving ecology, nature and natural objects. The remains of Harappa civilization shows that this civilization considered the value of trees, water, birds and animals. The images, statues and picture of trees and animals made on seals are proof of it. The Great Bath of Mohenjodaro, reservoir in Dholavira and wells in every house shows importance and regard for water. The respect and regard for nature remained continued in Post Harappa Period. The Mantras of Rg Veda and other Vedas are addressed to nature and natural objects like water, rivers, air, fire, plants, trees, mountains etc. The Swastivachan desires from God that "let your eight elements- the heaven, space, earth, water, medicines, flora, vishvay deva and Brahma spread peace in the universe and ensure the well being of all". (ॐ स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो वृहस्पतिदधातु।।) This proves that nature, ecology and natural objects were always considered worthy to worship. The well being of one is dependent on the well being of other and vice versa. If this equation changes or alters it become disastrous.

The Arthasastra of Kautilya not only discusses about a state but also many departments to run a state smoothly. These departments not only look after the citizens of the state but also deal with welfare of fauna and flora. It is the duties of State or King to built or look after the resources, waterways, reservoir, pastures, forests, birds and animals[5]. This in boarder sense shows Kautilya's concern for environment and eco-system. In Mauryan times jungles were cut down for agriculture, development of cities, industries etc. to which Kautilya thought that it could pose a threat to the balance of eco-system and bio-diversity.

The Arthasastra is very vocal about the welfare of natural resoures, birds and animals. There were officers like Kupyadhyaksha(Chief Superintendent of Forest Produce), Sunadhyaksha (Chief Protector of Animals and Controller of Animal Slaughter), Go-adhyaksha(Chief Superintendent of Crown Herds), Ashvadhyaksha (Chief Commander of Cavalry), Hastyadhyaksha (Chief Commander of Elephant Crops) and Vivitadhyaksha (Chief Controller of Pasture Lands)[6] etc. for the welfare of environment and if someone did otherwise there were also provisions for punishment.

Kautilya gave much attention on the well being of animals. The reason might be that the animals were one of the main sources of economy not

ISSN 2277-5587

only at that time even today they play an important role. Animals were used for agriculture, transportation, army purposes, dairy products, woolen cloths etc. The Arthasastra gives a long list of animals[7] which should be taken care of. These are cows, bulls, buffaloes, goats, sheep, horses, donkeys, Camels and pigs. There were many animals that were declared as protected species. These were Sea fish which have strange or unusual form; fresh water fish, game birds or birds for pleasure like curlew, osprey, datyuha, swan, chakravaka, pheasant, bhringaraja, partridge, mattakokila, cock, parrot and mynah and all auspicious birds and animals.[8] All these animals should be protected from all dangers, injury, hurting and killing. The reason behind protecting these animals, birds and fishes is that these are necessary for food chain and bio-diversity, moreover required for agriculture, carrying load, transportation and keeping water algae free and clean.

Animals could not be mal-treated, tortured or hurt. If animals were found grazing where they should not, they were being driven out without hurting and if necessary only with use of a rope or a whip[9]. (पशवो रश्मिप्रतोदाम्यां वारयितव्याः) Kautilya gives a long list of punishments and fines for killing, inciting to kill, stealing or inciting to steal, injuring, causing bleeding or wounds to animals. (तेषामन्यथा हिंसायां दण्डपारूष्यदण्डाः) If a calf, bull or milch cow was killed or tortured to death, the person responsible for the act was punished with 50 panas[10]. Small animals if injured with stick had to punish with 1 to 2 panas[11] and for big animal had to pay 2 to 4 panas[12] and the cost of treatment[13]. The theft of animals was also punishable offence and punishment depends on the size, place and usefulness of animal.

The animals should be thoroughly taken care if these went for bath or to drink water. These should be taken to that water resource where proper ghats were available, land would not be slippery[14] and no danger of wild animals. Kautilya also wanted that the animals should be saved from thieves, wild animals, poison and other dangers[15].

Kautilya was also concerned with the well being of old, sick, lame and blind animals[16]. The animals like cow and horse did not remain valuable then also these were not be discarded rather these were treated well and there were provisions for their welfare. There were officers to take care of cows, horses and elephants. Cows played important role in agrarian economy and horses and elephants were at that time considered crucial limbs of army. There were veterinary doctors to treat sick horses, elephants and other animals. If the sick animal's condition get worsen due to the wrong treatment or carelessness of veterinary doctor he was also liable to punishment. The sick animal if cured he had to pay twice the cost of treatment and if that animal dies[17] doctor had to pay according the value of the animal.

There was mention of sanctuaries or Abhay (Protected) Vana in the Arthasastra where animals were kept for their safety, survival and protection[18]. These were administered by the state. The animals could not be slaughtered in sanctuaries and if anyone tried to trap, attack or kill animals had to pay hefty fine[19]. But if any animal became dangerous it was first taken out from the sanctuary and then killed. This shows that Abhay Vanas gave full life protection to animals. The Reserve Parks which are made today in different parts of the country to protect endangered species is not a new concept. It was even prevalent in c. 4 century BCE. The Indian Government has established many Tiger Reserve Parks to protect and increase the number of tigers.

Kautilya was in favour of proper utilization of all resources of the state. He was of the view that the land which could not be used for agrarian purpose should be used for making pastures for animals[20] where these could roam freely. Besides

that Deer Park[21] should be developed where animals from other countries could be kept. He also wanted to established Hasti Vana[22] or jungle for elephants.

The Arthasastra discuss the importance of forests. Forestry was not only one of the sources of income for the state but also essential for the well being of environment and ecology. Kautilya was very much aware of the importance of jungles and trees. As boundaries of Mauryan Empire were increasing, trees and forests were fallen down for agriculture land, it became necessary to grow more and more trees and jungles for the well being of all. There was a forest department and its chief was known as 'Kupyadyaksha'. The chief of forests had to look after well being of trees, forests, plants, creepers etc. or in broader sense the well being of environment.

Kautilya gives a long list of different kinds of tress, plants, creepers etc. and its usages. The trees like Teak, Mimosa, Pine, Sal, Arjun etc. were used for timber[23]. In Mauryan times building were made of wood and the remains of Mauryan Sites at Kumarhrar and Bulandibagh are proof of it. Besides trees the Arthasastra tells about different kinds of creepers[24], bamboos[25] and various kinds of plants used for writing material[26], colouring clothes[27], making ropes[28] and medicines[29]. There were poisonous plants[30] also. There were persons who take care of jungles and trees. Forests are essential as they absorb harmful atmospheric gases, stop soil erosion, source of oxygen, habitat of birds and animals. Anyone tried to harm plants and trees in city parks, sanctuaries, holy places and cremation grounds particularly which gave fruits, flowers or shade were punished with fines. (पुण्यस्थानोदक स्थानदेवगृह –राजपरिग्रहेषु प्रणोत्तरा) If leaves of fruit, flower and shade giving trees were damaged fine was 6 panas[31], 12 panas for harming small branches[32] and 24 panas[33] for big branches, half lowest daringness punishment for cutting off trunks[34] and middle daringness punishment for uprooting a tree[35]. The punishment increased if trees on boundaries, temples, marked by state or of state forests were harmed[36]. If a person set fire in pastures, fields, forests or jungle of elephants he should be burnt in fire[37]. The severity of punishment shows the value of trees and nature.

The Arthasastra understands the importance of water. Water is essential for all living beings all human activity is dependent on it. It is required for agriculture, industries and other economic activities. The source of Water Rivers and Seas are considered sacred. The Arthasastra is of the view that rivers should be worshipped on full moon or other auspicious dates[38]. If rain does not come Ganges and seas should be worshipped[39]. If heavy rains or floods come yajnas and japas should be performed. Kautilya wanted that dam should be built on large reservoir where water comes continuously or perennial. If people themselves wanted to build a reservoir or a canal, state should help them by giving land or any other help like tools etc[40]. Severe punishment was given if someone tried to pollute water or damage source of water. The punishment for breaking the dam on reservoir was death by drowning in the same place. If someone tried to damage dam of that reservoir which had no water was given punishment of first daringness and if dam was already broken then also tried to harm that punishment was of Middle daringness[41]. No one was allowed to pollute water by urinating or defecating in it. (विष्ठा दण्डाः। मूत्रेष्वर्धदण्डाः) It was a punishable offence. This shows that water was considered highly valuable and precious.

Kautilya not only tells the duties of state but also the manners, etiquettes and behaviour that should be followed by the citizens of a state. It is the duty of people to keep the environment of their villages, towns and cities neat and clean. This would help them to live in a healthy, hygienic and good atmosphere. The Arthasastra gives great importance to cleanliness and sanitation. It

was compulsory for every house to make toilet and proper drains[42]. No one can urinate or defecate in or near a holy place, a water reservoir, a temple, road or a royal property[43]. If one does heavy fine was imposed. Dirt was not allowed to be thrown on the streets and particularly on royal highways[44]. A public path or road including forest paths and roads to cremation ground should never be obstructed. If someone damaged the public property like plants and trees in city parks, sanctuaries, holy places and cremation grounds particularly those which bear fruits, flowers or provide shade had to pay fine. Town planning was also done by taking care of cleanliness. It was compulsory to make a toilet, drains and a well for clean drinking water in each house. It was the duty of the head of city to take care of water sources like rivers, ponds and wells etc[45]. The provision of different kinds of punishments for killing, hurting and torturing of birds and animals, cutting of trees and jungles, damaging water resources or polluting them shows that Kautilya was very much aware with the importance of these natural resources and wanted to maintain, sustain and preserve bio-diversity and ecology for survival. The 'well being of all is dependent on well being of environment'. This led Kautilya to impose on state to develop these resources and to people to use these resources carefully, judiciously and without harming or damaging. If otherwise there were provisions of punishment. The Yajur Veda is also of the view that resources should be used with sacrifice and only that much which is required or essential and rest should be left for others or generation to come[46]. (तेन व्यक्तेन मुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ।)

Conclusion

Thus the present Pandemic has proved that if nature is ignored it will take care of itself with vengeance. The pandemic which proved fatal for humans has proved beneficial for environment. Last ten or fifteen years the technology made giant leap. The cutting of number of trees and jungles for development, increase in population, excess use of pesticides and chemicals, mobile phone towers, increase in traffic, green house gases etc. have destroyed the natural balance. Everyone was indifferent towards nature and nothing substantial was done in this regard. The pandemic stopped the human movement or activity and confined them to their homes. This proved boon for nature, air become pure, seas, rivers, lakes and ponds clean, birds and animals were saved. This shows that nature rejuvenate itself. It does not require human effort and all human efforts for progress in previous years damage the environment. Kautilya was right that it is the duty of state as well as of the people to take care of the resources, environment, cleanliness, hygiene, jungles, rivers, birds and animals because our well being and survival is dependent on their well being and survival.

References

1. *Arthasastra , translated by Udaiveer Shastri, 1.1.163, part I, Delhi, 1969 p.8*
2. *Arthasastra, 1.19.39*
3. *Kautilya Arthasastra, Part III, Chanakyapraneet Sutra, 236, P.316*
4. *Ibid, sutra 299, p.320*
5. *Arthasastra , 2.2.1*
6. *Rangarajan,L.N., Kautilya The Arthashastra, New Delhi 1992, p. 305-306*
7. *Arthasastra, 2.26,8*
8. *Rangarajan, L. N., loc.cit., p.320*
9. *Arthasastra , 3.10.46*
10. *Ibid , 2.26. 13-15*
11. *Ibid , 3.19.43*
12. *Ibid, 3.19.44*
13. *Ibid , 3.19.45*
14. *Ibid , 2.29.21*
15. *Ibid, 1.45*
16. *Ibid , 2.29.4*
17. *Ibid , 2.30.53-54*
18. *Ibid , 2.26.1*

19. *Ibid, 2.26.3-4*
20. *Arthasastra ,2.2.2*
21. *Ibid,2.2.6*
22. *ibid,2.2.8*
23. *Ibid,2.17.4*
24. *Ibid,2.17.6*
25. *Ibid,2.17.5*
26. *Ibid,2.17.9*
27. *Ibid,2.17.10*
28. *Ibid,2.17.8*
29. *Ibid,2.17.11*
30. *Ibid,2.17.12*
31. *Ibid,3.19.46*
32. *Ibid,3.19.47*
33. *Ibid,3.19.48*
34. *Ibid,3.19.49*
35. *Ibid,3.19.50*
36. *Ibid,3.19.53*
37. *Arthasastra,4.11.29*
38. *Ibid,4.3.14*
39. *Ibid,4.3.16*
40. *Ibid,2.1.22-23*
41. *Ibid,4.11.24-26*
42. *Ibid,3.8.7*
43. *Ibid,2.36.33-34*
44. *Ibid,2.36,30-32*
45. *Ibid,2.36.56*
46. *Yajur Veda, 40.1*

An Inter-Regional Analysis of Livestock Population in Rajasthan

Yashpal Meena
Assistant Professor, Jai Narain Vyas University, Jodhpur

shodhshree@gmail.com

Abstract

Cattle's rearing is believed to be among the first steps of primitive man towards civilization. Livestock has been played a crucial role in the development and progress of mankind. It has provided human beings with clothing and nutrition besides helping in transport and agricultural operations. They have been also mute companions to humans. Several farm studies carried out in different parts of the country over year's show that about 20-30 per cent of the total working time of farm workers is spent on maintenance of livestock and related activities. In India, approximately 70 per cent of the population is engaged in agriculture and rearing of livestock is subsidiary activity of agriculture. There exists a symbiotic relationship in man-land-livestock ecosystem. Livestock comprising mainly cattle and buffaloes have a complementary, supplementary and sustainable relationship with crops under mixed farming system prevalent in our country. Livestock also serve as an insurance cover for the poor households being sold during time of distress. Milk and milk products plays a vital role in the county's agriculture economy, being the second largest contributor to the gross agriculture produce. In Rajasthan, near about 65 percent of the population is engaged in agriculture and cattle rearing activity.

Key Words: *Cattle Rearing, Livestock Population and Potential, Inter-regional Analysis.*

In India, about 70 per cent of the population is engaged in agriculture and rearing of livestock is subsidiary activity of agriculture. Livestock comprising mainly cattle and buffaloes have a complementary, supplementary and sustainable relationship with crops under mixed farming system prevalent in India. The Livestock Census is conducted across the country periodically since 1919. The Department of Animal Husbandry and Dairying under Ministry of Fisheries, Animal Husbandry and Dairying, Government of India collect the data related to livestock in India with the help of Animal Husbandry and Dairying departments of the states. In October 2019, the Department of Animal Husbandry and Dairying of India released provisional data for 20th Livestock Census 2019. This Census was carried out in about 6.6 lacs villages and 89 thousand urban wards across the country covering more than 27 crores of households and non-households. The key results of 20th Livestock Census 2019 are shown in table 1 given below

Table 1: Key Results of 20th Livestock Census 2019 of India.

S. No.	Different Livestock Species	Population Census 2019 (Millions)	Increase over Census 2012 (Percent)
1	Total Livestock Population	535.78	4.6
2	Bovine Population (Cattle & Buffalo)	302.79	1.0
3	Cattle Population	192.49	0.8
4	Female Cattle Population (Cows)	145.12	18.0
5	Crossbred Cattle Population	50.42	26.9
6	Indigenous Female Cattle Population	142.11	10.0
7	Buffalo Population	109.85	1.0
8	Milch Animals (Cows & Buffaloes)	125.34	6.0
9	Sheep Population	74.26	14.1
10	Goat Population	148.88	10.1

Source: Livestock Census 2019, Department of Animal Husbandry and Dairying, New Delhi.

Table 1 clearly shows that Crossbred Cattle Population has highest increase of 26.9 per cent over Livestock Census 2012 while lowest increase was reported in Cattle Population. The increased in Total Bovine Population and Buffalo Population was one per cent only. The Total Livestock Population is 535.78 million in the country showing an increase of 4.6 per cent over Livestock Census 2012. The highest increased was found in Crossbred Cattle Population followed by Female Cattle Population and Sheep population.

Distribution of Livestock Population: Various species of animals like Cattle, Buffalo, Mithun, Yak, Goat, Sheep, Pig, Horse, Donkey, Mule, Camel, Dog, Rabbit, Elephant, Pony and Other animals possessed by the Households and Non-Households in India as well as in the state of Rajasthan. Among these various species of animals five major species; Cattle, Buffalo, Goat, Sheep and Others population had shown in the table 2 and chart 1.

Table 2 : Distribution of Livestock Census 2012 and 2019 of India and Rajasthan.

S. No.	Livestock Species	Livestock in India (Percent)		Livestock in Rajasthan (Percent)	
		2012	2019	2012	2019
1	Cattle	37.28	35.94	23.05	24.47
2	Buffalo	21.22	20.45	22.53	24.11
3	Goat	26.39	27.80	37.55	36.69
4	Sheep	12.70	13.87	15.77	13.90
5	Other	2.41	1.94	1.10	0.83

Source: Livestock Census 2019, Department of Animal Husbandry and Dairying, New Delhi.

Chart 1 : Distribution of Livestock of India and Rajasthan.

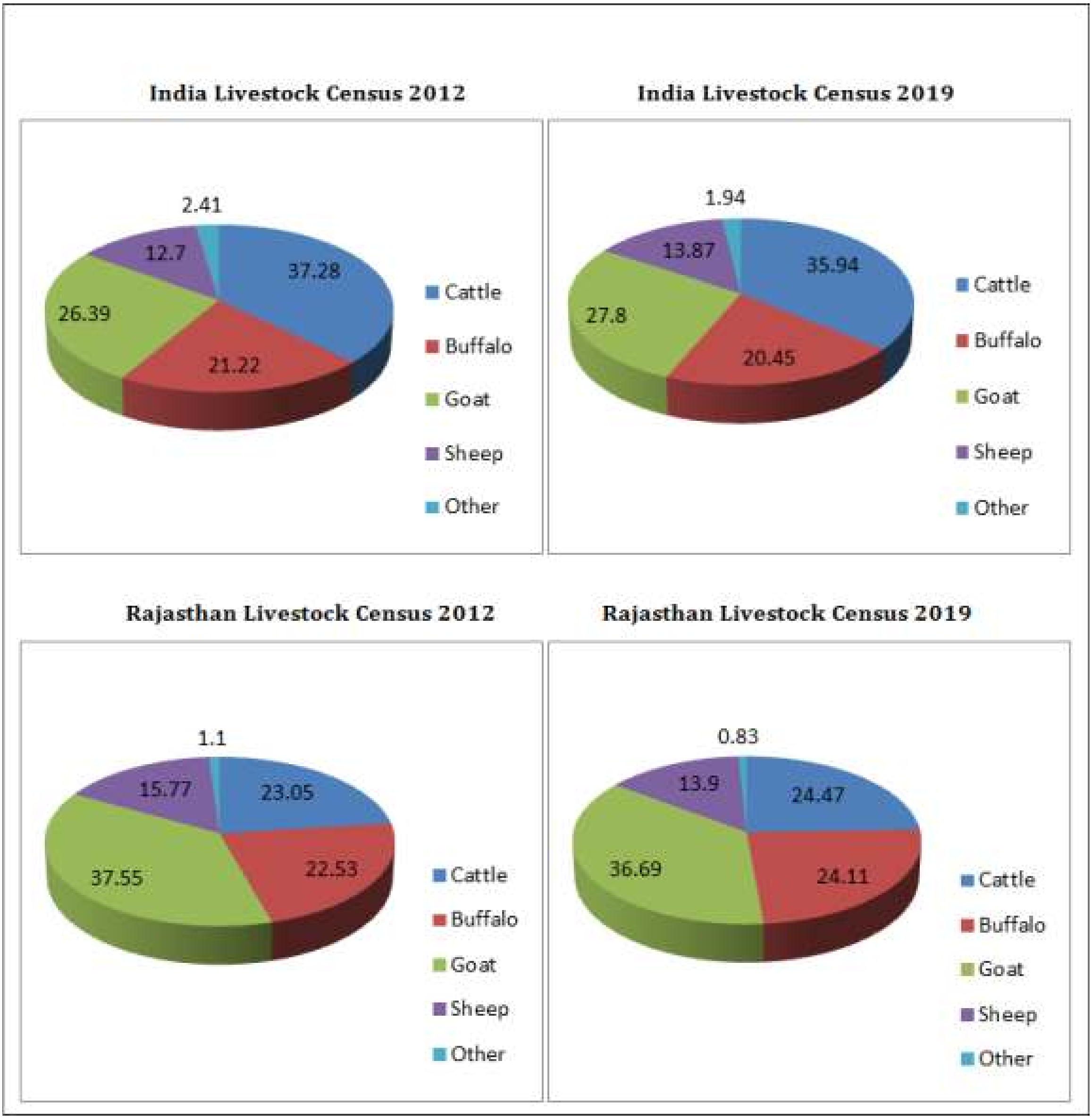

Livestock of Rajasthan

In the economy of Rajasthan, the interdependence of agriculture and animal husbandry is more significant. After agriculture, cattle rearing are the second largest occupation and sources of livelihood in the state, especially for poor and landless laborers. The cattle rearing play a prominent role in the rural economy by supplementing the income of rural household and generating additional income particularly for the landless, small and marginal farmers. It has also provided subsidiary occupation in semi urban area and more so far people living in the hilly tribal area. Beside this, the draft power for agriculture operation and transport has been mainly supplied by bovine and dung is used as organic manure for maintaining the soil fertility on long term basis. It also provides fuel for cooking meal in the rural areas of the state.

Rajasthan accounts for country's 10.40 per cent of geographical area, 5.12 per cent of human population, 5.50 per cent of cattle population, 8.30 per cent of buffalo population, 12.60 per cent goat population and 22.00 per cent of sheep population. In the context of Rajasthan dairy enterprise has special significance because in the state irrigation facilities are available only for 20.00 per cent of the area; rainfall is very low and nearly 80.00 per cent of the area is characterized by either arid or semi-arid conditions. In western desert region of the state with limited farming potential and in southern hilly area due to the lack of agricultural land, livestock provide employment security to the households. It is more stable source of income than farming, since it is less affected by the failure of monsoon as compared to the agriculture of the state.

Rajasthan is considered as a rich state of the country in livestock population. The state has 56.8 million livestock as per Livestock Census 2019 which is 11.12 per cent livestock from total livestock of India. It contributes 11.00 per cent of total milk production of the country. Animal husbandry contributes over 13.00 per cent to the gross domestic product of the state. In the state, livestock and milk production plays more significant role because the 61.00 per cent geographical area of the state is desert and remaining area is hilly and the lot of people of the state are small, marginal farmers and landless agricultural laborers and therefore their crop production does not sustain their families. As such people have maintained large numbers of bovine under the mixed farming system and it is an enterprise to supplement income and reduce under employment of small, marginal farmers and agricultural laborers of the state.

Review of Literature

Significance and role of livestock in rural livelihood has been supported by the following studies. R. P. Singh (2005) concluded from his study that the annual average gross income from livestock was Rs. 4366 per farmers and among livestock, sheep, goat and pigs are important source of income and employment for landless and marginal farmers of Ranchi while dairy animal is an important source of income for small, medium and large farmers.

Podikunju, B. (1999) in his study "A Study on the Role of Women in Livestock Management Practices in Girwa Panchayat Samiti of Udaipur" have also concluded that 49.86 per cent of the family income was received from animal husbandry and they mostly maintained cow and buffaloes for producing good quality draft animal as well as for milk production.

Dutta and Khanna (1999) have analyzed the inter regional disparities of bovine population and concluded that some districts of Rajasthan have witnessed alarming reduction in milch animal population, while in some others focus in on multiplying the milch buffalo population only which may upset the balance between crop and bovine husbandry. A lot of studies have been undertaken on livestock population, bovine population and disparities in milk production therefore a need to focus on livestock disparities with potential in context of Rajasthan.

The present paper tries to analyze the inter-regional disparities and potential of livestock in Rajasthan.

Objectives of the Study

The prime objective is to examine the regional disparity of livestock in Rajasthan. More elaborately, it aims at:

- To analyze the inter-regional disparities of livestock population in Rajasthan.
- To estimate and analyze the potential of dairy development in Rajasthan.

For the accomplishment of the above objectives, following methodology has been applied in the study.

Methodology of the Study

Rajasthan state is purposively selected for the present study. The state is divided into seven political divisions which is as follows; Ajmer, Bharatpur, Bikaner, Jaipur, Jodhpur, Kota and

Udaipur division. Inter-regional disparities is analyzed on the basis of the following indicators; geographical area, number of animal hospitals, livestock population, livestock density, bovine population and human-livestock ratio. The study is mainly based on secondary data of Animal Husbandry published by Revenue Board of Rajasthan, Ajmer.

Arithmetic Mean (A.M.), Standard Deviation (S.D.) and Coefficient of Variation (C.V.) are used for the analysis of regional disparities while Gravity model has been used to find out potential of livestock in Rajasthan.

Model Building: The model equation is as follows:

$$Y_i = \alpha + \beta_1 X_1 + \beta_2 X_2 + \beta_3 X_3 + \beta_4 X_4 + \beta_5 X_5 + \beta_6 X_6$$

Where;

Y_i = Milk production (in litres),

X_1 = Geographical area (in square km.),

X_2 = Number of animal hospitals,

X_3 = Livestock population,

X_4 = Livestock density (livestock per square km.),

X_5 = Human-livestock ratio, and

X_6 = Bovine population.

Livestock Potential: Livestock potential is calculated by the ratio of potential value and actual value as follows:

$$Ratio\ for\ potential\ range = \frac{Potential\ Value}{Actual\ Value}$$

Results and Discussion

This analysis is divided into two parts. The first part deal with inter-regional disparities of livestock population among political divisions of Rajasthan while second describes the livestock potential in all districts of Rajasthan.

1. Regional Disparity of Livestock

The livestock population, bovine population, livestock density, animal hospitals and human-livestock ratio have shown significant regional variations across all divisions of Rajasthan. The clear picture of regional disparities in livestock rearing in the state can be shown by table 3 given below.

Table- 3: Regional Disparity of Livestock in Rajasthan 2007.

Name of Division	Geog. Area (Sq.Km.)	No. Animal Hospital	Livestock Population	Livestock Density	Bovine Population	Human-Liv. Ratio
Ajmer	43848	180	9081883	207.12	8340283	1.11
Bharatpur	18157	130	3623901	199.58	9655282	0.59
Bikaner	64708	153	7573969	117.05	4487856	1.21
Jaipur	36570	284	8237967	225.26	8156697	0.59
Jodhpur	117801	297	16229832	137.77	10223379	1.71
Kota	24205	116	3843631	158.79	6817704	0.81
Udaipur	36950	224	9148135	247.58	6743184	1.13
Mean	**48891.30**	**197.71**	**8248474**	**184.73**	**7774912**	**1.02**
S. D.	**33844.20**	**72.53**	**4212094**	**47.91**	**1948574**	**0.39**
C.V. (%)	**69.22**	**36.68**	**51.06**	**25.93**	**25.06**	**38.88**

Source: Computed from secondary published by Revenue Board, Ajmer, Govt. of Rajasthan.

Table 3 clearly shows the regional disparities of livestock rearing in Rajasthan. Area has highest variation followed by livestock population, human-livestock ratio, number of animal hospitals and livestock density. Among seven divisions Jodhpur has highest geographical area and its clear effect can be seen on livestock population, number of animal hospitals and bovine population while in Bharatpur division livestock and human-livestock ratio is low due to lowest geographical area. Livestock density and bovine population has equal variation. As such Udaipur division has highest livestock density due to lack of agricultural land, animal husbandry is the only source of their livelihood.

2. Potential of livestock

The statistical analysis of livestock potential indicates that seven out of thirty two districts lies in high potential range while twelve lies in moderate range. It means around sixty per cent districts have huge potential for livestock rearing in the state which is shown in table 4 given below.

Table- 4: Potential of Livestock in Rajasthan.

S. N.	Range of Potential	Number of Districts	Name of Districts of Rajasthan
1	High (> = 1.5)	7	Bhilwara, Chittorgarh, Dausa, Dungerpur, Kota, Pali, Tonk.
2	Medium (1.0 - 1.5)	12	Banswara, Barmer, Bundi, Churu, Dholpur, Jhalawar, Sirohi, Jhunjhunun, Jodhpur, Rajsamand, Sawai Madhopur, Udaipur.
3	Low (0.0 - 1.0)	13	Ajmer, Alwar, Baran, Bharatpur, Bikaner, Hanumangarh, Jaipur, Jaiselmer, Jalore, Karoli, Nagaur, Sri ganganagar, Sikar.

Source: Computed from secondary published by Revenue Board, Ajmer, Govt. of Rajasthan.

Table 4 reveals that seven districts; Bhilwara, Chittorgarh, Dausa, Dungerpur, Kota, Pali and Tonk have high potential for livestock rearing due to low livestock density and human-livestock ratio. Further table reveals that twelve districts of state; Banswara, Barmer, Bundi, Churu, Dholpur, Jhalawar, Sirohi, Jhunjhunun, Jodhpur, Rajsamand, Sawai Madhopur and Udaipur have moderate potential because of favorable conditions for animal husbandry. So in these districts there will be potential for animal husbandry. Similarly the indicators of livestock shows that Ajmer, Alwar, Baran, Bharatpur, Bikaner, Hanumangarh, Jaipur, Jaiselmer, Jalore, Karoli, Nagaur, Sriganganagar and Sikar districts have comparatively less potential than other districts of Rajasthan.

Conclusion and suggestions

There is glaring disparities of livestock among the districts of Rajasthan which calls for remedial action through policy intervention and emphasis should laid on regional approach. The empirical evidence of present paper also indicates that there exists huge potential of livestock rearing in the state. There is a need for detail survey on livestock potentiated districts which will provide better base for planning and development of rural households of the state.

References

1. *Administrative Reports on Dairy, Various Issues, Udaipur Zila Dugdh Utpadak Sang Limited (Saras Dairy Udaipur), Udaipur, Rajasthan.*
2. *Annual Progress Reports on Dairy, Various Issues, Rajasthan Cooperative Dairy Federation (RCDF), Rajasthan, Jaipur.*
3. *Basic Animal Husbandry Statistics 2019, Ministry of Agriculture, Department of Animal Husbandry and Dairying, Government of India, New Delhi.*

4. *Dutta, T.N. and R.S. Khanna: Bovine Population in Rajasthan: An Inter-Regional Analysis, Research paper published in Indian Dairyman, 1999, page 31-46.*

5. *18th Livestock Census Rajasthan 2007: Published by Revenue Board of Ajmer, Government of Rajasthan.*

6. *19th Livestock Census Rajasthan 2012: Published by Revenue Board of Ajmer, Government of Rajasthan.*

7. *20th Livestock Census Rajasthan 2019: Published by Revenue Board of Ajmer, Government of Rajasthan.*

8. *18th Livestock Census India 2007: Published by the Department of Animal Husbandry and Dairying, Ministry of Fisheries Animal Husbandry and Dairying, Government of India, New Delhi.*

9. *19th Livestock Census India 2012: Published by the Department of Animal Husbandry and Dairying, Ministry of Fisheries Animal Husbandry and Dairying, Government of India, New Delhi.*

10. *20th Livestock Census India 2019: Published by the Department of Animal Husbandry and Dairying, Ministry of Fisheries Animal Husbandry and Dairying, Government of India, New Delhi.*

11. *Podikunju, B.: A Study on the Role of Women in Livestock Management Practices in Girwa Panchayat Samiti of Udaipur, Unpublished Ph.D. thesis, 1999, Maharana Pratap University of Agriculture and Technology (MPUAT) Udaipur, Rajasthan.*

12. *Rajasthan Livestock Development Board (RLDB), Jaipur, Rajasthan.*

13. *Report on Land and Livestock Holdings, Ministry of Programme Planning and Implementation, National Sample Survey Organization (NSSO), Government of India, New Delhi.*

14. *Singh, R.P.: Livestock in Tribal Economy, Research paper published in Dairy Year Book 2005-06, page 62-65.*

The Challenges faced by Indian Working Women

shodhshree@gmail.com

Dr. Rajesh Kumar Pramanik
Post Doctoral Research Scholar, Kolhan University, Chaibasa (Jharkhand)

Abstract

India is a traditional country and there is diversity in religions, culture and customs. Role of the women in India mostly is household and limited to domestic issues. In some cases women can find employment as nurses, doctors, teachers, caring and nurturing sectors. But even if well qualified women engineers or managers or geologists are available, preference will be given to a male of equal qualification. The present study investigated to identify the factors preventing women employees from aspiring for higher Post and challenges & problems faced by women workers. Further the study try to explain the real condition of Indian working women and also make an effort to clear main problems of working women. The present study undertakes to investigate the so far unexplored problem of Indian working women to balance their personal & professional life now a days. Studies have identified several variables like the size of family, the age of children, the work hours and the level of social support, etc.,

Keywords : *Women Empowerment, Working women, Work-Personal Life Balance, Challenges, Problems, traditional, women workers.*

In the history of human development, women have been as vital in the history making as men have been. In fact higher status for women vis-a-vis employment and work performed by them in a society is a significant indicator of a nation's overall progress. There are many reasons and problems that forced Indian's women to work. The financial demands on the Indian families are increasing day by day. Cost of living, expenses on education of children, and cost of housing properties in India raised and these reason force every family in India to look for ways and means of increasing the household income. As a result, women in India who were mostly known as homemakers are forced to go for jobs and take up even careers that were considered only suitable for men such as working in night shifts. Working women i.e., those who are in paid employment, face problems at the workplace just by virtue of their being women. Social attitude to the role of women lags much behind the law. The attitude which considers women fit for certain jobs and not others, causes prejudice in those who recruit employees. Thus women find employment easily as nurses, doctors, teachers, secretaries or on the assembly line. Even when well qualified women are available, preference is given to a male candidate of equal qualifications. A gender bias creates an obstacle at the recruitment stage itself. When it comes to remuneration, though the law proclaims equality, it is not always practiced. The inbuilt conviction that women are incapable of handling arduous jobs and are less efficient than men influences the payment of unequal salaries and wages for the same job. But in most families her salary is handed over to the father, husband or in-laws.

So the basic motive for seeking employment in order to gain economic independence is nullified in many women's case. Problems of gender bias beset

women in the industrial sector when technological advancement results in retrenchment of employees.Women workers in India are faced with a lot more challenges than their counterparts in the other countries. Besides so many efforts from past years, female section of society is deprived in compared to male section. They are not given first priority in social and economic decisions in her own family. According to United Nations Development Programmer (UNDP) report (2), women areinvolved in doing 67% work of world; still they are socially and economically deprived. They are receiving only 10% of the universal income and have 1% part in global assets. This discrimination also persists in their work place in unorganized sector. In informal sector, women workers don't get same wages for same nature of work for same hours done by men. They are exploited at workplace. They are some acts i.e. The Unorganized Workers Social Security Act, 2008, Domestic Workers Welfare and Social Security Act, 2010 etc. but due to their improper implementation, women workers

are forced to work and live in miserable conditions in unorganized sector.In India mostly it is women who have to do household as cook, clean the house, do the dishes, wash clothes, care of children and men do not share on most of the household works. Men do that work that is to be dealt outside the house. Now a day there is increasing need for getting some income for the family then women have to work harder. Women workers have to handle Persecution's at their work place, sometimes just over look things to ensure that their job is not jeopardized in anyway. Many Indian families are still living as joint families along with the parents and in-laws. This adds to their stress further because they have to please all the family members of her husband. Listen to their complaints that they make against her and turn deaf ears towards them and so on. Overall, majority of women in India look towards or live in the hope that things will change.(3)

Employment Trends for Women in India(4)

The increase in the number of women in the labor market signifies an important trend regarding women's employment. This has been occurring alongside increases in labor force and workforce, especially for urban women, although rural women workers predominate in terms of participation rates and overall magnitude. The increasing share of women's participation in the labor force and its significant contribution to household income as well as GDP require some policy attention be paid to the gender dimensions of employment. The eleventh Five Year Plan document for the first time in the history of Indian planning recognizes women not only as equal citizens but as 'agents of sustained socio-economic growth and change'. A multi-pronged approach is emphasized to address issues concerning women workers, such as provision of basic entitlements and strengthening of institutional mechanisms.The increase in the growth of employment appears to be much higher for female workers compared to male workers. Even where the proportion of working women as reflected in the female work participation rate may be low, the absolute numbers have significantly increased, given the rate of population growth over time. The increase in work opportunities during the early years of the new millennium has been to the tune of 9.3 million jobs per annum (from 1999-2000 to 2004-05). This acceleration in employment growth from 1.25 per cent per annum (1993-94 to 1999-2000) to 2.62 per cent per annum in the period 1999-2000 to 2004-05 (GOI, 2008) has been beneficial to women's participation as well. Of the 46 million job opportunities created from

1999-2000 to 2004-05 (compared to 24 million in the earlier period, i.e., 1993-94 to 1999-2000), nearly 15 million women joined the workforce. Urban areas almost doubled their number of women workers, while in rural areas women workers increased from 9 to 12 million. Are these signs of a gradual but definite wind of change with more women entering the labour market? This positive change is noted more forcefully in the urban context where requisite educational inputs and modern thinking vis-a-vis women's work is increasingly becoming noticeable. Rural agriculture is increasingly drawing women's labour supplies, with over four-fifths of the women in rural areas working in agriculture. This gains significance amidst the declining share of male workers (from 74 per cent in 1993-94 to 66 per cent in 2004-05). Thus it seems that women in rural areas are finding it harder to shift away from agriculture. Involvement of women in agriculture is largely as cultivators/farmers as well as agricultural laborers. However, there has been a slight decline in the share of women as agricultural laborers, while their share among cultivators has increased. In urban areas, women have achieved substantially higher growth of employment in manufacturing and have been able to increase their share, especially after 1999-2000 (from 24 per cent to over 28 per cent in 2004-05). Thus, in urban areas, the share of female workers in manufacturing has increased substantially while that of male workers has not. Even in the services sector, women have gained in terms of employment, especially in the domestic and personal services category.

India's economy has undergone a substantial transformation since the country's independence in 1947. Agriculture now accounts for only one-third of the gross domestic product (GDP), down from 59 percent in 1950, and a wide range of modern industries and support services now exist. In spite of these changes, agriculture continues to dominate employment, employing two-thirds of all workers. India faced economic problems in the late 1980s and early 1990s that were exacerbated by the Persian Gulf Crisis. Starting in 1992, India began to implement trade liberalization measures. The economy has grown-the GDP growth rate ranged between 5 and 7 percent annually over the period and considerable progress has been made in loosening government regulations, particularly restrictions on private businesses. Different sectors of economy have different experiences about the impact of the reforms. In a country like India, productive employment is central to poverty reduction strategy and to bring about economic equality in the society. But the results of unfettered operation of market forces are not always equitable, especially in India, where some groups are likely to be subjected to disadvantage as a result of globalization. Women constitute one such vulnerable group.Since globalization is introducing technological inputs, women are being marginalized in economic activities, men traditionally being offered new scopes of learning and training.

Consequently, female workers are joining the informal sector or casual labor force more than ever before. For instance, while new rice technology has given rise to higher use of female labor, the increased work-load for women is in operations that are unrecorded, and often unpaid, since these fall within the category of home production activities. The weaker sections, especially the women, are denied the physical care they deserve(5). There is, thus, hardly any ability for the majority of Indian women to do valuable functioning; the "capability" to choose from alternatives is conspicuous by absence. Most women in India work and contribute to the economy in one form or another, much of their work is not documented or accounted for in official statistics. Women plow fields and harvest crops while working on farms, women weave and make handicrafts while working in household industries, women sell food and gather wood while working in the informal

sector. Additionally, women are traditionally responsible for the daily household chores (e.g., cooking, fetching water, and looking after children). Although the cultural restrictions women face are changing, women are still not as free as men to participate in the formal economy. In the past, cultural restrictions were the primary impediments to female employment now however; the shortage of jobs throughout the country contributes to low female employment as well. The Indian census divides workers into two categories: "main" and "marginal" workers. Main workers include people who worked for 6 months or more during the year, while marginal workers include those who worked for a shorter period. Many of these workers are agricultural laborers. Unpaid farm and family enterprise workers are supposed to be included in either the main worker or marginal worker category, as appropriate. Women account for a small proportion of the formal Indian labor force, even though the number of female main workers has grown faster in recent years than that of their male counterparts.

Review of Literature

Review of related literature is an important research effort as it provides comprehensive understanding of what is already known about the topic.

Jyoti, Kiran, (1994)(6)in her book “Women Labourforce and National Product” emphasized on contribution of women employees in national development and growth. The book covers significant characteristics of women employees which make them more comfortable at job place. The author tries to point out the participation of women employees at different level. The book explained adverse effect of gender based discrimination on the overall performance of women employees. It also stated the various problems faced by women employees are more practical and reliable.

Narasaiah, Lakshmi, (1999) (7) in her book “Small Scale Industry” has given detailed information about the procedure of small scale industrial unit. It has explained that small scale industries contribute significantly to the straightening of the industrial structure. It serves as seed beds of entrepreneurship. They serve the developing economy not only by their output of goods but also by functioning as a nursery of entrepreneurial and management talent. The book stated that the role of small scale industrial units is of decisive importance in any economy. According to Narasaiah Lakshmi such industries lead to the creation of employment opportunities as a dispersed basis not only in large cities and towns but also in smaller towns and far flung regions. The book covers various suggestions to remove problems of unemployment from rural as well as urban areas.

Nath, Madhuri, (2003) (8) in her book “Rural Women Workforce in India”, highlighted the role of women in rural transformation of India. Mrs. Nath has fully justified the inevitability of the effective use of rural women workforce in dynamics of development of rural India. The book covers various problems faced by women employees which will help in making women movement in India more effective and will be proved helpful for women welfare in transitional society.

Das, Divya (2010) (9) in her article work life balance of women professionals edited in Advance in management monthly journal illustrated the current workplace conditions and some of the reasons causing imbalances in work and life. The article covers life of working women and the hazards and problems they face at work and in family life.

Factor analysis was performed on the survey and it was found that two factors namely psychological and cognitive factor and organizational climate factor are the causes of work life imbalances among women workers. The book covers a very intelligent conclusion which recommends that organizations may use

the insights to mitigate voluntary turnover among women employees and increase the workforce diversity.

Mitra (1997) analyses the causes and comes to some important conclusions: "Relationship between women and professions could be perceived as one of women in full-fledged professions, medicine, law, academics, etc and another in the semi-professions-like nursing, teaching, clerks etc."

Okolo (1989) studied that another obstacle is the lack of role models of executive women due to their scarce presence in top managerial positions. Likewise, this study found out that there 18 is no gender difference in organizational hierarchies when a woman has already gained access to them. "The lack of impact in women can occur because executive and managerial women have developed survival features becoming immune to the effects of men's hierarchies. A hierarchy composed by men solely may have an effect upon the election of a managerial board, and then its further influence is not very strong."

Ronald J. Burke, Mustafa Koyuncu and Lisa Fiksenbaum (2010) examined the relationship of the perceived presence of organizational practices designed to support women's career advancement and their work attitudes and satisfaction and their psychological well-being. Data were collected from 286 women in managerial and professional jobs working in a large Turkish bank, a 72 percent response rate. Five organizational experiences were considered: negative attitudes towards women, equal treatment, support, career barriers and male standards. Women reporting more supportive organizational experiences and practices were more engaged in their work, more job and career satisfied, and indicated greater levels of psychological well-being."

Wentling (2003) showed that the twin roles of women cause tension and conflict due to her social structure which is still more dominant. In her study on working women in Delhi, she has shown that "traditional authoritarian set up of Hindu social structure continues to be the same basically and hence women face problem of role conflict change in attitudes of men and women according to the situation can help to overcome their problem."

Sophia J. Ali (2011) "investigated the challenges facing women in career development. She found that most of the women employees were dissatisfied with career development programmers and women were discriminated against in career development opportunities. The study recommended that organizations should strive to ensure that career development programmers were set to enhance career development among-st women employees. Top management should also be committed to the career development of women, and organizations should also introduce affirmative action to urgently address career development of women."

Objective of the Study

To identify the problems faced by women workers in India.

To clear main problems of working women.

To identify the factors preventing women employees from aspiring for higher post and challenges & problems faced by women workers.

Methodology

The method used in this paper is descriptive-evaluative method. The study is mainly review based. It is purely supported by secondary source of data, i.e. books, journals, papers and articles and internet.

Problems faced by working women in India Occupational problems as stress In women Occupational stress is stress involving work. Work and family are the two most important aspects in women's lives. Balancing work and family roles has become a key personal and

family issue for many societies. There are many facets in working mother's lives that subject to stresses. They deal with home and family issues as well as job stress on a daily basis.

World Health Organization's (WHO) definition Occupational or work-related stress "is the response people may have when presented with work demands and pressures that are not matched to their knowledge and abilities and which challenge their ability to cope."

Reasons of Occupational Stress

Imbalance between work and family leads to occupation a stress. Imbalance between work and family life arises due to a number of factors. Various factors are following.

Mental Harassment

It is an age old convention that women are less capable and inefficient in working as compared to men. The attitude which considers women unfit for certain jobs holds back women. In spite of the constitutional provisions, gender bias creates obstacles in their recruitment. In addition to this, the same attitude governs injustice of unequal salaries for the same job. The true equality has not been achieved even after 61 years of independence. Working in such conditions inevitably puts strain on women to greater extent as compared to men, thus making them less eager in their career.

Sexual Harassment

Today, almost all working women are prone to sexual harassment irrespective of their status, personal characteristics and the types of their employment. They face sexual harassment on way on transports, at working places, educational institutions and hospitals, at home and even in police stations when they go to file complaints. It is shocking that the law protectors are violating and outraging modesty of women. Most of the women tend to be concentrated in the poor service jobs whereas men are in an immediate supervisory position, which gives them an opportunity to exploit their subordinate women.

Discrimination at Workplace

However, Indian women still face blatant discrimination at their workplaces. They are often deprived of promotions and growth opportunities at work places but this doesn't apply to all working women. A majority of working women continue to be denied their right to equal pay, under the Equal Remuneration Act, 1976 and are underpaid in comparison to their male colleagues. This is usually the case in factories and labor-oriented industries.

No Safety of Working Women While Traveling

Typically, the orthodox mindset in the Indian society makes it difficult for a working woman to balance her domestic environment with the professional life. In some families, it may not be acceptable to work after six o'clock. Those families that do accept these working hours may experience considerable anxiety every day about a woman's safety while travelling. So many issues affect a working woman because she is closely protected or watched by her family and the society.

Lack of Family Support

Lack of proper family support is another issue that working women suffers from. At times, the family doesn't support women to leave the household work and go to office. They also resist for women working till late in office which also hampers the performance of the women and this also affects their promotion. Insufficient Maternity Leaves Insufficient maternity leave is another major issue that is faced by a working mother. This not only affects the performance of women employees at work, but is also detrimental to their personal lives.

Job Insecurity

Unrealistic expectations, especially in the time of corporate reorganizations, which sometimes puts unhealthy and unreasonable unreasonable

pressures on the employee, can be a tremendous source of stress and suffering. Increased workload extremely long work hours and intense pressures to perform at peak levels all the time for the same pay, can

actually leave an employee physically and emotionally drained. Excessive travel and too much time away from family also contribute to an employee's stressors.

Workplace Adjustment

Adjusting to the workplace culture, whether in a new company or not, can be intensely stressful. Making oneself adapt to the various aspects of workplace culture such as communication patterns of the boss as well as the co-workers, can be lesson of life.

Maladjustments to workplace cultures may lead to subtle conflicts with colleagues or even with superiors. In many cases office politics or gossips can be major stress inducers.

Other Reasons

it include Personal demographics like age, level of education, marital status, number of children, personal income and number of jobs currently had where you work for pay and Work situation characteristics like job tenure, size of employing organization, hours worked per week.

Statement of the Problem

Indian women are allowed to work in today's life; but still they are facing lot more problem in social as well professional life to balance both as priority need. Indian Working are not supposed to do extra hours' duty or night shift work as lack of family support. In case of married working women are not allowed many times to go business tour as not permitted by family member. Also women are not getting enough maternity leave at workplace even if she wants paid leave then also it's not consider due to organizational constraint because of this she loses her job or do compromise more. If women are in higher position at workplace the she has many more responsibility then also they have to come at home right time, cook, clean, take care of their family member. It creates more stress & its effect to some health problem. Due to lack of leave, sometimes working women are not able to attend family function. Working women do not properly take care of family member. Working women having very young child, they are forced to leave child for work responsibility and she has to think about day care maid of her child who might not be faithful enough. Although she has to hire maid for child care at home which whom they have to pay more. This create more tension and stress to her & lack of concentration in their work. Gender discrimination is another problem faced by women in case of pay. In some companies women employees are paid less salary than men. This research is to find out more challenges faced by Indian working women. Still in 21st century there is a belief that women are not capable enough to work in some professional field like transportation, civil construction, electricity department, etc.

Conclusion

Now a day's women workers are improved and promote in their workplace and in technological work. Trade Union should try to improve the conditions for woman's workers in many parts for example maternity leave is easily give to women and help the woman for achieve higher post actually women's nature is promotion to gain high quality in every field but if the condition is not ready then the reduction of promotion and optimization in work will be occur and etc. Women workers are often subject to sexual harassment then the Government should put strict rules for these types of crimes , also public transport system sometimes danger for woman and Government should put more Inspection. Traditionally people think that men should only work and gain money and women should work as house hold, but The financial demands on the Indian families. Fundamental

change is required in attitudes of employees, family members and public.

References

1. *Dashora, " Problems Faced by Working Women in India", "International Journal of Advanced Research in Management and Social Sciences", 2013, P-82.*
2. *Aditi, M, "feminist organizing in India, a study of women in NGOs", "Aditi-Mitra-Feminist-Organizing-In-India-A-Study-Of-Women-In-Ngos", 1997, P-26.*
3. *Kumari,V, "Problems and Challenges Faced by Urban Worming Women in India", "A Dissertation Submitted to the Department of Humanities and Social Sciences", 2014, P-65.*
4. *Kumar, P. & Sundar, K, "Problems Faced by Women Executives Working in Public Sector Banks in Puducherry.International Journal of Marketing, Financial Services & Management Research.1(7), 2012, P-180-193.*
5. *Karl, M, "Inseparable: The Crucial Role of Women in Food Security Revisited", "Women in Action", 2009, P-8-19.*
6. *Jyoti, Kiran, "Women Labourforce and National Product", Printwell publication, Jaipur, India, 1994.*
7. *Narasaiah, Lakshmi, "Small Scale Industry", Discovery Publication House, New Delhi, 1999.*
8. *Nath, Madhuri, "Rural Women Workforce in India", B. R, publishing corporation, New Delhi, 2003.*
9. *Das, Divya, "Work life balance of women professionals",Advances in Management Monthly Journal, 2010, P-38.*
10. *www.ilo.org*
11. *www.languageindia.com*
12. *www.labour.nic.in*
13. *www.wcd.nic,in*
14. *www.Workingwomensforum.org*
15. *www.graph.co.uk*
16. *www.wscpedia.org*
17. *ww.azadindia.org*

Demographic and Social Structural Analysis of Pioneering Agri Innovators in Southern Rajasthan

Rakesh Kumar Gautam
Research Scholar, Vardhman Mahaveer Open University, Kota

Prof. (Dr.) P.K. Sharma
Professor, Vardhman Mahaveer Open University, Kota

shodhshree@gmail.com

Abstract

The current paper investigates the work done by innovative farmers in making cultivating a gainful employment road in Southern Rajasthan. Rural innovation is frequently costrued/deciphered as a methods for enabling the rustic jobless youth. In this setting of Southern Rajasthan, the current paper endeavours to comprehend the purposes behind agri sector staying unbeneficial and the techniques utilized by the rising agri business visionaries in advancing it as a beneficial like an undertaking. It is based on key informant interviews with 30 Pioneering Innovators (PI) in the Southern Rajasthan. A multi-stage testing method was embraced to choose regions, square, towns, and agri innovators. The subjective information was coded and examined with the assistance of MS-Excel. Results have indicated that farmers in Southern Rajasthan have more potential in the cultivating area however self-inspiration is exceptionally required. The greater part of them were less instructed and had a background in faming.

***Keywords**: Agricultural Innovation, Pioneering Innovators (PI), Southern Rajasthan, Business Development Strategy, Rural Development.*

Agri innovation is regularly understood/deciphered as accomplishing something innovative as a device for engaging the rustic jobless youth who have the ability of beginning an endeavour and to dominate in the fields of agri and united divisions viz. horticulture, dairy and animal husbandry, agro forestry, fisheries, vegetable cultivation, floriculture, hi-tech protected cultivation .

For the most part, farmers can assume two kinds of jobs, for example, farmer as a farmer with limited scope, and farmer as an innovative business visionary with high-esteem agri scope. Innovative direction consistently separates farmers by their steady improvement in their items and markets, viable dynamic, hazard taking, and intense rivalry with different endeavours (see Basso, Fayolle, and Bouchard, 2009). The idea of innovation is a lot of significance with farmers to build up the homesteads they have to receive proper advances, and the function of farming is not, at this point restricted to increment of food creation, even the agribusiness part effectively contributes towards the improvement of provincial territories (see Rudmann, 2008).

Agrarian innovation is a manageable business procedure that will guarantee confidence and financial independence to the business person and furthermore to the network of the business person (see Uche and Familusi, 2018). Agribusiness incorporates the assembling and circulation of farm inputs, crop creation exercises, stockpiling, preparing, and dissemination of homestead items produced using them

(see Rajesha, Talang, and Kumar, 2016). The advancement of farming innovation alludes to the advancement of enterprising aptitudes among normal people and building the innovative methodology in the field of agribusiness (Uplaonkar and Biradar, 2015).

In Southern Rajasthan, the rural innovation and agribusiness have been perceived as one of the significant roads for rustic turn of events. The district has exceptional decent variety in agro-climatic conditions and has an enormous potential for improving the creation and efficiency of different rural and green harvests. The agrarian and united division assumes a prevailing function in the monetary advancement of the state which vigorously adds to GSDP. Expanded agri creation can energize the innovative exercises in country regions, for example, expansion of homesteads, new items, the development of rustic help part, rise of the agro-handling adventures, and spreading out the item into new business sectors.

Southern Rajasthan has been partitioned into three significant areas dependent on its agro-climatic zones: (a) Sub Humid Southern Plain and Aravallis (b) Humid Southern Plain (c) Humid South Eastern Plain The current investigation investigates the pretended by innovators in agri part in making agri and associated exercises as a gainful business road in Southern Rajasthan.

Review of Literature

There are rarely any studies of agricultural innovation in the context of Southern Rajasthan through the agro-climatic zones of Southern Rajasthan which contribute significantly to the agricultural production in the state. The present study tries to fill this gap in the literature of agricultural innovation in India.

Over the most recent thirty years, the idea of innovation has caught the consideration of a wide scope of researchers and experts over the controls. There are concentrates on business enterprise in natural cultivating (see Munda, Das, and Patel, 2014), development and expanding pattern of innovative exercises in agribusiness and united exercises (see Chakraborty, 2014; Mujuru, 2014).

There are numerous investigations on the distinguishing proof and advancement of inventive abilities among farmers (see McElwee, 2005, 2006; Mikko and Pyysiäinen, 2006). There are a couple of studies center around the administration of homestead and farm uphold for innovations (see Kahan, 2012; McElwee and Annibal, 2010).

Concepts related to innovative orientation and market orientation for the success of an entrepreneur (see Baker and Sinkula, 2009; Faria and Mixon, 2016; Reynolds, 2005), import-ance on technological development in agriculture (see McElwee and Bosworth, 2013).

In spite of copious literature on agricultural innovation, a major research gap could be noted.

The present study attempts to explore the attributes of agricultural innovation from the perspective of the farmer entrepreneurs themselves. Further, it tries to identify the attempts made by them to make farming a profitable avenue like a business venture. It also tries to identify the constraints faced by them in their development as innovators. As a introduction, the present paper tries to explore the structural bases of the innovators in agri sector in terms of their demographic, social, and economic background. It also tries to highlight the important aspects of farming such as cropping and involvement in allied activates.

Methodology

The current investigation depends on the subjective information gathered through key informant interviews. Initially118 farming innovators were contacted .The investigation depends on finally selected key informant interviews with 30 pioneering innovators (PI) in the Southern Rajasthan.

Sampling

The unit of study is the individual agri business person while the populace incorporates all farming innovators in the Southern Rajasthan state in India. A multi-stage examining strategy was embraced to choose areas, squares, towns, and agri innovators. Among the 13 regions from, 9 areas have been picked dependent on the power of agri movement. The most farming serious locale of were picked purposively. The subjective information was coded and further investigated with MS-Excel. The coded information was examined with the assistance of straightforward rates and midpoints.

The primary constraint of the investigation is that it just bound to Southern Rajasthan as such discoveries are restricted.

Results and Discussion

The conversation on the after effects of the current investigation is introduced in seven segments. The "Introduction" segment presents a conversation on the demographic social structural bases of the informants.

Demographic and Social Structural Bases of Key Informants

There are different examinations accessible on social bases of the agri innovators. In this segment, the demographic and social attributes of the key informants KII have been examined. The demographic and social profiles of key informant interviews incorporate the attributes of them, for example, age, instructive status, and network (see Table 1).

Age is the main characteristic that decides the economic wellbeing of a person in Southern Rajasthan's culture. The respondents were classified as youth (<= 34), early middle age (35–44), late middle age (45–54), and matured (55+) in view old enough. The most noteworthy extent of the farm business people were under early middle age (35–44) which was 37%. Late middle age (45–54) was accounted for as 27% and matured (55+) were accounted for as 23%, though just 13% youth (<= 34) were accounted for as occupied with farming innovative movement. Mean period of key informant interviews was worked out to 44 years. This authenticates the perspective on McElwee (2008) who says that agrarian business visionaries are the individuals who own the farm and matured under 45 years. Notwithstanding, the outcomes show that almost one-portion of the sources have crossed late the middle age.

Educational level is the second significant attribute which decide pioneering conduct. The training status of the key sources doesn't demonstrate agri instruction yet it basically shows the conventional instruction of the homestead business visionaries. The outcomes show that practically every one of them were literates. Over 43% of the key informants had training up to secondary school level. Almost 33% of them had essential instruction (30%). Over 17% had higher auxiliary training. Some of them had graduation (7%). Accordingly, the instruction status of the farmer business person likewise shows the potential for preparing in innovation.

Community is the third segment attributes which decide economic wellbeing in the general public. In the current examination, the endogamous Tribe/Jati was viewed as a community. In light of the KII reactions, most of the respondents have a place with ancestral communities, for example, Dhakad (40%), Mali (20%), and Gurjar and Meena (20%) while different communities were not many. Among others, the Brahmin,Rajput, Jat etc. (17%) people group had a huge extent of the key informants while a couple of them have a place with different communities (3%). Strikingly, these Caste/Jati bunches have been customarily rehearsing agri in the for quite a while.

Religion is the fourth significant segment factor. The vast majority of the key sources were Hindus (97%) and keeping in mind that the staying not many have revealed as Sikhs.

Table 1 Demographic and Social Structural Bases of Key Informants			
S. No	Characteristic	Frequency N = 30	Percent
I	Age group		
	Youth (<= 34)	4	13
	Early middle age (35–44)	11	37
	Late middle age (45–54)	8	27
	Aged (55+)	7	23
	Mean age	44 ± 10	
II	Educational Status		
	Illiterate	1	3
	Primary education	9	30
	High school level	13	43
	Higher secondary	5	17
	Graduation level	2	7
III	Community		
	Dhakad	12	40
	Mali	6	20
	Gurjar & Meena	6	20
	Brahmin, Rajput, Jat etc.	5	17
	Others	1	3
IV	Religion		
	Sikh	1	3
	Hindu	29	97
Source: Computed			Mean ± SD

Conclusion

The current examination is an unobtrusive endeavour to comprehend the innovative ascribes apparent by the farmer business visionaries with an example of 30 key informants in Southern Rajasthan. The social and agrarian foundation of the farmers was likewise investigated. The outcomes show that farmers do perceive the characteristics basic to innovation in the agrarian segment from their lived encounters and presentations. Agrarian information, admittance to budgetary capital, guaranteed water system, and market links were seen as the primary ascribes of an innovator. They do accept endeavours to make farming as productive as an undertaking by following a number procedures, for example, going through preparing, farm motorization, profiting bank advances, embracing current rural innovation, and getting to taxpayer supported organizations. Be that as it may, they do see limitations, for example, absence of monetary capital, absence of difficult work among farmers, non-profitable costs, absence of natural fertilizer, and low degree of instruction of farmers. These discoveries persuade that the farmers are prepared to develop in their own space of agribusiness and in their own territory of Southern Rajasthan. What more required is the more prominent help from the administration as far as arranging preparing programs, helping farmers to get guaranteed water

system, making money related capital open when required, trend setting innovation made accessible to them and incorporating them with the immediate admittance to business sectors, and guaranteeing profitable costs to farmers for their yields would help hugely. Farmers do need to figure out how to cooperate, work with the administrative, non-legislative offices, and buyer gatherings to oversee the market powers by fulfilling the necessities and yearnings of the purchasers.

References

1. *Muchara, B., & Mbatha, C. N. (2016). Role of institutional innovations on smallholder agricultural entrepreneurship in KwaZulu-*
2. *Natal , South Africa. Journal of Human Ecology, 55(1,2), 41–50.*

   https://doi.org/10.1080/09709274.2016.11907 008
3. *Basso, O., Fayolle, A., & Bouchard, V. (2009). Entrepreneurial orientation : the making of a concept. Entrepreneurship and Innovation, 10(4), 313–321.*
4. *Faria, J., & Mixon, F. (2016). Farmer-entrepreneurs, agricultural innovation, and explosive research and development Cycles. Administrative Sciences, 6(4), 13 https://doi.org/10.3390/admsci6040013.*
5. *Gupta, V., & Gupta, A. (2015). The concept of entrepreneurial orientation. In Foundations and Trends in Entrepreneurship (1st ed., Vol. 11, pp. 55–137). Boston: now Publishers Inc. https://doi.org/DOI. https://doi.org/10.1561/0300000054.*
6. *India, G. (2017). Economic survey 2017-18 statistical appendix. New Delhi.*
7. *Kahan, D. (2012). Entrepreneurship in Farming. Rome: Farm management extension guide Retrieved from http://www.fao.org/uploads/media/5-EntrepreneurshipInternLores.pdf.*

   https://doi.org/10.1596/978-0-8213-7944-8.
8. *Larsen, K., Kim, R., & Theus, F. (2009). Agribusiness and Innovation Systems in Africa. Agriculture and Rural Development(1st ed.). Washington D.C: World Bank Institute and Agriculture and Rural Development.*
9. *McElwee, G., & Annibal, I. (2010). Business support for farmers: an evaluation of the Farm Cornwall project. Journal of Small Business and Enterprise Development, 17(3), 475–491 https://doi.org/10.1108/14626001011068743.*
10. *McElwee, G., & Bosworth, G. (2013). Exploring the strategic skills of farmers across a typology of farm diversification. Journal of Farm Management, 13(12), 819–838.*
11. *Mehta, H. J. (1995). Farm entrepreneurship and agricultural development—a case study of Bharuch District. Sardar Patel University.*
12. *Mikko, K., & Pyysiäinen, J. (2006).*
13. *Understanding entrepreneurial skills in the farm context. In Switzerland Retrieved from http://www.orgprints.org/13278.*
14. *Mujuru, J. T. R. (2014). Entrepreneurial agriculture for human development: a case study of Dotito irrigation scheme, Mt*
15. *Darwin. International Journal of Humanities and Social Science, 4(4), 121–131.*
16. *Rajesha, G., Talang, H., & Kumar, R. (2016). Avenues for entrepreneurship development through agri-horti ecosystem for farmers and rural youth.*
17. *Reynolds, P. D. (2005). Understanding business creation: serendipity and scope in two decades of business creation studies.*
18. *Small Business Economics, 24(4), 359–364 https://doi.org/10.1007/s11187-005-0692-x.*
19. *Rudmann, C. (2008). Entrepreneurial skills and their role in enhancing the relative independence of farmers (1st ed.) (C. Rudmann, Ed.). Switzerland: Frick.*
20. *Uplaonkar, S. S., & Biradar, S. S. (2015). Development of agriculture in India through agripreneurs. International Journal of Applied Research, 1(9), 1063–1066*

The Effect of Imperialism on Ecology in Mulkraj Anand's "Coolie"

Prabhat Jha
Patna (Bihar)

shodhshree@gmail.com

Abstract

In this paper, we will discuss the effect that capitalism which only believed in the Surplus value and the resultant surplus enjoyment had on the poor people of India. We can see how the whole system of maximization of profit and rapid industrialization impacted Munoo in the novel, as he did not just become weaker due to overload of work at such a younger age, but also suffered from tuberculosis and died at the end of the novel. The paper also discusses the impact of pollution and lack of cleanliness in the areas of the factory workers and how that impacts their health and life. The exploitation of both human and non- human beings in India impacted it badly as it not just became poor but also polluted.

Keywords: *Ecology, Capitalism, Imperialism, Surplus value, Coolie.*

In Mulk Raj Anand's novel **Coolie**, the narrative moves from Kangra, a village having agricultural fields, to Shyamnagar, Daulatpur, the industrial towns, to Bombay a Metropolis and the centre of the economy in India and at the end to Shimla the centre of the British aristocracy. In this progress, we can see two parallel journeys. One of Munoo, the protagonist of the novel and second, the journey of the novel from the village to the town and at the end to Shimla. On one hand, it can be seen as the journey of a landless labourer from his village to the bigger centres of imperialism and on the other, it can be seen as the journey which shows a change in the environment from the so-called 'natural' to the 'cultural' centres of colonial India.

The paper is an attempt to show the relationship between colonial capitalism and the changing ecology in the novel, taking into the view nature/culture dichotomy and to show that the exploitative machinery is as much action in a visually 'natural' area as it is in the Industrial Township or cities, the centres of the dominant cultures. It will discuss how rural areas are needed for the rapid growth of urban areas. It will also show that this economic system exploits both human and non-human lives to get maximum profit and how those who are exploited are fooled by the lifestyle that it promises.

In the developed countries 'the problems associated with wealth' are responsible for ecological problems. In developing or underdeveloped countries, overpopulations become the reason. Even if we do not accept the notion of huge population reduction as it sounds misanthropic or we do believe in it else it sounds anthropocentric, we cannot deny the fact that the increase in the wealth is in a way responsible for most of the ecological problems. That is because we know that capitalism requires growth in population, to get more manpower and a bigger mark.

Social ecologists say that the growth of capitalism creates scarcity. In other words, it believes that in the order to get surplus value, the resources have to be exploited all the time.

According to Garrard

In other words, 'scarcity' is not simply an objective fact about the natural world, but a function of the will and means of capital: the purposes that guide production, and the technologies that facilitate it. Change the political structure of society so that production to meet real needs replaces production for the accumulation of wealth, it is argued, and the ecological problem of limits produced by capital's structural need for perpetual growth will disappear. (Garrard 28)

The colonial setup of the narrative in the novel explains this need. The condition in which the industry in Bombay works shows that the motive behind it is the maximization of profit. The British came to India in the need for raw materials, cheap labour and a potential market. Thus they wanted to exploit the whole ecology including human and non-human lives.

If we instead of dividing it into developed and underdeveloped or developing divide the ecosystem into urban and rural, we can see how rural India was needed to fulfil the demands of the cities. The 'infrastructure' which included the large mansions of the British officers as well as of their Indian supporters, who looked after things to fulfil the demands can be very easily spotted in the novel, the help which was needed to establish the urban centres were provided by the use of rural labour and resources.

Raymond Williams writes

Look at what those fields, those streams, those woods even today produce. Think it through as labour and see how long and systematic the exploitation and seizure must have been, to the rear that many houses, on that scale. See by contrast what any ancient isolated farm, in uncounted generations of labour, has managed to become, by the efforts of any single real family, however prolonged. (Williams 521)

Raymond Williams here mentions the huge mansions in the British Countryside, but this can very much be applied to the Indian cities where there were bungalows of the British officials. It is quite interesting to note that in these areas how nature, i.e. trees, flowers were trimmed and controlled as if they had learned the culture which the British wanted them to learn.

Munoo watches these bungalows when he first goes out of his village to Shyamnagar to work in Babu Nathoo Ram's house. Anand writes,

The sight of some buff-coloured bungalows perched higher up on the side of the tortuous hill road, lifted Munoo to the rare world of mystery, because these buildings lay enshrouded in an atmosphere of cool, shady trees, among neatly trimmed hedges, with small palms in green barrels, beds of even grass and an abundance of many-coloured flowers. He wondered who lived there. (Anand 11)

The lifestyle which the Britishers were leading and their Indian subordinates were inspiring too, was based on capitalism, thus it required constant growth of capital. Surplus value is a result of the value which is generated by the worker as he produces an output value greater than what the cost of his labour is. Here we can also say that nature which is been exploited to get the raw material is also providing that surplus-value, as the cost of extracting it is less than the value it generates. It is the surplus-value which provides surplus enjoyment and that surplus value is needed for the constant growth of capital. Slavoj Žižek says,

It is this paradox which defines surplus-enjoyment: it is not a surplus which simply attaches itself to some 'normal', fundamental enjoyment, because enjoyment as such emerges only in this surplus because it is constitutively an 'excess'. If we subtract the surplus we lose enjoyment itself, just as capitalism, which can survive only by incessantly revolutionizing its material conditions, ceases to exist if it 'stays the same', if it achieves an internal balance. This,

then, is the homology between surplus-value the' cause' which sets in motion the capitalist process of production – and surplus-enjoyment, the object-cause of desire. (Žižek 56)

The way Babu Nathoo Ram wanted to impress Mr English also shows the understanding which he had about his enjoyment. His watch, his throne, the china utensils were all there to impress him, though the plan failed in the end. In reality, they only had brass utensils; his wife was far from being clean and hygienic or 'cultured' so much so that even Munoo found it strange. He perhaps expected something else.

To get that constant capital, it was necessary to extract as much raw material from the villages as possible, as well as cheap labourers, which were again provided by the rural centres. The lands were used to grow cash crops and then those crops were processed in the factories by the help of these landless labourers and hence it provided the surplus wealth which was required. Therefore, the effect of capitalism was deep-rooted in the veins of the country. It was not only in the cities that the ecology was disturbed but also in the villages.

The British encouraged the bringing of increasing amounts of land under cultivation and irrigation to extract as much revenue as possible from land cess. They also encouraged the production of crops like cotton and indigo to provide the cheap raw material for the British manufacturer. (Gadgil and Guha 25)

As Gadgil and Guha say, here the 'culture' of capitalism needs to understand that the resources that they are extracting are limited, on the other hand, the whole economic system on which it is set is based on infinite growth. Thus at some point in time, the cost of extracting those resources will be more than the value it will generate.

The cars, the electricity, the dress that they wear, or the things they have for pleasure all require a constant supply of raw materials.

The 'culture' which required that constant feeding of money also made its inroads into the heartland. The feudal lords got more opportunities as they could now help the Gora sahebs in getting the desired crops and the labourers who had no other options other than to flee to other centres for work. Munoo himself had to leave his village because his father's land was taken by the landlord.

However, this 'culture' was not just limited to the elite class. Munoo himself was quite interested in getting all these pleasures, which he thought he would get after going to the cities.

In Shyamnagar Babu Nathoo Ram's boots was the symbol of power for him. He knew that he will be able to move quickly by wearing them, but his thought also shows his innocence. Anand writes

“..and the boots, the boots, the black boots. If I only had had black boots like that, I would have moved quicker and my feet would not have blistered.”(Anand 11)

Even in Bombay after watching those big houses, 'He fancied that he would be able to live in one of these big houses with countless windows which they had passed” (Anand 172)

But later on, he realizes that he cannot get all these things, he is there to serve them as servants. This realization occurs to him time and again.

Mulkraj Anand at many times has tried to show how Munoo is closer to nature, as the 'village where he lives is closer to nature. On the other hand, towns have been described as 'grotesque' and lacking any human apathy. This nature and culture dichotomy is prevalent throughout the novel.

His journey from his village to Shyamnagar describes this change at the beginning of the novel nature is quite happy in a village and gives happiness to others. It provides 'cool breeze which soothed the fatigue of the body and relieved the natural heat.' 'Frogs croaked in the swallow and the swam, butterflies flittered over the willed flowers. (Anand 4)

It also provides ripe mangoes, purple and red coloured jamuns, and long green mulberries. But when Munoo left his village to go towards the city, on the way, there is 'ochre-coloured dust, which irritated him.'(Anand 5)

By showing this sudden change, the writer tries to foretell how there will be a change in the environment. Later on, in Daulatpur in the pickle and jam factory, 'Munoo felt choked by the pungent smoke that had trailed out of the aperture into his nostrils.' 'He spat thick spittle.'(Anand: 79)

Here we can see how the environment gets worse and worse for Munoo as he has to survive within the polluted environment under which he is working. This has a striking difference from the large natural landscapes of his village. But we can also see that it is also different from those cultured natural surroundings under which the buildings of the Britishers are.

Then he went to Sir George White Mill, where he saw 'the chimney rolling out volumes of smoke across the outwards into India's vast unknown(Anand 169) In the pound near that there was 'murky green water over which a layer of slimy cream is settled.'(Anand 176) Dung heaps, the coal, pits of filth. These are examples of air, water, and soil pollutions due to the rapid growth of capitalism.

In the factory, while working 'the air grew suffocatingly hot, and a queer smell of cotton and oil came up to his nostrils.'(Anand 185)

These are the reasons because of which later he dies of consumption.

Garrard says that

One of the consequences of this view is that environmental problems cannot be clearly divorced from things more usually defined as social problems such as poor housing or lack of clean water. It gives these positions a clear affinity with environmental justice movements that protest the common association of acute environmental degradation and pollution with poverty (Garrard 29)

We can also connect it to the deep ecological concern about the increase in population. The area in which Munoo lived was hugely populated. But that was because the owners were not providing them with enough space. They were outcastes, getting the smallest of shares of the money, land or food.

In Simla however, the parallel between the conditions of the environment and Munoo ended. Though the environment became eco-friendly and closer to his village Kangra, "The sight of stray houses on the slopes of the mountains took him back to his own home, and he had the feeling that it was only yesterday that he had left the village in the valley. (Anand 256)

The exploitative machinery grew harsher and harsher. Simla was the centre of all the British aristocracies. We could see how human beings were used to pull the rickshaws. Mrs Mainwaring used to kill time by eating 'fruits' because it could not have been eaten in quick time

It is somehow expected that Munoo will lose his life at this place. Where it could be shown that the 'visually' natural environment which has been 'cultured' to suit the lavishness of the British colonialists is all illusive. That illusion of a boy from that village breaks time and again. A dream of a superior life is never fulfilled as the system which was operating was not suitable for that.

Death of Munoo in a place such as Simla tells us that the power relations can be maintained in a 'visually' natural environment also. On the other hand, Simla was built in the hills, by culturing down of the wilderness there. This affected nature badly. No doubt Munoo died of consumption because he inhaled the fossil fuels in the industries, but even when the 'nature' became congenial, the exploitative machinery made it sure that, he has no chance of survival. Same is also happening to the ecosystem.

Capitalism was designed with the belief that the resources which are available to be exploited will never finish. All those minerals, hills, water, land etc belong to human beings and they can exploit them without any hesitation. But they didn't

think that there is a limit to everything. The whole point of people who are concerned with saving the ecological balance is that we should live with a thought that there is a limit to what we could extract from nature. It is not enough to theoretically 'connect with nature' but to be more practical about it. Of course, no one will suggest that we should not use them at all, but to use them with a thought that they also have a value in themselves and they are not only there because of us. Taylor writes,

The practical implication of this intuition or norm subject is that we should live with minimum rather than maximum impact on other species and on the Earth in general. Thus we see another aspect our guiding principles, "Simple in means, rich in ends.

(Taylor 235)

In that way human and non-human life can survive together for a longer time then it would if we consider it be our subservient that are there to serve our daily illegitimate requirements.

References

1. *Anand, Mulk Raj. Coolie. Penguin Books India, 1993*
2. *Gadgil. Madhav & Guha. This Fissured Land: An Ecological History of India.*
3. *University of California Press, 1993*
4. *Garrard, Greg. Ecocriticism. Routledge, 2004*
5. *Literary Theory an Anthology, editor. Rivkin, Julie and Ryan Michael. Blackwell Publishing Ltd, 2004*
6. *Taylor, Bron. "Deep Ecology and its Social Philosophy." Earth Care: An Anthology in Environmental Ethics, edited by David Clowney & Patricia Mosto. Rowman & Littlefield Publishers Inc, 2009. pp 216-238. GoogleBooks. www.google.co.in/books/edition/_/gOUTdFT46QYC?hl=en&gbpv=1*
7. *Žižek, Slavoj. Sublime Object of Ideology. Verso, 2008*

Quality of Life of Urban Elderly

Dr. Shahraj Parveen
Subject Matter Specialist, Vidya Bhawan Krishi Vigyan Kendra, Udaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract

"Knowledge is power" is an old adage. The knowledge of aging empowers us to provide for a better quality of life for the aging. Now a day the pressures of life are so high that they affect us physically and mentally, we find the people undergo anxiety, fear, depression and phobias. The Objectives of the study was to assess the life satisfaction of the urban elderly and to understand the mental health status of urban elderly. Methodology - the study participants comprise of 60 elderly individuals from Jodhpur and Ahmadabad were randomly selected. For the purpose of data collection personal interview method and for statistical analysis mean, percentage and standard deviation was used. Result of the study: The life satisfaction of the urban elderly was found that financial condition of the elderly was not satisfactory for the most of elderly which in turn affects the quality of food, adequate time for rest they had and the frequency for thorough medical checkup was obstructed. The study result shows that with modernization of the state, older morals are being replaced by "individualism" and the family's ability to give quality care to older people is declining.

Keywords: *Life, Satisfaction, Quality of Life, Knowledge.*

Aging is the natural process of human being and therefore the auto reflexes of our body is bound to get delayed or dull, day-by-day, it is a natural phenomena it cannot be stopped, but it can be taken care, they actually need our attention at this point of time.

The later stage is most crucial period for everyone and most of the time deterioration in the health takes place very slowly and the graph of deterioration goes down gradually but we are just oblivion to it.

In order to provide them sense of security, better situation along with opportunities to improve their health status is – the need of the hour. Aging can be defined as "a series of time changes in a set of interconnected variables" (Bromley,1966). It is a process with the end product –the aged. Aged is not a complex life stage and ageing is not a disease bit actually a series of processes that begins with life and continue throughout the life cycle. Looking at it casually, it seems that aging is merely a physiological process but it is much more than this. It takes place in complex web of cultural, familial and socio-cultural scenario and touches many psychological aspects and 'Quality of life' is one aspect of it. Thus it can be seen under the reflection of biological, psychological and sociological aging, where to go from here (Birren, 1966 & 1997).

"Knowledge is power" is an old adage. The knowledge of aging empowers us to provide for a better quality of life for the aging. Sound knowledge generated through sustained research alone can form the

basis for scientific formulation of policy and planning that are data driven. Therefore, the importance of research can hardly be overstressed.

India is in the throes of temporarily compacted demographic transition. The Indian population has been growing fast and there has been an increase of four times every ten years. By year 2021 the elderly population is likely to double and the average age life expectance (at birth, which was 39 in 1951 is now around 65 and it may be 70 in next twenty years).

There are approximately 893 million elderly above the age of 60 years and more globally. By the end of 2050, there will be 2.03 billion people aged 60 years and over. Ageing puts major pressure on the socioeconomic demands on countries financial budget. To cope with the changing demand government need to draw major policy initiatives based on the importance of social, cultural and personal factors contributing to the quality of life.

Subjective quality of life depends on the individual person and lies in the eye of the beholder (Campbell, Converse & Rodgers, 1976). Hence, high subjective quality of life can be defined as subjective wellbeing (high life satisfaction, strong positive emotions like happiness, and low negative emotions like sadness). The objective living condition if characterized to be good, the quality of life subjectively perceived may be extremely low. The situation can be Vice versa, not all people living in poor state of living condition are dissonance or dissatisfied with their lives. This consideration has lead to development of theories combining both the high and low values of subjective and objective quality of life. So **objective of the study** was to assess the life satisfaction of the urban elderly and to understand the mental health status of urban elderly.

Review of literature: Life satisfaction refers to person's general happiness, freedom from tension and interest in life. It is the way a person perceives how his or her life has been and how they feel about where it is going in future. The psychologists, **Yuval Palgi and Dov Shmotkin (2010),** studied the old-old - people who were primarily in their nineties. This subject group was found to have thought highly of their past and present. But generally the group thought lower of their future. These people were very satisfied with their life up until the point they were surveyed but knew that the end was near and so were not quite as hopeful for the future. A large factor that was talked about in life satisfaction was intelligence. The experiments talk of how life satisfaction grows as people become older because they become wiser and more knowledgeable, so they begin to see that life will be better as they grow older and understand the important things in life more.

Methodology is the systematic, theoretical analysis of the methods applied to a field of study**.** The data was collected from Jodhpur and Ahmadabad. The study participants comprises of 60 elderly individuals who were purposively selected. Out of 60 participants 27 male and 33 female were selected. Purposive sampling technique was used for sample selection. For collection of data a house to house survey was conducted and informed consent form was signed from the samples. The investigator for the purpose of data collection used the method of personal interview. After establishing rapport, the purpose of the study was explained and then the data was collected with the help of structured interview schedule. In interview, probing was done to get more clear and complete information, interview were conducted in local dialect.

Result and Discussions:

General information of respondents:

Age profile shows that 68.33 percent of respondents belonged to the age group 60-65, 26.67 percent belonged to the age group 65-70 and 5 percent of respondents were above the age of 70. The information about respondents also shows that 81.67% of the respondents were married, 11.67 were widowed/widower, 5% unmarried and 1.66 % divorced.

Perceived Life Satisfaction of Elderly

S. No	Life satisfaction	Mean	S.D.
1	Food	2.99	0.53
2	Clothing	3.07	0.49
3.	Accommodation	2.90	0.60
4.	Quality of drinking water	2.70	0.65
5.	adequate time for REST	2.58	0.68
6.	Family life	2.72	0.69
7.	Health status	2.77	0.61
8.	Financial condition	2.87	0.57
9.	Assets possessed	3.17	0.54
10.	Accomplishment of childhood expectations	3.09	0.65
11.	The way children raised	2.86	0.60
12.	The way the parents raised	2.83	0.77
13.	The quality time spend with grandchildren	2.79	0.73
14.	The family eats together everyday	3.04	0.69
15.	Family' s Respect for the Elderly	3.25	0.62
16.	Children sharing of their problems	3.19	0.64
17.	Treatment Received from in laws	3.25	0.59
18.	Family Takes Good Care	3.11	0.59
19.	Family assists for regular medical Check up	3.19	0.92
20.	Life Satisfaction	56.36	4.1

Life Satisfaction: Life satisfaction of a person has a definite bearing on mental health and quality of life. Component matrix was applied for measuring the life satisfaction of the respondents. Different variables were included the respondents were asked to answer in a four point scale namely Very Satisfied (4), Satisfied (3), Dissatisfied (2) 138 and Very Dissatisfied (1). It was found that satisfaction for clothing, present accommodation, drinking water, family life, health status, assets possessed, childhood expectations, raising children, time with grandchildren, family eating pattern, respect for elderly were the most satisfying area of the elderly in this study. Next to these, respect for the elderly, problem shared by the children, care in sickness was the next area for satisfaction. It was found that financial condition of the elderly was not found to be satisfactory for the most of the elderly which in turn affects the quality of food, adequate time for rest they had and the frequency for thorough medical checkup was obstructed.

Table: 2. Mental health of the elderly

S. No.	Mental health particulars	Mean	S.D.
1.	I feel anxious all the time	1.9	1.0
2	I have few friends with who I can spend time	1.9	0.9
3	People avoid me because of my age	2.1	0.9
4	I get angry easily	2.0	0.9
5	I dislike being on my own in the house	2.0	0.9
6	Sometimes I tend to get upset over little things but cannot help it	1.9	0.9
7	I have no one to talk to when I am upset or happy	1.9	1.0
8	I have dropped many of my interests due to my age	2.2	1.1

9.	I feel my life is empty, and get bored easily	2.0	1.1
10.	I often fear that something bad is going to happen to me	2.1	1.1
11.	I feel that my memory is failing me	2.0	0.9
12.	I think that most people are better off than I am	1.8	0.9
13.	I feel that life is wonderful and I am very happy and content all the time	2.1	1.0
14.	I feel on top of the world when I am complimented	2.2	0.9
15.	I am afraid of the future	1.7	1.0

Mental Health: An important factor in understanding the quality of life of a person is numerously determined by his/her mental health. An attempt has been made to understand the mental health of the elderly from urban area on a four point scale namely Strongly Agree(4), Neither Agree or Disagree(3), Disagree(2) and Strongly Disagree(1). Mean and Standard Deviation was calculated as the score for these variables. With regard to anxiety, the respondents (1.9) were moderately anxious. The elderly (2.1) were found to have a moderate feeling towards their age and people's attitude. The urban elderly (2.0) found to manageable to be alone in the house. The elderly (1.9) were found to be irritable and tend to get upset over little things. The elderly (2.2) have dropped many interests due to their age. The elderly (2.0) were found to have a feeling of emptiness and boredom. It was also found that a feeling of fear that something bad is going to happen prevailed in elderly (2.1). Worry of memory failure was found to be mean=2.0 in urban elderly. With regard to self esteem that people are good, (1.8) were found to have anxiety. This was so the urban elderly have contributed less to their respective families financially. It was found that compliments made the elderly from the areas where they live happy (men score is 2.2 respectively). With regard to fear of the future, the elderly (1.7) were found to be very calm. They are predominantly Christians and cited that the future is not something that they are worried about, however, the fear of economic security of their children and grandchildren earn their often made them pray to God numerously.

Conclusion

"Elderly are the foundation of present generation, they should be taken care very well".

Results revealed that the respondents shared a good and happy quality living, the major issues of concern were their financial stability. Due to financial stability the elderly faced problems in terms of availing medical assistance and adequate time for lack was lacking. It was found that anxiety in the elderly was found to be relaxed. However, the elderly were found to fewer friends, feelings of emptiness and boredom and it results into irritable behavior. Elderly found it to be manageable in staying to be alone in home. Most of the respondents have dropped many of their earlier activities due to their age.

References

1. *Bearon, L. B. (1996). Successful aging: What does the "good life" look like? The Forum for Family and Consumer Issues (FFCI). Summer; 1(3) e-journal. Retrieved November 4, 2008, from http://www.ncsu.edu/ffci/ publications /1996/v1-n3-1996-summer/successful-aging.php.*
2. *Butler, J., & Ciarrochi, J. (2007). Psychological acceptance and quality of life in the elderly. Quality of Life Research, 16(4), 607–615.*
3. *Rovan HH, Avan AS, Mirium H. (2004). Current and future prevalence of dependency, its relationship to total population and dependency ratios. Bulletin of the WHO. ; 82:251–8.*
4. *Reijneveld SA, Spijkar J, Dijkshoorn and H. Katz' (2007)., ADL index assessed functional performance of Turkish, Morocccan and Dutch elderly. Journal of Clinical Epidemiology. 2007; 60:382–8.*
5. *WHOQOL Group (1998). Development of the World Health Organization WHOQOLBREF quality of life assessment. Journal of Psychological Medical. 1998; 28:551–8.*

Infrastructure and Agriculture Development in Bihar : A Case Study

Dr. Birendra Kumar Yadav
S.D.M.Y. Degree College, Dhoraiya (Bihar)

shodhshree@gmail.com

Abstract

Agriculture was in a hopeless and deplorable condition. Our Farmers were in heavy debts to the village money-lenders. They were having small and scathered holding. They had neither the money nor the knowledge tonse proper equipment, good seeds and chemical manures. except in certain areas. They were dependent upon rainfall and upon the vagaries of the monsoons productivity of land as well as of labour had been declining and was generally the lowest in the world. In spite of the fact that nearly 70 per cent of our working population was engaged in cultivation the country was not self- sufficient in food grains but had come to depend on imports off food grains. Besides, the country in 1947 worsened the agriculture situation as India or Bihar was given more people but less land to support.

Key Word : *Agriculter, Infrastructure, Devlopment, Economy.*

Economic opportunities are strongly shaped by access to infrastructure. Infrastructure investments broaden opportunities b integrating them into regional and national systems of production and commerce and by improving their access to public services (World Bank, 2005). Micro evidence from rural India or Bihar lends support to findings from a cross-country study that 10 per cent improvement in a country's infrastructure index is associated with 5% reduction in child mortality, a 3.5% reduction in infant mortality and a 7.8% reduction to maternal mortality. Investments in basic water and energy infrastructure can improve gender equity (Malmberg, Calvo 1994). Shenggen Fan, Peter Hazell and S.K. Thorat (1999) show a strong linkage between improved infrastructure and decline in rural poverty. Richa Singh (2004) in her study found that availability of infrastructure facilities in rural areas helps in reduction poverty levels via their favorable impact on agricultural productivity and wages as well as on the growth of non-agricultural activities in rural areas. The prevalence and duration of diarrhea among children under five in India is found to be significantly lower for families with piped water (Jalan and Ravallion, 2003). Investing in rural roads is an example of how expanding access to infrastructure can benefit equity and efficiency in the long run, especially in areas with large number of poor people and agro-climatic potential. Against the background of the well accepted linkages between rural infrastructure, productivity and growth the govt. has conceived Bharat Nirman as a time bound business plan for the development of rural infrastructure in partnership with State governments and PRIs over 2005-09. The road map to Bharat Nirman encompasses the areas of irrigation, road, rural housing, rural water supply, rural electrification and rural telecommunication connectivity. The Centre and States, external aid, market borrowing and a separate window under Rural

Infrastructure Development Fund are meeting the funding for the programme through an appropriate mix of budgetary support. Infrastructure in six areas in time bound manner of four years. The details of these areas are as under:

Housing

To provide 60 lakh houses at the rate of 15 lakh houses each year to be built by funds allocated to the homeless through Panchayats. Rs. 11,100 crore has been allocated for housing. Allocation of financial resources across States is based on 75% weightage for housing storage and 25% for poverty ratios. There is a provision of grant assistance to the extent of Rs. 25,000 per house for normal areas and Rs. 27,500 for hilly areas. Selection of beneficiaries is to be done by Gram Sabha. Funds are released through DRDAs. Minister of Rural Development through Indira Awaas Yojana under-takes the programme as a centrally sponsored scheme on the basis of Central-State sharing of cost in the ratio of 75:25.

Electrification

To provide electricity to 1,25,000 villages by grid based supply or in remote and inaccessible areas through alternative technologies. In total 2.3 crore households are to be connected. There is a target of Rs. 23,300 crore investments, This component will be in subsidy mode in which there is 90% capital subsidy for overall cost of projects and 100% capital subsidy @ Rs. 1500 per connection in case of BPL house holds. Electricity component is running under Rajiv Gandhi Grameen Vidyutikaran Yojana. Rural distribution to be managed by franchisees including Users' Association, Individual entrepreneurs, Cooperatives, NGOs and PRIs etc. Services of NTPC. Pov4er Grid Corporation of India Ltd. Damodar Valley Corporation etc. will be made available.

Roads

It is proposed that every habitation over 1000 population and above is (500 in hilly' and tribal areas) to be provided an all-weather road and the remaining 66,802 habitations are to be covered by the termination of this programme. 1.46.185kms road length is proposed to be constructed. To establish farm to market connectivity. 1. 94. 132 kms. road will be upgraded. There is provision of Rs. 47.554 crore investments. Ministry of Rural Development is responsible for the execution of the programme. Pradhan Mantri Gram Sadak Yojana (PMGSY) has been modified to address the above goals. The Core Network is the base and GIS based application being developed to enhance Core Network. Master Plan for Rural Roads for district is prepared in the form of District Rural Road Plan (DRRP).

Water Supply

Access to water in general and safe drinking water in particular keep the citizens and their livestock disease-free. As every habitation is to be provided safe source of drinking water. 55067 uncovered habitations are to be covered by 2009. Further it provides additional coverage to 2.8 lakh habitations that have slipped back from full coverage and to provide potable water in 2.16.968 villages affected b poor water equality. There is a provision of Rs.25,300 crore in which 50% is to be provided by Govt. of India and 50% by the respective State Govts. Actual requirements are to be based to State estimations. Ministry of Rural Development & Dept. of Drinking Water Supply bear the overall responsibility. The centrally sponsored scheme of Accelerated Rural Water Supply Programme is the instrument.

Irrigation

it is proposed to create 1 crore hectare of irrigation potential. 6 million hectare from major and medium projects. 3 million hectare for ground water development and 1 million hectare for minor irrigation projects. Target to be met largely through expeditious completion of identified ongoing major and medium irrigation projects (12 lakh hectares). 10 lakh hectares through ground water development and 10 lakh hectares each through minor irrigation schemes

and repair/renovation/restoration of water bodies. Rs. 68,500 crore has been earmarked for this purpose. Ministry of Water Resources and State Govts. are responsible for major. medium and minor irrigation projects complemented by Ground Water Department.

Telephone

As every village has to be connected by telephone. 66.822 villages are to be covered by November 2007, i.e. even two years before the specified period. Out of it 14.183 remote and far flung villages are to be connected through digital satellite phone terminals. It is proposed to connect block headquarters with optic network, use of wireless technology and operation of information kiosks through stakeholder participation. Rs. 451 crore are earmarked for this purpose. Resources for USO are raised through a Universal Service: Levy @ 5% of the adjusted gross revenue of all telecom service providers. Telecom service providers are assisted through the Universal Service Obligation Fund to penetrate into the rural areas. Dept. of Telecom. Ministry of Communication and Information Technology are responsible for this endeavour.

The agriculture sector in India or Bihar has been and is likely to remain the major user of water (> 70%). At the same time, there is a compulsion of enhancing agriculture production in an eco friendly sustainable manner, with limited land and water resources. Obviously, India has the world's largest area under irrigation with more than 59 million hectares, but the average yield of irrigated area, less than 2.5 t / ha, is pathetically low with one of the lowest WUE (Water use Efficiency) - 30-40%, against 55% in China. This has to be improved. The per capita availability of water has dropped drastically from 6008 m^3 to 2200 m^3 now and is likely to be expected less than 1500 m^3 by 2025. The International Water Management Institute (IWMI), forecasts that by the year 2025, 33% of India's population will live under absolute water scarcity condition and that will affect adversely on agriculture for irrigation water.

Annual Requirement of Fresh Water by Various Sectors			
Sectors	**2000 AD**	**2025 AD**	**2050 AD**
Irrigation	541	910	1072
Domestic	42	73	102
Industries	8	22	63
Thermal Power	2	15	130
Other Uses	41	72	80
Total	**634**	**1092**	**1447**

Geographical and climatic variability in India supports a large number of crops and cropping systems. About 196 species of cultivated crops, gardens, plantation crops, fruit crops and other crops are grown through length and breadth of the country. More than 250 cropping systems are being followed throughout the country. The cropping intensity of India is presently 131.2% with 44.4 million hectares area sown, more than once in a 'ear. There is a great need of the time to pay attention to increase the land utilization efficiency, reducing production cost, economizing the input use in cropping systems.

Infrastructural Growth

Poverty removal programme is fundamentally related to growth of infrastructure like transport. Communication, power, generation, water resource management, education, health. Sanitation, man-power build-up. etc. It is not only that such development process itself will create employment opportunities, but also that it will prepare the ground for much larger

productivity in primary, secondary and tertiary sectors helping reduction of poverty and unemployment.

The region badly suffers from lack of connectivity. It is not only that except for Assam, no state capital has railway connectivity, but also that road connectivity is grossly inadequate. With floods and rains, the rural areas of Assam. in particular. Mostly remain isolated in summer months. A number of projects on road and rail connectivity which were taken up years back have remained either incomplete or still in the plan frame yet to be taken up for execution. Such type of leisurely approach must somehow be done away with.

Health infrastructure is woefully poor in the region with infant mortality per 1,000 live births at 70 in Assam as against 63 in the country as a whole. There is mushrooming growth of private health care institutes which are not only substandard in most cases depending on hired medical services, but are localized in urban areas to take care of the rich only. The conditions of rural health is simply pathetic with health centres having neither treatment facilities nor qualified medical staff to attend to patients in most cases. The per capita government expenditure on both health and education is much below all India average in Assam where literacy is still less than 54 per cent.

It may be noted here that the first ever human development index (HDI) prepared by the government of Assam in 2002-03 shows that the state had achieved only 31 per cent in human development. The three major indicators are education, health and income. In the study the health index of the state is only 39 per cent. The meager budget allocation for health and education has been mentioned as the main reason in the report.

Agriculture Development

Agriculture was in a hopeless and deplorable condition. Our Farmers were in heavy debts to the village money-lenders. They were having small and scathered holding. They had neither the money nor the knowledge tonse proper equipment, good seeds and chemical manures. except in certain areas. They were dependent upon rainfall and upon the vagaries of the monsoons productivity of land as well as of labour had been declining and was generally the lowest in the world. In spite of the fact that nearly 70 per cent of our working population was engaged in cultivation the country was not self-sufficient in food grains but had come to depend on imports off food grains. Besides, the country in 1947 worsened the agriculture situation as India or Bihar was given more people but less land to support.

While planning to develop the agricultural sector, the planning commission has kept four broad objective:-

a. **Increase Agricultural Production :-** The aim is to bring more land under cultivation, raise the per hectare yield through inhensive application of such agriculture inputs as irrigation, improved seeds, fertilizers etc. and thus bring about increased agricultural production.

b. **Increase Employment Opportunites –** A part from increase in production the agricultural sector has to generate adoligional employment opportunities and provide scope increasing the income of the poorer section in our villages

c. **Reduce the Pressure of Production on Land :-** Another basic objective of planning in the agricultural sector in to reduce the number of people working in land. The surplus labour on land should be shifted to secondary and fertiary sectors preferably in rural and semi urban areas.

d. **Reduce Inequality of Incomes:-** In the Rural sector the government should remove the exploitation of tenants and should distribute surplus land among small and marginal farmers in such a

way that these would be same degree of equality and justice in the rural areas.

All these four objectives are generally followed in all our five year plans but in practice agricultural planning in India has come to mean increase in agricultural planning India has come to mean increase in agricultural production. viz. the achievement of the first objective all other objectives have either need ignored er given lower priority.

References

1. *Pratiyogita Darpan, 2006*
2. *Pratiyogita Darpan, 2007*
3. *Yojana, Dec. 2006*
4. *Souvenir, March, 2006*
5. *Government of India, Report of National Commission on Agricultural, 1976 part I.P. 140.*
6. *Bhatia B.M. Indian Food problem and policy since Indepence somaiya publications pvt. ltd., Bombay 1970. p-119.*
7. *Governemt of India, National Commission Agriculture, op. cit, pp. – 140-141.*
8. *Ibid : p. 141.*
9. *Govt. of India, Departmetn of Agriculture, Report of the prices sub-committee of the policy committee on agriculture, forestry and Fsheris, delhi, 1947, p.1.*
10. *Ibid, p. ii*

 ISSN 2277-5587

A prospective community based study of anaemia status during pregnancy in Purnea District of Bihar

shodhshree@gmail.com

Dr. Usha
Assistant Professor (Guest Faculty), Prunea University, Purnia (Bihar)

Abstract

To understand the status of anemia in pregnant women of Purnea district and conduct a comparative study of rural versus urban pregnant women. Anemia is serious public health problem and pregnancy is the most important part of human life. Effect of anemia during pregnancy upon fetus has lifelong impact. Anemia in pregnancy is a grave health issue in India and we have investigated a small part of North Eastern India in the state of Bihar in Purnea District. We have also tried to compare the status of anemia in pregnant women between rural and urban women. This study is a prospective community based study and we have tried to shed some light on this important social and medical issue. Anemia is rampant in India and almost a third of our population is anemic. Same percentage hold true for pregnant women as well. Impact of anemia in pregnancy is multifold. We cannot deny the fact that anemia is a great social, medical and economic disease and its impact on new life cannot be overstated. Present study is not only a snapshot; it is also trying draw attention of policy makers at the local level. Purnea being an important region of Seemanchal area, we have chosen this location to highlight the problem in our society. According to National Family Health Survey, over half (53%) of Indian women during reproductive age-window of 15 to 49 years are anemic. We have narrowed for our study the age group between 20 to 35 yrs and eliminated the extremes at both end. Anemia is prevalent in both urban and rural women during pregnancy. Our study has shown anemia is widely prevalent in young women of child bearing age and health care providers as well policy makers need to pay serious attention towards this important issue. As this menace causes lifelong impact on the developing fetus, society at large needs to focus on this issue. As our study has shown this problem is more prevalent in rural population, our government needs to take this into account. We also need to pursue further studies in future to take into consideration the impact of educational and economic status of women.

Key word: *Purnea, Anaemia, Folic Acid, Iron, Community, Pregnancy.*

Women who have sufficient iron reserve and are on balanced diet, are unlikely to develop anaemia during pregnancy in spite of an increased demand of iron caused by developing foetus. But if the iron reserve is inadequate or absent, anemia is most likely to occur during pregnancy.

The factors which lead to the development of anaemia during pregnancy are:

Increased demand of iron:- As we know, the demand of iron during pregnancy is markedly increased. As adequate balanced diet contain not more than 18-20 mg iron and assuming that the absorption rate is

increased by two folds (20%), the demand is hardly fulfilled.

Diminished intake of iron:- Apart from socioeconomic factors, faulty dietetic habits, loss of appetite and vomiting in pregnancy are responsible factors.

Disturbed metabolism:- A part from the faulty absorption mechanism just described pregnancy depresses the erythropoietic function of the bone marrow. The exact mechanism is not clear but it probably interferes with specific amino- acid synthesis and lack of utilization of the available haemopoietic factors. Presence of infection markedly interferes with the erythropoiesis; one should not even ignore the presence of infection markedly interferes with the erthroiesis; one should not even ignore the presence of asymptomatic bacteriuria.

Pre- pregnant health status:- Majority of the women in the tropics actually start pregnancy on a pre- existing anaemic state or at least with inadequate or with a nil iron reserve. It is the state pregnancy on a pre- existing anaemic state or at least with inadequate or with a nil iron reserve. It is the state of the stored iron which largely determines whether or not how soon a pregnant woman will become anaemic.

Abnormal demand due to:-

- **Multiple pregnancy-** increases the iron demand by two folds.
- **Women with rapidly recurring pregnancy-** within 2 years following the last delivery, need more iron to replenish deficient iron reserve.
- The demand of iron which accompanies the natural growth before the age of 21, should not be under-estimated, specially where teenage pregnancies are quite prevalent. At the age of 17, the additional demand is estimated to be about 270 mg during the course of pregnancy; the requirement is, however, brought down to nil at the age of 21.

Another important problem posed by anaemia in pregnancy, is its polymorphism, Pregnancy tends to interfere with maternal erythropoiesis by competing for the available raw materials such as folic acid, vitamin B12, proteins, apart from iron.

IRON DEFICIENCY ANAEMIA: This is the most common type of anemia found in women.

CLINICAL FEATURES: The clinical features depend on the degree of anaemia more than anything else. In the majority, the patients have got no symptom and the entity is detected accidentally during examination. However, the following features may develop slowly.

Symptoms:

- Lassitude and a feeling of exhaustion or weakness may be the earliest manifestations.
- The other features are anorexia and indigestion; palpitation caused by ectopic beats, dyspnoea, giddiness and swelling of the legs.

To ascertain the type of anaemia :

- **Peripheral blood smear:** Examination of a well made peripheral blood smear stained with Leishman stain to study the morphology of the red cells gives a better idea, about the type of anemia. Abundant presence of small pale staining cells with variation in size (anisocytosis) and shape (poikilocytosia) suggest microcytic hypochromic anaemia. This is typical in Iron deficiency anaemia.

- **Hematological indices:** Calculation of MCHC, MCV and MCH is based on the

ISSN 2277-5587

values of haemoglobin estimation, total red cells count and PCV. MCV and MCH values are not much dependable because of inherent inaccuracy in red cell count which is involved in their calculations. MCHC is the most sensitive index of iron deficiency anaemia.

Other blood values in Iron deficiency anemia of importance are:

- Serum iron is usually below 30 g/100mi.
- Total iron binding capacity is elevated to beyond 400g/100 ml.
- Percentage saturation is 10% or less.
- Serum bilirubin is not raised.

Complications of Anaemia

During Pregnancy: - The following complications are likely to increase:

- Pre- eclampsia may be related to malnutrition and hypoproteinaemia.
- Intercurrent infection- Not only does anaemia diminish resistance to infection, but also any pre- existing lesion, if present, will flare up. It should be noted that the infection itself impairs erythropoiesis by bone marrow depression.
- Heart failure at 30-32 weeks of pregnancy.
- Preterm labor.

During labor

- Uterine inertia is not a common associate; on the contrary the labor is quickly terminated because of a small baby and multiparous women.
- Postpartum hemorrhage is a real threat. Patient tolerates badly even a minimal amount of blood loss.
- Heart failure may be due to accelerated cardiac output which occurs during labor or immediately following delivery. As the blood in the uterine circulation is squeezed in the general circulation, it puts undue strain on the weak heart already compromised by hypoxia.
- Shock- Even a minor traumatic delivery without bleeding may produce shock or a minor hypoxia during anesthesia which may be lethal.

Puerperium:- There is increased chance of:

- Puerperal sepsis
- Subinvolution
- Failing lactation
- Puerperal venous thrombosis
- Pulmonaryembolism

Risk periods: - The risk periods when the patient may even die suddenly are-

- At about 30-32 weeks of pregnancy
- During labor
- Immediately following delivery
- Any time in puerperium specially 7-10 days following delivery due to pulmonary embolism.

Effects on baby:

There is increased incidence of prematurity with its incidental hazards.

Intrauterine death – due to severe maternal anoxaemia.The sum effect is increased perinatal loss.

Durning the pregency a new organism (embryo) is formed in the women body and there are many metabolic changes in the human body. Therefore, for proper development of the fetus, for proper delivery and there is no problem even after birth, it is necessary for a pregnant women to be healthy and a balanced diet is necessary to stay healthy. Breeding period is a time of crisis for women. Malnutrition increases this crisis. Nutrition requirements begin before conception. Many scientists are of the opinion that proper nutrition should be provided from childhood itself as different organs start to develop in this stage. All the appropriate nutrients are stored in

the body of malnourished women and they remain healthy in comparison to malnourished women during pregnancy. Only healthy women can give birth to a healthy baby.

The main reasons for high maternal-infant mortality rate in our country are following. There is a lack of elements. Inadequate nutrition affects conception capacity. They have to face many diseases like dizziness, nausea, constipation, vomiting, toxemia, osteomalacia etc. Due to this, the mother becomes weaker and her immunity is also reduced and can easily become victim of infectious diseases as well. Children of such malnourished mothers are either born unwell or are born before maturity, which sometimes leads to their death. Sometimes such children are found to be suffering from many infectious diseases. Therefore, it is the responsibility of the parents to have a healthy and happy baby. The entire life of the baby depends on the mother's diet.

Physiological Changes during Pregnancy

- **Hormonal Changes** – Multiple hormones including Progesterone acts in the fetus to fix the mucous membranes of the uterus. Gonadotropins help in growth of organs while estrogen stimulates the mammary glands. Placental hormones increase the amount of cells of the reproductive organs and mammary glands. A.C.T.H increases the activity of thyrotrophin hormone and hormones secreted by adrenal glands.
- **Metabolic Changes-** A women's nutritional demand increases in pregnancy due to several reasons as B.M.R base rate increases by 10-25%. There is a demand for more nutrition and oxygen as well as preparations for breastfeeding.
- **Changes in Blood Circulation-** During pregnancy, about 30% of the amount of blood increases in the body of the women. The volume of blood increases while the amount of red blood cells does not increase that much. Vitamin A and Vitamin C are reduced in the blood while carotene, vitamin E and cholesterol in the blood increases
- **Renal Changes-** In this stage, Glomerular Filtration increases by 50% due to increased blood circulation in the kidneys. The removal of urea and uric acid begins. In the fifth and sixth month of pregnancy, a large amount of water is expelled from the body.
- **Cutaneous Changes-** In pregnancy, the activity of sweat and sebaceous glands increases. During pregnancy, there are brown spots on some parts of the body such as on the cheeks in the mouth, around the breast nipple on the nose and on the forehead, which is called colour pigmentation.
- **Changes in Nervous System-** In pregnancy, many changes are seen due to which the pregnant women becomes irritable in nature, she feels sleepy due to anxiety, the body is full of laziness.
- **Changes in Abdominal and Pelvic Joints-** In pregnancy, the abdominal walls develop, expand to make space for the uterus and it continues to spread even after delivery.
- **Musculo Skeletal Changes-** As the size of the uterus increases in pregnancy, the balance of the body worsens. This causes pain in the back and back bone.
- **Respiratory Changes-** Hormone progesterone causes changes in the respiratory functions of a women. Oxygen Consumption increases to 10-30 per minute, thereby restricting the respiratory function to the chest.
- **Changes in the Uterus, Cervix and Vagina-** In pregnancy, hormones have the greatest effect on reproductive

organs. The muscular fibers of the uterus grow 15 times as compared to the normal state. Uterus weight changes from 50g to 950g.

Review and Literature

Dr. Enrique Tejera :-Anemia during pregnancy is a worldwide problem (1). The nutritional anemia is the most important cause of maternal anemia. Iron deficiency (ID) and folate deficiency (FD) are considered as the first two causes of nutritional anemia. Furthermore, iron deficiency anemia (IDA) is the most important public health problem in hematology in the developing countries (2). During pregnancy there is an increase of iron and folate requirements, therefore the likelihood of presenting ID and FD is high if there is not supplementation during the pregnancy. Diagnosing both deficiencies in pregnant women is critical because several evidences relate IDA to increased risk of maternal and fetal morbidity and mortality and premature delivery and low birth weight.

To our knowledge, there are no investigators in Latin América who have evaluated a hospital - based sample of subjects performing both serum ferritin and serum folate simultaneously with a sample calculated prior to research. The Valencia Anemia during Pregnancy Study (VAPS) was established in 1996 in order to carry out epidemiological researches in the main industrial city of Venezuela with two goals: determine the true prevalence of anemia during pregnancy and determine the association and its magnitude between prematurity and low birth weight with maternal anemia.

Mary E Cogswell, lbrahim Parvanta:- For women who are initially iron replete and not anemic, the need for supplemental iron during pregnancy is uncertain. Present evidence is insufficient for the US Preventive Services Task Force to either recommend or not recommend routine use of iron supplements in pregnant women with a hemoglobin concentration ≥ 100 g/L (1, 2). Specifically, evidence about beneficial effects of iron supplementation during pregnancy on functional outcomes is inconclusive. Moreover, the theoretical possibility of adverse effects, such as oxidative damage, with administration of iron supplements during pregnancy has been raised (3).

In 1993, the Institute of Medicine (IOM) proposed a complex program of selective iron supplementation during pregnancy, which was based on screening pregnant women in their first and second trimesters by using hemoglobin and ferritin concentrations. In particular, the IOM recommended that iron supplements not be given to women who are nonanemic (hemoglobin concentration ≥ 110 g/L) and iron replete (ferritin concentration > 20 μg/L). Women with anemia or decreased iron stores would receive different doses of iron depending on their hemoglobin or ferritin concentrations. In the third trimester, all women would receive iron supplements, but the dose would differ by hemoglobin concentration. Recognizing the lack of available evidence, the IOM recommended that the guidelines be evaluated before implementation. The Centers for Disease Control and Prevention and the American College of Obstetricians and Gynecologists recommend a daily iron supplement (30 mg) as prophylaxis for iron deficiency during pregnancy . In the present study, we tested the hypothesis that administration of a daily iron supplement from enrollment to 28 wk of gestation to initially iron-replete, nonanemic pregnant women would reduce the prevalence of anemia at 28 wk of gestation. During the study, we added birth weight and gestational age as outcomes because of a need for more information on the functional consequences of iron supplementation during pregnancy .

All over the world, around 2 billion people are anemic which pertains to 30 percent of population.

Mohammad Yawar Yakoob & Zulfiqar A Bhutta:-Around 2 billion people, amounting to

over 30% of the world's population are anemic, mainly due to iron deficiency. Iron deficiency is the most prevalent and also the most neglected nutrient deficiency in the world, particularly among pregnant women and children, especially in developing countries. It is also significantly prevalent in industrialized countries. Estimates say that globally, fifty six million pregnant women (41.8% of the total) are affected with anemia, again mostly due to iron deficiency. In developing countries, this proportion can be as high as 80% like in SouthAsia, making pregnant mothers susceptible to increased risk of mortality and decreased work capacity. It may also lead to other perinatal complications like pre- eclampsia, low birth weight, prematunty and perinatal mortality. It is the poorest, most vulnerable and least educated who are disproportionately affected by iron deficiency, and it is this group that stands to gain the most by its reduction.

Materials and Methods: In spite of great body of knowledge in this area, there is limited study on localized geographical domain. Purnea district is rural district in North-eastern part of state of Bihar. Health care facilities are comparable to other regions of Bihar. We collected the data from 100 pregnant women in a private clinic setting. We divided them in two groups of urban and rural based on their geographical location. The age group was confined to 20 to 35 years (both inclusive). We excluded women who had previous abortion or miscarriage as these complicates the health status. We did not take into account the educational or social status of women and this study also did not discriminate women based on economic status. We had 50 samples in each group, urban and rural, and we carried out a T-test to compare the two groups apart from basic statistical analysis.

The study is focused mainly on the following areas:

- Rural and Urban
- Age group
- Anemia status

Tools used: MS Excel

Statistical Technique: based on MS Excel. The data were analyzed as follow:

- Mean
- Median
- SD
- t -value

Result and Discussion:

This present study is based on the primary data collected from the selected areas and our goal was to assess the anemia status during pregnancy in Purnea District of Bihar. Our result is summarized in the chart and table below.

Table - We can interpret the difference of anaemia status during pregnancy in Purnea District of Bihar between rural and urban women. The calculated mean is 27.2 (rural women age group) and 28.8 (Urban age group) respectively and the standard deviation in case of the rural area women age group is 4.63 and urban area age group is 4.61 and 't' value is 0.0002, which is highly significant. We had chosen a significance level of 0.05 for this study.

	Rural Group		**Urban Group**	
	Age	Hb%	Age	Hb%
Mean	27.2	9.03	28.8	10.44
Median	26.5	8.9	29.5	10.25
STDEV	4.63	1.74	4.62	0.88
Max	35	12.9	35	12
Min	20	5.8	20	8.5
Range	15	7.1	15	3.5

Chart- As we see in the chart below (Anemia in Pregnancy:- Comparison between rural and urban group), both the age and Hb level is higher in urban age group in comparison to rural women. The mean Hb level is 10.44 in Urban age group while it is 9.03 in rural women. The standard deviation in case of the Rural area for Hb is 0.88 and urban area it is 1.74. We ran a paired t-test to see the significance of the study and we found that study was significant. So, the difference in two groups cannot be found by chance.

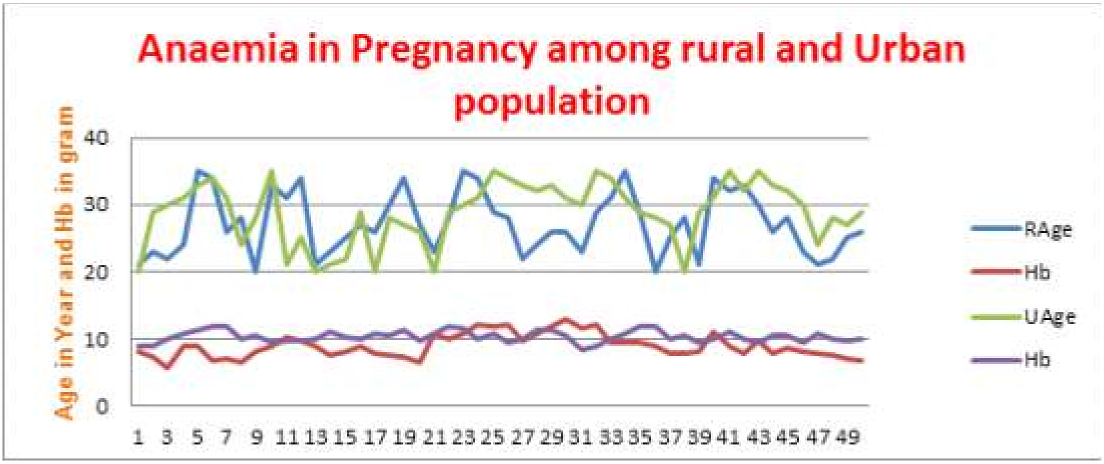

Anaemia in Pregnancy: Comparison between rural and urban groups

Conclusion: Our study has shown that there is very important difference between the anemia status of two groups-urban and rural. Although, there was not much age difference, rural women had lower Hb levels in our study. This is crucial as the policy makers can focus more on rural women for any welfare programme.

Future Studies: This difference needs to be further analyzed in future studies to see whether educational or economic level plays a role. As age and geographical location alone can not explain the difference that we found.

References

1. *Dutta D. C. (1993). "Text book of Obstetrics Including Perinatology & Contraception" Publishers: New Central book agency (P) LTD Calcutta. (PP-273-275).*
2. *Park K. (2019). "Park's Textbook of Preventive and Social Medicine" Publishers: M/s Banarsidas Bhanot –Jabalpur Pune (pp-680-681).*
3. *Mark H. Beers, M. D., and Robert Berkow, M. D. (1999) "Seventeenth Edition: The Merck Manual of Diagnosis and Therapy" Published by Merck Research Laboratories. (pp-858-859).*
4. *Dr. Tejera Enrique,(2002) Clinical Epidemiology Unit, Universidad de Carabobo and Ciudad Hospitalaria Venezuela and Clinical Epidemiology Unit, Universidad de la Frontera, Temuco, Chile "Prevalence of anemia during pregnancy: Results of (Venezuela) anemia during pregnancy study".*
5. *Mary E Cogswell, Ibrahim Parvanta, Liza lckes, Ray Yip, Gary M Brittenham (2003), "Iron supplementation during pregnancy, anemia, and birth weight: a randomized controlled trial" The American journal of clinical nutrition, Volume 78, Issue 4, October 2003.*
6. *Mohammad Yawar Yakoob & Zulfiqar A Bhutta (2011) "Effect of routine iron supplementation with or without folic acid on anemia during pregnancy" Published: 13 April 2011.*
7. *Ramakrishnan Usha "Functional Consequences of Nutritional Anemia during Pregnancy and Early Childhood" (PP- 46).*

Impact of Globalization on Teacher Education

Dr. Reena Kumari
Assistant Professor (Guest Faculty), Nitishwar College, Muzaffarpur (Bihar)

shodhshree@gmail.com

Abstract

Enormous changes are occurring in day to day life of human being because of liberalization, privatization and globalization (LPG). 'Globalization' means integration of economies and societies through cross country flows of information, ideas, technologies, goods, services, capital, finance and Human Resource. In an another words "Globalization" means closer contract between different parts of the world, with increasing possibilities of personal exchange, mutual understanding and friendship between "World Citizen" and creation of a global civilization. Globalization indicates "inter-connectivity of technologies". These technologies have rapidly made the world a "Global Village". Education plays a vital role to overcome many challenges and maintain peace in the globe. It has fundamental role to play in personal and social development. It promotes a productive and informed citizenry and creates opportunities for the socially and economically under privileged section of the society. Teacher is the greatest assets of any education of the country. They stand in the interface of the transmission of knowledge, skills and values. They are accepted as the backbone of education system. The phenomenon of globalization is considered as the most wide spread trend our century has ever witnessed. Teacher education plays a pivotal role in this era of globalization in shaping and reshaping the society and determining the quality of life in the community and the nation. Like all other profession, globalization has also affected education.

Key Words: *Globalization, Teacher Education, World, Information and Technology etc.*

Globalization is expected to be a process through which an increasingly free flow of ideas, people, goods, services and capital would lead to the integration of economies and societies. It is characterized by an accelerated flow of trade, capital, and information, as well as mobility of individuals, across geographical borders. It reflects comprehensive level of interaction than that has occurred in the past, suggesting something beyond the word "international". It implies a diminishing importance of national borders and strengthening of identities, that stretch beyond those rooted in a limited locale in terms of particular country or region. It can also be defined as the intensification of worldwide social relations which link distant localities in such a way that local happenings are shaped by events occurring at any distant place and vice versa. it is this construction of time-space compression that has given rise to popular notion of "One-World" "Global Village", etc.

According to jacues Hallak globalization is a combination of much freer trade in goods and services

ISSN 2277-5587

combined with free capital movements. The phenomenon dates far back in history with the development of international trade. However, for the past few years, we have observed a high acceleration in this trend due to a political and ideological environment eminently favourable to its development and rapid advances in technological innovation, especially in the area of telecommunications. Educational planners 0 wherever they come from – must think seriously about the consequences of such a phenomenon, particularly in terms of shifts in the job market, in order to better adapt their country's training system.

Teaching might not be the most popular profession in the world, but it is undoubtedly the most populated: there are indeed some 57 million teachers in the world, about two-thirds of whom work in the developing world. The irony in this statement hides a preoccupying truth. Teachers are an important force in our societies, where few other resources are made available to schools. At the same time, teachers feel weakened and complain about loss of their status and diminishing respect. A complaint reflected in parents' criticism that teachers and schools are offering an irrelevant and mediocre education.

UNESCO's fourth World Education Report, entitled Teachers and teaching in a changing world, focuses on the role and status of teachers in a world, undergoing rapid transformation, not least in the field of communications and information, an issue which obviously has an impact on teachers. The report examinees in some detail the validity of the frequently heard statement that teachers have lost status. It argues convincingly that “what society currently expects from teachers in most countries could be out of proportion to the rewards it is prepared to accord to teachers and the means typically put at their disposal.” It also points to the detrimental impact that some very popular, and seemingly innocent, education policies have had on teachers' status.

Globalization has two macro-level paradoxical effects on our daily lives. First, it simultaneously both integrates and segregates. It integrates world cultures through the global communication networks and less restricted movement of individuals. At the same time it creates a tension between those who are benefiting more and those who may be marginalized by the market values and consumer cultures that are typical to many societies, especially in the areas that suffer from poverty or slower development.

As a consequence, similar doctrines have emerged in education. Standards, testing and alternative forms of financing have come to challenge conventional public education in many countries. In the name of accountability and transparency, schools, teachers and students are more often than before measured, tested and asked to perform under the ob-serving eyes of external inspectors. Even ministers of education today compete to determine whose students can perform the best in international student assessment programs. Indeed, introduction of international test comparisons, such as PISA (Progam for International Student Assessment) and TIMS (Trends in International Mathematics and Science Study), has been one of the strongest pretexts for school reforms in many countries including many of the transition economies (Hargreaves 2003). The emerging perception seems to be that making schools, teachers and students compete will itself improve the quality of education, as it has vitalized corporations in market economies. Various forms of educational standards have been created to help these competitions to become fairer and more comparable.

Teacher Education in Globalization

Due to globalization, the teacher education institutions are providing necessary leadership programs to deal with present demand and expectation. In India, National Council for Teacher Education (NCTE) performs regulatory and development function of teacher education.

The main objective of NCTE is "to achieve planned and coordinated development of the teacher education system throughout the country, the regulation and proper maintenance of Norms and Standards in the teacher education system and for matters connected therewith". May institutes have introduced new programs to improve the quality of teacher programs and to strengthen the infrastructure and the facilities in teacher training institutions.

Teacher education institutions are expected to equip future teachers with latest methods, techniques and strategies for imparting instructions including the use of media devices and ICT. ICTs have immense potential in enhancing standard of teacher education in the globalization. A component of ICT in some form or the other and to different extents, is now an integral part of the teacher education curriculum for all students, either at diploma level (i.e. D.Ed) or at the degree level (i.e. B.Ed). Even masters' degree programs in education leading to M.Ed. degree have also started introducing a component of ICT in the Curriculum.

Globalization as Standardization

A clear impact of globalization is increased competition, not only in economy and trade, but also in other sectors, including education. The fundamental assumption is that boundless business opportunities and the free movement of labor are promoting efficiency and effectiveness in private production as well as among basic public services. Previous education policies have adopted values, principles and management models of market economy, for example, curriculum models in the early 20th century based on scientific management by Frederick W. Taylor. today agains, as a response to the economic, political and cultural globalization process, education systems are seeking governance and operational models from the business world. As a result, the number of privately managed education institutions has increased, school choice within public education has been made possible, local management and decision making are becoming common due to decentralization, and schools and teachers have been made accountable for teaching and learning.

Education is paramount in helping young people to learn to live together in a secure globalized world; But what kind of education? The Organization for Economic Cooperation and Development (OECD) had envisaged six possible scenarios for the future public education in the knowledge society (OECD 2001). Two 'Status Quo' scenarios of these ossible futures of public education presume a strengthening of current arrangements that will result in either more entrenched bureaucracy in school systems or a growing emphasis on market and choice-based models as students and their parents become more dissatisfied with public education. Two other scenarios termed 'De-Schooling' scenarios presume that public schooling will simply diminish because of the lack of enough good teachers, and that the proliferation of innovations will create panic and 'meltdown' in education policies. Alternative solutions, such as non-formal education, distance education and e-learning will gradually replace formal public schooling. Only two scenarios labeled as 'Re-Schooling' assume that public education can be saved and improved.

1. Professionalism

The education Standard will improve if all the teachers have global perspective, well prepared and provided with ongoing professional development and appropriate support.

2. Competency & Technology based Curriculum:

The competency based curriculum represents an approach to instructions, which emphasize the application of the knowledge in a manner, which may be observed or measured. Competency based curriculum guides focus on a comprehensive view of each course of study, which is delineated in to its essential components. Listing of most important objectives to be mastered and competencies,

which every student should be able to demonstrate often instruction is completed.

3. Research in Teacher Education

Enhanced scope of Teacher education requires researches and studies to visualize scope of teacher education in the context of globalization. Research must respond to the area of policy issues, curriculum issues, evaluation systems, classroom practices, training strategies, value inculcation, school community relationship, technology mediated education, quality in education, quality in education, interactive education etc.

4. Use of Integrated Technology

According to Gradlen (2002) a growing challenges in education is establishing and implementing strategies to develop the skills and knowledge necessary for the teacher to essentially use technology as instructional tool. The extent to which teachers are prepared to infuse technology into curriculum and instruction is a major contextual factor.

5. Mobility of the Teachers across the Globe

There is an increased demand for Indian teachers in many countries. The teachers need to be trained to be competent in the global market.

6. Adaptability

Teachers need to be adapted to the socio-economic and cultural diversities of the students in order to complete in the international sphere.

The challenge of globalization to education is to realize that the needs of the learners are the needs of the peoples. In answering these needs, education for the new millennium can help to achieve the fundamental goal of the UN Programs on Education for All and Education for Life which is "to meet the needs of all peoples, for all times, with no exception." Reform in teacher education should be aimed at what K. Annan referred to as a win, win situation, It should be holistic and transformative with an overarching goal of attaining a civil society.

Opportunities which offer solutions to the problems created by technology and innovations are growing. Existing technology can assist research efforts to monitor and track information disclosure about children. (Pittman, March, 2000). Laws can be passed in order to protect everyone from the invasion of privacy especially children and fewer fortunate members of society. Education should be in the forefront of fighting these cyberspace wars. The UN has also assumed the responsibility of educating and monitoring the use of technology for more positive approaches and results.

Positive impact of Globalization on Teacher Education

- A number of teacher education institutions were increased.
- Usage of technology increased in the educational institutions.
- Information and communication technology were increased.
- Teacher educational institutions were established in rural areas.
- Government and private partnership in the field of teacher education.
- Extension of Internet facilities even to rural areas educational institutions.
- Teachers are less worried for government jobs as MNC's and private or public sector are offering more lucrative jobs.
- Free education for bright students.

Negative Impact of Globalization on Teacher Education

- Indian youths leaving education in mid-way and joining MNC's.
- There has been an increase in the violence, particularly against women in the educational Institutions.
- Quality in education is decreasing (liberalization).
- Degradation of values.
- More availability of cheap and filthy

material (CD's or DVD's of Hollywood movies, porn movies, sex toys, foreign channels like MTV) in the name of liberalization. It affects the psychology of teachers. Some teachers are miss-behaving with students.

- Values of teacher are decreasing.

Conclusion

It is obvious that globalization provides new opportunities to solve worldwide problems and at the same time it creates a new challenge that needs to recognize. One visible trend within education is homogenization of the content of teaching and standardization of the expected learning in schools. Many governments are currently searching for optimal ways to respond to these challenges. However, no one can deny that its benefits are unevenly shared and its costs are unevenly spread among, across and within counties.

It is impossible to avoid but have to be faced by using resources with high quality especially human resources. Teacher's quality is the keyword for ensuring the quality of education. Qualified competent teachers will not be able to carry out their task professionally without the conditions that support their tasks.

References

1 *Matriano, E. C. (2000). "The Impact of Global Changes on Teacher Education: Challenges and Opportunities and a Vision for a Culture of Peace." Education XXI 3, no. 1.*

2 *Sahlberg, P. (2004). " Teaching and globalization." Managing Global Transitions, Volume 2, no. 1, Spring.*

3 *Pandey, S. (2011). "Professionalization of Teacher Education in India: A Critique of Teacher Education Curriulum reforms and its effectiveness." NCERT, New Delhi. Gawande, Anjusha Jagdeorao. "Globalization: Teacher Education in India". IEPT Conference Report, Educational Technology and Management Technology, Haryana.*

4 *Poisson, M. (1998). "Education and globalization". IIEP Newsletter, Vol. XVI, no.2, April-June.*

5 *Grauwe, A. (1998). "Changing teachers for a changing world". IIEP Newsletter, Vol. XVI, No.2.*

6 *Dalal, S. (2011). "Teacher Education and Globalization". IJEREI, Volume 1, Issue 4.*

7 *Kishan, N. R. (2008). "Gobalization – Challenges in Teacher Education" in Kishan, N. Ramnath, ed. Global Trends in Teacher Education, APH Publishing Corporation, New Delhi.*

8 *umalatha K. & Ramakrishnaiah. D. (2008). "Impact of ICT on Teacher Education in the Centre of Globalization" in Kishan N. Ramnath. Global Trends in Teacher Education, APH Publishing Corporation, New Delhi.*

9 *Prameshwar, A. (2008). "The Impact of Globalization of Teacher Education" in Kishan N. Ramnath. Global Trends in Teacher Education, APH Publishing Corporation, New Delhi.*

10 *Selvam, S.K.P. (2009). Global Trends in Teacher Education. APH Publishing Corporation, New Delhi.*

11 *Singh, M. K. (2009). "Challenges of Globalization on Indian Higher Education". Apeejay-Stya Education Research Foundation, New Delhi. http:/www.aserf.org.in/presentations/globalization.pdf*

 ISSN 2277-5587

A Comparative Study of Mental Health and Aggression of Secondary School Students

shodhshree@gmail.com

Dr. Smita Kumari
Assistant Professor (Guest Faculty), K. B. Jha College, Katihar (Bihar)

Abstract

*The Mental health plays a very important role in human life. It plays its role not only in the lives of individuals but also in the life of society. There is no area in human life which is beyond the range of psychological wellness. The term mental health doesn't allude to any aspect part of mental life or to any one dimension of human character. Twenty first century is an era of acute modernization. The school environment is an optimal context to provide mental health services. Media throws abundant cross-cultural exposure to the students, and at times, so called; social media leads students to the evils of maladjustment, loneliness, addictedness and loss of socio-emotional support. Researches reveal that children with better mental health do better academically and socially. The present study aims to determine the aggression and status of mental health of secondary school students. The sample has 80 secondary school students (40 Boys 40 Girls). The scale was used for data collection **GHQ-28** which has designed by **Goldberg and Hiller (1979)** and Aggression scale was constructed and standardized by **Km. Roma Pal and Dr. Tasneem Naqvi**. This scale has consisted of 30 items. The result showed that female students was mentally healthy than male students and male students showed high level of aggression. The educational programmes such as yoga, meditation, cultural activities…etc should be planned in such a way to improve mental health and control the aggression level among students.*

Keywords : *Mental Health, Aggression, High School Students, GHQ-28 and Aggression scale.*

The Mental health plays a very important role in human life. It plays its role not only in the lives of individuals but also in the life of society. There is no area in human life which is beyond the range of psychological wellness. The term mental health doesn't allude to any aspect part of mental life or to any one dimension of human character.

*"Mental health is the capacity of the individual, the group and the environment to interact with one another in ways that promote subjective well-being, the optimal development and use of mental abilities (cognitive, affective and relational), the achievement of individual and collective goals consistent with justice and the attainment and preservation of conditions of fundamental equality.' **(World Health Organization's) (1981)**."*

Like physical wellbeing, mental health is also an aspect of total personality. Mental health is a list which demonstrates the extent to which the individual has been the option to fulfill his environmental needs, i.e., social, emotional or physical; and the extent to which he gets himself mentally stressed. This psychological or mental strain is commonly reflected is indications like anxiety, pressure, restlessness or

hopelessness among others.

*Mental health problems were significantly higher among those children whose both parents were employed. Maternal employment effect children and working mother's children have found much higher mental health problems than non-working mother. (**Seenivasan, P.,Caroline,P.K.,2014**).*

Aggression

When one person hurts and tries to destroy another person deliberately, either with word or with physical behavior, psychologists call it aggression. Aggression is usually defined as a behavioral act that leads to hurting or harming others. Berkowitz (1993), defined aggression as behavior directed toward the goal of harming or injuring another living being, where the opposite person are motivated to avoid the harm. One common reason for aggressive behavior is frustration, which occurs when an individual is prevented from reaching some desired goal. The concept of aggression as a reaction to frustration is thought because the frustration-aggression hypothesis (Berkowitz, 1993; Miller et al., 1941)[9]. Loud noises, excessive heat, the irritation of someone else's cigarette smoke, and even awful smells can lead people to act out aggressively (Anderson, 1987; Rotton et al., 1979; Rotton & Frey, 1985; Zillmann et al., 1981)[9]

Violence in The Media and Aggression

Bandura's early study in which small children viewed a video of an aggressive model was one of the first attempts to investigate the tact of violence in the media on children's aggressive behavior (Bandura et al., 1963)[9].since then; researchers have examined the impact of television and other media violence on the aggressive behavior of children of various ages. The conclusions have all been similar: Children who are exposed to high levels of violent media are more aggressive than children who are not (Anderson et al., 2010; Baron & Reiss, 1985; Bushman & Huesmann, 2001, 2006; Centerwall, 1989; Geen & Thomas, 1986; Huesmann & Miller, 1994; Huesmann et al., 1997; Huesmann et al., 2003; Villani, 2001)[9]. These studies have found that there are several contributing factors involving simple aggressive tendencies of the kid, with more aggressive children preferring to observe more aggressive media, similarly because the age at which exposure begins: The younger the kid, the greater the impact. Parenting issues even have an influence, because the aggressive impact of television is lessened in homes where hostile behavior isn't tolerated and punishment isn't physical. Research has also demonstrated in a 1-year study of school children, parental monitoring of violent media decreased the likelihood of getting into a fight (Gentile & Bushman, 2012). Violent video games have also come under attack as causing violent acting-out in children, especially young adolescents. (Baron & Richardson, 1994; Centerwall, 1989; Snyder, 1991; Wood, Wong, & Chachere, 1991)[9]. Apparently, when children and adults are exposed to new ways of aggressing against others-techniques they need not previously seen-they may add these new behaviors to their repertoire. Later, when angry, irritated, or frustrated, they'll put such behaviors to actual use in assaults against others.

Emerging evidence also seems to suggest that the negative effects of exposure to violence may be most pronounced for individuals who are highly aggressive by nature than for their non aggressive counterparts. Bushman (1995)[9], for example, showed that participants who scored higher on a measure of aggressive tendencies were more likely to choose a violent film to watch, were more likely to feel angry after watching it, and were more likely to commit aggressive acts after viewing videotaped violence than their less aggressive counterparts.

Exposure to electronic media violence increases the danger of kids and adults behaving aggressively within the short-run and of kids behaving aggressively within the long-run. It increases the chance significantly, and it increases it the maximum amount as many other factors that are considered public health threats.

It may convey messages that violence is an acceptable means of handling interpersonal difficulties; after all, if heroes and heroines can do it, why not viewers? It may elicit additional aggressive ideas and thoughts, convincing viewers, for example, that real-life violence is even more common than it is (Berkowitz, 1984)[9]. And it may also lessen emotional reactions to aggression and the harm it produces, so that such outcomes seem less upsetting or objectionable (Thomas, 1982). When these effects are coupled with new behaviors and skills acquired through observational learning, the overall impact may contribute to an increased tendency among many persons to engage in acts of aggression (Eron, 1987; Eron et al., 1996)[10].

Review of Literature

Ramesh Singh Bartwal (2014)[6] conducted a study to compare the Mental Health and Social Intelligence of senior secondary students. A sample of 400 students was drawn adopting simple random sampling technique from Government senior secondary schools of Chamoli district of Uttrakhand and Saharanpur district of Uttar Pradesh. Descriptive survey method was employed to collect the data. The't'-test and correlation were used for finding the significance of means and significance of relationship between dependent and independent variables. The study revealed that there was no significant difference in mental health of rural and urban students. The study also explored that there was a positive relationship between mental health and social intelligence. **Namesh Kumar et. al (2014)**[5] conducted a study on mental health of school going adolescents. Mental health and physical health are correlated with each other. First of all parents should give due attention towards the adolescents. Teacher should also pay healthy role to provide moral values among adolescents. Besides family factor socio-cultural factors also affect mental health. The negative impact of mass media and wrong cultural values affect mental health especially of the adolescent. It needs serious intervention on the part of government and responsible people of the society also. As healthy mind resides in healthy body so emphasis should be laid on to intricate values, healthy activities in such school so that the adolescents can never delineate or alienate towards wrong side.

Objectives

1) To examine the significant gender difference in mental health among school student.
2) To examine the significant difference on Aggression among school students.
3) To examine the correlation between mental health and aggression.

Hypotheses

1) There will be no significant gender difference in mental among school students
2) There will be no significant difference on Aggression scale among students
3) There will be no correlation between mental health and aggression.

Methodology

Sample and Sampling technique:

The present study sample have selected from secondary school students of Muzaffarpur City in Bihar. In this research simple random sampling method is employed to select the unit of sample. Total sample of present study 80 secondary school students (40 Boys and 40 Girls).

Variables

1) Independent Variables

Gender

- Boys and Girls

2) Dependent Variables

- **GHQ-28**
- **Aggression scale**

Tool Used

To study mental health of secondary school students the researcher used the GHQ-28

standardized by Goldberg and Hiller (1979). It consisted 28 items. This questionnaire has four scales. It measures **somatic symptoms, anxiety, depression and impaired social interaction**. Each scale has seven questions. The studies performed indicate high validity and reliability of this questionnaire. Aggression scale was constructed and standardized by Km. Roma Pal and Dr. Tasneem Naqvi. This scale has consisted of 30 items.

Data analysis and interpretation

The data collection will be analyzed with the assistance of varied statistical measures like Mean, Standard Error, T-Test correlation pearson r; spreadsheet package was used for data analysis.

The analysis of data interpretation and discussion of the results are presented below:

1) **Hypothesis (H1): There will be no significant gender difference in mental among school students.**

Table No.01 Show the mean, SD and t value of GHQ-28 factor first somatic symptoms

Gender	N	Mean	SD	df	t- ratio	Level of significance
Boys	40	15.82	2.36	78	6.39	0.01 Significant
Girls	40	10.41	4.73			

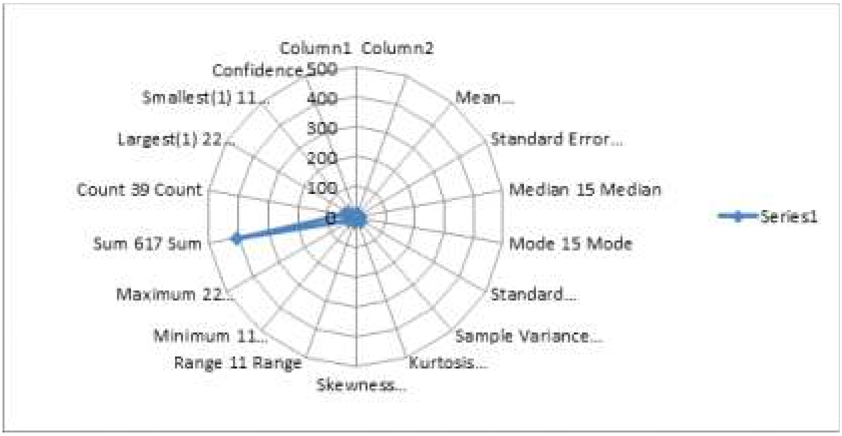

FIGURE-1

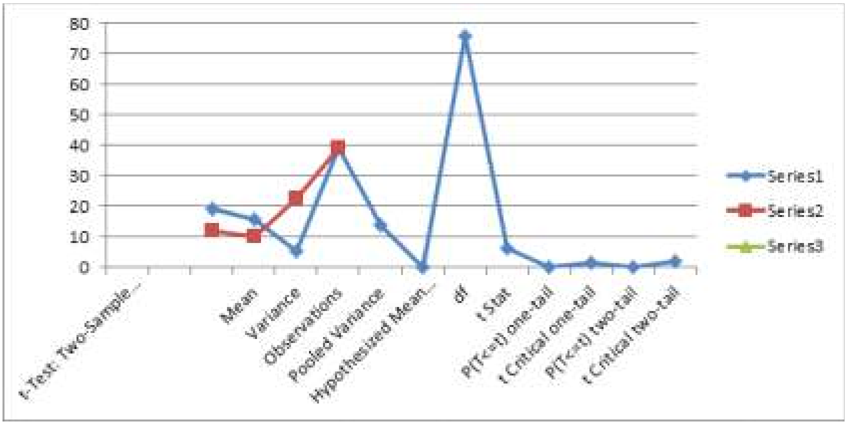

FIGURE 2

Table 1 revealed that the mean value in this factor of male students have 15.82 and SD 2.36. Similarly, the mean values of this factor of female students have 10.41 and the SD have 4.73. The calculated "t" values have 6.39. It is significant at 0.01 levels. It indicates that there have significant differences in this factor between the male and female students. That's why the above hypothesis is rejected.

Table No.02 Show the mean, SD and t value of GHQ-28 factor second anxiety insomania

Gender	N	Mean	SD	df	t- ratio	Level of significance
Boys	40	17.45	4.19	78	7.31	0.01 Significant
Girls	40	10.95	3.55			

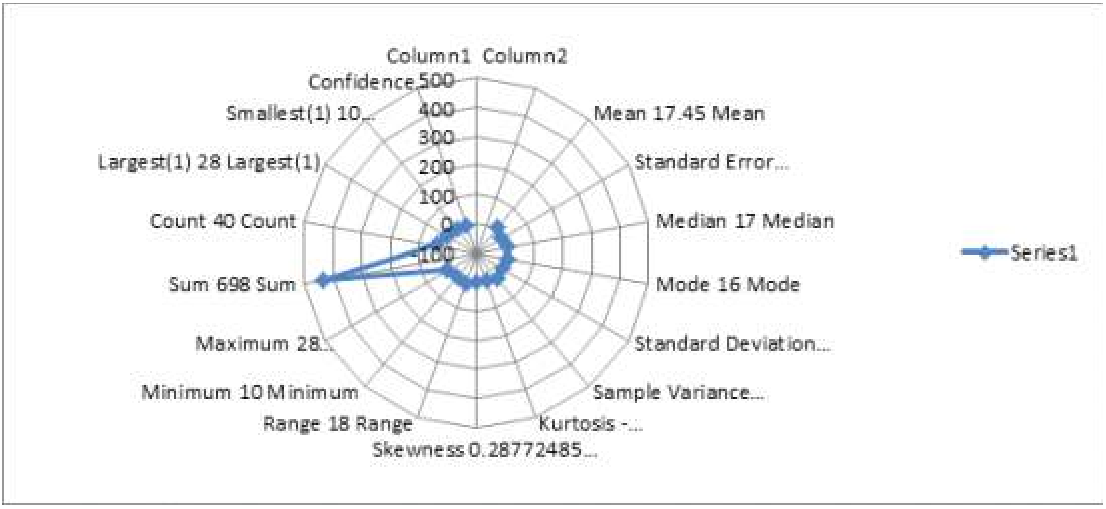

FIGURE-3

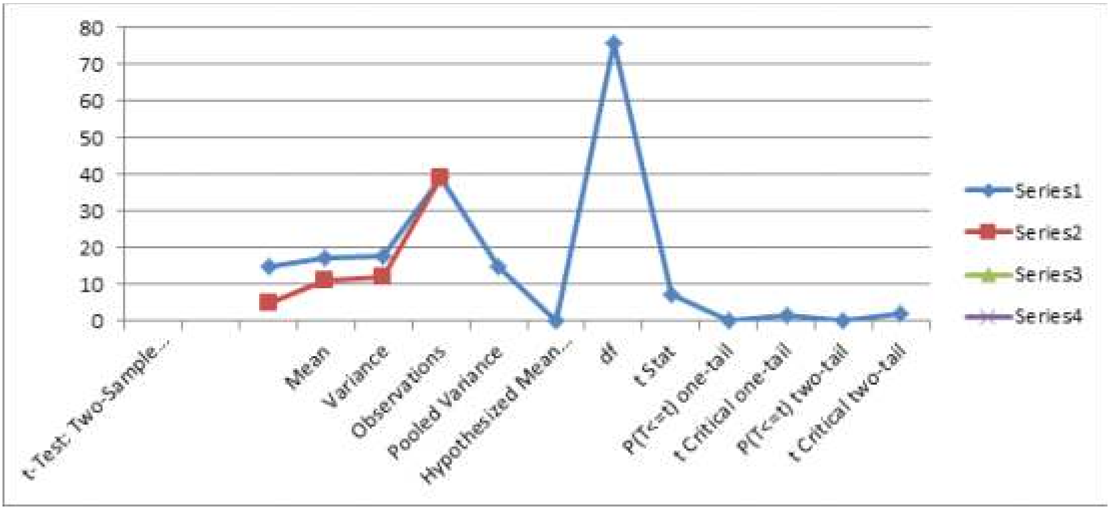

FIGURE-4

Table 2 revealed that the mean value in this factor of male students have 17.45 and SD 4.19. Similarly, the mean values of this factor of female students have 10.95 and the SD have 3.55. The calculated "t" values have 7.31. It is significant at 0.01 levels. It indicates that there have significant differences in this factor between the male and female students. That's why the above hypothesis is rejected.

Table No.03 Show the mean, SD and t value of GHQ-28-social dyfunction

Gender	N	Mean	SD	Df	t- ratio	Level of significance
Boys	40	17.4	4.44	78	7.44	0.01 significant
Girls	40	10.7	3.37			

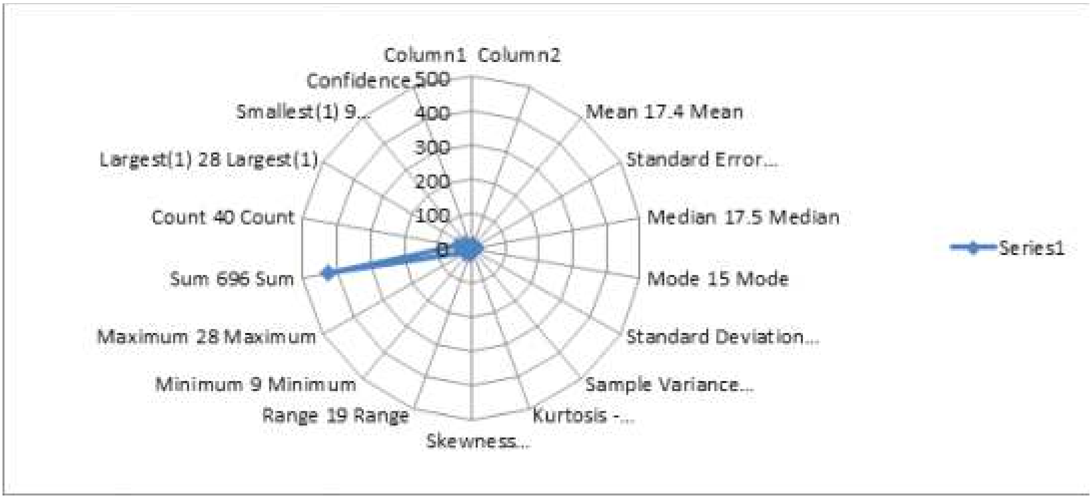

Figure-5

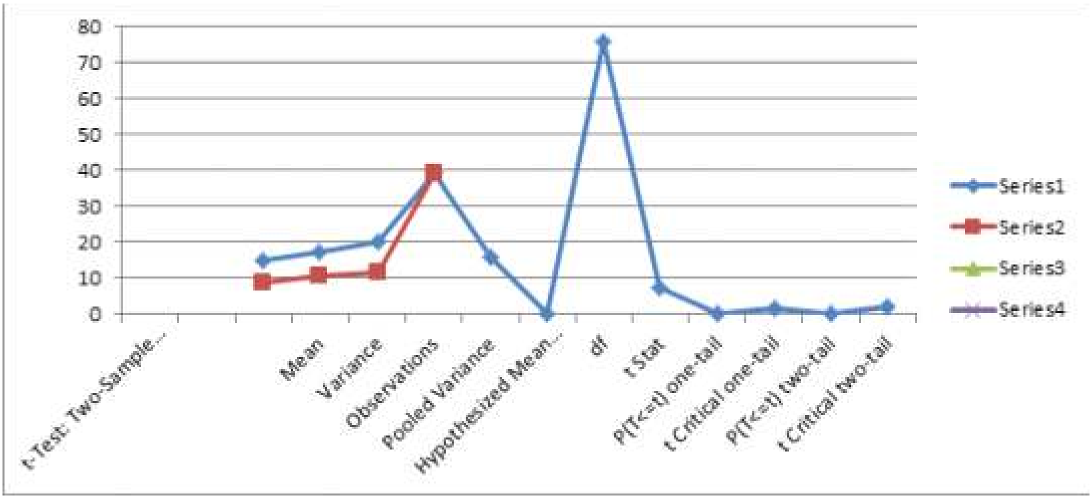

Figure-6

Table 3 revealed that the mean value in this factor of male students have 17.4 and SD 4.44. Similarly, the mean values of this factor of female students have 10.7and the SD have 3.37. The calculated “t” values have 7.44. It is significant at 0.01 levels. It indicates that there have significant differences in this factor between the male and female students. That's why the above hypothesis is rejected.

Table No.04 Show the mean, SD and t value of GHQ-28 factor fourth severe depression

Gender	N	Mean	SD	df	t- ratio	Level of significance
Boys	40	16.5	4.03	78	5.52	0.01 significant
Girls	40	11.15	3.48			

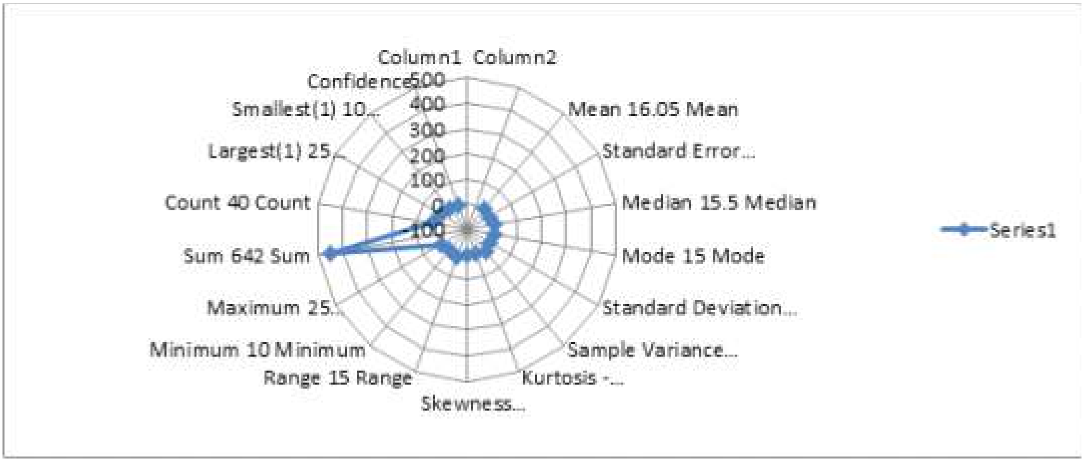

FIGURE-7

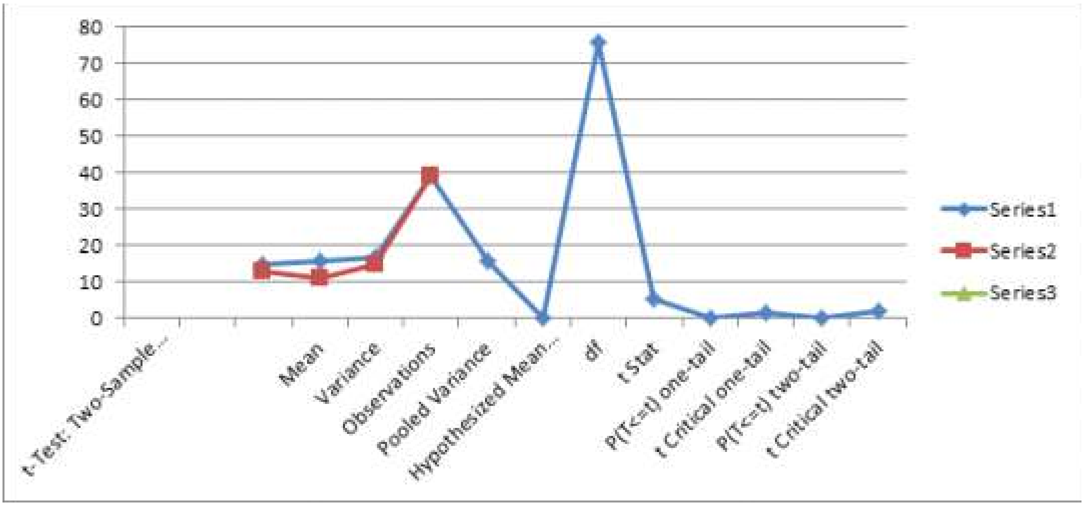

FIGURE-8

ISSN 2277-5587

Table 4 revealed that the mean value in this factor of male students have 16.5 and SD 4.03. Similarly, the mean values of this factor of female students have 11.15 and the SD have 3.48. The calculated "t" values have 5.52. It is significant at 0.01 levels. It indicates that there have significant differences in this factor between the male and female students. That's why the above hypothesis is rejected.

Hypothesis (H2) There will be no significant difference on Aggression scale among school students.

Table No.05 Show the mean, SD and t value of Aggression on Gender.

Gender	N	Mean	SD	df	t- ratio	Level of significance
Boys	40	147.8	6.76	78	15.07	0.01 significant
Girls	40	114.9	11.80			

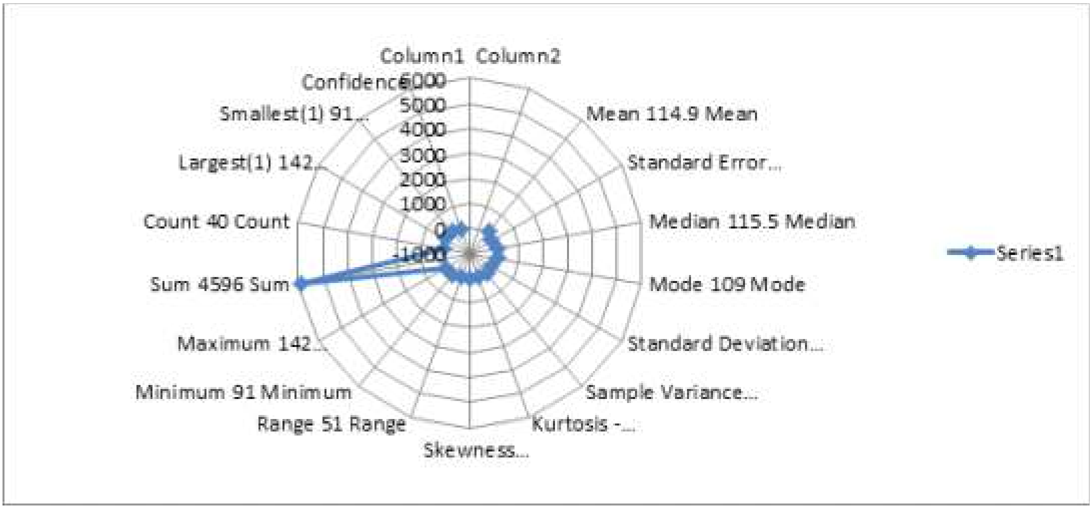

FIGURE-9

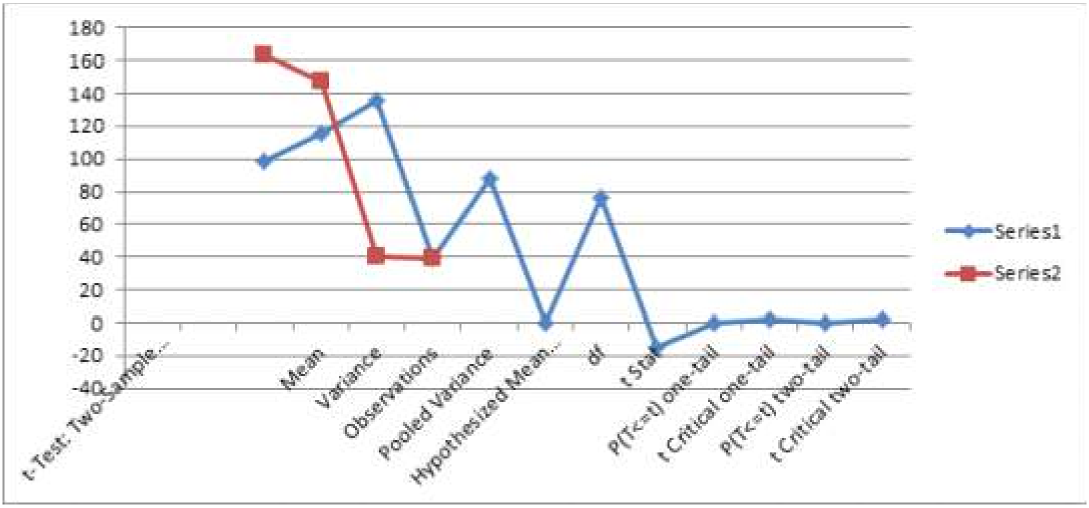

FIGURE-10

Table-05 revealed that the mean value of male students have 147.8 and SD 6.76. Similarly, the mean values of female students have 114.15 and the SD have 11.80. The calculated "t" values have 15.07. It is significant at 0.01 levels. It indicates that there have significant differences in this factor between the male and female students. That's why the above hypothesis is rejected.

Hypothesis (H3) There would be no significant correlation between mental health and aggression .

Table -06- show the Correlation B/w Mental Health and aggression of school students

Variables	N	R
Mental Health	80	-0.71
Aggression	80	

From the table 6, it is observed that the score of mental health and aggression of school students have found to be -0.71. That means there exits high negative correlation between mental health and aggression of school students. So, H3 stating that there will be no significant correlation between mental health and aggression of school students is rejected.

Conclusion

- Female students have mentally healthy than male students.
- Male students showed high level of aggression.
- Aggression and mental health significantly co-related with mental health.

References

1. *World Health Organization's) (1981) WHO.*
2. *Seenivasan , P. , Caroline, P.K. (2014). A comparison of mental health of urban Indian adolescents among working and non-working mothers. Annuals of community health, vol 2, issue 2.*
3. *Bernard, W. (1973), Mental Hygiene for class room teachers, McGraw Hill Book Company Inc.*
4. *Hadfield, J. A. (1952), Mental Health and Psychoneurosis, London: George Allen and Unwin Ltd, 1-2. 3. Garrett, Henry, E (2004) "Statistics in Psychology and Education" Indian reprint, Paragon International Publishers, India.*
5. *Namesh Kumar et.al (2014), "Mental Health of School going Adolescents: A Comparative study", Scholarly Research Journal for Interdisciplinary studies, NOV - DECEMBER, 2014. VOL-II/XV.*
6. *Ramesh Singh Bartwal, (2014), "To Study the Mental Health Of Senior Secondary Students In Relation To Their Social Intelligence", IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR JHSS), Volume 19, Issue 2, Ver. I, pp 06-10.*
7. *TIMES OF INDIA Jan 2014*
8. *Ciccarelli Saundra K. Noland White adapted by Girishwer Misra, Psychology: An Exploration.5e; 2019; 12.14(12):491- 494.*
9. *Robert A.Baron | Grishwar Misra; 5th edition. PSYCHOLOGY Indian Subcontinent Edition; Pearson (12), 172-174.*

Maternal Mortality in India: Challenges and Issues

Dr. Kumari Pushpa Sharma
Patna (Bihar)

shodhshree@gmail.com

Abstract
Maternal mortality is a measure of conceptive wellbeing of women in the region. Numerous women in conceptive age-range kick the bucket because of difficulties during and following pregnancy and labor or premature birth. According to World Health Organization, "Maternal passing is the demise of a women while pregnant or inside 42 days of end of pregnancy, regardless of the term and site of the pregnancy, from any reason identified with or bothered by the pregnancy or its administration yet not from inadvertent or accidental causes". One of the key pointers of maternal mortality is the Maternal Mortality Ratio (MMR) which is characterized as the quantity of maternal passings during a given time span for every 100,000 live births during a similar time span.

Keyword: *Women Mortality, Maternal Care, Women Awareness.*

All around the world, MMR has declined by 44% in the course of the most recent 25 years, from an expected 385 for each 100,000 live births in 1990 to 216 for every 100,000 live births in 2015. Reducing maternal mortality stays a significant test in low-and center pay nations. In 2015, around 99% of maternal deaths happened in developing and under developed regions [1].

India has gained a striking ground in diminishing MMR, going from 556 for each 100,000 live births in 1990 to 174 for every 100,000 live births in 2015. This improvement is mostly because of the generous advancement in institutional conveyances, died down financing for conveying in a general wellbeing organization, and endeavours to alleviate social weaknesses, for example, improvement in instructive fulfilment and decrease in family unit destitution [2]. In India, there are enormous varieties in MMR across states, going from 237 for each 100,000 live births in Assam to 46 for every 100,00 live births in Kerala. An expected around 69% of maternal mortality happened between the age gathering of 20–29 years in 2014-16 [1].

Maternal mortality can be forestalled if women routinely visit for antenatal consideration during pregnancy, convey in a wellbeing office and get postnatal consideration after conveyance. Use of maternal medical care administrations is affected by a scope of basic and relevant variables and this necessary consideration [3]. An investigation as of late did in provincial Uttar Pradesh uncovered that women' introduction to broad communications and non-underestimation affect the use of maternal medical services [4-5]. An examination done in Madhya Pradesh looked past individual level qualities and surveyed the impact of network and area level variables on the utilization of maternal medical care services. Various investigations in India likewise recorded that different financial components, i.e.,

instruction, family unit's riches status, standing, religion and women self-rule have noteworthy relationship with the use of maternal wellbeing care [6].

This paper distinguishs the elements related with the use of maternal medical care administrations utilizing late information base among Indian women matured 15–49 years. This investigation will give an ongoing proof on the components related with usage of maternal medical care administrations in India, which would help for policy making to improve the utilization of maternal medical services administrations among socio-monetarily hindered gatherings.

Methods and Approaches

This examination utilized the latest NFHS-4 review [7], led in 2015–2016 by the Ministry of Health, Government of India. The NFHS-4 gives the region level data comparing to family units in light of an example of 1,315,617 children birth with a sum of 699,686 women of age 15–49 years from 601,509 family units. The overview test was chosen through a two-stage test plan, and an example of 28,522 groups was drawn from the examining outline 2011 Census of India. Itemized data is accessible in the public report. An aggregate of 249,949 kids from 28, 332 networks was remembered for the last investigation test.

a) Considered Variable : The result variable in this investigation was the under-five mortality, characterized as the danger of a youngster kicking the bucket before arriving at the fifth birthday celebration. The investigation depended on singular level information on youngster endurance and was limited to live births in the five years going before the overview.

b) Singular level attributes: In light of a writing survey, singular level (i.e., youngster and motherlevel) attributes were thought of. The kid level qualities were as per the following: 1) kid's sex ordered as female or male; 2) birth request classified as first-conceived, second-or third-conceived, the fourth-conceived, or higher; 3) birth stretch characterized as the span between two births and classified as first birth and two years or long and under two years; furthermore, 4) labor size characterized as the size of the kid at the hour of birth furthermore, classified as enormous, normal, or little.

c) Network relevant elements: In light of the past writing, the network relevant attributes of enthusiasm for this investigation were incorporated: 1) spot of living arrangement is characterized as the extent of ladies who dwell in a rustic network; 2) network maternal training is characterized as the extent of moms in the network who had at any rate an essential degree of training; 3) network institutional conveyance is characterized as the extent of moms in the network who had institutional conveyance; 4) network level electric association is characterized as the extent of moms from families in the network with power; 5) network neediness level is characterized as the extent of ladies having a place with poor people or least fortunate family units in the network; and 6) separation to a wellbeing office in the network which is characterized as the extent of moms confronting issues in getting clinical assistance because of separation to a wellbeing office in the network.

d) Data Analysis: The univariate, bivariate, and staggered investigations were completed in this examination. At the univariate level, illustrative investigations were directed to look at the example trademark dispersion of the respondents. At the bivariate level, cross-classification was done, and Pearson's chi-square test was performed to look at the relationship between the result variable and the chose autonomous factors. At the staggered examination, a two-level strategic relapse model was performed to look at the

impacts of individual-and network level qualitiesof kid endurance in youngsters under five years old, and to decide the degree by which they clarify local variety in less than five mortality in India.

e) Staggered calculated relapse methodology: The staggered approach is advantageous for distinguishing the social, financial, and ecological settings in which a kid lives and encounters a specific wellbeing result. The staggered examination expects that youngsters and their moms are settled inside family units, and families are settled inside networks. This suspicion proposes that youngsters in family units with comparable attributes have diverse wellbeing results while living in various networks with differentiating qualities. Consequently, we utilized a two-level blended impacts strategic relapse model to test the impact sizes of person also, network factors on under-five mortality and gauge the between-group changeability of chances of under-five mortality.

f) Deterioration investigation: We utilized multivariate deterioration for nonlinear reaction results, to test the between territorial contrasts in less than five mortality. The different disintegrations did by considering the southern district as a low result gathering and the north, focal, east, west, and upper east districts as high result gatherings, separately. The general contrast in a deliberate result can be decayed into a total of parts inferable from bunch contrasts in hazard factors and gathering contrasts in the impacts of those attributes.

NFHS 2015–2016 reveals following key findings:

Mortality levels: In year aout 2010, the under-five death rate was 50 passings per 1,000 live births, and the newborn child death rate was 41 passings for every 1,000 live births. The neonatal death rate was 30 passings for every 1,000 live births.

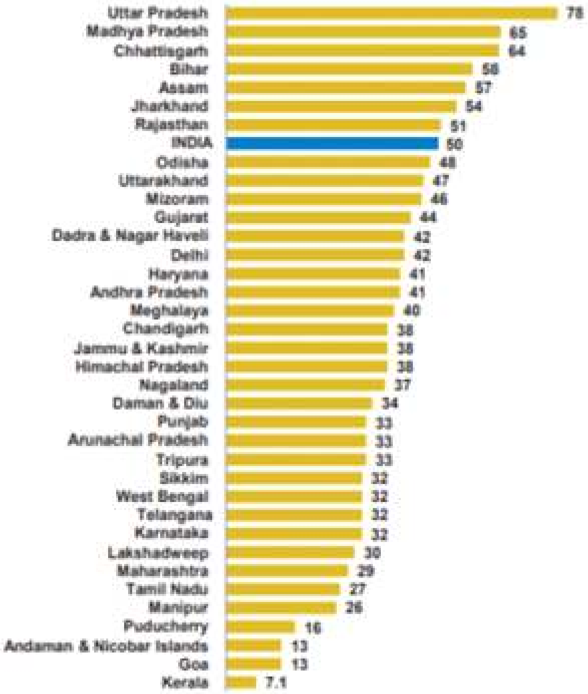

Figure 1: Under-five Mortality Rate by State/UT [7]

Trends: The under-five death rate declined from 109 passings for every 1,000 live births in the five years before the 1992-93 study to 50 passings for each 1,000 live births in the five years before the 2015-16 overview. The baby death rate declined from 79 passings per 1,000 live births to 41 passings for each 1,000 live births during a similar period.

Patterns: The under-five death rate and baby death rate are most elevated in Uttar Pradesh and least in Kerala. The under-five death rate and baby death rate are significantly higher in provincial regions than in metropolitan regions.

Perinatal mortality: The perinatal death rate is 36 passings for each 1,000 pregnancies.

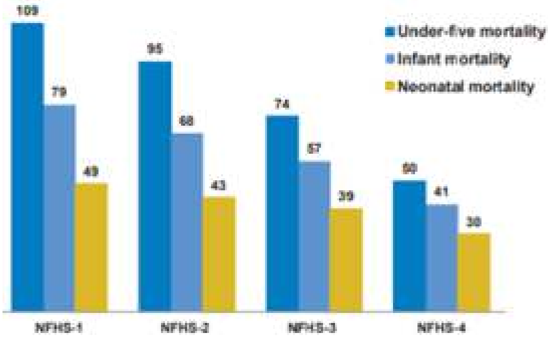

Figure 2: Trends in Early Childhood Mortality Rates

Various socio-segment factors influence maternal mortality. It was seen that poor, uneducated, novice women originating from far off rustic zones were more helpless against mortality. Hypertensive problems are the driving reason for maternal demise followed by drain and sepsis; febrile ailment being the most basic reason. Passing due to hypertensive problems can be decreased by right on time distinguishing proof of hypertensive issues, birth, arranging at higher focuses, and early end of pregnancy and the executives at higher focuses. Early adjustment of paleness and wellbeing training will diminish passing because of paleness. Ultimately most passing might have been forestalled with the assistance of customary antenatal consideration, early location of complexities, brief adjustment or early reference, brisk proficient vehicle offices, accessibility of blood and by advancing generally safe parenthood. Aberrant causes can be forestalled previously or beginning phases. Backhanded causes of maternal mortality can be surveyed or amended previously or during beginning phases of pregnancy in this way lessening their causes.

References

1. *Cencus India. https://censusindia.gov.in/2011-Common/Sample_Registration_System.html*
2. *Cleland, J.G., Van Ginneken, J.K., 1988. Maternal education and child survival in developing countries: the search for pathways of influence. Soc. Sci. Med. 27 (12), 1357–1368.*
3. *Dyson, T., Moore, M., 1983. On kinship structure, female autonomy, and demographic behavior in India. Popul. Dev. Rev. 35–60.*
4. *Fotso, J.-C., 2006. Child health inequities in developing countries: differences across urban and rural areas. Int. J. Equity Health 5 (1), 9.*
5. *Gragnolati, M., Bredenkamp, C., Shekar, M., Das Gupta, M., Lee, Y.-K., 2006. India's Undernourished Children: a Call for Reform and Action. The World Bank.*
6. *Griffiths, P., Madise, N., Whitworth, A., Matthews, Z., 2004. A tale of two continents: a multilevel comparison of the determinants of child nutritional status from selected African and Indian regions. Health Place 10 (2), 183–199.*
7. *NFHS 2015–2016.*

   http://rchiips.org/nfhs/NFHS-4Reports/India.pdf

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

ISSN 2277-5587   RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018
Shodhshree@gmail.com

Individual Subscription Form

Name ....

Designation ....

Name of Organization ....

....

Address ....

....

District ....

State

....

Pin ....

Tel. No. (R) ....

Mobile ....

e-mail ....

Date (Signature)

Frequency	:	Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly) i.e. January, April , July & October.
Mode of Payment	:	Subscription fee can be deposit through online Banking.
Bank Details	:	Virendra Sharma, OBC Bank, Adarsh Nagar, jaipur SB A/C No. 06722151002965, IFSC Code ORBC 0100672, MICR Code 302022005 Subscription Fees - 1800 Rs.

Membership No. .... Date ....

(For Office Use only)

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I..

hereby declared that the paper entitled'..

.....................................'is unpublished original paper which is not sent any where for publication.

This paper is prepared by me/jointly with...

....which is exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature ....

Name ....

Designation ....

Official Address ....

....

Residential Address ....

....

....

Phone No. .... Pin No. ....

e-mail Address ....

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018
Shodhshree@gmail.com

Institutional Membership Form

The Editor
Shodhshree
Jaipur

Dear Sir
I want to become a member of this Journal for -

☐ 1 year (Rs. 1000/-)	☐ 2 years (Rs. 1800/-)	☐ 3 years (Rs. 2500 /-)

I am sending here with Rs............. through online banking/cash for membership of your Journal.

Name of Institution ....

....

Address..

.... Pin Code..................................

Phone/Mobile No. ....

E-mail ID ....

Date: Signature

For Office Use Only

Membership No. ____________ Date ____________

Frequency : Shodhshree is Published four time in a year(Quarterly) i.e. January, April, July, October.

Mode of Payment : Subscription fees can be deposit through online Banking.

Bank Details : Cheque /DD must be in Favor of Virendra Sharma ,OBC Bank, Adarsh Nagar, Jaipur

SB A/C NO.06722151002965

IFSC Code ORBC0100672, MICR Code 302022005

Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in Microsoft Word and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.

2 All manuscripts must be accompanied by the brief abstract, Abstract including Keywords must not exceed more then 150 words.

3. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.

4. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.

5. Maximum word limit of research paper up to 2500 words.

6. Special care must be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper, otherwise it will not be accepted for publication.

7. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.

8. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.

9. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

Book Review : For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

Note : Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

Research Paper may be sent to our e-mail: shodhshree@gmail.com
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134

To,

प्रिन्टेड मैटर
If undelivered please return to :

शोध श्री (त्रैमासिक)
54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी
टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्त्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54–ए,
जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड़, जयपुर–302018 मो. 9460124401 से प्रकाशित।